



[illegible]

[illegible]

-[illegible]

માસ્તર દેવચંદ રતનશી પારેખ. એજ્યુકેશનલ ઇન્સ્પેક્ટર વાંકાનેર સ્ટેટ

वाराणसीवास्तव्यगोस्वामिश्रीगिरधरजीमहाराजविरचितः

शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डः

श्रीरामकृष्णभट्टकृतप्रकाशाख्यव्याख्यया समेतः

सविस्तरोपोद्घातेन गुर्जरभाषया च

विभूषितः

अयं च

गोस्वामिश्रीनृसिंहलालजीमहाराजानामाज्ञया

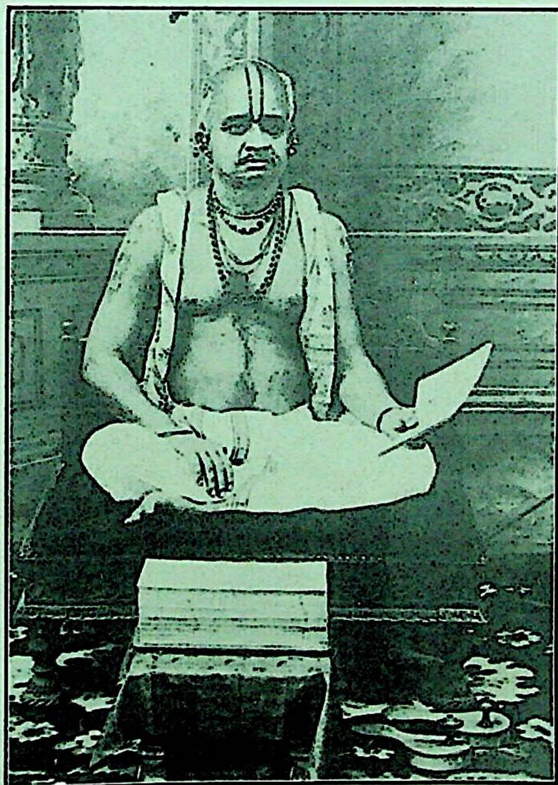
सुबोधिनीसभया प्रसिद्धिं नीतः

मुंबई—"गुजराती" प्रिंटिंग प्रेस.

संवत् १९५९. सन १९०३.

॥ श्रीललितत्रिभंगिरायो जयति ॥

॥ श्रीलाडिलेशश्रीलालौ जयतः ॥



गोस्वामि श्रीमच्छृसिंहलालजी महाराज.

आविर्भावः संवत् १९०२ भाद्रपद कृ. ११

तिरोधानम् १९५९. फाल्गुन शु. १०

The 'Lakshmi Art,'—Bombay

उपोद्घातः

१ भूमिका.

शुद्धाद्वैतमार्तण्ड काशीस्थ प्रसिद्ध गोस्वामिश्रीगिरिधरजीमहाराजनी निर्मिति छे. शुद्धाद्वैतमार्तण्डपरिष्कार अने प्रकाश तदाश्रित रामकृष्णभट्टजीनी कृति छे. विद्याप्रणयी गोस्वामिवर्य श्रीमन्नृसिंहलालजीमहाराजनी आज्ञाथी तेओना शास्त्रिवर छगनलाले मूल ग्रंथ तथा प्रकाशनुं भाषांतर कर्युं छे. क्वचित् क्वचित् भाष्य, निबंध, विद्वन्मंडन, आवरणभंग प्रभृति आकरग्रंथोनो पण आशय भाषांतरकारे संग्रह करी भाषांतरमां वृद्धि करी छे.

सूक्ष्ममां शुद्धाद्वैतसिद्धांत निरूपण करी इतर मतमात्र दोषग्रस्त छे, एम प्रतिपादन करवाना उद्देशथी ग्रंथकारे प्रारंभमां श्लोकद्वयवडे मंगलाचरण, एकोनविंशश्लोकवडे स्वसिद्धांतप्रतिपादन, द्विषष्ठिश्लोकवडे परमतविचारणा करिने, द्वादशश्लोकवडे स्वमार्गस्थ ज्ञानी अने भक्त उभयनी फलप्राप्ति निरूपणकरिने ग्रंथनो उपसंहार कर्यो छे.

शुद्धाद्वैतमार्तण्डमां सूक्ष्मताथी सिद्धांतनिर्देश थयेलो छे, तेथी संतोष न मानतां साक्षात् श्रीमद्वल्लभाचार्यनां वचनामृतनी तात्पर्यपराकाष्ठानुं दिग्दर्शन कराववुं ए उद्देशथी उपोद्घात लखवानी महाराजश्रीनी मने आज्ञा थतां आउपोद्घातलेखनी प्रवृत्ति थाय छे. तात्पर्यनी अन्वेषणा करतां श्रीमद्भाष्यकारनी गूढाभिसंधिनुं यथाशक्ति उद्घाटन करी, निर्देश मात्र करी श्रीमदाचार्यवर्यना उत्कृष्टोत्कृष्ट दृष्टिबिंदुनो वाचकवर्गने साक्षात्कार करावबो एज अत्र प्रयोजन छे. उपोद्घातनी आटली विस्तृति पण आ प्रयोजन लक्षमां राखवाथी सहज क्षंतव्य थशे एम आशंसा छे. कोइ विरल भाग्यवान् उत्तमोत्तम अधिकारिने रमणीय सिद्धांत हृदयंगम थइजतां, कमनीय आनंद रसरूप–भगवत्स्वरूपमां विलास करी सर्व कामाशन करवानी प्रचुर आकांक्षानो प्रादुर्भाव थाय तो तेवा भजनानंदरसिकपुरुषे तो मूल आधिदैविक स्वरूपनी सर्वात्मभावे भावना करी श्रीमद्वैश्वानराचार्यप्रणीत श्रीसुबोधिनीजीमांज अवगाहन करवुं एम आदरपूर्वक प्रार्थना छे.

श्रीमदाचार्यचरणना दृष्टिबिंदुनो साक्षात्कार करवो छे एटले ग्रंथक्रमथी निरपेक्षज ब्रह्मसर्वधर्मवत्त्व, विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व, कर्तृत्व, वैषम्यनैर्घृण्यदोषपरिहार,

ब्रह्मानन्यत्व, अक्षरब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, जीवनित्यता, जीवज्ञातृत्व, जीवपरिमाण, जीवकर्तृत्वभोक्तृत्व, जीवांशत्व, जीवाभेद, जगत्सत्यत्व, जगत्संसारभेद, अविकृतपरिणामवाद, अने आविर्भावतिरोभाववादनुं प्रायः वैदिकयुक्तिथी स्पष्टीकरण करी, प्रमाण, प्रमेय, साधन, फल एम चतुर्धा, परमतथी शुद्धाद्वैतसिद्धांतनुं वैलक्षण्य निर्देश करी, भक्तिसाम्राज्यप्रतिपादन करी, लोकवेदातीत–रसमार्गनुं स्वरूप निरूपण करवामां आवशे. आ अपूर्व प्रयत्नमां केटले अंशे विजयी थवाशे ते सर्वज्ञ प्रभु मात्र जाणे छे.

प्रत्येकवादविषयमां प्रायः प्रथम सूक्ष्ममां स्वकीयसिद्धांतनो सामान्यरीतिथी अनुवाद कर्यो छे अने पछीथी विशेष निरूपण करवानी पद्धति राखी छे, जेथी विशेष ज्ञाननी आकांक्षा न होय एवो वाचकवर्ग पण सहजे उपोद्घातनो यथेच्छ उपयोग करी शके. प्रत्येक विषयनुं उपपादन निबंधोक्तप्रकारथीज कर्युं छे एटले गमे ते क्रमथी गमे ते विषय वाचकवर्ग वांची शकशे.

१ ब्रह्मसर्वधर्मवत्त्व.

ब्रह्मने केटलाएक वादी परमार्थतः असंत निर्धर्मक, निर्विशेष, निराकार, निर्गुण माने छे, तेम न मानतां श्रीमद्वल्लभाचार्यवर्य श्रीसूत्रकारनो आशय लइने, "सर्वधर्मोपपत्तेश्च," "सर्वोपेता च तद्दर्शनात्" इत्यादितत्त्वसूत्रोक्तसिद्धांतनुं अवलंबन करिने ब्रह्मने सर्वधर्मवालुंज स्वीकारे छे. नियतधर्मवाद अंगीकार करतां ब्रह्ममां इयत्ता आवीजाय, अत्यंत निर्गुण ब्रह्मनो अंगीकार करवाथी तेनुं ज्ञान पण थवानो संभव रहे नहिं, मोक्षरूप परमपुरुषार्थ पण न ज रहे, शास्त्रमात्र वृथा थइजाय, माटे श्रुति, श्रीमद्भगवद्गीता, व्याससूत्र अने श्रीमद्भागवत सर्वनी एकवाक्यता करी तेमां कांइ पण न्यूनाधिक्य के बलात्कार कर्याविना जेवुं ब्रह्म फलित थाय तेवुंज, दुराग्रह त्यागकरिने, वैदिक युक्ति मात्रनो समाश्रय करिने, अंगीकार करवुं एम श्रीमद्भाष्यकारनी उत्तमोत्तम शिक्षा छे.

परब्रह्म सर्वधर्मविशिष्ट छे, माटे तेनुं दिग्दर्शनज कराववुं एटली अत्र आकांक्षा छे. सच्चिदानंद, परब्रह्म, व्यापक, अव्यय, सर्वशक्तिमत्, स्वतंत्र, सर्वज्ञ अने निर्गुण अर्थात् प्राकृतधर्मरहित छे. एम षड्धर्मविशिष्ट ब्रह्म कहेवानुं तात्पर्य एटलुंज के, जे परमतत्त्वने श्रुतिसूत्रमां ब्रह्म कहेलुं छे, तेनेज श्रीमद्भगवद्गीतामां परमात्मा अने श्रीमद्भागवतमां भगवान् कहेला छे. ब्रह्म एज भगवान्, एज परमात्मा, पृथक् नहिं. ब्रह्म तो केवल निर्गुण छे, ज्ञेय छे अने परमात्मा–भगवान्–मायाशबलईश्वर–तो सगुण छे, उपास्य छे, एम नहिं. जे सगुण तेज निर्गुण.

सगुण-निर्गुण कल्पनाज वेदांतशास्त्रमां नथी, भ्रांतशास्त्रमां छे. मायावडे ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमत्, कर्तृ, भासे छे एम नथी, पण निर्गुण, अविकृत, सच्चिदानंदज ब्रह्म (मायाथी नहिं, पण) स्वभावथीज, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमत्, कर्तृ छे. "पराऽस्य शक्तिः विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" ब्रह्म व्यापक छे, देश, काल, वस्तु, स्वरूप, एम चतुर्धापरिच्छेदरहित छे, माटेज सजातीय, विजातीय अने स्वगत, एम त्रिविध-भेदविवर्जित छे. जीव-ब्रह्म सजातीय छे, जड-ब्रह्म विजातीय छे, अंतर्यामी स्वगत छे, एत्रणेमां ब्रह्म सम्यक् अनुस्यूत छे. "तत्तु समन्वयात्" सत्य, शौच, दया, आदि अनंत स्वाभाविक-गुणविशिष्ट छे, ब्रह्म मायाधीन नथी पण माया ब्रह्माधीन छे, ब्रह्म केवल नथी पण अद्वैत छे, सर्वरूप छे, ब्रह्मज सेव्य छे अने तेंज ज्ञेय पण छे. सच्चिदानन्द, निर्गुण, अविकृत ज ब्रह्म कर्तृ छे, भोक्तृ छे, अंतर्यामि छे, वैश्वानर छे, आधेय छे, आधार छे, मुक्तोपसृप्य छे, प्राणभृत् छे, भूमन् छे, अक्षर छे, प्रशासक छे, सेतु छे, विधरण छे, परपुरुष छे, परतःपर छे, परमात्मा छे, अपहतपाप्मन् छे, दहर छे, जगत्कंपनकर्तृ छे, परज्योतिः छे, आकाशादि छे, अव्यक्त छे, सूक्ष्म छे, जीवाधिष्ठातृ छे, त्रिवृत्कर्तृ छे, नामरूपव्याकरणकर्तृ छे, सर्वनुं अभिन्ननिमित्तोपादान कारण छे. एम सर्वज्ञ ज्ञानावतार सूत्रकार उद्घोष करे छे. ब्रह्म निराकार छे. लौकिक-प्राकृत-आकृतिरहित छे, तेमज साकार छे, आनंदाकार छे, रसाकार छे. (साकारब्रह्मवडे शरीरी ब्रह्म समजवानुं नथी,) लौकिक देहमां देहथी जेम जीव भिन्न छे तेवी रीतिथी ब्रह्ममां कांइ ब्रह्मनो देह अने ब्रह्मनो आत्मा पृथक् नथी पण सर्व आनंदरूप छे, रसरूप छे, शर्करापुत्तिकामां जेम सर्व अंग शर्कराज छे, शर्करासिवाय इतर कांइज नथी तेम ब्रह्मनुं शरीर, सर्व अंग, आनंदरूप छे, आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि छे, निःसीम परिपूर्णरसमय छे, रसप्रचुर छे, ब्रह्मनां पाणिपाद, अक्षि, शिरस, मुख, आत्मा सर्व आनंदघन रसमय छे. ब्रह्म सर्वतः पाणिपादांत छे, सर्वतोक्षिशिरोमुख छे, सर्वतः लोकमां श्रुतिमत् छे, सर्वनुं आवरण करिने ब्रह्म रहे छे, आ सर्व धर्म जगदाविर्भावपछीथीज स्पष्ट थाय छे, तथापि ते नित्य छे, सहज छे, स्वाभाविक छे, (मायावडे मात्र भासे छे एम नथी. ब्रह्ममां धर्मनो आरोपमात्र छे, पछीथी तेधर्मनो अपवाद करवानो छे, एम नथी, पण) ब्रह्मना निखिल धर्म नित्य छे, सहज छे, स्वाभाविक छे, जेवाक्यमां ब्रह्मना धर्मनो निषेध छे, तेजवाक्यमां पुनः धर्मनुं कथन छे, माटे प्राकृतधर्मनोज श्रुति निषेध करे छे, अप्राकृत सर्व धर्म ब्रह्ममां छे, माटेज सूत्रकार पण "प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः" एम सूत्र योजे छे. सर्वधर्मवत्

ब्रह्मस्वीकारथी द्वैतापत्ति थशे एम शंका अनुचित छे, कारण के, "प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्" सूत्रमां धर्म अने धर्मीनी एकता सूत्रकारेज प्रतिपादन करेली छे. "सर्वधर्मोपपत्तेश्च," "सर्वोपेता च तद्दर्शनात्" इत्यादि सूत्र पण ब्रह्ममां स्वाभाविक सकल धर्मनुं प्रतिपादन स्पष्ट करे छे माटे सकल-धर्मविशिष्टज ब्रह्म मानवुं उपपन्न छे. जे वादी ब्रह्मने केवळ निर्गुण कहेवा दुराग्रह करे छे तेने पण ब्रह्मने नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त मान्या विना छुटकोज नथी एटलें ब्रह्मने निर्गुण मानवा छतां पण नित्यत्वादिधर्मवद् ब्रह्म बलात्कारे पण तेने मानवुं पडशे. ब्रह्ममां आटलाज धर्म छे एम नियतधर्मवाद स्वीकार करतां ब्रह्ममां इयत्ता आवीजाय माटे अनियतधर्मवादनो स्वीकार करी सर्व धर्म ब्रह्ममां सहज छे एमज अंगीकार करवुं. जगद्-जीव सर्व ब्रह्म-कार्य छे, ब्रह्मरूप छे, ब्रह्मानन्य छे, ब्रह्माभिन्न छे, तथापि प्रापंचिक पदार्थथी ब्रह्म विलक्षण छे. क्रीडाकरवानी इच्छावडे आनंदांश तिरोभूत थइजतां ऐश्वर्यादि भगवद्धर्मनी जडत्वादिरूपवडे प्रतीति थाय छे, ब्रह्ममां सर्व जगद् ओत-प्रोत छे. सर्व जगद् अव्यक्तरीतिथी ब्रह्ममां लीन छे तेज लीलेच्छाथी प्रकट करे छे, कारणके पोते स्वतंत्र कर्तृ छे. ब्रह्मवादमां सत्कार्यवादज इष्ट छे तथापि द्वैतगंध नथी. "यत्र येन यतो यस्य" ए श्रीमद्भागवतश्लोकोक्तप्रकारवडे ज्यां, जेवडे, जेथकी, जेनुं, जेवास्ते, जेमकारे, जे, जेसमये थायछे ते सर्व प्रधानपुरुषेश्वर ब्रह्म छे. सर्वविभक्तिनो अर्थ, सर्वप्रकारनो अर्थ साक्षात् ब्रह्मज छे. न्यायोपबृंहित, सर्ववेदांतप्रतिपादित, निखिलधर्मयुक्त, ब्रह्म छे. ब्रह्म अनवगाह्यमाहात्म्य छे, सर्वभवनसमर्थ छे. एवां ब्रह्मनुं माहात्म्यज्ञान थया पछी तेस्वरूपविषे सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह-भक्ति-प्राप्त थाय छे अने तेवडे (इतरथी नहिं) मुक्ति थाय छे. श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप अंतरंग अने शमदमादि बहिरंग साधनवडे चित्त शुद्ध थतां स्वयम् आविर्भूत स्वप्रकाशस्वरूपमां सायुज्यरूप परमपुरुषार्थ सिद्ध थाय छे एम वैदिकशास्त्रमर्यादा छे.

२ विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व.

ब्रह्म परमार्थतः केवल, निर्धर्मक, निर्विशेष, निर्गुण, निराकार छे एम जे वादीनी कल्पना छे, तेनाथी आ श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित सकल स्वाभाविक धर्मनोअपलाप थइशकतो नथी, परंतु निर्धर्मक ब्रह्म अनिर्वचनीय मायावडे सधर्मक भासमान थाय छे अर्थात् ब्रह्ममां सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व, कर्तृत्वादि परमार्थतः नथी, ते तेधर्मनो मायावडे आरोप ब्रह्ममां थाय छे अने आवा

मायाशबल ईश्वरनी उपासना करतां करतां अविद्या निवृत्त थइजतां, पूर्व-आरोपितधर्मनो अपवाद थइजतां अंतमां केवळ निर्विशेष निर्धर्मक ज्ञेयज ब्रह्म रहे छे एम तेमायावादिने श्रुतिनां वाक्यवगरज पोताना घरनी कल्पना करवी पडे छे. ब्रह्म निर्गुण छे, पण माया शवल "ईश्वर–परमात्मा" सगुण छे, ब्रह्म "पर" छे, ईश्वर तो "अपर" छे, निर्गुणज्ञेय ब्रह्मविद्या "पराविद्या" छे अने सगुण उपास्य–ईश्वरविद्या तो "अपराविद्या" छे एम मायानो आश्रय करी केटलाएक वादी सर्वश्रुतिनी भ्रमप्रचुर व्यवस्था करे छे तेम नहिं करतां श्रीमद्भाष्य-कार "उभयव्यपदेशात्त्वहिकुंडलवत्" "प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्" आदि सूत्रनुं समवलंबन करिने "विरुद्धसर्वधर्माश्रययुक्त" ब्रह्मनो अंगी-कार करे छे, सर्व विरुद्ध धर्म, विरुद्ध गुण पण ब्रह्मनो आश्रय करिने सहज रहिशके, एम स्वीकार करे छे, ब्रह्मनुं माहात्म्यज एवुं अनवगाह्य छे, ब्रह्म सर्व-भवनसमर्थ छे, इच्छावडे लीला करतां ब्रह्म सर्व थाय, (मायाथी ब्रह्म तेवा भासे एम नहिं) "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इत्यादि-वाक्यमां धर्मनो निषेध करिने पुनः तेजवाक्यमां "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन" धर्मनुं कथन करे छे माटे ब्रह्म प्राकृतधर्मरहित छे, अप्राकृतसकलधर्म–विशिष्ट छे, तत्त्वसूत्रकार पण एजआशयथी "प्रकृतैता-वत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः" इत्यादि सूत्र योजे छे.

ब्रह्म निर्धर्मक छे तथापि सधर्मक छे, निराकार छे तथापि साकार छे, निर्विशेष छे तथापि सविशेष छे, निर्गुण छे तथापि सगुण छे, अणुथी पण अणु छे, तथापि महानथी पण महान् छे. ब्रह्म अनंतमूर्तिमत् छे तथापि एकज व्यापक छे, कूटस्थ छे तथापि चल छे, अकर्तृछे तथापि कर्तृ छे, अविभक्त छे तथापि विभक्त छे, केवळ इच्छावडे तावन्मात्र प्रकट थाय छे त्यारे विभक्तिमद् होय छे; अगम्य छे, तथापि गम्य छे "अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानुभ्याम्" ब्रह्म अदृश्य छे तथापि दृश्य छे "कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत्," "पश्यन्ति यं यो-गिनः" नानाविध सृष्टि करे छे, तथापि विषम नथी, क्रूर कर्म करे छे तथापि निर्घृण नथी, ब्रह्म अने ब्रह्मधर्म सूर्य–प्रकाशवत् अनन्य छे, ब्रह्मधर्म मिथ्या नथी, मायावडे तेवा धर्म भासे छे एम नथी, पण ते सर्व धर्म ब्रह्ममां स्वाभाविक छे, "आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि" स्वरूपज एवुं परम विचित्र छे, ब्रह्म अनेकरूप छे तथापि गाढ, घनीभूत, सैंधववत् बाह्याभ्यंतर सदा सर्वदा एकरस छे, शुद्ध छे, ब्रह्म बालक छे तथापि रसिकमूर्धन्य छे, स्ववश छे तथापि अन्य (भक्त) वश छे, अभीत छे तथापि (भक्तपासे) भीत छे, भक्तमां सापेक्ष छे तोपण निरपेक्ष छे, चतुर छे तथापि

(भक्तपासे) महामुग्ध छे, सर्वज्ञ छे तथापि भक्तपासे अज्ञ छे, आत्माराम छे तथापि रमण करे छे, "आत्मारामोऽप्यरीरपत्" पूर्णकाम छे तथापि (भक्तनी कामना पूर्ण करवा) कामार्त छे, अदीन छे तथापि (भक्तपासे) दीन भाषण करे छे, स्वयंप्रकाश छे तथापि (भक्तथी अन्यत्र) अप्रकाश छे, बहिःस्थ छे, तथापि अंतःस्थिति करे छे, स्वतंत्र छे तथापि (भक्तपासे) अस्वतंत्र छे, पराधीन छे, परवश छे, रसिकवश छे, सर्वकार्योमां ब्रह्म स्थिति करे छे तो पण ब्रह्मने तेनो स्पर्शज थतो नथी, ब्रह्म आधार छे, आधेय छे, तथापि अविकृत-निर्लेप, छे. क्रीडार्थ कृपा करी सर्व थाय छे "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" ए लीला पण स्वरूपाभिन्न, तद्रूप, तदनन्य, परमफलरूप!!! ब्रह्म प्रमाण छे तथापि प्रमेय छे, साधन छे तथापि फल छे, ब्रह्म सर्वने स्वकीयशरीर माने छे, सर्वनुं ज्ञापक ब्रह्म थाय छे, तथापि स्पर्श करतुं नथी. भगवान् सर्वने स्वकीयशरीर गणे छे तो पण ब्रह्मने ते सर्व-शरीर जाणतुं नथी, एमप्रकारे ए अनुवेश करीने रहे छे, विशिष्टाद्वैतवादीनी कल्पना पण मात्र एकदेशी छे. "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" ब्रह्मनी सम कोइ नथी, ब्रह्मथी अधिक कोइ नथी, तथापि "समो मशकेन समो नागेन" ब्रह्म सर्वसम छे वागादिइंद्रिय-मन पण-ब्रह्मनी प्राप्ति नहिं करीशकी निवृत्ति पामे छे तथापि ब्रह्मनो आनंद जाणे छे ते कोइथी क्यां पण भय पामतो नथी!!! सर्ववाद अनवसरपराहतज छे, वादमात्र भ्रांतिकल्पित छे, कोइपणवादमां ब्रह्मनो स्पर्शज नथी तथापि ब्रह्म स्वतः स्वेच्छावडे सर्ववादने अनुकूल थइजाय छे, प्रत्येक वाद ब्रह्मनो एकएक धर्म प्रतिपादन करे छे अने ब्रह्म तेसर्ववादने अनुसरे छे, कारण के अक्षर, पद, वाक्य, सर्व सरस्वतीरूप छे, इंद्रियना सामर्थ्यथी ब्रह्म अदृश्य छे, अगम्य छे, तथापि स्वेच्छावडे दृश्य थाय छे, गम्य थाय छे, अवतारदशामां पण ब्रह्म प्रापंचिकधर्मनो अंगीकार करे छे तथापि अच्युत छे, च्युतिरहित छे, एम विरुद्धसर्वधर्माश्रय अनुभव करावी निःसीम अगाध माहात्म्य प्रकट करे छे. विशेष शुं अविकृत छे तथापि कृपा करी परिणाम पामे छे.

३. ब्रह्मसर्वकर्तृत्व.

ब्रह्म परमार्थतः निर्गुण छे, मायावडे तेमां कर्तृत्वनो आरोपमात्र छे अने तेआरोपनो विभ्रावडे अपवाद करवानो छे एम मायावादी जे कल्पना करे छे तेमां भीतिमात्र कारणरूप छे. ब्रह्म जो कारण थाय तो द्वैतापत्ति प्राप्त थाय, आवी भीति योग्य नथी, कारण के कार्य-कारणनी अनन्यताज (एकताज)

सूत्रकारने संमत छे. आप्तकाम ब्रह्म कारण थाय तो ब्रह्ममां अपूर्णतादोष आवे एवुं भय पण अनुचित छे. "आप्तकाम" छतां "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" सूत्रोक्तप्रकारे ब्रह्म सहज कारण थईशके. ब्रह्म जगत्कारण थाय तो ब्रह्ममां विकृतिदोष आवे, विकार थया विना परिणामज थई न शके, ए मायावादीनी मुख्य भीति छे. सर्वभवनसमर्थ अनवगाह्य-माहात्म्य ब्रह्मनुं परिणाम थतां पण ते सदासर्वदा अच्युत अविकृत छे ए विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्नुं तेवादिने अज्ञान छे. वस्तुतः तो, ब्रह्म अविकृत छे,जगद्रूपे परिणाम पामतांछतां पण अविकारि छे एम अगाधमाहात्म्यप्रदर्शनार्थज अविकृत, निर्गुण, ब्रह्म परिणाम पामे छे. ब्रह्मवादमां "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्" आदिसूत्रोक्तसिद्धांतनी गृहीति छे एटले निर्गुण, अद्वैत, सच्चिदानंद,ब्रह्म स्वतः सहज कर्तृ छे. कर्तृत्व स्वाभाविक छे, मायिक नथी, आरोपित नथी. एकज अद्वितीय ब्रह्म एकाकी रमण करता नथी त्यारे द्वितीयनी इच्छा करे छे "एकाकी न रमते स द्वितीयम् ऐच्छत्" हुं अनेक थाउँ एवी इच्छा थतां परमकृपावडे पोतेज आ सर्व थया. ते ते साधन करावी तेते फळदान करी भगवान् जगद्रूपवडे "आविर्भाव" पामी लीला करे छे, क्रीडा करे छे. (खेले छे) एज वैदिक सिद्धांत छे. अविकृत, निर्गुण, सच्चिदानंद, ब्रह्म आविर्भावतिरोभाववडे उर्णनाभि, अहिकुंडल, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि, मंत्रादिवत् अनेकानेक स्वरूप धारण करी विचित्र लीला करे छे ए शुद्धाद्वैत निर्णय छे. कर्तृत्त्व मायाकृत नथी, आरोपित नथी पण स्वकीय पूर्ण माहात्म्यप्रदर्शन छे.

अविकृत, निर्गुण अद्वैत, सच्चिदानंद, ब्रह्म जगत्कर्तृ छे. सगुण ब्रह्म परतंत्र छे अने स्वतंत्रता विना कर्तृत्व संभवे नहिं. जेने गुणाभिमान होय ते सगुण कहेवाय, ब्रह्मादि गुणाधिष्ठातादेव, तदंश, सगुण कहेवाय. सगुण कर्ता मानतां स्वतंत्रताहानि ब्रह्मने प्राप्त थाय. "तत्" "सवितुः" वरेण्यम्" वेदमातागायत्री, "बहुस्याम् प्रजायेय" "स ह एतावान् आस," "तत् आत्मानं स्वयम् अकुरुत," "आत्मैव इदं सर्वम्," "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" प्रभृति श्रुतियूथ, "जन्माद्यस्य यतःशास्त्रयोनित्वात्" आदि तत्त्वसूत्र, "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" इत्यादि श्रीमुखवाक्य, "जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात् इतरतः" इत्यादि श्रीमद्भागवतवाक्य साक्षात् निर्गुण, अविकृतज, ब्रह्मनुं कर्तृत्व उपदेश करे छे "सद्रूप" ब्रह्म जगत्कारण छे एम "तत्तुसमन्वयात्" सूत्रपर्यंत आज्ञा करिने, "चिद्रूप" ब्रह्म पण जगत्कर्तृ छे एम ईक्षत्यधिकरणथी सूत्रकार प्रतिपादन करे छे. सदंश ब्रह्मज समवायि कारण

छे एटलुंज नहिं पण चिदंश ब्रह्म पण कारण छे. सर्ववेदांतथी अप्रतिपाद्य ब्रह्म छे एम कांइ नथी. "इक्षतेः न अशब्दम्" कर्तृत्व गौण औपचारिक, नथी; कारण त्यां "आत्मा" शब्दनो प्रयोग छे. कर्तृ सगुण नथी पण निर्गुण छे, कर्तृ–ब्रह्ममां जेनी निष्ठा होय तेना मोक्षनो उपदेश छे सगुण कर्तृ होय तो तन्निष्ठनो मोक्ष संभवे नहिं. सगुण कर्तृ होय तो ते हेय होय पण कर्तृ–ब्रह्म हेय छे एवुं कोईपण स्थळे वचन नथी. अध्यारोप–अपवादवादमां तो कर्तृ–ब्रह्म हेय छे एवातनुं विस्मरण न थवुं जोइए. मोक्षमां सर्व ब्रह्म–सम थइ रहे छे ए पण ब्रह्म सर्व–कारण होय तोज घटे. 'स्व' शब्दवाच्य ब्रह्ममां जीव प्रसह्य लय पामे छे तेथी ते "स्वपिति" कहेवायछे एम छांदोग्यश्रुतिमां कहेल छे. ए पण ब्रह्मनुं कारणत्व प्रतिपादन करे छे. "पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते" "पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" ए श्रुति तो निःसंदिग्ध निष्प्रत्यूह पूर्ण एवां सर्व कार्यनुं उदंचन पूर्णब्रह्ममांथीज निरूपण करे छे. "आनंदरूप" ब्रह्म पण जगत्कारण छे एम सूत्रकार अष्टसूत्रथी प्रतिपादन करे छे. "सद्रूप" "चिद्रूप" "आनंदरूप" ब्रह्म जगत्कारण छे छतां ब्रह्ममां विकार थतो नथी, अविकृत ब्रह्मनुं परिणाम थाय छे एम "विकारशब्दात् इति चेन्न प्राचुर्यात्" सूत्र स्पष्ट प्रतिपादन करे छे; ब्रह्म जगत्कारण छे तो पण विकृति–विकार ब्रह्ममां थतो नथी एम सिद्ध करी, सच्चिदानंद, निर्गुण, अद्वैत शुद्ध ब्रह्म अविकृत–जगत्कर्तृ छे, अभिन्ननिमित्तोपादान कारण छे एम डिंडिमश्रवण सूत्रकार करावे छे. जीव संसारावस्थापन्न, परतंत्र, गुप्तानंद छे माटे तेनुं कर्तृत्व पण अनुपपन्न छे. जड कारण होइशके नहिं. कारणत्व–कर्तृत्व–तेमां संभवेज नहिं. "चिद्रूप" ब्रह्मथी विलक्षण जगत् छे माटे चेतनात्मक ब्रह्म कारण न थाय एम शंका न करवी. अचेतन केश चेतनशरीरमांथी उत्पन्न थाय छे, चेतनवृश्चिक अचेतन गोमयमांथी प्रकट थता जणाय छे, चेतनमांथी अचेतननी उत्पत्तिनो निषेध करतां तदंशनोज निषेध छे. तुल्यांशसंपत्ति कार्यकारणनी मानतां पण उभयमां सदंश समान छेज. कारण असत् छे एम श्रुति कहेती नथी त्यांतो प्रतिषेधमात्र करे छे "कथम् असतः सज्जायेत" कार्य असत् छे एम पण नथी, तेनुं कारण ब्रह्म छे एम बताववाज पूर्वे कार्यनो प्रतिषेध कर्यो छे. जड कारण मानतां जडमां लय थाय; कारणने पण त्यारे कार्यगत स्थौल्य, सावयवत्व, परिच्छिन्नत्व, अशुद्धत्व, आदिनो संबंध थाय, रचनानुपपत्ति जडवादमां आवीपडे, प्रवृत्तिज संभवे नहिं. जड स्वतः अंबुवत् के दुग्धवत् परिणाम पामीशके नहिं, तेवा दृष्टांतमां चेतननी अपेक्षा इष्ट छे. तृण, पल्लव, जल, स्वभा-

वर्थीज प्रवर्ते छे एम जडनुं परिणाम न थइ शके. स्वभाव होय तो गमे त्यां परिणाम थाय, पण तेम थतुं नथी. शृंगादिमां कांइ तृणनुं दुग्ध नथी थतुं, विशेष, जड कारणने कोइ प्रतिबंध करनार न रह्युं एटले कार्य सतत चाल्याज करे एटले अनिर्मोक्ष दोप प्राप्त थयो. जड परिणाम पामे एम मानतां पण तेम थवामां प्रयोजन जोइए ते नथी. अंधपंगुन्यायथी लोहअयस्कांतवत् जड–चैतन्यक्रिया उत्पादन करे एम मानतां पण चैतन्यसंनिहित वा चैतन्याधिष्ठित जडनुं परिणाम थाय एटले दोप तदवस्थज. चैतन्य जो स्वाभाविक प्रेरक होय तो जडनुं प्रयोजन न रह्युं. जडनी स्वाभाविक प्रवृत्ति मानवामां दोप प्रथमज बताव्यो छे. उभयनो नित्य संबंध थयो, विशिष्टकारण थयुं, एटले अनिर्मोक्षापत्ति. जड–चैतन्यनो अंगांगिभाव नथी, तेम मानतां तो जडवादीनो ब्रह्मवादमां प्रवेश थाय, जडकारणवादज रहे नहि. जडमां ज्ञानशक्ति नथी एज मुख्य दोप छे. कारण असत् छे एम तो मनायज नहि, त्यारे तो शशशृंगादि अलीक–मिथ्यामांथी सर्व कार्य संभवे ! उदासीनने पण सर्वसिद्धि एमनी एमज थइजाय ! कार्यज असत् मानतां पण निर्वाह नथी वस्तु होय तोज उपलब्धि थाय. जगत्नी उपलब्धि थाय छे माटे जगत् कार्य छे, सत् छे. जगत्नुं अस्तित्व वेद आज्ञा करे छे. " यत् इदं किंच तत्सत्यम् " जगत्नी उपलब्धि थाय छे माटे जगत्नो अभाव नथी; स्वप्नादिवत् पण जगत् नथी, वैधर्म्य छे. स्वप्नमां वस्तुनो अन्यथाभाव थाय छे, जगत्मां तो ज्ञानीने पूर्णज्ञान प्राप्त थाय तो पण जगत् तदवस्थज रहे छे, अन्यथाभाव जगत्नो थतोज नथी. वासनाथी जगत्प्रतीति थाय छे एम पण नथी. मूळमां जगत् न होय तो वासनाज संभवे नहि. अनादि वासना मानतां अंधपरंपरा प्राप्त थाय. जड कारण, असत्कारण, असत्कार्य, ए सर्वना खंडनथी, वैशेपिक, नैयायिक, मायावादी प्रभृतिनुं अर्थात्ज खंडन थईगयुं; माटे हवे "व्यतिरेक" थी पण ब्रह्मनेज कारण मान्याविना उपायज रह्यो नहि. "प्रकृति श्च" सूत्रमां ब्रह्मज निमित्त कारण तेमज प्रकृति (उपादान कारण,) पण छे एम सूत्रकार स्पष्ट सिद्धांत आज्ञा करे छे " अश्रुतं श्रुतं भवति " एवी वैदिक प्रतिज्ञा अने "मृत्पिंड" नो वैदिक दृष्टांत उभये एज वात समर्थन करे छे. "सोऽकामयत" श्रुत्युक्त ब्रह्मना अभिध्यानना उपदेशवडे पण सर्वज्ञ सूत्रकृत् ब्रह्मनुज कारणत्व प्रतिपादन करे छे. ब्रह्मने कर्तृ मानतां निर्गुण ब्रह्म सगुण थइजाय एवी भीतिथी विवर्तवाद उपजाववानुं प्रागल्भ्य करवुं नहि. जे वादी ब्रह्मने केवळ निर्गुण मानवानो आग्रह करे छे ते पण ब्रह्मने "नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, विभु" तो माने छे ज एटले निर्गुण ब्रह्ममां पण नित्यत्वादि गुण तो तेने पण बलात्कारे मानवाज पडशे एटले तेवादीप्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म पण नित्यत्वशुद्धत्वादिगुणेकरीने सगुण

थइजगयुं छे. ब्रह्मवादमां तो निर्लेप कर्तृत्वादि सहज धर्म निर्गुण ब्रह्मस्वरूपमां स्वीकारतां निःसीम माहात्म्य सूचन थाय छे. ब्रह्ममांथीज उत्पत्ति अने तेमांज लय एम साक्षात् निगम आज्ञा करे छे "सर्वाणि ह वाइमानि भूतानि आकाशात् एव उत्पद्यन्ते" स्मृति पण "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" इत्यादि वाक्यमां निःसंदिग्ध कर्तृत्वनुं कथन करे छे "तदात्मानं स्वयं अकुरुत" ए श्रुति साक्षात् अविकृत, निर्गुण, आत्मानुज परिणाम आज्ञा करे छे माटेज ज्ञानावतार सूत्रकार पण " आत्मकृतेः परिणामात् " एम प्रकट सूत्र योजे छे " यद्भूत-योनिं परिपश्यन्ति धीराः ", " योनिश्च हि गीयते ", " मम योनिः महत् ब्रह्म ", " तासां ब्रह्म महद्योनिः " आदि श्रुति स्मृति शाक्तवादना निरासपूर्वक ब्रह्मनेज योनि कहे छे " इदं सर्वं यत् अयम् आत्मा " निर्दोष ब्रह्मनुं परिणाम मानतां विकृतिदोष ब्रह्ममां प्राप्त थईजाय ए शंका पण अनुचित छे. ब्रह्मनुं परिणाम थतां पण ब्रह्म अविकृतज रहे छे ए सूचन करवाज श्रुतिमां ऊर्णनाभि, मृत्स्ना, सुवर्णादि अविकृतपरिणामनां दृष्टांत आपे छे अने सूत्रकार पण " आत्मकृतेः परिणामात्," " अश्मादिवच्च," " क्षीरवद्धि, " " देवादि-वदपि," " अहिकुंडलवत् " प्रभृति सूत्र एजसिद्धांतनुं समर्थन करवा योजे छे. कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि, मंत्रादि दृष्टांत पण एज सिद्धांतनो प्रकाश करे छे. " अच्युत " एवुं जे ब्रह्मनुं नाम छे तेनी पण सार्थकता हवे स्पष्ट थशे. ब्रह्म-ज उपादान कारण थाय तो कृत्स्नप्रसक्ति, समग्र ब्रह्म एकज कार्य थाय, अ-थवा तो " निष्कलं निष्क्रियं शांतं " इत्यादि निरवयवत्व श्रुतिनो व्याकोप थाय एम तर्क न करवो. " श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् " श्रुति शब्दमूल छे, शब्दैकसमधिगम्य छे ते जेम आज्ञा करे तेम स्वीकारीलेवुं एज परमकल्याण-पथ छे. अन्यथा अणुमात्र पण अन्यथा कल्पना करतां आत्मापहार दोष आपन्न थाय. " अन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा " " नैषा तर्केण मतिः अपनेया ", " अचिन्त्याः खलु ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत् " श्रुतिनो बाध लौकिक स्वोत्प्रेक्षित युक्तिवडे करवो नहि, स्वोत्प्रेक्षित युक्तिनुं अप्रतिष्ठान छे ब्रह्मनुं माहात्म्य अन-वगाह्य छे तेमां विरोधज नथी. ब्रह्म निरवयव छे छतां कर्तृ छे ए विरुद्ध सर्व-धर्माश्रयत्व भूषण छे, दूषण नथी. सृष्टिमां देशकालादि अपेक्षा पण नथी. आ-त्माविषे ब्रह्म साधारण सृष्टि करीदेछे. बहिःसृष्टि अने अंतःसृष्टि सर्व आप करे छे. " आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि "; विचित्रशक्तियुक्त छे, सर्वभवनसमर्थ छे, सर्वोपेत छे, सर्वशक्तियुक्त छे, सर्वज्ञ छे, सर्वकर्तृ छे, सर्वकाम छे, एमां हवे असंभव शुं रह्यो ? वेदोक्त सर्व धर्म ब्रह्ममां कोइ पण न्यूनाधिक्यविनाज स्वतःज

उपपन्न छे माटे मायावाद उपजाववानी कुकल्पना करवानुं कारण नथी. ब्रह्म विविध स्वाभाविक शक्तियुक्त छे माटे इंद्रिय–करण विना, प्रयोजन विना, लीला करे छे, क्रीडा करे छे; अने ए लीला पण कैवल्य छे, ब्रह्मथी अभिन्न छे, परम सुख-रूप छे, एवुं अगाध माहात्म्य ब्रह्मनुं छे.

४ ब्रह्मगतवैषम्यनैर्घृण्यदोषपरिहार.

ब्रह्मज सर्वकर्तृ छे एटले ब्रह्मज सुख दुःखदान करे छे, ब्रह्मज प्रलयादि करे छे, ब्रह्म कोई जीवने सुखी अने कोइने दुःखी करे छे माटे ब्रह्म विषम छे, ब्रह्म प्रलयादि करे छे माटे निर्घृण छे, एम ब्रह्मनुं सर्वकर्तृत्व मानतां वैषम्यनै-र्घृण्य दोष ब्रह्ममां आवीपडे छे एम शंका करवी योग्य नथी. सूत्रकार ब्रह्मने कर्मसापेक्षज स्वीकारे छे. भाष्यकार "आत्मसृष्टि" हेतुवडे पूर्वोक्तदोषनो परिहार करे छे. श्रीमदग्निकुमार "लीला" हेतुवडे उत्कृष्टोत्कृष्ट समाधान आपे छे. इतर मतवत् कर्मनियामकत्व कोइ पण स्वीकारता नथी एटले सूत्रकार, भाष्यकार अने विद्वन्मंडनकारमां परस्पर विरोध नथी, ब्रह्मनुं नियमन कर्म करीशके नहि एटलो सिद्धांत त्रणे अङ्गीकार करे छे. कर्म स्वतःज फळदान आपीशके नहि कारण ते जड छे. कर्मानुसार ईश्वर फळ आपे एम मानवामां पण सर्वेश्वर ब्रह्म कर्मने आधीन थाय ए पण अनुपपन्न छे माटे ईश्वरकारण-ताज अंगीकार करवी एम त्रणेनुं हार्द छे.

ब्रह्म सर्वकर्तृ छे एटले जीवने सुखदुःख दान करतां वैषम्य दोष, अने प्रल-यादि करतां नैर्घृण्य दोष ब्रह्ममां प्राप्त थाय एम शंका योग्य नथी. आ उभये दोषनो परिहार करवा सूत्रकार "वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति" इत्यादि सूत्र योजे छे. वैषम्यनैर्घृण्यदोषरूप शंकोत्थापन अने तत्परि-हार प्रयत्नथीज सूत्रकारने ब्रह्मकर्तृत्व इष्ट छे, एम तो आपाततःज सिद्ध थइ-जाय छे. विषमतानिर्घृणतादोषपरिहार त्रण प्रकारे थाय छे. "वैषम्यनैर्घृ-ण्येन सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति" अने "कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्र-तिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः" इत्यादि सूत्रवडे सूत्रकार समाधान करे छे. ब्रह्म विषम नथी, ब्रह्म निर्घृण नथी, केमके ब्रह्म कर्मसापेक्ष छे, ब्रह्मने कर्मनी अपेक्षा छे, कृतप्रयत्ननी अपेक्षा छे; कर्मसापेक्ष ब्रह्म न मानीए तो विहित प्रतिषिद्ध कर्म व्यर्थ थइजाय. सूत्रकार आमप्रमाणे अनादि सृष्टि स्वीकारी कर्मसापेक्षत्व हेतुवडे निकृष्ट अधिकारीनुं समाधान करीदे छे.

श्रीमान् भाष्यकार विशेष समाधान करे छे. "स आत्मानं स्वयम् अकु-रुत," "आत्मकृतेः परिणामात्" इत्यादि वाक्य आत्मसृष्टि प्रतिपादन करे

छे. अने ए " आत्मसृष्टि " हेतुथी श्रीमद्वल्लभाधीश पूर्वोक्तदोषनुं परिहरण करे छे जगत्‌मां नानाविध सृष्टि करे छे तो पण ब्रह्म विषम नथी, क्रूर कर्म करे छे. तथापि निर्घृण नथी कारण ब्रह्म विरुद्धसर्वधर्माश्रययुक्त छे. पूर्वोक्त व्याससूत्र तो लोकबुद्ध्यनुसारि मात्र छे नहि तो पाछलथी सूत्रकार स्वतः "फलमतः उपपत्तेः" एम सूत्र योजे नहि, ब्रह्मनुं फलदातृत्व प्रतिपादन करे नहि. कर्मसापेक्ष ब्रह्म मानवाथी कर्मानुसारज फल ब्रह्म आपे एटले सर्वेश्वर ब्रह्मनुं पण नियामक कर्म थइजाय, ईश्वरज अनीश्वर थइजाय माटे, "आत्मसृष्टि" ज वैषम्यनैर्घृण्यदोषपरिहार करवामां हेतु मानवो. कर्माधीन ईश्वर थइजाय, ईश्वर-नियामक कर्म थइजाय ए पक्ष सूत्रकारने संमतज नथी माटे "पत्युः असामंजस्यात्" एम पुनः सूत्र योजे छे, तार्किकादिनुं खंडन करे छे. केवल कर्म तो फलदातृ थइ न शके, कारण के ते जड छे; विशेष, कर्मनुं फलदातृत्व मानतां निरीश्वरवादनो प्रसंग आवे. कर्म नियामक छे एम मानतां पण कर्मना स्वरूपनो विचार करवो जोइए. कर्म पण ब्रह्म छे एम कहेशो तो दोष तदवस्थज रहेवानो. कर्म ब्रह्मथी भिन्न छे एम मानशो तो कर्माधीन ब्रह्म थइजशे माटे "आत्मसृष्टि" ज हेतु छे एम अंगीकार करवुं पडशे. स्वमाहात्म्य प्रदर्शनार्थज ब्रह्मे आत्मसृष्टि करी छे. विचित्र जीवो, विचित्र साधन, विचित्र फल प्रकट करीने पण प्रत्येक व्यक्तिने सुखदुःख समानज दान करे छे ए प्रभुनुं अप्रमेय माहात्म्य. जीव, कर्म, फल सर्व आत्मसृष्टिज, भगवदनन्य, भगवद्रूप छे. विविधरसनिष्पत्यर्थ विविधरूपे आविष्कार छे माटे शुद्धाद्वैतसिद्धांतमां वैषम्यनैर्घृण्यदोषनी गंध पण नथी. कर्मविना पण तेवुं फलदान करवा प्रभुनुं पूर्ण सामर्थ्य छे अने तेवुं सामर्थ्य ते अंतरंग पुष्टभक्तोने स्वप्रमेयबलवडेज दान करी प्रकट पण करे छे तथापि कर्मानुसारज फल आपवुं एवी मर्यादा स्वेच्छामात्रथीज, कर्मनियामकत्वथी नहि, मर्यादा रची तदनुसार क्रीडा करे छे, ए आपनुं निःसीम माहात्म्य छे. निरपेक्ष ब्रह्म कर्मसापेक्ष थाय एज पूर्णता, ब्रह्मनुं विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व. कर्मसापेक्षता प्रकट करवानी इच्छाथी मर्यादा बांधी वेद प्रकट कर्या, सर्व कर्मना गुणदोष प्रकट कर्या, वर्णन कर्या, जीव स्वकीय इच्छानुसार कर्म कर्यो जाय छे त्यारे तेजीवनो तेवो अभिनिवेश जोइ भगवान् तेने ते कर्म करवादे छे. फल आपवामां कर्मनी अपेक्षा, कर्ममां जीवे करेला प्रयत्ननी अपेक्षा, प्रयत्नमां तेनी कामनानी अपेक्षा, अने कामनामां लोकप्रवाहनी अपेक्षा निरपेक्ष भगवान् राखे छे. मर्यादारक्षार्थज ते ते कर्म करावी ते ते फलदान करे छे प्रयत्नपर्यंत जीवकृत्य, त्यारपछीनी वात तेना हाथमां नथी. जीवना अभिनिवेशपूर्वक कर्म करावी फल आपे छे माटे कर्म पण व्यर्थ थतुं नथी, बीजवत् कर्म अने वृष्टिवत् भगवान् एम मर्यादा

मार्गमां व्यवस्था रची तदनुकूल आप थाय छे एवुं अद्भुत माहात्म्य प्रभुनुं छे क्रीडार्थ आत्मसृष्टि एज त्यारे परम मर्म छे.

श्रीमदग्निकुमार उत्कृष्टोत्कृष्ट समाधान उत्तमोत्तम अधिकारीने आपे छे. हुं अनेक थाउं एवी इच्छाथी क्रीडा माटे भगवाने प्रयत्न कर्यो छे माटे लीलाज मुख्य छे, तदितर सर्व उपसर्जनीभूत छे, जगद्रूपवडे रमण करवानी अपेक्षावान् "(कृतप्रयत्नापेक्षः)" भगवाने स्वरूपाभिन्न विचित्र विविधरसनो अनुभव करवामाटे एवी रीतिथी व्यवस्था बांधी के आवी जातनां कर्म करशे तेने आवी जातनां हुं फळ आपीश तेथी ज "धर्मसेतुना वक्ता," "कर्ता" अने "अभिरक्षिता"भगवान् छे. पोते करेली आवी मर्यादानी रक्षामाटे वेदने कर्या एटले जीवव्युच्चरण समयेज आदेशमां आकाळमां आजीवने आवी रीतिथी प्रवृत्ति निवृत्तिमान् करीने आ फल आपीश, एम प्रत्येकजीववास्ते मोक्षपर्यंत विचार भगवाने कर्यो छे,अने ते विचार अनुसारज जीवो तेवा थया जाय छे"न स स्वो दक्षो वरुणध्रुतिः सा सुरा मन्युः विभीदको अचित्तिः।अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्च नेदनृतस्य प्रयोता" इत्यादि ऋग्वेदप्रभृतिमां उत्पत्तिसमये निर्मित दैवगतिने ज कारण मानेल छे. "एष हि एव साधु कर्म कारयति" इत्यादि वाक्यनुं पण पर्यवसान एमज थाय छे. अमुक जीव सुखी छे, दुःखी छे, तेना प्राक्कर्मनुं ज्ञान पण "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति" इत्यादिथी थाय छे. "भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः" ए श्रीमुखवाक्यथी सर्व कारणता आप प्रकट करे छे. "तसिल्" प्रत्यय छे माटे आप सर्वकारण छे तो पण विकारदोष प्राप्त नथी ए ध्वनि छे. "फलमत उपपत्तेः" इत्यादि सूत्रमां ब्रह्मनुंज फलदातृत्व प्रतिपादित छे. "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" पण एज सर्व सिद्धांत समर्थन करे छे. "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति भ्रामयन् सर्व भूतानि" इत्यादिमां पण ब्रह्मनुंज सर्वनियंतृत्व प्रसिद्ध छे. "बुद्धिप्रेरककृष्णस्य" प्रभृति वचनामृत पण प्रभुनुंज प्रेरकत्व अंगीकार करे छे. अधिक शुं? वेदमाता गायत्री पण "धियो यो नः प्रचोदयात्" एज उत्कृष्टोत्कृष्ट सिद्धांतनुं पोषण करे छे. विविधरसभोगचतुर "विपश्चित्" भगवान् क्रीडार्थ जीवादिकनी विचित्रता करी प्रयत्न करे छे अने तेवा प्रयत्नवान् भगवान् जीवपासे तेवां कर्म करावी विविधरसभोग करे छे. वेदनिरूपित विहित निषिद्ध कर्मनी व्यर्थता न थाय माटे भगवान् तत्तत्कर्मपूर्वक तत्तत्फलदान करे छे, स्वकीय लीला सिद्ध करे छे. "लीला" नीरस न थाय एम आप प्रयत्न करी, जीवने प्रयत्न करावी, विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व प्रगट करे छे, निर्दोषत्व, पूर्णगुणविग्रहत्व प्रसिद्ध करे छे.

५ ब्रह्मजगदनन्यत्व.

मायावादी ब्रह्मने सत्य माने छे अने जगत्ने परमार्थतः मिथ्या माने छे, तेम स्वीकार न करतां श्रीमदाचार्यवर्य जगत् अने ब्रह्मनुं शुद्ध अद्वैत, मायारहित अभेद–अनन्यत्व अंगीकार करे छे. ब्रह्मनुं आधिभौतिक स्वरूप जगत् छे, माटे ब्रह्म अने जगत् उभय रूप अनन्य छे, अभिन्न छे. सूत्रकार पण तदनन्यत्व अधिकरणमां एज सिद्धांत प्रतिपादन करे छे.

ब्रह्मनां त्रण स्वरूप छे. परब्रह्म आधिदैविक स्वरूप छे, अक्षरब्रह्म आध्यात्मिक स्वरूप छे, जगत् आधिभौतिक स्वरूप छे. ए त्रणे स्वरूप अनन्य छे. अभिन्न छे. वेदव्यास पण तत्वसूत्रमां तदनन्यत्व अधिकरणमां ब्रह्म अने जगत्नुं अनन्यत्व अभिन्नत्व एम आज्ञा करे छे. अनन्यत्वनो अर्थ केटलाक "मिथ्यात्व" करे छे, ते श्रुतिसूत्रोक्त सिद्धांतनुं तिलोदक करे छे. मिथ्यात्व अर्थज संभवतो नथी. एकविज्ञानवडे सर्वविज्ञान, जगत् मिथ्या होय तो, संभवेज नहि. प्रतिज्ञामां विरोध आवे, सर्वप्रकरणनो व्याकोप थईजाय. जगत् मिथ्या छे एम जो वेदने मानवुं होत तो "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिका सत्या" एम आज्ञा करत पण निगम तो एम पोकार करे छे के "मृत्तिका इत्येव सत्यम्" घट पण मृत्स्नाज छे माटे घट सत्य छे. "इति" प्रकारवाची छे घट मृत्तिकानोज प्रकार छे, मृत्तिकानुंज रूप छे, मृत्तिकानन्य छे, सत्य छे, असत् नथी, मिथ्या नथी, पण सत् छे. रूप छे, अनन्य छे, अभिन्न छे, "तदेव एतत् प्रकारेण भवतीति श्रुतेः मतम्" तेज ब्रह्म आजगत्प्रकारवडे थाय छे ए श्रुतिसिद्धांत छे. वस्तु होय तोज उपलब्ध थाय, वस्तुज न होय तो उपलब्धि थाय ज नहि. जगत्नी उपलब्धि थाय छे, जगत् सत् छे, अनन्य छे, जगत् सत्य छे एम "सदेव सौम्य इदम् अग्रे आसीत्" "यदिदं किंच तत् सत्यम्" श्रुति आज्ञा करे छे. "असद्वा इदमग्र आसीत्" श्रुति पूर्वे धर्मान्तरवडे अव्याकृत जगत् हतुं एमज कथन करे छे "तत् आत्मानं स्वयं अकुरुत" एमां ब्रह्म–आत्मा–पोते पोतानी क्रिया बतावे छे अने "आसीत्" एम प्रथम प्रयोग करेलो छे. कार्य समवेतज थाय, समवायसंबंधसहितज थाय, संबंध द्वि–निष्ठज होय माटे पण ब्रह्म अने जगत् उभयरूपनी अनन्यता छे. असंबद्ध उत्पत्ति मानतां मिथ्यात्व प्राप्त थाय. वस्तु होय छतां व्यापार प्रवृत्ति अभिव्यक्ति माटे करवामां आवे. संवेष्टित पट अने विस्तृत पट जेम अनन्य छे, भिन्न नथी, तेमज आविर्भाव तिरोभाववडे ब्रह्म–जगत्नी अनन्यता छे. जेम प्राणापानना नियमन अनियमन मात्रथी प्राणभेद कहेवातो नथी तेमज ब्रह्म–जगत्नो भेद कहेवाय नहि. निर्गुण

अविकृत ब्रह्म जगद्रूप थाय, जगदनन्य थाय, तो भोक्तृत्व–भोग्यत्व भाव न संभवे एम पण नथी. ऊर्णनाभि (करोळीयो) पोते पोतानी लाळावडे जाळ करी तेनी अंदर विहार करी पाछी जाळने पोतामां लइ एक पोतेज रहे छे, जेम योगीओ अनेक रूप धारण करी क्रीडा करी पाछा एकला रहे छे तेओ भोक्तृ अने भोग्य पोते थइने पण शुद्ध रहे छे तेम ब्रह्म पण, भोक्तृ अने भोग्य थाय छे तो पण शुद्ध रहे छे. लोकमां जेम कटक पण सुवर्ण छे अने कुंडल पण सुवर्ण छे तथापि कटकने कुंडल कहेवातुं नथी, अने कुंडलने कटक कहेवातुं नथी, तेमज भोक्तृ पण ब्रह्म छे, भोग्य पण ब्रह्म छे, छतां भोक्तृने भोग्य कहेवातुं नथी, अने भोग्यने भोक्तृ कहेवातुं नथी पूर्ण काम ब्रह्म जगद्रूप थइ, तदनन्य थइ अनेकानेक विहार करे छे एब्रह्मनुं अनवगाह्य माहात्म्य छे. आमकारे शुद्धाद्वैतसिद्धांतमां कार्य–कारणनुं शुद्ध–मायारहित अनन्यत्व छे. अभेद सिद्ध करवामां माया-मिथ्यात्व-आरोप-इत्यादि स्वीकारनी आवश्यकता न रही.

६ अक्षरब्रह्मरूप.

ब्रह्मनां त्रण स्वरूप छे. आधिदैविक ब्रह्म भक्त्येक प्राप्य छे. आध्यात्मिक ब्रह्मने अक्षर कहे छे. शुद्धाद्वैतज्ञानी भक्तिरहित होय तो तेनो अक्षरब्रह्ममां लय थाय छे. ज्ञानिप्राप्य आध्यात्मिक स्वरूप ते अक्षरब्रह्म, जगत् आधिभौतिक स्वरूप छे.

पूर्व ब्रह्मस्वरूपनो विचार कर्यो. हवे अक्षरब्रह्मस्वरूपनो विचार करीए. भगवान् ज्यारे जेरूपवडे कार्य करवानी इच्छा करे छे त्यारे तेजस्वरूप वडे सर्व व्यापार करे छे तेमां ज्यारे ज्ञानद्वारा मोक्षदान करवानी इच्छा भगवान्नी थाय छे त्यारे पुरुषोत्तमना आधारभाग, चरणस्थानीय, अक्षरब्रह्मने अक्षररूप, कालरूप कर्मरूप, अने स्वभावरूप एम चार स्वरूप ग्रहण करावे छे तेमां जे स्वरूप प्रकृति अने पुरुष एभेदवडे द्विरूप छे तेज सर्वकारण अक्षरब्रह्म, पुरुषोत्तम पूर्णसत्, पूर्णचित् पूर्णप्रकटानन्द छे परंतु अक्षरब्रह्ममां आनंदनो कांइक तिरोभाव एटले ते गणितानंदक छे एटलुं वैलक्षण्य छे. "इयदामननात्" सूत्रमां मनुष्यानंदथी आरंभी अक्षरानंदपर्यंतना आनंदनी इयत्ता "सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा" ए तैत्तरीय श्रुतिने आधारे बतावेली छे. मारे आप्रकारे प्रकट थई आवी लीला करवी एम पुरुषोत्तमने इच्छा मात्र थवाथी अंतःकरणमां सत्त्वसमुत्थान थाय छे, तेथी आनंदांश तिरोभूतवत् थईजाय छे, पुरुषोत्तम तो लीलावडे, इच्छा मात्र करे छे तेवडे व्यापृत थता नथी माटे पुरुषोत्तम सदा सर्वदा अतिरोहितानन्द छे. अक्षरब्रह्म ते इच्छावडे व्यापृत थतां

सन्मूलभूत सत्त्ववडे तिरोहितानंद थइजतां मुख्य जीव कहेवाय छे अने तेथी औडुलोमि आचार्यना मतमां चिद्रूप जीवनो चिद्रूप स्वयोग्यब्रह्ममां प्रवेश स्वीकार्यो छे. अक्षरब्रह्ममां आनंद तिरोहित छे छतां जीव करतां वैलक्षण्य छे. इच्छाना प्रविष्ट थवा मात्रथी ज कार्यव्यापृतिथी अक्षरब्रह्मना आनंदनो तिरोभाव कहेवाय छे वस्तुतः ते आनंदमय ज छे, माटे पुरुषावतार तेमांथी, अथवा ते, थाय छे प्रथम जे इच्छा थइ ते पिंडित थतां घनीभूत होवाथी प्रकृति कहेवाय छे एटले प्रकृतिथी पण अक्षर भिन्न छे एम उपदेश छे अर्थात् प्रकृति अने पुरुष उभय करतां अक्षर उत्कृष्ट छे "ब्रह्म"–"कूटस्थ," "निर्विकार" "अव्यक्त" इत्यादि शब्दवडे निरंतर सर्वकारणकारण अक्षरनुंज ग्रहण करवुं. अक्षर ब्रह्म अने पुरुषोत्तमनुं नैरंतर्य छे, मूळ पुरुषोत्तमसाथे अविच्छिन्नताथीज तेनी अवस्थिति छे. अक्षरब्रह्ममां सर्वावरण युक्त कोटिशः अंड छे एम श्रीमद्भागवतमां आज्ञा छे. विरुद्धधर्माश्रयथी अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तमनो आधार छे, प्रतिष्ठिति छे. अक्षरब्रह्म परमधाम छे, परम व्योम छे, हंसस्वरूपनुं पुच्छ छे, माटे ज आधेय स्वरूप परतः पर छे. क्वचित् वैकुंठस्थ प्रभु जगदाकारवडे आविर्भाव पामे छे त्यारे अक्षरब्रह्म पण बहुप्रकारे आविर्भाव पामे छे. हरिने प्रभुत्वनी स्फुर्ति थतां लोकादिरूपे अक्षरब्रह्मनो उद्भव थाय छे. वैकुंठस्थ भगवदीयो अक्षरात्मक होवाथी मुक्त छे परंतु अक्षर करतां पण पुरुषोत्तम महान् छे. अक्षरात्मकथी सर्वना अभेदनी संगति थाय छे. अंतरुपासनाथी अक्षरब्रह्म अंतर्यामिस्वरूपे प्रकट थाय छे त्यारे सद्योमुक्तिसमये ज्ञानिवर्ग तच्चरणारविंदमां प्रवेश करे छे माटे ज अक्षरब्रह्म चरणस्थानीय छे. शिशुपालनो पुरुषोत्तमना चरणारविंदमां प्रवेश थयो ते पण आप्रकारे समजवो. आनंदमय निरुपणप्रस्तावमां ब्रह्मने हंस कहेलुं छे, ब्रह्म पुच्छ छे ब्रह्म प्रतिष्ठा छे माटे आनंदमय रसमय पुरुषोत्तमनो पुच्छभाग, आधार, अक्षरब्रह्म छे एमप्रमाणे पुरुषोत्तमज अनेकभावापन्न छे तथापि ज्ञानमार्गमां अक्षरब्रह्मस्वरूपवडेज सेव्य छे. प्रथम तेनाज निदिध्यासवडे जे ज्ञान उत्पन्न थाय छे, तेथी तेअधिकारिने अक्षरब्रह्ममां परमात्मानो, (मात्र अक्षर ब्रह्मनोज नहि,) अनुभव थाय छे. "ते प्राप्नुवंति माम् एव" तेओ पण मनेज पामे छे" इत्यादि श्रीमद्भगवद्वाक्यनी पण संगति एवीज रीतिथी थाय छे. एज अक्षरब्रह्म ज्ञानिने परमफलरूपे प्रतीत थाय छे, भक्तने पुरुषोत्तमना धामरूप प्रतीत थाय छे. भक्तिमार्गमां आरंभथीज आनंद छे, ज्ञानमां अंतमांज आनंद छे, तो पण ज्ञानमार्गमां अक्षरज सेव्य छे, एम पुरुषोत्तमनो अने अक्षरनो भेद निरुपण करवामां श्रीकृष्णनुं माहात्म्यज प्रयोजन छे माटे श्रीकृष्ण अक्षर थकी उत्कृष्ट छे, अधिक छे उत्तम छे, ज्यायान् पुरुष छे "अतो ज्यायांश्च पुरुषः",

"अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः", "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" इत्यादि वाक्यजात अत्र प्रमाण छे. एम अक्षरब्रह्मस्वरूप कूटस्थ छे. तोपण पुरुषोत्तमथी ते न्यून छे; हरि पूर्णानन्द छे, अक्षर गणितानंदक छे. एवा अक्षरमां शुद्धाद्वैतज्ञानिनो, समुद्रमां जेम नदीयो नामरूपविशेष परित्याग करीने प्रवेश करे छे तेम, नामरूपरहित निर्विशेष लय थाय छे. रसमय स्वरूपनो पूर्ण रसास्वाद विरलभक्तने, रसिकने, थाय छे एम समीचीन व्यवस्था छे. इतरसांप्रदायिक सात्विक, राजस, तामस ज्ञानिओ, सर्व जगत् मिथ्या छे, माया छे, एवा प्रकारना मिथ्याज्ञानिओ, भ्रांत अने प्रतारणाशास्त्रना अनुयायिओ, तो क्रमे क्रमे सत्वगुण, रजस्गुण, तमस्गुण, मिथ्याज्ञान, भ्रम, प्रतारणामांथी मुक्त थई, निर्गुण शुद्धाद्वैतज्ञान प्राप्त करे, तदनुसार वर्तन करे त्यारेज महापराकाष्ठावडे छेवट अक्षरब्रह्ममां लय पामीशके एम शास्त्रनी मर्यादा छे. ब्रह्मवादनी उत्कृष्टोत्कृष्ट दृष्टिथी जोतां मायावाद आम अतीव निकृष्ट छे तथापि तदनुयायिओ सांप्रतकालमां तेनो अत्युत्कर्ष करवा मथे छे एपण एक महामोहज, (ईश्वरनी माया,) छे.

७. जीवस्वरूप.

हुं अनेक थाउं एम रमण करवानी इच्छा थतां पोतानो पूर्ण प्रकट आनंदतिरोधान करी जीवस्वरूप ग्रहण करी ब्रह्म क्रीडा करे छे एम ब्रह्मवादनो सिद्धांत छे. परमार्थतः अविद्याथी ब्रह्म जीवरूपे भासे छे एम नहि.

हुं अनेक थाऊं, उच्च थाऊं, नीच थाऊं, एवी वीक्षा—(भावना)—ब्रह्मे करी त्यारे तेनी इच्छामात्रथी ब्रह्ममांथीज ब्रह्मभूत,—(योगबळवडे आविर्भूत नहि)—साकार, सूक्ष्म परिच्छिन्न, चित्प्रधान असंख्यात अंशनुं प्रथमसृष्टिसमये निर्गमन थयुं. ते सर्व जीव साकार, भगवद्रूप, छतां पण उच्चनीचभावेच्छावडे निर्गमन पाम्या माटे निराकार थया जेम अग्निमांथी विस्फुलिंग निर्गमन पामे छे. तेमज ब्रह्ममांथी जीव व्युच्चरण पामे छे स्वरूपभोग अने जीवभोग सिद्ध करवानी ब्रह्मनी इच्छा थतां, कृपा थतां, आनंदांश तिरोधान थतां, ऐश्वर्यादि धर्म पण तिरोभूत थया, ऐश्वर्यना तिरोभावथी दीनत्व पराधीनत्व, वीर्यतिरोभावथी सर्वदुःखसहन, यशना तिरोभावथी सर्वहीनत्व, श्रीना तिरोभावथी जन्मादि सर्वापद्विषयत्व, ज्ञानतिरोभावथी देहादिमां अहंबुद्धि तेमज अपस्मारवालाने जेम विपरीत ज्ञान थाय छे तेम विपरीत ज्ञान अने वैराग्यतिरोभावथी विषयासक्ति जीवमां आविर्भाव पामी. प्रथमचारना तिरोभाववडे जीवने बंध थयो अने छेल्ला बे वडे विपर्यय थयो. बंध जीवस्वरूपनेज थयो, ब्रह्मस्वरूपने सर्वथा नहि.

ब्रह्मवादियो आत्मानां त्रण लक्षण आपे छे. "अनादित्वे सति निर्गुणत्वे सति प्रकृतिनियामकत्वे सति अहंवित्तिवेद्यत्व" ए एक लक्षण छे. आत्मानो प्रकृत्यादिथी भेद सिद्ध करवामां व्यतिरेकद्वारा एलक्षणनो उपयोग छे. "स्वयंप्रकाशत्व" ए बीजुं आत्मानुं लक्षण छे. आत्मानुं अस्तित्व सिद्धकरवामां एलक्षणनी सार्थकता छे. सुषुप्तिमां द्विविध करणनो लय थाय छे त्यारपछी कोई कारणथी उठेला पुरुषने "सुखमहम् अस्वाप्सम्" इत्यादि स्मरण थाय छे माटे सुषुप्तिमां अनुभव होय छे एम अनुमान थाय छे. अनुभवविना स्मरण थईशके नहि. आ अनुभव साक्षात् के परंपराथी विषयजन्य–सविषयक नथी, तेम होय तो विषयनो पण प्रकाश थाय माटे विषयाजन्य निर्विषयक विलक्षण कोइक अनुभव छे ए निश्चय थाय छे. विषयकालभेदवडे भिन्न स्मरणविषे जेआत्माने अहंताभिमान छे तेज आत्मा सुषुप्तिमां अहंतामुक्त होवाथी, अविषय छे, केवळ अनुभवरूप छे, कालांतरमां अस्पष्टप्रकाश छे छतां सुषुप्तिमां स्वयंप्रकाश छे. विशेष, निद्रामां "मां स्पृशति" एम ज्ञान नथी माटे देहाध्यास नथी. एजप्रमाणे "संकल्पयामि, पश्यामि, श्वसिमि" इत्यादि अनुव्यवसाय निद्रामां नथी माटे मनोध्यास, इंद्रियाध्यास, प्राणाध्यास पण नथी. "नाहम् आसम्" एमकारे अंतःकरणाध्यास पण अभावविषय छे एटले सुषुप्तिमां केवळ, विनिद्र द्रष्टाज अवशिष्ट रहे छे. उक्तस्मरणजनक अनुभव आत्माथकी अभिन्न छे माटे निर्विषयक अनुभव सिद्ध थतां, तेअनुभवसह आत्मानो अभेद सिद्ध थतां आत्मानुं अस्तित्व अनुक्तिथीज सिद्ध थईगयुं. "अत्र आत्मा स्वयंज्योतिर्भवति" श्रुति पण एज कथन करे छे. "विश्वगतगुणदोषसंबंधाभावेऽपि सम्यक्संसर्गवत्त्वम्" ए तृतीय लक्षण मुक्त्युपयोगी छे.

८ जीवनित्यत्व.

जीव नित्य छे, तेनी उत्पत्ति थती नथी. जेवादमां परमार्थतः ब्रह्म अविद्यावडे जीवरूपे भासे छे तेवादमां जीवने असत्यत्व, अलीकत्व, मिथ्यात्व प्राप्त थाय. वस्तुज न होय तो तेनुं नित्यत्व क्यांथीज संभवे ? एटले तेवादमां जीवना नित्यत्वनो संभवनाज नथी. आर्यशास्त्रमां जीवनुं नित्यत्व आग्रहपूर्वक उपदिष्ट छे, तेसर्वपर ते वाद पाणी फेरवे छे ! ! !

जीव नित्य छे, जेने नामरूपसंबंध होय तेनी उत्पत्ति कहेवाय. जीवने तेवो संबंध नथी. विस्फुलिंगवत् व्युच्चरण कांइ उत्पत्ति नथी. "अयमात्मा अजरः अमरः" "न जायते म्रियते वा कदाचित्" इत्यादि वाक्यसहस्र अत्र प्रमाण छे जीवनुं जनन, मरण, जातकर्मादि, भाक्त छे, औपचारिक छे. जन्ममरण

इत्यादि शरीरना धर्म छे, सर्वथा जीवना धर्म ते नथी. जीवनुं नित्यत्व आर्यशास्त्रमां एटलुं तो सुप्रसिद्ध छे के तेवा जीवने "असत्य", "अलीक" "मिथ्या" जे कहे छे तेने आर्य पण कहीशकातो नथी.

९ जीवज्ञातृत्व.

केटलाक वादी जीवने ज्ञानरूप माने छे, "ज्ञाता"—ज्ञ—मानवाथी तेमने द्वैतापत्ति आवीजाय छे. ब्रह्मवादमां एवो कांइ दुराग्रह नथी. जीव ज्ञाता छे, ज्ञान तेनो धर्म छे, जीव धर्मी छे, प्रकाशक चैतन्य तेनो धर्म छे तेवडे जीव तेजोमय ज्योतिःस्वरूप विज्ञानमय प्रकाशे छे. सूर्य—प्रकाशवत् धर्मिअने धर्मनो अभेदज छे.

जीवने ज्ञाता मानवामां द्वैतापत्ति आवीजाय एवी कांई भीतिथी जीव ज्ञानमात्र चैतन्य छे एम मायावादी आग्रह करे छे तेवो दुराग्रह न करतां श्रुतिसूत्र जेम आज्ञा करे तदनुसार मानवामां भूपण छे. "ज्ञः अत एव च" ब्रह्मवादमां जीव धर्मी छे, चैतन्यज्ञान तेनो धर्म छे. जीव ज्ञाता छे, ज्ञान तेनो धर्म छे, गुण छे, तेवडेज जीव तेजोमय ज्योतिःस्वरूप विज्ञानमय प्रकाशे छे. सूर्य—प्रकाशवत् धर्म—धर्मीनी शुद्ध अनन्यताज छे. "प्रज्ञया शरीरं समारुह्य" श्रुतिमां चैतन्यने करण—साधन—मानेलुं छे माटे पण चैतन्य धर्म अने जीव धर्मी छे. प्राकृतइंद्रियवडे जीव अग्राह्य छे. योगवडे जीवनुं दर्शन थाय छे, जे दृष्टिवडे भगवद्दर्शन थाय छे तेदृष्टिवडे जीवदर्शन थाय छे अने दिव्य ज्ञानदृष्टिवडे पण जीवदर्शन थाय छे, ए त्रण प्रकारविना इतर उपायथी जीवनुं दर्शन थइशकतुं नथी.

१० जीवपरिमाण.

मायावादमां जीवने विभु मानेलो छे. ब्रह्मवादमां अणु मान्यो छे. आनंदांश प्रकट थया पछी तेनुं विभुत्वपण प्रकट थाय.

जीवनी उत्क्रांति, गति, आगति, शास्त्रमां निरूपण करेली छे माटे उत्क्रांति, गति, आगतियोग्य अणुपरिमाणज जीव मानवो जोइए. उत्क्रमण, गति, आगतिनो संबंध जीवने छेज नहि पण अविद्यावडे तेवो संबंध होय एम भासे छे एम नथी. "स्वात्मना च उत्तरयोः" सूत्रमां केवल स्वरूप-आत्मावडेज तेवो संबंध निरूपण कर्यो छे. जीवने विभुज मानेलो छे एम आग्रह करी "स वा एष महान् अजः आत्मा योऽयं विज्ञानमयः" इत्यादिश्रुति केटलाक प्रमाणमां आपे छे ते अयुक्त छे; ते प्रकरण ब्रह्मनुं छे एम सूत्रकार आज्ञा करे छे.

"इतराधिकारात्" प्रकरणपुरःसरज शब्दनो अर्थ करवो "स्वयं विहृत्य स्वयं निर्माय" श्रुतिमां स्वशब्द जीवना अणुत्वनो बोध करे छे व्यापक वा शरीरपरिणाम जीव होय तो स्वप्नमां विहारज संभवे नहि. वेद स्पष्ट अणुत्वनोज उपदेश करे छे. "वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य तु। भागो जीवः स विज्ञेयः" आनंद प्रकट थतां ते अणुजीव व्यापक थइशके एम "स च आनन्त्याय कल्पते" निष्प्रत्यूह प्रतिपादन करे छे. अणुपरिणाम जीव मानवाथी सर्वशरीरमां चैतन्य व्याप्त थाय नहि एम शंका न करवी. एकदेशस्थित चैतन्य सर्वदेहमां सुख आपे छे अथवा महातप्ततैलस्थितचंदन सर्वतापनिवारण करे छे तेम जीव अणु छतां शरीरमां चैतन्यव्याप्ति करीशके. चंदनना दृष्टांतमां त्वच् एक छे माटे सर्व संभवे एम कहो तो जीव पण हृदयमां स्थिति करे छे, तेनी पण अवस्थिति वेदने मान्य छे. "गुहां प्रविष्टौ आत्मानौ." जेम मणिकरतां मणिप्रभा अधिकदेशमां व्यापे छे तेम जीव हृदयस्थ छतां तद्गुण चैतन्य सर्वदेहमां व्यापे छे, प्रकाशे छे. प्रभा, कांति, रूप, सर्व पर्याय छे, माटे ते सर्व गुणज छे, द्रव्य नथी. जेम चंपकादिनो सुगंध चंपकादिं करतां अधिकदेशमां व्यापे छे तेम चैतन्य सर्वशरीरमां व्यापे छे. ज्यां गंध होय छे त्यां चंपकादिनां अतिसूक्ष्म परमाणु पण चंपकमांथी नीकळीने गयेलां होय छे एटले गंध अधिकदेश–व्यापी नथी एम कहो तो क्रमेकरिने चंपकपुष्पमांथी तमाम परमाणुओ नीकळी जवाथी चंपकपुष्पनो अभाव थईजवो जोईए ते थतो नथी पुष्प तो तेमज रहे छे; ब्रह्मसिद्धान्तमां जेम लोकमां देखाय तेमज मानवुं एवी कल्पनानो लेश पण नथी. ए दृष्टांत वेदोक्त छे माटेज सूत्रकारे तेनुं संग्रहण कर्युं छे. हृदयायतनत्व अने अणुपरिमाणत्व अंगीकार करिनेज "तस्यैवं आलोमभ्य आनखाग्रेभ्यः" श्रुतिमां चैतन्य–गुणवडे समस्त शरीरव्यापित्व बताव्युं छे. विवसनजैन आत्माने शरीरपरिमाण (मध्यमपरिमाण) माने छे, तेपण अनुपपन्न छे सर्वशरीरतुल्य नथी अने आत्मा शरीरपरिमाणज होय तो सर्वशरीरतुल्य ते थइशके नहि. अवयवना उपचय–अपचयथी तुल्यता थइशके एम मानतां आत्मामां विकार प्राप्त थाय. संकोचविकास मानतां विकारदोष दुष्परिहर छे माटे जीव शरीरपरिमाण नथी एटले व्यतिरेकथी पण जीवने अणुपरिमाणज संसारावस्थामां मानवो. आनंदाविर्भाव थतां विभुत्व प्रकट थशे अने विरुद्धधर्माश्रयथी ब्रह्मवत् जीवमां पण सर्व संभवे छे. श्रुतिमां ज्यां जीवने व्यापक कहेलो छे त्यां गीताशास्त्रथी निर्णय करवो. जीवमां भगवदावेश थाय त्यारे भगवद्धर्म सर्व तेमां आविर्भाव पामे ए स्वभाविक छे. भगवत्त्ववडेज जीवमां व्यापकत्व उपपन्न छे साक्षात् जीव स्वतःज व्यापक छे एम नहि. आनंदांशनी

अभिव्यक्ति थतां कोटिब्रह्मांड जीवमां प्रतीत थाय छे माटे विरुद्धधर्माश्रयवडे जीव अणु–परिच्छिन्न छे, भगवत्त्ववडे व्यापक–अपरिच्छिन्न–छे. श्रीकृष्ण यशोदाजीना उत्संगमां विराजे छे तथापि जगदाधार छे एम मुखमां विश्वदर्शन कराविने प्रसिद्ध अनुभव करावेलो छे तेजप्रमाणे जीव व्यापक छे तथापि आराग्रमात्र छे एम वैदिकसिद्धांत छे ब्रह्म जेम उदरमां अंगुष्ठमात्र, हृदयमां प्रादेशमात्र, मस्तक, मनस् अने इंद्रियमां अणुमात्र, अने चित्तमां व्यापक एम अनेक परिमाणथी रमण करे छे तेम जीवमां पण भगवत्त्वथी सर्व समंजस छे.

११ जीवकर्तृत्वभोक्तृत्व.

मायावादी एम कल्पना करे छे के जीव परमार्थतः अकर्ता छे, अभोक्ता छे, अविद्यावडेज जीव कर्ता होय, भोक्ता होय एम प्रतीति थाय छे, भासे छे, परमार्थतः जीव कर्त्ता अने भोक्ता नथी पण बुद्धि-संबंधथी जीवमां कर्तृत्वनो आरोप मात्र छे. ब्रह्मवादमां तेम नथी. सर्वधर्मविशिष्ट ब्रह्म कर्तृ छे, भोक्तृ छे तो तदंश जीव पण ब्रह्मना संबंधथी कर्ता--भोक्ता थायज. कर्तृत्वभोक्तृत्व औपचारिक नथी. जीव कर्ता छे, भोक्ता छे, बुद्धि तो कारणमात्र छे.

शांकरादिमतमां जीवने अकर्ता मानेलो छे, अविद्यादिना संबंधथी जीव कर्ता होय एम भासे छे कर्तृत्वनो जीवमां आरोपमात्र बुद्धिसंबंधथी छे. आ सर्व कल्पनामात्र श्रीगीताजीमां मतान्तरना अनुवादरूपे "प्रकृतेः क्रियमाणानि" एश्लोकमां कहेल छे तेने सिद्धान्तरूप मानी ठरावेल छे, केम के सूत्रकार स्पष्ट आज्ञा करे छे के "कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्" जीववास्तेज वेदमां अभ्युदय निःश्रेयसफलार्थ सर्वकर्मनुं विधान छे ब्रह्मने कर्मनो अनुपयोग छे, जडमां कर्तृत्वज अशक्य छे. माटे संदिग्धवाक्योमां पण जीवमां कर्तृत्व मानवुं. "गांधर्वादिलोकेषु यद्यत् कामयते तत्तद्भवति" एम कही जीवनो विहार बताव्यो छे ते जीव कर्त्ता होय तोज संभवे "विज्ञानेन विज्ञानं आदाय" श्रुतिमां पण जीवनुंज कर्तृत्व उपपादित छे. बुद्धिआदि इंद्रियो तो कारणमात्र छे बुद्धि जड छे माटे तेमां कर्तृत्वज न होईशके ए विचार प्रथमज थईगयेलो छे जीवमांज कर्तृत्व छे अने बुद्धिसंबंध थतां ते कर्तृत्व उद्भव पामे छे ए सिद्धांत छे. जीवमां शशविषाणवत् कर्तृत्व अलीक छे, मिथ्या छे एम मानवामां सकलशास्त्रनो उच्छेद वळीजाय छे. ब्रह्ममां कर्तृत्व प्रथमज सिद्ध कर्युं छे एटले तदंशजीवमां कर्तृत्व प्राप्त थयुंज. कार्य असत् छे एमतनुं तो निराकरण थईज चुक्युं छे. सर्वविप्लववादीनो तो उपेक्षाज करवी. "विज्ञानं यज्ञं तनुते" श्रुतिमां पण जीवनुं कर्तृत्व स्वीकारवुंज पडे, नहि तो "विज्ञानमय" पूर्वनिर्देशनो विप-

येय थईजाय. कर्त्ता स्वकीयहितज करे अने जीवनुं तो हित अने अहित उभय थाय छे माटे जीव कर्त्ता न थईशके एम शंका पण योग्य नथी. नेत्रवडे इष्ट अनिष्ट जेवी उपलब्धि तेने थाय छे तेवुं कर्म इंद्रिय–साधन–वडे करीने इष्ट अनिष्ट प्राप्त करे छे. शक्तिनो पण विपर्यय थइगयो छे, सामर्थ्य छे नहि एटले दैवयोगथी अनिष्ट पण करीबेसे छे. क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति समाधिवडे प्राप्त थाय, ते पण नथी. परब्रह्मना धर्मनुं अनुकरण करे छे. "ध्यायतीव लेलायतीव" कर्तृत्व जीवमां मानवाथी अनिर्मोक्ष प्रसंग आवशे एम पण नथी. "ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा" माटे जीवमां सहज स्वाभाविकज कर्तृत्व छे एम स्वीकार करवुं. बुद्धि तो करणमात्र छे. कर्तृत्वमात्र कांई दुःखरूप नथी. वस्तुतः तो ब्रह्मज "सर्वकर्त्ता सर्वभोक्ता सर्वनियंता" छे अने ब्रह्मना संबंधथी जीवमां कर्तृत्व छे."(परात्तु तच्छ्रुतेः)" एटले सर्व सुस्थ छे.

जेम तक्षा रथनिर्माणकरीने रथारूढ थाय छे तेम जीव कर्त्ता पण छे, भोक्ता पण छे. सांख्यमतमां जेम प्रकृतिमां कर्तृत्व छे अने पुरुषमां भोक्तृत्व छे तेम ब्रह्मवादमां नथी. प्रकृतिना कर्तृत्वनो निषेध प्रथम थईगयो छे. जेम कर्तृत्व औपाधिक के अलीक नथी तेमज भोक्तृत्व पण औपचारिक अलीक नथी. विविध भोगसिध्यर्थज प्रभु अनेकशः रमण करे छे ए ब्रह्मवादनुं मर्म छे.

१२ जीवांशत्व.

ब्रह्मनो अंश जीव छे एम शुद्ध ब्रह्मवाद स्वीकार न करतां अविद्यावडे जीव अंशवत् भासे छे एम मानी सर्वविप्लववादी आभास–प्रतिबिंबवाद कल्पे छे. श्रीमदाचार्यचरण "ममैवांशो जीवलोके" ए श्रीमुखवाक्यनुं अवलंबन करी ब्रह्मनो अंशज जीव छे एम श्रुतिसूत्रोक्त सिद्धांत प्रतिपादन करे छे.

ब्रह्मनो अंश जीव छे एम मानतां निर्धर्मक, निरवयव, निरंश, ब्रह्म सधर्मक, सावयव, सांश, थइजाय एवी भीतिथी ते वादी अनेकशः कपोलकल्पित तरंग उठावी श्रुतिसिद्धांतनुं उल्लंघन करे छे. अंशो नानाव्यपदेशात् " एम सूत्रकार स्पष्ट निःसंदिग्ध आज्ञा करे छे. ब्रह्म निरंश छे के सांश छे ए निर्णय कांइ लौकिकयुक्तिनो विषय नथी वेदैकसमधिगम्य छे. "अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते। तपसा वेदयुक्त्या च प्रसादात् परमात्मनः। वैदिकयुक्तिनो समाश्रय करतां विरुद्धसर्वधर्माश्रयवडे सर्वसमाधान थइरहे छे निरिंद्रिय सर्वतः पाणिपादांत सर्वतोऽक्षिशिरोमुख ब्रह्ममांथी अग्निविस्फुलिंगन्याये जड–जीवनो विनिर्गम थाय छे. स्वतंत्र ब्रह्मनी मूलेच्छाथी अविकृत–सदंश-जड अने अविकृत–चिदंश–जीवनो आविर्भाव थाय छे, जडमां चिदंश तथा

आनंदांशरूप वैधर्म तिरोभूत रहे छे अने जीवमां मात्र आनंदधर्म तिरोभूत रहे छे. जड–जीव सर्व ब्रह्म, ब्रह्मांश, ब्रह्मरूप, ब्रह्मानन्य होय तोज एक–विज्ञानथी सर्व–विज्ञान संभवे. "पुरुषसूक्त" मां "पादोऽस्य विश्वा–भूतानि" एम कही भूत–जीवनुं पादत्व–पादस्थिति–अंशत्व आज्ञा करेलुं छे. "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" भगवद्वाक्य पण एमज आज्ञा करे छे. ब्रह्मनो अंश मानवाथी जीवनुं दुःखित्व ब्रह्मने प्राप्त थइजाय एमपण नथी. प्रकाश्यवस्तुनो दोष प्रकाशने लागतो नथी. "तत्र यः परमात्मा हि स नित्यो निर्गुणः स्मृतः । न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवांभसा । कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबंधैः स युज्यते, अनश्नन् अन्यः अभिचाकशीति, एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः" इत्यादि प्रमाण ब्रह्मनुं निर्लेपत्व बोधन करे छे. आ सर्व समाधान पण बालबोधनार्थज छे, वस्तुतः शुद्ध अद्वैतसिद्धांतमां सर्व ब्रह्म छे त्यां शंकानोज उदय नथी. मायावादमां एक दोष आवे छे नीरूपनो प्रतिबिंबज प्रथम तो पडे नहि. प्रतिबिंबसिध्यर्थ व्यवधाननी कल्पना करवी जोइये अने ते मायादि थइशके, मायाजवनिकाच्छन्न–ब्रह्मनो प्रतिबिंब पडे नहि, नहितो तिरस्करिणी छतां पुरुषनो प्रतिबिंब पडे. जे ज्यां होय त्यां तेनो प्रतिबिंब पडे नहि. आकाशनुं प्रतिबिंब जलमां पडे तेम पण ब्रह्मनुं प्रतिबिंब मायामां न पडे, जलमां प्रतिबिंब पडे छे ते आकाशनुं नथी पण रूपवत्प्रभामंडलनु छे. "द्वासुपर्णा" श्रुतिप्रमाणे जीव भोग करे छे अने ब्रह्म प्रेक्षकमात्र छे; प्रतिबिंब अने बिंब उभयने तूष्णींभाव जोइए तेमां ए श्रुति विरोध आपे छे. "गुहां प्रविष्टौ" श्रुति जीव परमात्मानी एकत्र स्थिति निरूपण करे छे ते बिंबप्रतिबिंबनी एकत्र स्थिति संभवती नथी. जीव मारोज अंश छे" एम भगवद्वाक्यादिप्रमाणनो मायावादमां विरोध छे, प्रतिबिंबनुं उत्क्रमणादि संभवे नहि प्रतिबिंबवादमां मुक्तिनो अर्थ "जीवहानि" करवो पडे केमके अविद्यामां प्रतिबिंब पड्यो ते जीव थयो छे एम तेओ माने छे अने अविद्यानो नाश थाय त्यारे मोक्ष थाय एम माने छे; माटे जेअविद्यामां प्रतिबिंब पडी जीव थयो छे तेअविद्यानो नाश थाय त्यारे जीवनो पण नाश पोतानी मेळे थइजाय–(दर्पणनो नाश थया पछी दर्पणनी अंदरनो प्रतिबिंब रहेज नहि, आत्महानि पुरुषार्थज नथी एटले मोक्षरूप पुरुषार्थज न रह्यो) प्रतिबिंब अलीक मानवाथी ब्रह्मविद्या आसुर अशुद्ध थईजाय. लिंगशरीर विद्यमान छे माटे जीव रहे छे एम कहो तो जीवन्मुक्तिमां विरोध आवे माटे अविद्यामां के अंतःकरणमां उभयमां प्रतिबिंब संभवे नहि, उभये अशुद्ध छे. मायावादना अनुरोधथी प्रतिबिंब पडे एम कदाचित् स्वीका-

रीये तो ए (अशुद्धमां प्रतिबिंब पडे एम मानीये तो पण,) उपाधि विद्यमान छे. एटले संसारज रहेवानो. उपाधिनाश थाय त्यारे तो परममुक्ति थाय त्यां जीवन्मुक्ति क्यां रही? कदाचित् जीवन्मुक्ति थई एम मानीये तो ए देहादिनी स्पंदनादिकक्रिया तो सर्वथा न संभवे कारण अधिष्ठाता रह्यो नहि. प्रारब्ध शेष छे माटे सर्व संभवे एम पण नहि, कारण "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" ज्ञानाग्नि सर्वकर्म भस्मसात् करे छे छतां प्रारब्धनाश न थयो एटले तेनाशार्थ इतरज्ञान लाववुं पडशे. नवीन वेग नथी एटले वेगसंस्कार छे त्यांसुधी चक्रभ्रमण थईने स्वतः चक्र विराम पामे एम चक्रभ्रमणन्याय पण दोषनिवारणसमर्थ नथी. महाशिलापात थतां चक्रभ्रमणज न संभवे चक्रभ्रमणन्याय मानतां पण सुषुप्तिमां जेम क्रियारहित देह रहे छे तेम स्पंदनादिक्रियारहित देह रहीशके, स्पंदनादि सर्वथा संभवे नहि. बिंबप्रतिबिंबनुं ऐक्य पण संभवे नहि कारण प्रतिबिंब अवस्तु छे अने बिंब वस्तु छे. एकविज्ञानवडे सर्वविज्ञानरूप प्रतिज्ञानी हानि प्रतिबिंबवादमां थाय छे अंशपक्षमां विरुद्धसर्वधर्माश्रयनो स्वीकार करवाथी सर्व सामंजस्य. श्रुति, सूत्र, भगवद्वाक्य, सर्वनी बलात्कारविना ब्रह्मवादमां रमणीय संगति थईरहे छे, दुराग्रह करवो पडतो नथी. प्रतिबिंबवादमां जेवा दोष प्राप्त थाय छे तेवाज आभासवादमां पण प्राप्त थाय छे. "आनंदांश" तिरोभूत थयो माटे जीवने "आभास" कह्यो छे, "आभास" नो अर्थ अलीकत्व मिथ्यात्व नहि, वा रामानुजीय–हेत्वाभास पण नहि, एकज ब्रह्म स्वेच्छावशात् अनेक जीवस्वरूप धारण करे छे ए सूचन करवाने चंद्रमानुं दृष्टांत आपी जीवने प्रतिबिंब कह्यो छे. "सदंश" मात्रनी स्फूर्ति होय त्यारे "आभास" अने "सच्चिदंश" उभयांशनी स्फूर्ति होय त्यारे "प्रतिबिंब" जीवने कहे छे. जेम ब्राह्मणने यज्ञोपवीत मात्र होय अने संध्यावंदनादि क्रिया न होय तेब्राह्मणनो आभास कहेवाय अने थोडीघणी क्रिया करतो होय ते प्रतिबिंब कहेवाय. माटे "अंश" पक्षज श्रुतिसंमत छे.

१३ जीवब्रह्माभेद.

मायावादमां भागत्यागलक्षणावडे जीवब्रह्मना अभेदनी कल्पना करेली छे. ब्रह्मवादमां अंशांशिभावे करीने अभेद सिद्ध कर्यो छे.

ब्रह्म सत्, चित्, पूर्णप्रकटानन्द छे अने जीव तिरोहितानन्द संसारावस्थामां छे. आनंदांशनो उद्रेक थतां जीव सत्, चित्, आनंदरूप थाय छे ब्रह्मनुं अनवगाह्यमाहात्म्य प्रदर्शनकरवामांज वेद प्रवृत्त थया छे अने सर्वं ब्रह्म छे ए प्रतिपादन करवा जीवने पण ब्रह्म कह्यो छे. तिरोहितानंदांशनो विचार करतां

तदवस्थजीवथी ब्रह्म "अधिक" छे. "अधिकं तु भेदनिर्देशात्" ब्रह्मनी सम कोइ नथी, ब्रह्मथी अभ्यधिक कोइ नथी एम श्रुति आज्ञा करे छे. "नतत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" आम ब्रह्मनी सम वा ब्रह्मथी अधिक कोई नथी तथापि ब्रह्म सर्व थाय छे ए माहात्म्य. "समो मशकेन समो नागेन" आवा अलौकिकअप्रमेयमाहात्म्यनुं यथाधिकार दिग्दर्शन करावी ब्रह्ममां सुदृढ सर्वतोऽधिकस्नेह–भक्तिद्वारा जीवनो गुप्तानंद प्रकट करावी, निराकार जीवने साकार, आनंदाकार, रसाकार, बनावी परमसायुज्य संपादनकराववामांज सर्व भेद–अभेद–प्रतिपादकश्रुतिनुं पर्यवसान छे. जडजेटलुज ब्रह्म छे, जीवजेटलुज ब्रह्म छे एम कांइ "तत्त्वमसि" नो उपदेश नथी. "तत्त्वमसि" एटलुज कांइ महावाक्य नथी पण संपूर्ण प्रपाठकज महावाक्य छे. "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" करवा वेद प्रवृत्त नथी पण "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" जड, जीव, सर्व ब्रह्म छे एम प्रतिपादन करी ब्रह्मनुं माहात्म्य प्रकटकरवामां वेद कृतार्थता माने छे. भागत्यागलक्षणानी जरूर नथी. खंड अद्वैत कशाए उपयोगनुं नथी. प्रत्युत आसुर कहेवाय छे. एकविज्ञानवडे सर्व विज्ञान बिंबप्रतिबिंबवादमां, आभासवादमां सिद्ध थाय नहि. वस्तु–अवस्तुनो अभेद पण संभवतो नथी, मायावादमां परमार्थतः जीव अवस्तु छे, अलीक छे, मिथ्या छे, वस्तु अने अवस्तुनो अभेद युक्तिसहस्रथी पण संभवे नहि. जेम जगत् मिथ्या छे, तेम जीव पण परमार्थतः तेमतमां मिथ्या छे एटले मिथ्यानो सच्चिदानन्दब्रह्मसाथे अभेदज अशक्य छे माटे विरुद्धसर्वधर्माश्रयथी अंशांशिभाववडेज सर्व प्रपाठकरूप महावाक्यनी संगति बलात्कारे पण स्वीकार्या विना छुटको नथी. "तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः" ब्रह्मना प्रज्ञाद्रष्टृत्वादिगुण जीवमां सार छे, जड वैलक्षण्य–कारी छे माटेज जीवने ब्रह्म कह्यो. जीव नीच छे माटे सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मनो व्यपदेश योग्य नथी एम पण शंका न करवी. व्यपदेश योग्य छे अयोग्य नथी. आनंदांश प्रगट थतां जीव ब्रह्मज छे आनंदांशनुं प्राकट्य थया पछी सदा जीव ब्रह्मरूपज छे. "आनंदांशाभिव्यक्तौतु तत्र ब्रह्मांडकोटयः। प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत्" आनंदांश अभिव्यक्त थतां अनेक ब्रह्मांड जीवमां प्रतीत थाय छे. परिच्छेद अने व्यापकत्व उभये भगवद्रूपजीवमां संभवे छे. बाल्यमां विद्यमान पुंस्त्व जेम यौवनमां प्रकाशे छे तेम विद्यमान आनंदांश, भक्त्यादि थतां प्रकट थाय छे. "संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्." एम आविर्भावथी व्यवस्था न मानतां नित्य आनंदांश अभिव्यक्त मानो तो सदासर्वदा तेआनंदनी उपलब्धि थाय एटले संसारावस्थाज जीवने संभवे नहि. जीवने आनंदज नथी एम मानो तो मोक्षदशामां विरोध आवे. जीव निरानंद छे, ब्रह्म सा-

नंद छे एम अन्यतर नियम मानो तो "ब्रह्म एव सन् ब्रह्म अप्येति" श्रुतिमां विरोध आवे माटे पूर्वोक्तप्रकारज ग्रहण करवो एटले संसारावस्थामां सत्, चित्, गुप्तानंद, जीव पण भगवद्रूप छे अने ते मोक्षदशामां सत्, चित्, प्रकटानंद, ब्रह्मने पण पामे छे. मात्र जीवनोज अभेद इष्ट छे एम नथी पण सर्वनो अभेद वैदिकोने इष्ट छे. जड, जीव, सर्व ब्रह्मरूप, ब्रह्मानन्य, ब्रह्माभिन्न छे एज ब्रह्मनुं परम माहात्म्य छे.

१४. जगत्सत्यत्व.

जगत्‌नुं ब्रह्ममां विवर्त मायावादी माने छे. जगत्‌नुं अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ब्रह्मज छे, जगत् भगवद्रूप छे, भगवदनन्य छे एम ब्रह्मवादनो निष्कर्ष छे. जगत् सत् छे कारणके सत् होय तोज उपलब्धि थाय. "भावे च उपलब्धेः" घट विद्यमान होय तोज घटनी उपलब्धि थाय. घटनो अभाव होय तो तेनी उपलब्धिज न थाय. घट पण मृत्तिकाप्रकारज छे, जगत् पण तथैव ब्रह्मनुं रूपज छे. "सदेव सौम्य इदम् अग्रे आसीत्" "यत् इदं किंच तत् सत्यम् इति आचक्षते" श्रुति पण जगत्‌नुं सत्यत्व प्रतिपादन करे छे. "सत्वाच्च अवरस्य" उत्पत्तिनी पहेलां जगत् असत् हतुं एम पण कांई नथी. पूर्वे जगत् अव्याकृत–अव्यक्त हतु. "तदात्मानं स्वयम् अकुरुत" एवाक्यशेष पण जगत्सत्यत्वनोज उपदेश करे छे. "असद्वा इदम् अग्रे आसीत्" श्रुतिमां "आसीत्" पदप्रयोग पण सत्यत्वनुंज कथन करे छे. समवेतज कार्य उत्पन्न थाय अने समवाय–संबंध द्विनिष्ठ होवाथी, नित्य होवाथी; जगत् सत् छे असत् नथी. ब्रह्मस्वरूप अने जगत्‌स्वरूप उभये सत्य होय, नित्य होय, तोज एबन्ने स्वरूपनो कार्यकारणरूप समवायसंबंध संभवे, नहि तो असत्‌मांथी सत् थाय. असंबद्ध उत्पत्ति मानतां मिथ्यात्व प्राप्त थईजाय. सत्यजगत्‌नो आविर्भाव थवामां व्यापार–प्रवृत्ति–पण उपयोगी छे. "तत् आत्मानं स्वयं अकुरुत" श्रुतिमां "आत्मा" शब्द पण जगत्‌नु सत्यत्व प्रतिपादन करे छे "युक्तेः शब्दान्तराच्च" जेम संवेष्टित वस्त्रनुं ग्रहण थईशकतुं नथी, विस्तृत पटनुंज ग्रहण थाय छे तेमज तिरोभावमां, अव्यक्तदशामां, जगत्‌नी प्रतीति थती नथी, आविर्भाव थतां, व्याकृत थतां, जगत्‌नी प्रतीति थाय छे. "पटवच्च" जेम प्राणना नियमन–अनियमनमात्रथी प्राणभेद के प्राणनुं असत्त्व मनातुं नथी तेमज जगत्‌मां पण समजवुं. जगत्‌नो अभाव नथी कारणके उपलब्धि थाय छे "न अभावः उपलब्धेः" उपलब्धिमात्रथी वस्तुसत्व अंगीकार न थईशके तेमपण नथी, स्वप्नादिवत् जगत् छे एम पण कांइ नथी कारण स्वप्नादिमां तो तेसमये वा

स्वप्नांतमां वस्तुनो अन्यथाभाव उपलब्ध थाय छे. जगत्नो अन्यथाभाव नथी माटे जगत् अने स्वप्नादिनु वैधर्म्य छे, जगत् सत्य छे. जगत् असत् होय तो मोक्ष-प्रवृत्तिनो पण व्याघातज थाय "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ।" जगत् न होय तो पण वासनावडे तेम प्रतीति थाय ए शंका पण तुच्छ छे. जगत् होय तोज वासना संभवे--अनादिवासना मानतां अंधपरंपरा --दोष प्राप्त थाय. जगत्विना वासना न संभवे अने वासनाविनापण जगत्नी उपलब्धि तो थायछेज माटे अन्वय अने व्यतिरेकथी जगत्सत्यत्व सिद्ध थाय छे. "न भावः अनुपलब्धेः" जगत् असत् होय तो एकविज्ञानथी सर्वविज्ञान प्रतिज्ञाज संभवे नहि. "तस्माद्वा एत-स्मात् आत्मन आकाशः संभूतः" इत्यादिश्रुति तो आकाशादिनो आविर्भाव-क्रम पण स्पष्ट निरूपण करे छे माटे पण जगत् सत्य छे. "तदनन्यत्वम् आरंभ-णशब्दादिभ्यः" सूत्रमां ब्रह्म-जगत्नी अनन्यता सिद्ध करी छे. जगत् जो असत् होय मिथ्या होय तो सूत्रकार अनन्यता सिद्ध करे नहि. सत्असत्नी अनन्यता संभवेज नहि माटे जगत् ब्रह्मानन्य होवाथी पण सत्य छे. "यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते", "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्", "जन्मा-द्यस्य यतोऽन्वयात् इतरतः", "तदात्मानं स्वयं अकुरुत", "स ह एतावान् आस" "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयः तथा" इत्यादि वचनजात पण एजसिद्धांतनुं समर्थन करे छे. निर्गुण--अविकृत--ब्रह्ममांथी जग-दाविर्भाव थाय छे, परिणाम पामे छे, तथापि ब्रह्ममां विकृति थती नथी ए "तसिल्" प्रत्ययनो ध्वनि छे. "पूर्णमिदं पूर्णमदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेव अवशिष्यते" ए श्रुति पण ब्रह्मनी पूर्णता, अविकृति, निरूपणकरी ब्रह्ममांथीज जगत्नुं उदंचन निरूपण करे छे. पूर्णमांथी पूर्णनुं आदान थतां पण अवशिष्ट पूर्ण रहे एवुं ब्रह्मनुं अनवगाह्य माहात्म्य छे. "सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलानिति" श्रुति पण साक्षात् ब्रह्ममांथी जगत् प्रकट थाय छे, ब्रह्ममां स्थिति करे छे, ब्रह्ममां लय पामे छे माटे निश्चय आ सर्व ब्रह्म छे एम प्रतिपादन करे छे माटे जगत् सत्य छे, भगवत्कार्य छे, नित्य छे, भगवद्रूप छे. "तत् एतत् अक्षयं नित्यं जगत् मुनिवर ! अखिलम्" इत्या-दि पण जगत्नी नित्यतामां प्रमाण छे. जगत्नी असत्यता--अप्रतिष्ठा माननारने श्रीमद्भगवद्गीतामां "आसुर" कहेला छे. "असत्यम् अप्रतिष्ठं ते जगदाहुः अनीश्वरम्" वेदमाता गायत्री पण, "सवितुः" शब्दथी जगत्सत्यत्वसिद्धां-तनो उपदेश करे छे सत्य, पर, श्रेष्ठ, प्रसिद्ध--पुरुषोत्तम (तत्) चतुर्विधपुरुषार्थ-सिध्यर्थ जगत्प्रसवकर्ता (सवितुः) निर्दोष, सुंदर वरणीय (वरेण्यम्) स्वरूपस्फूर्तिमात्रथीज प्रमेयबळवडे सर्वअविद्याभर्जनकर्ता (भर्गः) सर्वज्ञ

(देवस्य) तुं ध्यान करीए छीए वा तेमां प्रीति करीए छीए (धीमहि); जे पुरुषोत्तम (यः) हमारी बुद्धिने (धियः नः) प्रकर्षेकरीने मूळ पुरुषोत्तमपर्यंत (प्र) प्रेरणा करे छे फलसंबंध करे छे (चोदयात्) रमण-करवानी इच्छाथी "चिदंश" अने "आनंदांश" नो तिरोभाव थयो एटले ब्रह्मना सदंशमांथी जगत् परिणाम थयुं. आनंद तिरोहित छे, माटे जगत् निराकार छे. जगत् भगवत्कार्य छे प्रकृतिमांथी तेनो आविर्भाव नथी, परमाणुमांथी तेनो आरंभ नथी, विवर्तवडे तेनो आभास नथी, अदृष्ट, स्वभाव, वासना इत्यादि पण जगत्नां कारण नथी. असत्मांथी सत् उत्पन्न थाय ए वैनाशिक-प्रक्रिया वेदविरुद्ध छे, अयौक्तिक छे. निर्गुण अविकृतज ब्रह्म जगत्नुं उपादान-कारण छे, निमित्तकारण छे एटलुंज नहि पण जगत् भगवद्रूप छे, ब्रह्मनुं आधिभौतिक स्वरूप छे; नहि तो असत्मांथी सत् थाय. सर्वभवनसामर्थ्यरूप मायावडे भगवान् जगद्रूप जणाय छे. "इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" इत्यादि स्थलमां मायावादीने पण "माया" नो अर्थ "विचित्रशक्ति" एवो तो करवोज पडे छे त्यारे मायिकब्रह्म जगत्कारण न मानतां, अध्यारोपापवादनो दुराग्रह न करतां, साक्षात् निर्गुण अविकृतज ब्रह्म स्वाभाविक विविधशक्तियुत मानी तेनेज परमकारण माने तो शुं क्षति थाय? ए शंकर-भगवान् ज जाणे. सर्वज्ञ सर्वशक्तिमत् एकज अद्वितीय ब्रह्म छे तेमां ब्रह्म तो निर्गुण, अविद्यावडे तेईश्वर सर्वशक्तिमान् भासे छे मात्र, एम निर्गुणसगुणकल्पना सांख्यानुसारिणी छे. वेदांतशास्त्रमां तो जे छे ते सर्व ब्रह्म छे, शुद्ध अद्वैत छे, कार्य-कारण, नाम-रूप, जीव-ईश्वर, सर्वनुं मायारहित अनन्यत्व छे. ब्रह्मवादपर एटलो बधो मायावादीने प्रद्वेष छे के कारणप्रतिपादक-प्रत्येकसूत्रमां तेटीकाकारने "अविद्योपस्थापित" शब्द पोतानाज उमेरवा पडे छे. शक्ति-शक्तिमत्नो अभेद सुसाध्य छतां कुतर्क करी वैदिक सिधान्तथी च्युत थाय छे इतरने च्युत करे छे, ब्रह्मनुं माहात्म्यज्ञान थवा देता नथी, भक्ति सिद्धकरवामां सहस्रशः प्रतिबंध उपक्षेप करे छे. धर्म अने धर्मीनुं अनन्यत्व होवाथी स्वरूपाभिन्न-स्वसामर्थ्यज माया-स्वशक्ति एटले अन्यबाह्यसाधननी अपेक्षा विना ब्रह्मज जगद्रूपे क्रीडा करे छे एम जगतनुं अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण ब्रह्मज छे सदसत्-अनिर्वचनीय-मायाथी ब्रह्म जगद्रूपे भासमान थाय छे एमायावादथी आ ब्रह्मवाद अतिविलक्षण छे. ब्रह्मवादमां तो ब्रह्मनी ज्ञान-शक्ति क्रियाशक्ति उभये स्वाभाविक छे, "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" ब्रह्मरूप छे, मायावडे ब्रह्म शक्तिमत् देखाय छे एटले तेना मतमां ब्रह्मनुं सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्त्व स्वाभाविक ब्रह्मरूप ब्रह्माभिन्न नथी वास्तविक नथी, पण अलीक

छे, मायिक छे, भासे छे. अत्र तो ब्रह्म स्वेच्छातःज सर्वज्ञ सर्वशक्तिमत् कारण छे. ब्रह्मवादमां इच्छा पण ब्रह्मशक्ति छे, मायावादमां इच्छा ब्रह्मनी शक्ति नथी पण मायाशबलईश्वरनी शक्ति छे, एम भासे छे. शुद्धब्रह्मनी शक्ति मानतां तेवादमां द्वैतापत्ति आवीजाय छे. ब्रह्म अने ईश्वर, निर्गुण अने सगुण, एम वृथा भेद कल्पी मायावडे सगुणईश्वरज कर्ता भासे छे एम आग्रह करी प्राचीन, सनातन, वेदांतसिद्धांतने अशुद्ध करीनाखवा मथे छे. ब्रह्मवादमां ब्रह्म–ईश्वर निर्गुण–सगुण एवो भेदज नथी, मुधा कल्पवोपडतो पण नथी. ब्रह्मवादमां तो निर्गुण अविकृतज ब्रह्म जगत्कर्तृ छे ब्रह्म सर्वसमर्थ छे अनवगाह्य-माहात्म्य छे, सर्वविरुद्धधर्माश्रय छे एम शुद्धाद्वैतसिद्धांतनो प्रचंड उद्घोष छे. सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व, ऐश्वर्य सर्व मायिक, काल्पनिक, व्यावहारिक, अलीक, स्वप्नवत् छे एम मायावादीनुं मानवुं छे. ब्रह्मवाद ब्रह्मनुं माहात्म्य कथन करे छे, मायावाद ब्रह्ममां सर्वज्ञत्वादिधर्मनो आरोपकरी अपवाद करे छे, शुद्ध-वैदिक-सिद्धांतनुं तिलोदक करीदे छे. ब्रह्मवाद आरंभथी अंतसुधी आस्तिकपर छे, मायावादनी समाप्ति नास्तिक्यमां थाय छे, मायावादमां जो कांई पण कल्याण-मार्ग होय तो जेने ते सगुण ब्रह्म कहे छे तेनी यथातथा भक्तिमां छे. मायावाद-नुं अवलंबनकरीने पण जेने ते "ईश्वर" कहे छे तेनी सेवाभक्तिकर्याथी क्रमे क्रमे दोषनिवृत्ति थई परम शुद्धाद्वैतसिद्धांतमां प्रवेशनो कांईक संभव छे पण ईश्वरमां तो मायिक, सगुण, इत्यादि अनेक अपशब्दनो आरोप करी तेनी पेलेपार ब्रह्म छे ते निर्गुण, ज्ञेय, एम मानी, निर्गुण निराकार अत्यंत निर्धर्मक वस्तु तेज हुं जीव, जे हुं जीव तेज निर्गुण–निराकार–निर्धर्मक–ब्रह्म, जगत् मिथ्या, एम विपर्यय–भ्रांति मानतां तो स्वरूपच्युति मात्र फल देखाय छे. आसुरसंपत्नोज पूर्ण आविष्कार प्रतीत थाय छे. "बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु" जगत् मिथ्या नथी, सत् छे. ब्रह्म एकाकी रमण करता नथी, द्वितीयनी इच्छा करे छे तेज आत्मा एतावान् आ जगत् थया. "स ह एतावान् आस" ऊर्णनाभि, अहिकुंडल, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि, मंत्रादिमां विकृति थयाविनाज ते ते वस्तु अनेकाकारे परिणमे छे तेमज ब्रह्म पण जगद्रूपे विचित्रक्रीडा करे छे. नामात्मक रूपात्मक सर्व जगत् ब्रह्म छे. "सर्वं खलु इदं ब्रह्म." नामात्मकब्रह्ममां अक्षर, पद, वाक्यरूप शब्दसृष्टिनो, अने रूपात्मकब्रह्ममां आकाशादि भौतिकसृष्टिनो समावेश छे. श्रुतिमां नानाविध सृष्टिप्रकार निरूपण कर्या छे ए अनेकधा सृष्टिनुं प्रयोजन ब्रह्मनुं माहात्म्यवर्णन-मात्रज छे; वस्तुता तो विविधसृष्टिकर्तृत्वमात्रथी पण कांइ माहात्म्यवर्णन नथीज थतुं तथापि ते दिग्दर्शन पण लोकप्रतीतिमां माहात्म्य कहेवाय छे माटे

यथाकथंचित् तेनुं वर्णन छे. "तत् त्वम् असि" इत्यादि वाक्यनुं पण पर्यवसान, एम माहात्म्य प्रतिपादनकरी भगवान्मां सुदृढ, सर्वतोधिक—स्नेह आविष्करणमांज थाय छे.

१५. जगत्संसारभेद.

जगत् तेज संसार, संसार तेज जगत् एम शुद्धाद्वैतविना इतर सर्ववादीओनी भ्रांति छे. जगत् अने संसारनो भेद आटलो प्रत्यक्ष छतां सर्व वादीओ भ्रांत थईजाय छे तेथी "मम माया दुरत्यया" ए श्रीमुखवाक्यनुं संस्मरण थाय छे. जगत् अने संसारनो भेद शास्त्रीयरीतिथी निरूपणकरवानुं संपूर्ण मान श्रीमद्वैश्वानराचार्यनेज घटे छे. जगत् भगवत्कार्य छे भगवद्रूप छे पण संसार अहंताममतात्मक छे ते जीवे अविद्याथी कल्प्यो छे. संसारनो नाश ज्ञानथी थाय. कोटिशः ज्ञानीओनो परममोक्ष थाय तथापि जगत् तो तदवस्थज रहे छे जगत्नो सर्वसुखावह लय तो आत्मरमणेच्छाथी भगवान् करे त्यारेज थईशके छे.

"द्वैत" अविद्यानुं कार्य नथी पण "द्वैतज्ञान" अविद्यानुं कार्य छे द्वैत—जगत्—ब्रह्मकार्य छे, ब्रह्मरूप छे; परंतु द्वैतज्ञान, (आ पृथक् अने आ पृथक् एवी बुद्धि) अविद्यानुं कार्य छे एअविद्यावडे ब्रह्म नहि पण जीवज बद्ध थाय छे "अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जन्तवः"। अविद्याथी जीव उत्पन्न थतो नथी पण भगवदिच्छावशात् तेनुं विस्फुलिंगवत् व्युचरण थतां, आनंदांश तिरोधान थया पछी, अविद्यावडे तेने बंधमात्र थाय छे, त्यारे ते संसारी कहेवाय छे, वस्तुतः कांइ जीव संसारी नथी, परंतु अविद्याना अध्यासवडे जीवने तेवो अभिमति थाय छे, ते अभिमति असत् छे. जगत्नो ब्रह्मरूप छे. जीवनी ए अभिमति अविद्यात्मक अहंताममतारूप संसार कहेवाय छे. जगत् सत् छे ऐच्छिक छे, भगवत्कार्य छे, भगवद्रूप छे. संसार तो असत् छे, अहंता ममतात्मक छे, अविद्यानुं कार्य छे, जगतनुं उपादानकारण ब्रह्म छे अने निमित्तकारण ब्रह्मशक्ति छे, परंतु संसार उपादानरहित छे अने तेनुं निमित्तकारण अविद्या छे एटले एम कारणभेदथी पण जगत् अने संसारनो भेद सिद्ध थाय छे. तत्त्वज्ञानथी अविद्यानो तिरोभाव थइजतां जगतनी कांइ हानि नथी थती, ते कांइ अन्यथा थतुं नथी, परंतु संसारज, (अहंतात्मक ममतात्मक मोहज) निवृत्ति पामे छे. ज्ञानपर्यंत संसार रहे छे मुक्तिसमये संसारनो लय थाय छे. जगतनो सर्वसुखावह लय तो प्रभु स्वतः स्वात्मरमणेच्छाथी करे त्यारेज थाय. जीवनी ज्ञानदशासाथे जगतने कांइ संबंधज नथी. रमणार्थ जगद्रूपवडे जगदतःपातिपुरुषरूपवडे, तेपुरुषना साधनरूपवडे, फलरूपवडे, आविर्भाव पामी ब्रह्म

विविध क्रीडा करे छे, परंतु हुं कर्ता, आ कर्मजनितफल मारुं, हुं तेनो भोक्ता इत्यादि जीवनुं ज्ञान भ्रमरूप छे पोतपोतानी क्रिया, पोतानुं फल, ब्रह्मरूप नथी, अब्रह्म छे, एवो मिथ्या अभिमान छे, भ्रम छे, ए अहंताममतात्मक संसार एज अविद्यानुं कार्य छे तत्त्वज्ञानवडे संसार निवृत्ति पामे छे, जगत्‌नो कांइ लय तत्त्वज्ञानवडे थतो नथी. संसारहेतुभूत पंचपर्वात्मकअविद्या जीवने लागे छे, ब्रह्मने नहिज. पंचपर्वात्मक अविद्या कही तेमां स्वरूपाज्ञान, देहाध्यास, इंद्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अने अंतःकरणाध्यास ए पंचपर्व छे."अविद्या दुर्बल छे. ब्रह्मपर तेनुं वलज नहि" एटले हवे "ब्रह्म मायावडे ईश्वर अने अविद्यावडे जीव" ए पक्षनुं अर्थात्‌ज खंडन थईगयुं. ब्रह्मनी मायाशक्तिवडेज विद्या अने अविद्यानुं विनिर्माण थाय छे. मोक्ष पण एक सर्गज छे माटे विद्यानुं पण विनिर्माण कह्युं. स्वरूपलाभ आत्माने विद्यावडे प्राप्त थाय छे, अविद्यावडे देहलाभ थाय छे. विद्या–अविद्या उभये श्रीहरिनीज शक्ति छे. भगवदिच्छावडे उभयनो आविर्भाव तिरोभाव थतां, विद्या–अविद्या उभये भगवान्‌नी सर्वसामर्थ्यरूपमायाशक्तिवडे निर्मित छे एटले ते उभये मायाशक्तिने आधीनज छे, माटेज "मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरन्ति ते" वाक्यमां भक्ति प्राप्तथतां विद्या–अविद्या सर्वेनी निवृत्ति कही छे अन्यथा नित्यमुक्तता-(मायाथी निवृति) ज संभवे नहि. विद्या–अविद्या सर्वजीवनेज छे (अंतर्यामीने के जडने नहि,) दुःखी अने ऐश्वर्यरहित करे छे. वैराग्य, सांख्य, योग, तप अने प्रेम एम पंचपर्वात्मकविद्यावडे पंचपर्वात्मक अविद्यानो नाश थतां, संसारनिवृत्ति थाय छे, जीवन्मुक्ति थाय छे, देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण सर्वनो अध्यास त्यारे निवृत्त पामे छे. देहादि स्वतः कांई जतां रहेतां नथी कारण ते तो जगन्मध्यपाती छे, पण तेनो अध्यासमात्र निवृत्त थईजाय छे, अध्यास जतो रहे एटले देह जतो रहे एम कांई नथी, अध्यास संसारांतःपाती छे, देहादि जगन्मध्यपाती छे. सुखदुःखात्मक पण अहंताममतात्मकसंसार ज छे जगत् सुखदुःखात्मक नथी. अहंताममतात्मक–संसार निवृत्त थया पछी पण जगत् तो तदवस्थज रहे छे तथापि तेजगत्‌थी सुखदुःख थतुंज नथी; माटेज संसार तथा जगत् पृथक् छे एम प्रथमज कहेवायलुं छे.

१६ अविकृतपरिणामवाद.

मूळ कारण नानाकार्यरूप थाय तथापि कारणमां कांइ पण विकृति प्राप्त थाय नहि, सर्वअवस्थामां कार्य कारणरूपज रहे छे ए परिणाम अविकृत कहेवाय छे. ऊर्णनाभि, मृत्स्ना, सुवर्ण, अहिकुंडल, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि

ए सर्व अविकृतपरणामसिद्धांतनां उदाहरण छे. सच्चिदानंद निर्गुणज ब्रह्म जगद्रूपे परिणाम पामे छे तथापि ब्रह्ममां अणुमात्र पण विकृति थती नथी ए अविकृतपरिणामसिद्धांतनो निष्कर्ष छे, ब्रह्मनेज एसिद्धांतमां जगतनुं उपादान अने निमित्त उभयेकारण मान्युं छे माटे ए सिद्धांत ब्रह्मवाद पण कहेवाय छे. जेवादमां मायाने उपादान कारण मान्युं होय ते वाद मायावाद, भ्रमवाद, विवर्तवाद कहेवाय. श्रीमदाचार्यवर्यप्रकाशित–सिद्धांतमां नामरूप, जीवेश्वर, कार्यकारण शुद्ध ब्रह्म छे, मायिक नथी, मिथ्या नथी. तेसर्वनुं शुद्ध मायारहित अद्वैत–अभेद छे माटे ब्रह्मवाद "शुद्धाद्वैत" अभिधानथी सर्वत्र सुप्रसिद्ध छे. चेतनरूप अविकृतब्रह्मनुं परिणाम स्वीकारतां ब्रह्ममां विकृतिदोषनी संभावना नथी. ब्रह्मव्यतिरिक्त इतर कोइ पण उपादानकारण थइशकेज नहि, मूलमां सच्चिदानंद–ब्रह्मविना इतर–पदार्थनोज स्वीकार नथी. माया, प्रकृति, परमाणु इत्यादिने उपादानकारण मानतां जडकारणवाद प्राप्त थइजाय; चेतनकारणवादज रहे नहि. सर्वभवनसमर्थब्रह्मनुं स्वरूपज एवुं छे के पोते जगदादिरूपे परिणाम पामे तथापि विकार प्राप्तथतो नथी. ब्रह्मशब्दमां धात्वर्थज एवो रमणीय छे, सुवर्ण कटकमुद्रादिरूपे परिणमे छे तथापि कटकमुद्रादि सर्वअवस्थामां सुवर्णरूपज छे, सुवर्णथी भिन्न नथी; सुवर्णमां कांइ पण विकृति थती नथी. वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, व्याससूत्र अने समाधिभाषा ए प्रस्थानचतुष्टयमां तो पदे पदे, अक्षरे अक्षरे, अविकृतपरिणामसिद्धांतनुंज निरूपण छे एटलुंज नहि पण शंकराचार्ये पोताना भाष्यमां अविकृतपरिणामनो उपन्यास कर्यो छे. शंकराचार्यना समयथीज प्रारंभीने श्रीमदाचार्यना समयपर्यंतना न्यायसांख्यादिग्रंथोमां पण अनेकत्र शुद्धाद्वैतसिद्धांतनो उपन्यास छे ए निरीक्षण करवाथी सत्यासत्यविवेचकवर्ग आनंद पाम्याविना रहेशे नहि.

आरंभवाद, विवर्तवाद अने परिणामवाद ए त्रणवादमां आस्तिक मनाताशास्त्रमात्रनो समावेश थईजाय छे. तार्किको आरंभवादनो स्वीकार करे छे. पृथ्वीआदिना परमाणुमांथी द्व्यणुकादिनो आरंभ, उत्पत्ति, थाय छे एम तेओनो सिद्धांत छे एटले जगत्नुं उपादानकारण तो परमाणु निमित्तकारणमात्र ईश्वर, एम न्यायशास्त्रनो संग्रह छे. तर्कशास्त्रमां कार्य–कारण उभये भिन्न के, अभिन्न नथी. परमार्थतः अत्यंतनिर्गुण एकज अद्वितीयब्रह्म, अनादि, अनिर्वचनीय, अविद्यासंबंधकरीने जगपद्रू विवर्त पामे छे, ब्रह्ममां अनादि मायासंबंधथी जगद्रूपनी भ्रांति थाय छे एम शंकराचार्यनो मर्म छे. रज्जुविषे सर्पभ्रांति, शुक्तिकाविषे रजतभ्रांतिप्रभृतिउदाहरणथी शंकराचार्य विवर्तवादनुं स्थापनकरवा प्रयत्न करे छे. एमतविषे पण जगतनुं उपादान-

कारण ब्रह्म नथी पण माया छे. एकज कारण नानाकार्यरूप " थाय छे. " (नानाकार्यरूपे मात्र भासे छे एटलुंज नहि,) ए परिणामवाद केहवाय छे. परिणाम पण बेप्रकारनां छे, विकृतपरिणाम अने अविकृतपरिणाम. कारणमां विकार थईने नानाकार्य थाय त्यारे विकृतपरिणाम थाय छे. दुग्धनुं दधि थाय छे ए दृष्टांत विकृतपरिणामनुं छे. कारणमां लेशमात्र पण विकृति थयाविनाज कारण अनेककार्यरूपे परिणमे छे त्यारे अविकृतपरिणाम थाय छे. मूलमां, मध्यमां अने अंतमां कार्य कारणरूपज होय छे ए अविकृतपरिणामनुं परमरहस्य छे. मायावडे कारणकार्यरूपे मात्र भासे छे एम विवर्तवादनुं तात्पर्य छे परंतु एकज अविकारिकारण नानाकार्यरूप थाय छे अने ते नानाकार्य त्रणे अवस्थामां कारणरूपज रहे छे ए अविकृतपरिणामसिद्धांतनो परमसार छे. कार्य भासे छे अथवा मिथ्या छे एम नहि, परंतु कारणरूपधर्मी कार्यरूपधर्मस्वरूपे परिणमे छे, त्रणे अवस्थामां कार्य कारणरूपज छे, कारणाभिन्न, कारणानन्य छे ए अविकृतपरिणामसिद्धांतनो निष्कर्ष छे. अविकृतपरिणामवाद श्रीमद्भाष्यकारनो सिद्धांत छे, एसिद्धांतविषे एकज अद्वितीय निर्गुण अव्यय ब्रह्म, (माया नहि) जगत्‌नुं उपादानकारण तेमज निमित्तकारण पण छे. जगतनुं उपादानकारण साक्षात् ब्रह्मज थाय छे तथापि तेमां विकृति थती नथी ए अविकृतपरिणामसिद्धांतनुं ऊर्णनाभि, मृत्स्ना, सुवर्णप्रभृति वैदिकउदाहरणथी, अहिकुंडल, योगी, देव, पाषाण, पट, क्षीर आदि वेदान्तसूत्रोक्त उदाहरणथी अने कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि, मंत्र, तैजस इत्यादि स्वकीय उदाहरणथी, समर्थन करीने श्रीमद्वैश्वानराचार्यवर्य प्राचीनतम वेदांतसिद्धांतनो सुप्रकाश करे छे. ऊर्णनाभि स्वेच्छावशात् स्वमुखमांथी लाला प्रकट करे छे, विस्तारे छे, अने पुनः स्वमुखमां लीन करीदे छे तथापि ऊर्णनाभिमां कांईपण विकृति थती नथी, त्रणे अवस्थामां लाला ऊर्णनाभिरूपज छे, ऊर्णनाभिज लालारूपे परिणमे छे, तद्वत् ब्रह्म स्वेच्छावशात् स्वरूपमांथी जगत् प्रकट करे छे, विस्तारे छे अने पुनः स्वरूपमांज लय करे छे तथापि ब्रह्ममां कांईपण विकृति थती नथी, ब्रह्मत्वहानि थती नथी, त्रणे अवस्थामां जगत् ब्रह्मरूपज छे, ब्रह्मरूपधर्मी जगद्रूपधर्मस्वरूपे परिणाम पामे छे. मृत्तिका घटशरावादिरूपे परिणाम पामे छे, मृत्तिकामांथी घटादि प्रकट थाय छे, लय पामे छे तथापि मृत्तिकामां विकार थतो नथी, कार्यावस्थामां पण घटादि मृत्तिकारूप तो छेज; तेमज. ब्रह्ममांथी जगत्स्वरूपनां आविर्भावादि थाय छे तथापि ब्रह्ममां विकृति थती नथी, त्रणे अवस्थामां जगत् ब्रह्मरूपज छे, ब्रह्मथी ईषत् पण भिन्न नथी, सुवर्णादिमांथी कटकमुद्रिकादि थाय छे तो पण सुवर्णादिमां जेम विकार प्राप्त थतो नथी, कटकमुद्रिकादि त्रणे अवस्थामां सुवर्णरूपज

छे, तेजप्रमाणे ब्रह्ममांथी जगत्नां प्राकट्यादि थाय छे तथापि ब्रह्ममां लेशमात्र पण विकृति थती नथी. देव, योगी जेम सामर्थ्यथी अनेकानेक अभीष्टपदार्थ सिद्ध करे छे तथापि देव अने योगीमां जेम विकार प्राप्त थतो नथी, देवयोगित्वनी हानि थती नथी तेमज ब्रह्म स्वसामर्थ्यथी जगद्रूप थाय छे तथापि ब्रह्ममां विकृति थती नथी. कुंडलाकारसर्प सरलाकारअहिथी भिन्न नथी तद्वत् कार्य जगद्रूप कारण ब्रह्मस्वरूपथी भिन्न नथी. हीरकप्रभृतिमां जेम पाषाणत्त्व समान छे, पाषाणत्वनी हानि थती नथी, तेम ज उच्चावच सर्वजगत्मां ब्रह्म समान छे ब्रह्मत्वहानि नथी. संकुचितपटथी विस्तृतपट भिन्न नथी तेजप्रमाणे ब्रह्मथी जगत् भिन्न नथी. क्षीरप्रभृति दधिभवनसमये इतरसाधननिरपेक्षज दधिरूप थईजाय छे तेमज ब्रह्म स्वतःजगद्रूप थइजाय छे, कुलालादिने दंडचक्रादिनी अपेक्षा रहे छे तेवां निमित्तनी अपेक्षा पण सर्वभवनसमर्थब्रह्मने रहेती नथी. कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि, मंत्र, तैजसमात्रप्रभृति दिव्यपदार्थमांथी अनेकानेक अभीप्सितपदार्थ परिणमे छे तथापि तेमनामां अणुमात्र पण विकृति थती नथी तद्वत्ज ब्रह्म स्वेच्छावशात् अनेकरूपे, परिणाम पामी रमण करे छे तथापि ब्रह्ममां ईषन्मात्र पण विकार प्राप्त थतो नथी. जगत्नुं उपादानकारण तेमज निमित्तकारण अविकृत ब्रह्मज छे एटले जगत् ब्रह्मथी अनन्य छे, अभिन्न छे, जगत् मिथ्या छे एम नहि. पण कार्य–कारण, नाम–रूप, जीवेश्वर, सर्व ब्रह्मज छे माया नहि. कार्य–कारण, नाम–रूप, जीवेश्वरनो अभेद सिद्ध करवामां अनादि अनिर्वचनीय मायानो स्वीकार करवामां आवतो नथी, सर्वधर्मविशिष्ट अविकृत सर्वभवनसमर्थ, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ–ब्रह्मथीज सर्व निर्वाह थईरहे छे ए प्रकाश श्रीमदाचार्यशिरोमणिए कर्यो तेथी तत्प्रकाशित सिद्धांत शुद्धाद्वैत कहेवाय छे. शुद्धाद्वैत एटले कार्य–कारण, नामरूप, जीवेश्वर सर्वनुं शुद्ध मायारहित अद्वैत–ब्रह्मनेज उपादान अने निमित्तकारण स्वीकार्युं एटले ए सिद्धांत ब्रह्मवाद पण कहेवाय छे. शंकराचार्य मायाने उपादानकारण माने छे माटे तेनो वाद मायावाद कहेवाय छे. अविकृतज ब्रह्म जगद्रूपे परिणमे छे, अविकृत धर्मीस्वरूप अनेकानेक धर्मस्वरूपे परिणाम पामे छे माटे ए सिद्धांत "अविकृतपरिणामसिद्धांत" अभिधाथी सर्वत्र सुप्रसिद्ध छे.

श्रौतयुक्तिथी आप्रमाणे अविकृतपरिणामसिद्धांत सिद्ध थईरहे छे तोपण वादिमात्र स्वकीयशास्त्रना दृष्टिबिंदुथी शुद्धाद्वैतसिद्धांतपर आक्षेपकरवा प्रत्यवस्थान करे छे. कूटस्थ, अव्यय, ब्रह्म जगद्रूपे परिणाम पामे तो ब्रह्म कूटस्थ न कहेवाय एम तेसर्ववादीओनो दुराग्रह छे. जगत्नुं उपादानकारण जो ब्रह्मने मानवामां आवे तो ब्रह्ममां विकृति थइजाय एवी भीतिमात्र प्रत्यवस्थाननुं मूल छे. कूटस्थ,

चेतन, ब्रह्म परिणाम न पामीशके एम तेओनी भ्रांति छे. समाधान परम सरल छे. श्रुतिसूत्रादिमां प्रारंभमां एकज सच्चिदानंद नित्यपदार्थ स्वीकारेलो छे एटले सर्वजगत्‌नो आविर्भाव स्वाभाविकरीतिथी चैतन्यमांथी ज थाय ए उपपन्न छे. ब्रह्म-व्यतिरिक्त कांइ पण अनादि मानतां द्वैतापत्ति प्राप्त थइजाय माटे ब्रह्मनेज उपादानकारण बलात्कारे पण मानवुं पडशे. जगतनुं कारण जीव न थइशके कारण के संसारावस्थापन्न जीव गुप्तानंद होवाथी परतंत्र छे. कारण, स्वतंत्रज होइ शके. परमाणु जगत्कारण थईशकतुं नथी. परमाणुद्वयसंयोगवडे द्व्यणुक थाय छे एम नैयायिको माने छे ते अयुक्त छे. द्व्यणुक थवामां परमाणुनुं संघट्टन थवुं-जोइए परंतु परमाणुमां प्रदेश नथी एटले संघट्टनज अशक्य छे एटले द्व्यणुकनी उत्पत्ति परमाणुमांथी थईशकती नथी. परमाणु नित्य मानतां कार्य सदा रहेशे, परमाणु रूपादिमत् स्वीकार्युं छे ते पण अयोग्य छे, तेम स्वीकारवाथी परमाणु अनित्य थईजशे एटले परमाणु अपरमाणु थईगयुं परमाणुने अरूप मानशो तो पण निर्वाह नथी. परमाणुरूपकारणविषे रूप नहि स्वीकारो तो कार्यमां जे रूप दृश्यमान छे ते निर्मूल थईजशे ईश्वर निमित्तकारण पण नहि थईशके भिन्नईश्वर स्वीकारवाथी वैषम्यनैर्घृण्य दोष ईश्वरमां प्राप्त थशे. कर्मवडे जीव तत्तत्फलभोग करे छे एम कहेशो तो कर्माधीन ईश्वर थईजतां ईश्वर अनीश्वर थईजशे. युक्तिमूलक न्यायशास्त्र छे एज मुख्य दोष छे. नैयायिक, जीव अने ईश्वर उभयने विभु स्वीकारे छे एटले जीवईश्वरनो संबंधज संभवतो नथी तो ईश्वर पति पण नहि कहीशकाय. अधिष्ठानविना कार्य थईशकतुं नथी, ईश्वरने पण अधिष्ठानापेक्षानी कल्पना करशो तो मतविरोध, अनवस्था अने असंभव-दोष न्यायप्रक्रियामां प्राप्त थईजशे, इंद्रिय अंगीकार करवाथी जीवेश्वरना असंबंधरूप दोषनो परिहार थईशके परंतु ईश्वरने सेंद्रिय मानवाथी ईश्वरने भोगादि-प्रसक्ति प्राप्त थशे ईश्वर नियामक पण थईशकशे नहि, जीवादि परिच्छिन्न होय तोज ईश्वर तेमनुं नियमन करीशके पण न्यायशास्त्रमां जीवादि कोई परिच्छिन्न नथी जीवादि अपरिच्छिन्न मानतां ईश्वरजीवादिनो संबंध न रह्यो एटले ईश्वर ज असर्वज्ञ थईजशे. परमाणुकारणवाद आमकारे अनेकदोषग्रस्त छे माटे युक्त नथी. प्रकृतिआदिजडपदार्थ कारण न थइशके कारण के जडवस्तुमां क्रियाशक्ति ज प्रथम तो नथी. "कामाच नानुमानापेक्षा" सूत्रमां सूत्रकार प्रत्यक्षनिषेध जडकारणमां आपे छे जडकारण मानतां जडमां लय थाय, कारणने पण त्यारे कार्यगत स्थौल्य, सावयवत्व, परिच्छिन्नत्व, अशुद्धत्व आदिनो संबंध थाय. रचनानुपपत्ति जडवादमां प्राप्त थाय. प्रवृत्ति ज संभवे नहि जड स्वतः अंबुवत् के दुग्धवत् परिणाम पामीशके नहि तेवां उदाहरणमां चेतननी

अपेक्षा इष्ट छे तृण, पल्लव, जल स्वभावथी परिणाम पामे तेम जड पण परिणाम पामीशके एम न मानवुं. स्वभावथीज जो तेवुं परिणाम थतुं होय तो सर्वत्र तृणादिमांथी दुग्ध थाय पण शृंगादिमां वा वृषादिमां तेम थतुं नथी. चिद्रूप ब्रह्मथी अचेतन जगत् विलक्षण छे माटे चेतनात्मक ब्रह्म कारण न थाय ए शंका अयुक्त छे अचेतनकेश शरीरमांथी उत्पन्न थाय छे, चेतनवृश्चिक अचेतन गोमयमांथी प्रकट थाय छे. चेतनमांथी अचेतननी उत्पत्तिनो निषेध करतां तदंशनोज मात्र निषेध छे. कार्यकारणनी तुल्यांशसंपत्ति मानतां पण उभयमां सदंश समान छेज. जड स्वतः परिणाम पामे एम मानतां पण परिणाम थवामां जडने कोई प्रयोजन नथी. केवल जड कारण न थइशके परंतु चैतन्यप्रेरितजड कारण थइशके एम स्वीकारतां नित्यसंबंध मानवो पडशे, कारणविशिष्ट थयुं एटले अनिर्मोक्षप्रसंग आवशे. अंगांगिभाव स्वीकारतां जडकारणवादीनोज प्रवेश ब्रह्मवादमां थईजाय छे. जडमां ज्ञानशक्तिज नथी ए मुख्य दोष छे माटे जड कारण थइशके नहि. कारण ज असत् छे एम पण शंका न करवी. कारण असत् छे एम श्रुतिस्मृतिमां कोईपण स्थले निर्देश नथी "कथम् असतः सत् जायेत" असत्कारणमांथी सत् कार्य केवी रीतिथी थइशके? असत् कारण मानतां तो शशशृंगादिमाथी पण सर्वकार्य सिद्ध थवानो प्रसंग आवीजाय. उदासीनने पण सर्व सिद्ध थाय. अनिर्वचनीय अनादि अविद्या पण कारण थईशके नहि अविद्याने अनादि मानता द्वैतापत्ति प्राप्त थईजशे. अविद्या अनादि नथी जन्य छे एम कहेशो तो ब्रह्मनेज कारण मानवुं पडशे, एटले पण मायावादनो परित्याग करी ब्रह्मवादमां प्रवेश थाय छे. अविद्या कादाचित्की होय एम पण असंगत छे अनादि सांत अविद्या न होइशके. अनादि होय ते अनंत होवुं ज जोइए, सांत होइशके नहि. प्रागभाव जेम अनादि सांत छे तेम अविद्या पण अनादि सांत होइशके एम तर्क पण युक्त नथी. प्रागभाव सर्वसंमत नथी, आविर्भावतिरोभाव स्वीकारतां प्रागभाव अंगीकार करवानी आवश्यकता रहेती नथी तेमज अविद्याने तेओए भावरूप मानेली छे अने प्रागभाव अभाव छे माटे भावरूपमां भावरूपनुं दृष्टान्त आपवुं जोइए अभावनुं दृष्टान्त भावरूपने आपीशकाय नहि एटले प्रागभावनुं दृष्टांत व्यर्थ थइगयुं. अविद्याने अनादि अने अनंत स्वीकारतां अनिर्मोक्ष प्रसक्त थशे. अनिर्वचनीयअविद्याने अनादि-सांत कहेतां अविद्या निर्वचनीय थइजाय छे अनिर्वचनीयत्व पण जतुं रहे छे. अनिर्वचनीयमायाने कारण मानतां पूर्वोक्त जडकारणवादना समस्त दोष प्राप्त थाय छे. रज्जुविषे सर्पनी भ्रांति थाय छे तेम ब्रह्मविषे जगत्‌नी भ्रांति थाय छे एम पण न कहेवुं. रज्जुमां सर्पनी भ्रांति थाय छे एदृष्टांतमां रज्जु अने सर्प उभय साकार छे,

समानाकार छे, पण मायावादिकल्पित ब्रह्म परमार्थतः निराकार छे एटले निराकारब्रह्मविषे साकारजगत्‌नो भ्रम थवो संभवतो नथी, एटले दृष्टांत विषम छे. ए दृष्टांत स्वीकारतां पण मायावाद फलित थतो नथी. पूर्वसर्पनुं दर्शन वा श्रवण कर्युं छे अने तज्जन्यसंस्कारथी रज्जुमां पूर्वानुभूत सर्पनी भ्रांति थाय छे. दार्ष्टांतिकविषे एम मानतां ब्रह्मविषे जगत्‌नी भ्रांतिनो प्रसंग आवे तत्पूर्व कचित्‌पण "सत्य" जगत्‌नुं दर्शन-श्रवण अंगीकार करवुं पडशे, अने जगत्‌ने सत्य अंगीकार करीदो त्यारे तो भ्रांतिवाद उपजाववानुं प्रयोजनज रहेतुं नथी. शुक्तिकामां रजतनी भ्रांतिनुं दृष्टांत आपो तेनुं खंडन पण एजप्रकारे थइजाय छे. जगतनुं कारण अविद्या मानवाथी जगत्‌नो लय पण अविद्यामांज स्वीकारवो पडशे एटले मायावादमां सर्वात्मभावनो प्रसंगज नहि आवे. ब्रह्म सत्य छे अने अविद्या सदसत्‌ छे एटले ब्रह्मज्ञानथी जगत्‌ज्ञान पण संभवशे नहि, वैदिक प्रतिज्ञा दृष्टांतनुंज तिलोदक थईजाय छे. कार्य असत्‌ नथी कारण के कार्यनी उपलब्धि थाय छे. वस्तु होय तोज उपलब्धि थाय स्वप्नादिवत्‌ पण जगत्‌ नथी. स्वप्नादिमां तेसमये वा स्वप्नांते वस्तुनो अन्यथाभाव स्पष्ट थाय छे, जगत्‌नो अन्यथाभाव कचित्‌ पण दृश्यमान नथी. कार्य असत्‌ मानतां मोक्षप्रवृत्ति पण संभवशे नहि असत्‌ कार्य छे तथापि वासनावडे कार्य दृश्यमान थाय, एम पण नथी. जगत्‌विना वासनाज न संभवे; अनादिवासना मानतां अंधपरंपरा प्राप्त थशे. अर्थविना वासना थती नथी अने वासनाविना पण अर्थनी उपलब्धि तो थाय छे माटे अन्वयव्यतिरेकथी पण जगत्‌ सत्‌ छे एम अंगीकार करवुंज पडशे. सत्‌ जगत्‌ मानवाथी द्वैतापत्ति नहि थईजाय कारण जगत्‌ पण ब्रह्मरूप छे, ब्रह्मानन्य छे, ब्रह्माभिन्न छे एम शास्त्रडिंडिमनो प्रचंड घोष छे ब्रह्म गौण कारण हशे, मुख्य कारण नहि होय एम शंका पण व्यर्थ छे. अध्यारोपापवादरूप कुवाद निरर्थक छे. "तत्‌ आत्मानं स्वयं अकुरुत" श्रुतिमां ब्रह्म पोतेज पोताना आत्माने आ जगद्रूप करे छे एम स्पष्ट उपदेश छे. श्रुतिमां "आत्म" शब्द छे माटे मुख्यकारणज ब्रह्म छे. गौणकारण जो ब्रह्म होय तो कोई पण स्थले गौणनो त्याग श्रुति निरूपणकर्याविना रहे नहि. जगत्कर्तृ ब्रह्मनो कोईपण स्थले त्याग करवानुं वचन नथी एटलुंज नहि पण जगत्कर्तृब्रह्मविषे जेनी निष्ठा होय छे तेनो मोक्ष थाय छे एम स्पष्ट वचन छे. सूत्रकार प्रथमसूत्रमां ब्रह्मनी जिज्ञासानी प्रतिज्ञाकरीने ब्रह्मलक्षण आपवा "यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते" जेमांथी आ भूत प्रकट थाय छे, (प्रकट थयापछी जेवडे जीवे छे, जेमां लय पामे छे ते ब्रह्म, तेनुं विज्ञान कर) एश्रुति ध्यानमां राखीने "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्‌" एम तत्त्वसूत्र योजे छे. जेमांथी आजगत्‌नां

उत्पत्त्यादि थाय छे ते ब्रह्म एलक्षणथी मुख्य कर्तृज ब्रह्म छे एम सूत्रकारनी स्फुट आज्ञा छे मुख्य परब्रह्मस्वरूप जगत्कर्तृ नथी, जगत्कर्तृ ब्रह्म तो अपर छे, मायाशबल ईश्वर छे, एवो जो सूत्रकारनो अभिप्राय होय तो ब्रह्मजिज्ञासानी प्रतिज्ञा कर्या पछी तरतज एवुं सूत्र योजत के ब्रह्मनुं लक्षण अपाय एम नथी माटे तटस्थलक्षण आपवामां आवे छे सूत्रकारे एवो संकेत पण कोई स्थले कर्यो नथी एटलुंज नहि पण सूत्रकार तो "तत्तुसमन्वयात्" एम तृतीयसूत्र योजी ब्रह्मज जगवनुं समवायिकारण छे एम उपदेश करे छे सद्रूप ब्रह्म जगवकारण छे एटलुंज नहि पण चिद्रूप ब्रह्म पण जगवनुं कारण छे एम स्पष्ट निरूपणकरवा सप्तसूत्री योजे छे, ज्ञाननां सप्तद्वार छे माटे ए विचार सूत्रकारे ईक्षत्यधिकरणमां सप्तसूत्रथी कर्यो! सच्चिद्ब्रह्म जगत्कारण छे एम स्पष्ट प्रतिपादनकरी आनंदरूप ब्रह्म पण जगवकारण छे एम प्रतिपादन करवा अष्टसूत्रीथी आनंद-मयाधिकरणमां आनंदरूप–ब्रह्मनुं जगत्कारणत्व सिद्ध करे छे. आनंद अष्टप्रकारनो छे माटे ए विचार सूत्रकारे अष्टसूत्रथी कर्यो!!! निर्गुण सच्चिदानंद अविकृतज ब्रह्म जगतनुं मुख्य कारण छे एम निःसंदिग्ध प्रतिपादन थयुं. अध्यारोप करी अपवाद करवो, पंकमां पातकरी प्रक्षालन करवुं, ते करतां, अध्यारोपज न करवो, पंकपातज न करवो एटलुं ज्ञान सर्वज्ञ सूत्रकारमां न होय एम मानवुं ए धृष्टता गणाय. श्रुतिमां पण कोईपण स्थले ब्रह्म गौणकारण छे एवो उपदेश नथी "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" श्रुतिमां ब्रह्म मायावडे अनेकरूप देखाय छे एम उपदेश छे ब्रह्म मायासंबंधथी अनेकरूप थतुं होत तो "अनेकरूप थाय छे" एम श्रुति उपदेश करत. "ईयते" ने बदले "बभूव" एम आज्ञा करत एकजब्रह्मविषे अनेकत्वज्ञान थाय छे तेनुं कारण अविद्या छे एम एश्रुति आज्ञा करे छे ते योग्य छे अनेकत्व मायिक नथी पण "अनेकत्व ज्ञान" मायिक छे एज वैदिकसिद्धांत छे. जगव मायिक नथी, पण अहंताममतात्मक संसार "अनेकत्व-ज्ञान" "द्वैतज्ञान" मायिक छे एज शुद्धाद्वैतसिद्धांतनुं मर्म छे. जगव जीव सर्व ब्रह्मस्वरूप ज छे कांई पण त्याज्य नथी एटले शुद्धाद्वैतसिद्धांतमां मोक्षप्रसंग नहि आवे एशंकानुं अर्थातज खंडन थईगयुं. नामरूपात्मक आ प्रत्यक्ष जगव ब्रह्म छे परंतु अहंताममतात्मक संसार मिथ्या छे. अविद्याना अध्यासथी प्राप्त अहंताममतात्मकसंसारनो त्याग पंचपर्वात्मकविद्यावडे करीने शुद्धानंदनो आविर्भाव करवानो छे. अहंताममतारूप संसारमांथी मुक्तथवामां शास्त्रनी पण सार्थकता छे पंचपर्वात्मकविद्यावडे पंचपर्वात्मकअविद्या विरामपामीजतां द्वैत-ज्ञान निवारण थईजाय छे, सर्वात्मभाव प्रकट थाय छे, जगत्–जीव सर्व निर्गुण ब्रह्मज छे, एम स्पष्ट अनुभवे छे ब्रह्मने जगवनुं उपादानकारण मानवां ब्रह्ममां

कारणत्वरूप धर्म स्वीकारवो पडे एटले ब्रह्म सगुण थईजाय एवी शंका पण अनुचित छे निर्गुण ब्रह्मज कारण थईशके. सगुण गुणाभिमानी तो गुणाधीन परतंत्रहोवाथी कारणज थइशके नहि. ब्रह्म सगुण थइजाय एवीभीतिथी जे ब्रह्मने जगत्कारण मानता नथी तेवादिनामतमां पण ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध-मुक्त होवाथी तेवादिकल्पित ब्रह्म सधर्मक–सगुण–थईचुक्युं छे एम बलात्कारे पण अंगीकार कर्याविना चालशे नहि, एटले निर्गुण अविकृतज ब्रह्म जगतनुं मुख्यज कारण छे एम हवे निष्प्रत्यूह सिद्ध थयुं.

जीव, परमाणु, प्रकृति, माया कोई पण जगतनुं कारण थईशके नहि युक्तिमूलकवादखंडनपूर्वक निर्गुण अविकृतज ब्रह्म जगत्नुं उपादानकारण अने निमित्तकारण छे एम उपपत्तिथी सिद्ध थयुं. ब्रह्म जगत्नुं उपादानकारण स्पष्ट थाय छे तथापि ब्रह्म अज, अमृत, अविकृत, होवाथी तेमां विकृतिदोष आवतो नथी ए युक्त छे. युक्तिवडे प्रत्यवस्थानकरनारवादीनुं निराकरण कल्पवृक्षप्रभृति उदाहरणमात्रथी युक्तितः करवुं एम न्याय छे तथापि स्थूणाखननन्याये श्रुतिसूत्रादिनां प्रमाण पण आपवामां आवे छे. ब्रह्मशब्दमां धात्वर्थज "वृद्धि पामवुं" एवो छे एटले जगद्रूपे वृद्धिपामवी ए तो ब्रह्मनो सहज धर्म छे, सर्वजोवनसमर्थ ब्रह्मनी स्वाभाविक शक्ति छे, एटले ब्रह्ममां विकृतिनी संभावनाज नथी. "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णम् उदच्यते" (आपूर्ण एपूर्ण, पूर्णमांथी पूर्णनुं उदंचन थयाकरे छे, मात्र भासे छे एम नहि,) ए श्रुति स्पष्ट ब्रह्ममांथीज जगदादिपूर्णवस्तुनो आविर्भाव निरूपण करे छे. श्रुतिस्मृतिमां जेवी आज्ञा होय तेमां अणुमात्र पण न्यूनाधिक्यकल्पना के बलात्कार कर्याविना जे अर्थ फलित थाय तेज ग्रहण करवो एम वैदिक शिष्टाचार छे एटले ब्रह्म साक्षात् उपादानकारण थाय तो ब्रह्ममां विकृति आवोजशे एवी भीतिथी कल्पना करी मायावाद उपजाववा धृष्टता न करवी. कोइपण श्रुतिमां माया कारण थाय एवो स्पष्ट उपदेश तो शुं पण सूचनमात्र पण नथी. ब्रह्म स्वभावथीज जेम अणुथी पण अणु छे अने महत्थी पण महत् छे, अपाणिपाद जवन छे तथापि गृहीतृ छे, ए अनेत्र छे तथापि द्रष्टृ छे, अकर्ण छे तथापि श्रोतृ छे, जगद्रूप छे तथापि जगदतिरिक्त छे तद्वतज ब्रह्म स्वभावथीज (मायासंबंधथी नहि) कूटस्थ अने परिणामी पण छेज, सर्वविरुद्धधर्माश्रययुक्त छे. सर्वभवनसमर्थमां असंभावनाविपरीतभावनानो अवकाशज नथी. कूटस्थत्व अने परिणामित्व उभये ब्रह्मना सहज स्वभाविक धर्म छे, उभये प्रकाशाश्रयवत् ब्रह्मरूपज छे, एटले ब्रह्मस्वरूपमां, ब्रह्मसामर्थ्यमां, दोषगंध पण नथी. तथापि हीनाधिकारीना संशयनिवारणार्थ तत्वसूत्रशास्त्रना प्रारंभमांज "विकारशब्दात् इति चेन्न प्राचु-

र्यात्" एम सूत्रकारे सूत्र योज्युं छे. आनंदमय ब्रह्म जगत्कारण न थइशके कारणके मयट् (मय) प्रत्यय विकारवाचक छे एम संदेह थाय त्यां सूत्रकार आज्ञा करे छे के मयट् विकारवाचक नथी पण प्राचुर्यवाचक छे, अविकृत, निर्गुण, ब्रह्म आनंदप्रचुर छे माटे सर्वथा तेज जगत्कारण थाय. "तद्धेतुव्यपदेशाच्च" सूत्रमां ब्रह्मज जगदादिनुं हेतु छे एम स्पष्ट उपदेश प्रतिपादन कर्यो छे. "आत्मकृतेः परिणामात्" सूत्रमां स्पष्ट आत्मकृति अने परिणामनुं निरूपण छे. "आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि" तत्त्वसूत्रमां ब्रह्मविषेज सर्व वैचित्र्यनो उपदेश स्फुट छे. ब्रह्म जगत्कारण न होय तो सर्वात्मभावज संभवे नहि, एकविज्ञानथी सर्वविज्ञानरूपप्रतिज्ञादृष्टांत सर्व निष्फल थाय, "विशते तदनंतरम्" "नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे" प्रभृतिवचनप्रतिपादित–सायुज्यमुक्तिज संभवे नहि, शुद्ध, अद्वैतज संभवे नाहि, आर्यमार्गनोज उच्छेद थइजाय माटे यथोक्तब्रह्मनोज स्वीकार करी तेनेज जगत्नुं उपादान अने निमित्तकारण श्रुतिस्मृतिप्रमाणथी स्वीकारवुं ए आवश्यक पण छे, स्वाभाविक छे, उपपन्न छे, प्राचीनतमरमणीयसिद्धांत छे. कल्पवृक्षादिमां ईषन्मात्र पण विक्रिया थयाविना तेओ अनेकानेक अभीप्सितपदार्थरूपे परिणमे छे एम पूर्णताथी पूर्वज निरूपण थइगयुं छे ते स्मरणमां राखवाथी, विक्रियाविना परिणाम संभवेज नहि ए भ्रांतिनुं समूल खंडन थईजशे कूटस्थत्व अने परिणामित्व उभये विरुद्धधर्मथी चकित थईजवुं नहि. जुओ, नैयायिक स्पर्शने शीतोष्णविरुद्धधर्माश्रययुक्त माने छे, गंधने सुरभिअसुरभिविरुद्धधर्माश्रययुक्त स्वीकारे छे, रसने मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त आदि विरुद्धधर्माश्रययुक्त अंगीकार करे छे, रूपने शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र आदि विरुद्धधर्माश्रययुक्त प्रतिपादन करे छे; सत्व, रजस्, तमस्रूप विरुद्धधर्माश्रययुक्त प्रकृति सांख्याचार्य निरूपण करे छे; जडत्व अने फलदातृत्व एम विरुद्धधर्माश्रययुक्त कर्मनुं मीमांसक मंडन करे छे; सत् असत् विरुद्धधर्माश्रययुक्त मायानुं स्थापन विवर्तवादी करे छे. संगमरस अने विप्रलंभरस उभये विरुद्धधर्मनो आश्रय एकज दिव्य, अलौकिक, शृंगाररस छे तेमज कूटस्थत्व अने परिणामित्व उभयविरुद्धधर्मनो आश्रय निगमप्रतिपाद्य कर्तुम्अकर्तुम्अन्यथाकर्तुम्समर्थ सर्वभवनसमर्थ, सच्चिदानंद, अद्वितीय, शुद्ध, निर्गुण ब्रह्म छे एम सहृदयशास्त्रविचारकने स्पष्ट अनुभव थतां परमप्रमोद प्राप्त थशे. विरुद्धसर्वधर्माश्रयसिद्धांतना साम्राज्यनोज एवो लोकोत्तर चमत्कार छे.

अद्वितीय कूटस्थज ब्रह्म सर्वकारणकारण थाय छे (मात्र भासे छे एम नहि) जगद्रूपे परिणाम पामे छे एम निष्प्रत्यूह सिद्ध थयुं युक्तिकनकपंकसंघट्टित

विविधनिगम–महामणिविरचितब्रह्मवादभवननी निर्दोष अने उज्वलकांतिनां दर्शन थयां, ब्रह्मवादसदनने दूषणदहननो अत्यंत असंभव छे, प्रस्थानचतुष्टयमां तो अक्षरे अक्षरे आशुद्धाद्वैतसिद्धांतनुं कथन छे, शुद्धाद्वैतसिद्धांतोओनी परंपरा पण अनेकशः सुप्रसिद्ध ज छे, एटलुं ज नहि पण प्रचलितभाष्योमां प्राचीनतम मनाता शांकरभाष्यमां पण अनेकस्थले शुद्धाद्वैतसिद्धांतनोउपन्यास प्रत्यक्ष छे. शंकराचार्यना समयथी प्रारंभीने श्रीमदाचार्यवर्यना प्राकट्यपर्यंतना न्यायसांख्यादिग्रंथोंमां पण अनेकत्र शुद्धाद्वैतसिद्धांतनो अनुवाद स्पष्ट छे तथापि अविकृतपरिणामवाद आधुनिक छे एम मंदमति कुतर्क करे छे तेनुं चूर्णशः मर्दन करी ब्रह्मवाद ज प्राचीनतम–निगमादिप्रतिपादित–सिद्धांत छे एम विचारकजनसमक्ष प्रतिपादन करवुं एज निम्नलेखनो उद्देश छे. दिग्दर्शकप्रमाणो पूर्वलेखमां पण वाचकवर्ग यथास्थित योजीदेशे. वेदमाता गायत्री "सवितुः" शब्दथी ब्रह्ममांथीज आप्रत्यक्षजगतना प्रसवनुं गान करे छे. जेवादी मायाने उपादानकारण मानवानो दुराग्रह करे छे तेवादीने सर्ववेदबीजगायत्रीप्रतिपादित निर्गुण, अद्वितीय, ब्रह्मने पण अविद्योपहित कहेवानो प्रसंग प्राप्त थईजशे. "पुरुष एव इदं सर्वम् यत् भूतं यच्च भव्यम्" (आ सर्व, थयुं ते अने थशे ते, ब्रह्म छे) पुरुषसूक्तनी ऋचा पुरुषनुं, (मायानुं नहि) सर्वात्मकत्व निरूपण करे छे. "एतावान् अस्य महिमा" (पुरुषनुं एटलुं माहात्म्य छे, अध्यारोप नथी) ए ऋचा पण अध्यारोपापवादनुं खंडन करे छे. "एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति" (एकसते विप्र अनेकप्रकारे तेनी स्तुति करे छे) ए ऋचा पण ब्रह्मनो ज, (मायानो नहि) प्रभाव सूचन करे छे. "दिवो भर्ता भुवनस्य प्रजापतिः" (आप स्वर्गना पोषक छो, भुवनना प्रजापति छो) श्रुतिपण ब्रह्मनोज सर्वात्मभाव प्रतिपादन करे छे "विश्वकर्मा विश्वेदेवा महान् असि" (आप विश्वकर्मा छो, विश्वदेव छो, महान् छो) श्रुति पण ब्रह्मनुं सर्वकर्मात्मकत्व, सर्वदेवात्मकत्वनुं मंडन करी माहात्म्यनो उपदेश करे छे जगत मायिक मानतां तो ब्रह्म, पुरुष विश्वकर्माप्रभृतिशब्दमांज मुख्यार्थबाध थईजाय छे. ब्रह्ममाहात्म्यवादी, यास्काचार्य (निरुक्तकार) "माहात्म्यात् देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते एकस्य आत्मनः अन्ये देवा प्रत्यंगानि भवन्ति" (एकज आत्मानी तेदेवताना माहात्म्यथी, अनेकधा स्तुतिकरवामां आवे छे, एकजआत्माना अन्यदेव प्रत्यंग थाय छे) मायावडे अनेकभासता अपरब्रह्म शबलईश्वरसंबंधी अनुवाद वेदमां छे एम जे मंदमति कल्पना करे छे तेनुं साक्षात खंडनकरी, अध्यारोपापवादनुं निवारण करी, ब्रह्मनुं माहात्म्यज्ञान करावे छे. अन्यत्र पण एवा अनेकानेक वचन स्पष्ट छे "असत् वा इदं अग्रे आसीत् ततः वै सत्

अजायत' श्रुति आज्ञा करे छे के प्रथम आ असत् (अव्यक्त) हतुं तेमांथी सत् (व्यक्त) प्रकट थयुं जगत्‌नुं मिथ्यात्व श्रुतिने इष्ट नथी ए हवे स्पष्ट थयुं "तद्वै ब्रह्मविदो विदुः" ते तो निश्चय ब्रह्मज्ञ जाणे छे "ब्रह्म देवान् अजनयत्" ब्रह्मे, (शबलईश्वरे नहि) देवताओने प्रकट कर्या,(माया–अविद्यामां प्रतिबिंब पाड्या एम नहि) श्रुति साक्षात् ब्रह्मनुज सर्वकारणकारणत्व अंगीकार करे छे "ब्रह्म विश्वम् इदं जगत्" (विश्व आ जगत् ब्रह्म छे, माया नहि,) एम साक्षात् वेद जगत्‌नुं ब्रह्मत्व प्रतिपादन करे छे, मायिकत्वनो निरास स्पष्ट करे छे "द्वेवा ब्रह्मणः रूपे कालश्च अकालश्च" श्रुतिमां एक काल अने बीजुं अकाल एम ब्रह्मनां बे रूप निरूपण कर्यां छे, ब्रह्म अत्यंत अरूप छे एवो दुराग्रह श्रुति तो करती नथी.

संहिता अने ब्राह्मणमांज ब्रह्मने जगत्कारण स्वीकार्युं छे एटलुंज नहि पण उपनिषदोमां पण साक्षात् निर्गुणब्रह्मनेज जगत्कारण अंगीकार कर्युं छे "सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म" (सत्य, ज्ञान, अनंत ब्रह्म छे) "सत्यं विज्ञानं आनंदं ब्रह्म" (सत्य, विज्ञान, आनंद, ब्रह्म छे) एवेश्रुतिमां जेवुं ब्रह्मनुं लक्षण निरूपण कर्युं छे तेवुंज लक्षण "यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते" (जेमांथी आभूत प्रकटे छे, जेवडे जीवे छे, जेमां लय पामे छे ते ब्रह्म, तेनुं विज्ञान कर) श्रुतिमां पण निरूपित छे. एकश्रुति निर्गुणब्रह्मपर अने बीजी श्रुति तो सगुणब्रह्मपर छे एम कोईश्रुतिमां तो उपदेश नथी. "यतः" मां तसिल् प्रत्यय अव्यय छे तेथी अव्यय ब्रह्मज जगद्रूपे परिणमे छे एम ध्वनि छे, परिणाम पामे छे तथापि अव्यय (अविकृतज) रहे छे एम तात्पर्य छे. ब्रह्मने अत्यंत निर्धर्मक मानवानो दुराग्रह पण निरर्थक छे. "तमेव भांतमनुभाति सर्वम् (प्रकाशरूप ब्रह्मनी अनुसार सर्व प्रकाशे छे) "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (तेना प्रकाशवडे आ सर्व प्रकाशे छे) ए उभये श्रुति ब्रह्मने सर्वप्रकाशक स्वीकारी, ब्रह्मविषे सर्वप्रकाशकत्वधर्म–गुणनो स्पष्ट उपदेश करे छे. तेवादी पण ब्रह्मने नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, विभु तो स्वीकारेज छे एटले तेवादमां परमार्थतःज ब्रह्म सधर्मक थईज चुक्युं छे. "सर्वकामः, सर्वगंधः, सर्वरसः, सर्वकर्ता, सर्वभोक्ता, यः" सर्वविद् (ब्रह्म सर्वकाम छे, सर्वगंध छे, सर्वरस छे, सर्वकर्तृ छे, सर्वभोक्तृ छे, सर्वविद् छे) प्रभृति श्रुतिपण ब्रह्मनुं सर्वधर्माश्रयत्व प्रतिपादन करे छे; मायावडे ब्रह्ममां ते ते धर्म भासे छे एम नहि पण "परा अस्य शक्तिः विविधा एव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" (एब्रह्मनी ज्ञान बलक्रियारूप विविधशक्ति स्वाभाविक छे) श्रुति ते ते धर्म सहज छे, स्वाभाविक छे, एम मंडन करे छे. एकश्रुति ब्रह्ममां धर्मनो आरोप करे छे,

बीजी अपवाद करे छे, तेमां अपवादश्रुतिज पारमार्थिक छे एम एकदेशी दुराग्रह पण व्यर्थ छे. उभयेश्रुतिनुं बलसमान छे. श्रुति अध्यारोप के अपवाद कांई करती नथी पण विलक्षणब्रह्म सर्वधर्मविशिष्ट छे एमज उभये श्रुति यथार्थ प्रतिपादन करे छे. "अणोरणीयान् महतो महीयान्" (ब्रह्म अणुथी पण अणु छे, महान्थी पण महान् छे) "अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" (अपाणिपाद ब्रह्म छे तथापि जवन, गृहीतृ छे, अनेत्र छे तथापि द्रष्टृ छे, अकर्ण छे तथापि श्रोतृ छे) प्रभृतिश्रुतिजात ब्रह्मनी विचित्र–विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्वनुंज निरूपण करे छे "यतो वाचो निवर्तन्ते"(ज्यां मन वाणी सर्व निवर्तन पामे छे तेवा ब्रह्मना आनंदने जाणनार कोईपण कारणथी कोइ पण स्थले भय पामतो नथी)"रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" (आप निश्चय रस छे; रसनीज प्राप्ति करीने आजीव आनंदी थाय छे) इत्यादिश्रुतिनुं पण एवुंज दिव्यतात्पर्य छे. मूलमां एकज ब्रह्मविना इतर कोईपण श्रुति अंगीकार करती नथी एटले अनादि, अनिर्वचनीय, सदसद्, मायानी कल्पना पण भ्रांतिमूलक छे, श्रुतिप्रतिपादित नथीज. "एकम् एव अद्वितीयं ब्रह्म," "एकोऽहं बहु स्याम्, प्रजायेय" "एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्" "स ह एतावान् आस" (एकज अद्वितीय ब्रह्म छे, हुं एक छुं अनेक थाऊं, प्रजनन करूं, ते एकाकी रमण करता नथी, द्वितीयनी इच्छा करी, तेज निश्चय आ जगद्रूप थया) प्रभृतिश्रुतिसहस्र मायावादनिरासपूर्वक साक्षात् निर्गुण ब्रह्मज जगद्रूपे परिणाम पामे छे एम उद्घोष करे छे. "तत् ऐक्षत," "सः अकामयत," "नामरूपे व्याकरवाणि" (तेणे जोयुं, तेणे कामना करी, अभिध्यान कर्युं, नामरूपनुं व्याकरण हुं करूं) इत्यादि श्रुति अचेतन, माया, अविद्या, प्रकृति, परमाणुप्रभृतिकारणनो अत्यंत निरासकरी साक्षाद् निर्गुणब्रह्मज जगद्रूपे व्याकरण पामे छे एम निष्प्रत्यूह मंडन करे छे. ब्रह्मज कार्यरूपे परिणमे छे, कार्य–कारण अभिन्न छे एम "तत् आत्मानं स्वयं अकुरुत," "स ह एतावान् आस," "ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्" "यत् अयम् आत्मा" "तत्त्वमसि"(तेणे पोतेज पोताना आत्माने जगद्रूप कर्यो, निश्चय ते जगद्रूप थया, आ सर्व आत्मसंबंधी छे जे आ सर्व छे ते सकलआत्मा, तुं पण ते छे) इत्यादिश्रुति निःसंदिग्ध प्रतिपादन करे छे. नामरूपजगत् वाचारंभणमात्र नथी पण ब्रह्मरूपज छे, एम "मृत्तिका इति एव सत्यम्" (जेम घट मृत्तिकानोज प्रकार छे, मृत्तिकाव्यतिरिक्त नथी, माटे सत्य छे, मृत्तिकारूप छे तद्वत् जगत् ब्रह्मनोज प्रकार छे, ब्रह्मव्यतिरिक्त नथी माटे सत्य छे, ब्रह्मरूप छे, प्रभृति श्रुति कारणकार्यनुं अनन्यत्व, (मिथ्यात्व नहि) प्रतिपादन करे छे. "एष एव आनंदयति" "एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि

भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति' (एज ब्रह्म आनंद पमाडे छे, ए ब्रह्मना आनंदनी कलामात्रथी सर्वनुं उपजीवन थाय छे,) आदिश्रुति आनंदमयब्रह्मनुंज कारणत्व निरूपण करे छे. "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" (एकज देव सर्वभूतमां गूढ छे) इत्यादिश्रुति ब्रह्मनुंज अंतर्यामित्व पण निरूपण करे छे. "सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलान्," "सन्मूलाः सौम्य इमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' "कथम् असतःसत्जायेत," "तत्सत्यम् इति आचक्षते," "सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवा सर्वमयाः" "पूर्णमदः पूर्णमिदम्' (आ बधुं ब्रह्ममांथी प्रकट थाय छे, ब्रह्मवडे जीवे छे, ब्रह्ममांज लय पामे छे माटे निश्चय सर्व ब्रह्म छे; आ प्रजानुं मूळ, हे सौम्य, सत् ब्रह्म छे, (माया नहि) तेमनुं आयतन पण ब्रह्म छे तेमनी प्रतिष्ठा पण ब्रह्मज छे; असत्मांथी सत् केम थाय ? ते जगत् सत् छे एम कहे छे, जगत् ब्रह्ममय छे, सर्वजीव ब्रह्ममय छे; आ पूर्ण, ए पूर्ण, पूर्णमांथी पूर्णनो आविर्भाव थाय छे, पूर्णमांथी पूर्णनुं ग्रहण थतां पण पूर्णज अवशिष्ट रहे छे) इत्यादिश्रुति सर्वजगतनुं ब्रह्ममयत्व आग्रहपूर्वक निरूपण करी मायामतनुं चूर्णशः खंडन करीमूके छे. "येन अश्रुतं श्रुतं भवति अविज्ञातं विज्ञातं भवति, एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं भवति' (जेवडे अश्रुत श्रुत थईजाय छे, अविज्ञात विज्ञात थईजाय छे, एक विज्ञानवडे सर्वविज्ञान थाय छे, प्रभृतिदृष्टांतप्रतिज्ञा, मायाकारणवादनिरासपूर्वक ब्रह्मकारणवादनुंज समर्थन करे छे. एकज ब्रह्म रमणार्थ अनेकस्वरूप धारण करे छे. ब्रह्मविषे जे भेदबुद्धि थाय छे ते अविद्याकार्य छे, भेद ब्रह्मेच्छाकृत छे, ब्रह्मरूप छे परंतु भेदज्ञान अविद्याकृत कल्पित छे एम जे शुद्धाद्वैत अंगीकार करे छे तेज "इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" (ब्रह्म अज्ञानवडे अनेकरूपे जणाय छे) श्रुतिनुं स्पष्ट तात्पर्य छे.

संहिता, ब्राह्मण, अने उपनिषत् सर्वनी एकवाक्यता ब्रह्म–कारणत्वपर छे एम दिग्दर्शन थयुं. श्रीमद्भगवद्गीतानुं पण तेवुंज तात्पर्य छे. "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" (हुं सर्वजगत्नो प्रभव छुं अने प्रलय छुं) एम साक्षात् श्रीकृष्णचंद्र आज्ञा करे छे. "भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः' (प्राणिमात्रना पृथग्विधभाव माराथकीज थाय छे, एम स्पष्ट सर्वकारणता आप श्रीमुखे प्रतिपादन करे छे "मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्," "अहं बीजप्रदः पिता" (महत् ब्रह्म मारी योनि छे, ते योनिविषे हूं गर्भाधान करुं छुं, हुं बीजप्रद पिता छुं) प्रभृति श्लोकमां पण एज आज्ञा छे, "असत्यं अप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्" (आसुरीलोक जगत्ने असत्, अप्रतिष्ठ, अने अनीश्वर कहे छे) श्लोकमां असत् जगत् माननारनी आसुरीमां गणना छे

जगत् मायिक होय तो "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः (सर्व वासुदेव ज छे एवुं माननार महात्मा सुदुर्लभ छे, ब्रह्म अर्पण छे, ब्रह्म हवि छे, ब्रह्म अग्नि छे, होतृ ब्रह्म छे, गंतव्य ब्रह्म छे) इत्यादि श्रीमुखवाक्योपदेशज निरर्थक थईजाय. मन्वादिस्मृतिमां पण ब्रह्म–कारणवादनोज उपदेश छे, कोई पण स्थळे मायाकारणवादनुं सूचनमात्र पण नथी.

वेद अने गीतामां संशय थाय तो तेनुं निराकरण व्याससूत्रथी करवानो शिष्टाचार छे. व्याससूत्रमां एक पण सूत्र मायाकारणवाद प्रतिपादन करतुं नथी एम अत्रत्य अने पाश्चात्य विचारकनो उद्घोष अत्यंत सत्य छे. सूत्रकार ब्रह्मजिज्ञासानी प्रतिज्ञा करी ब्रह्मनुं लक्षण आपे छे के "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्" शास्त्रयोनित्व हेतुयेकरीने जेमांथी आ प्रत्यक्ष जगत्नां जन्मादि थाय छे ते ब्रह्म. आ लक्षण मायाशवल–ईश्वरनुं, जेम मायावादी कल्पना करे छे तेम, मानतां ब्रह्मजिज्ञासानो उपक्रमज व्यर्थ थईजाय छे, तत्वसूत्रशास्त्रप्रवृत्तिज मिथ्या थईजाय छे. ज्ञेय निर्गुण ब्रह्म तो अलक्ष्य छे माटे मायाशवळ उपास्य, सगुण, ब्रह्मनुं लक्षण आपवामां आवे छे एवा अभिप्रायनुं एक पण सूत्र सूत्रकारे योज्यु नहि अने निर्गुणज ब्रह्मनुं लक्षण आपीरह्या पछी तरतज "तत्तु समन्वयात्" (तेज निर्गुण ब्रह्म जगत्कारण छे कारण के जगत्मां ब्रह्मनो सम्यक् अन्वय छे) सूत्र योजी ब्रह्मनेज जगत्नुं समवायिकारण कहे छे. ब्रह्म गौण कारण थतुं हशे एवीशंका दूरकरवा सूत्रकार "गौणश्चेत् न आत्मशब्दात्," "हेयत्वावचनाच्च," "तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्" एम सूत्र योजे छे. ब्रह्म जगत्नुं गौण कारण नथी, मुख्य कारण छे कारण के "तत् आत्मानं स्वयं अकुरुत" श्रुतिमां स्पष्ट आत्मा शब्द छे. गौणकारण होय तो तेनो त्याग करवानो उपदेश करवो जोइए पण कोइपण स्थळे जगत्कर्तृब्रह्मनो त्यागकरवानुं वचन नथी एटलुंज नहि पण जगत्कर्तृब्रह्ममां जेनी निष्ठा होय छे तेनो मोक्ष थाय छे एवो उपदेश छे माटे ब्रह्म गौणकारण नथी पण मुख्यज कारण छे एम सूत्रकारनी स्पष्ट आज्ञा छे. सदंश अने चिदंश कारण छे एटलुंज नहि पण आनंदमय पण जगत्कारण छे ए उपदेश करवा "आनन्दमयः अभ्यासात्" (आनंदमय जगत्कारण छे कारण के वारंवार आनंदमयनुं श्रुतिविषे कीर्तन छे) सूत्र योजे छे. मयट् प्रत्यय विकारवाची छे अने आनंदमय जगत्कारण थाय तो ब्रह्ममां विक्रिया थाय ए शंकानिरासकरवा "विकारशब्दात् नेति चेत् न प्राचुर्यात्" सूत्र योजी आज्ञा करे छे के आनंदमयमां मयट् प्रत्यय विकारवाची नथी ए तो प्राचुर्यवाचक छे एटले आनंदप्रचुर अविकृतब्रह्म जगत्कारण छे एम निष्प्रत्यूह

सिद्ध थाय छे. "तद्धेतुव्यपदेशाच्च" सूत्रमां स्पष्ट आनंदमयनुं जगत्कारणत्व सिद्ध कर्युं छे. सच्चिदानंद ब्रह्मज जगत्कारण छे एम निःसंदिग्ध प्रतिपादन करी "कामाच्च नानुमानापेक्षा" सूत्रथी प्रकृति, परमाणु, प्रभृति अभिध्यानकरी शके नहि माटे प्रकृतिआदि जगत्कारण नज थईशके एम तत्त्वसूत्रकार उपदेश करे छे "आत्मकृतेः परिणामात्" सूत्रमां आत्मकृति अने परिणाम सूत्रकारे प्रतिपादन कर्युं छे. विवर्तवाद इष्ट होत तो एवो स्पष्ट परिणामशब्द सूत्रकार योजत नहि. "योनिश्च हि गीयते" सूत्रमां शाक्तवाद निरासपूर्वक ब्रह्मकारणवादने विजयपद आप्युं छे. "आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि" तत्त्वसूत्रमां आत्माविषे सर्व वैचित्र्य छे एम उपदेश कर्यो छे. तदनन्यत्वअधिकरणमां जगत्ना मिथ्यात्वनिरास-पूर्वक ब्रह्म–जगत्नो अभेद सिद्ध कर्यो छे "सर्वोपेता च तद्दर्शनात्," "सर्वध-र्मोपपत्तेश्च" सूत्रमां स्पष्ट ब्रह्मनुं सर्वधर्माश्रयत्व स्वीकार्युं छे. "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्" सूत्रमां जगत् स्वप्नवत् नथी कारण के जगत् अने स्वप्नादिमां वैध-र्म्य छे एम निष्प्रत्यूह आज्ञा सूत्रकार करे छे विवर्तवादी सूत्रकार होत तो एवुं सूत्र योजतज नहि. "मायामात्रं तु कार्त्स्न्येन" सूत्रमां तो मायाशब्द छे परंतु ते सूत्रनी टीकाकरतां विवर्तवादी स्वतः ज आज्ञा करे छे के ए सूत्र स्वाप्निक-सृष्टि विषयक छे, जगद्विषयक नथी. एटले जगत् मायामात्र नथी एम तो विवर्त वादीटीकाकारने पण अर्थात् अंगीकार करवुं ज पडशे. ब्रह्म अत्यंत निर्धर्मक छे माटे ते जगत्कारण न थाय एशंकानुं निराकरण "प्रकृतैतावत्त्वम् प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः" सूत्रथी करी प्राकृतगुणनोज ब्रह्मविषे निषेध छे अने तेथीज जेवाक्यमां धर्मनो निषेध करे छे तेजवाक्यमां ब्रह्मविषे धर्मनो उपदेश श्रुति करे छे एम सूत्रकार प्रतिपादन करे छे. सर्वधर्मविशिष्ट ब्रह्म मानतां द्वैतापत्ति प्राप्त थईजाय ए शंकानुं निवारणकरवा "प्रकाशाश्रयवत् वा तेजस्त्वात्" सूत्र योजी सूर्यप्रकाशवत् धर्मधर्मीनी अनन्यतानुं, अभिन्नतानुं, सूत्रकार रमणीय मंडन करे छे कोईपण अंशे श्रुतिने, श्रीमद्भगवद्गीताने, अने तत्त्वसूत्रने, विवर्तवाद संमत नथी एम निःसंदिग्ध सिद्ध थयुं.

श्रीमद्भागवतरूप चतुर्थप्रस्थाननी पण एकवाक्यता ब्रह्मकारणवादमांज थाय छे विष्णुपुराणादि पण तेज सर्वोत्कृष्टसिद्धांतनुं समर्थन करे छे. श्रीमत्समाधि-भाषाकार मंगलाचरणमांज "जन्माद्यस्य यतः अन्वयात् इतरतः च" एम आज्ञा करी (जे ब्रह्म आजगत्नुं समवायि अने निमित्त कारण थई आ प्रत्यक्ष जगत्नुं जननादि थाय छे) जगत्कर्तृ सत्य परब्रह्मनुं ध्यान करे छे, प्रीति करे छे. ब्रह्म-स्तुति वेदस्तुतिप्रभृति सर्वस्थले ब्रह्मकारणवाद श्रीमद्भागवतसंहितामां स्पष्ट

छे. "त्वयि अग्र आसीत्" श्लोकमां (मृतिकाविषे आरंभमां घट छे तेमज आरंभमां आ जगव् आपविषे छे, मध्यावस्थामां घट मृतिकाविषे छे तेमज मध्यावस्थामां आ जगव् आपविषे छे, अंतावस्थामां घट मृत्तिकाविषे छे तेमज अंतावस्थामां आ जगव् आत्मतंत्र आपविषे छे, घटनुं आदि, मध्य अने अंत जेम मृत्स्नाज छे तेम आजगवनुं आदि, मध्य, अवसान, सर्व आपज छो, परथी पण पर आप छो) स्पष्ट शुद्धाद्वैतब्रह्मवादनुंज कथन छे"यथा हिरण्यं बहुधा" अने "यथा सुवर्णं सुकृतं" आदिश्लोकमां आजप्रकारे अविकृतपरिणामवादनो निःसंदिग्ध उपदेश छे. "क्रीडार्थम् आत्मनः इदं त्रिजगत्कृतं ते" (आपे क्रीडार्थे आत्मामांथी आ जगत्त्रय कर्युं) प्रभृतिश्लोकमां पण एमज आज्ञा छे. "विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता"इत्यादिश्लोकमां ब्रह्मज विश्वकर्ता अने भुवनरक्षक छे एम उपदेश छे. "कर्ता कारयिता हरिः" (कर्ता कारयिता हरि छे) प्रभृति वाक्यमां पण एज सिद्धांतनुं परिपोषण छे. "भूतानि विष्णुःभुवनानि विष्णुः" पण एजप्रकारे सर्वनी विष्णुमयता समर्थन करे छे. "क्रीडाभांडम् इदं विश्वम्" इत्यादि वचनोमां आजगवने भगवाननुं क्रीडास्थल वर्णन कर्युं छे. "तत् एतत् अक्षयं नित्यं जगत् मुनिवर अखिलम् आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत्" श्लोकमां विष्णुपुराणकारे आजगवने नित्य अने अक्षय वर्णन कर्युं छे. "आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः" एश्लोकमां आविर्भावतिरोभावने ब्रह्मनी शक्ति कही छे. उत्पत्तिशब्दनो धात्वर्थ उद्गम थाय छे अने नाश शब्दनो धात्वर्थ अदर्शन–तिरोभाव थाय छे एटले नित्यजगवना आविर्भावतिरोभाव रमणेच्छाथी थाय एज परमसिद्धांत छे. विशेष प्रमाणाकांक्षीए महाभारत, रामायण, पंचरात्रप्रभृतिमांथी पण यथायोग्य प्रमाणो योजीलेवां. महाभारतविषे भारतवर्पायवादमात्रनां अभिधान स्पष्ट छे परंतु तेमां विवर्तवाद, मायाकारणवाद, भ्रमवाद एवा नामनो कोई पण वाद दृष्टिगोचर थतो नथी ए पण विचारणीय छे.

प्रस्थानचतुष्टयमां पदे पदे अक्षरे अक्षरे अविकृतपरिणामसिद्धांतनोज निःसंदिग्धउपदेश छे एम दिग्दर्शन थयुं शंकराचार्यना भाष्यमां द्वितीयाध्यायना प्रथमपादना चतुर्दशसूत्रमां अतिसरसउपन्यास प्रत्यक्ष छे. शंकराचार्य परिणामवादनुं खंडनकरवा यत्न करे छे अने ते निष्फळथतां निःसंदिग्धभाषामां ईश्वरने मिथ्या कहीदेवानी जरुर तेआचार्यने पडीजाय छे. "ननु मृदादिदृष्टान्तप्रणयनात् परिणामवत् ब्रह्म शास्त्रस्य अभिमतम्" एम उपक्रम करीने, अविकृतपरिणामवादनुं संपूर्ण खंडन न थईशकतां "तत् एवम् अवि-

व्यात्मकोपाधिपरिच्छेदापेक्ष्यमेव ईश्वरस्य ईश्वरत्वम् सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वं च" (त्यारे हवे ईश्वरनुं ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व अविद्यात्मक उपाधिपरिच्छेदापेक्ष्य छे) ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व पारमार्थिक नथी मायिकमात्र छे एम शंकराचार्य, स्पष्टभाषामां कहीदे छे. निष्पक्षपाती वाचकवर्गनी ध्यानमां हशेज के कारणप्रतिपादक श्रुतिसूत्रनी टीकामां सर्वत्र विवर्तवादीटीकाकारने "अविद्यात्मकोपाधिपरिच्छेद" शब्द पोताना घरनोज अधिक वधारवो पडे छे.

मात्र शांकरभाष्यमांज शुद्धाद्वैतसिद्धांतनो उपन्यास छे एटलुंज नहि पण सांख्यशास्त्रमां तत्त्वकौमुदीप्रभृतिग्रंथमां पण अनुवाद स्पष्ट छे. सांख्यकारिका नंबर ९ अने ५६नी तत्त्वकौमुदीमां "एष आरंभः न ब्रह्मोपादानः चितिशक्तेः अपरिणामात्' (आस्त्रर्गनुं उपादानकारण ब्रह्म नथी केमके चैतन्यशक्तिनुं परिणाम थाय नहि) अविकृतपरिणामवादपर सांख्यदृष्टिथी आक्षेप पण करेलो छे

न्यायसूत्रना चतुर्थाध्यायना प्रथमाह्निकमां एकोनविंशसूत्रनी तात्पर्यटीकामां लखे छे के"मा भूदयं नामरूपप्रपंचः शून्यतोपादानः अपि तु ब्रह्मोपादानो भविष्यति। ब्रह्मैव प्रपंचरूपेण परिणमते मृत्तिकेव घटशरावोदंचनादिभावेन। न च एवं नित्यत्वव्याघातः परिणामेऽपि तत्त्वानपायात् तल्लक्षणत्वाच्च नित्यतायाः। यदाह यस्मिन् तत्त्वं न विहन्यते तदपि नित्यम् इति एकं दर्शनम्' एमप्रमाणे अविकृतपरिणामदर्शनने उपन्यासमां प्रधानपद आप्या पछी मायावादनुं स्वरूप निरूपण करे छे के "अपरं च ब्रह्मैव अनाद्यविद्योपधानभेदात् नामरूपप्रपंचभेदेन विवर्तते मुखम् इव एकम् अनेकमणिकृपाणादर्शभेदान्नैकविधप्रतिबिंबभेदेनेति तत् एतत् दर्शनद्वयम् अनेन सूचितम्" विश्वनाथपंचानन पण वृत्तिमां एजअभिप्रायनो सूक्ष्म लेख करे छे. तात्पर्य टीकाकारे तो पछीना सूत्रमां न्यायदृष्टिबिन्दुथी अविकृतपरिणाम अने विवर्तवादना खंडननी युक्तिओ पण दर्शावी छे, एटले शंकराचार्यना समयथी प्रारंभीने अखंडभूमंडलाचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाधीशना प्राकट्यसमयपर्यंतना अवांतरसमयमां पण प्राचीनतम निगमप्रतिपाद्य अविकृतपरिणामसिद्धांत अविज्ञात हतो नहि.

१७ आविर्भावतिरोभाववाद—नित्यधर्मिसिद्धि.

मायावादमां अध्यारोप अपवादनो आश्रय करेलो छे ब्रह्मवादमां आविर्भावतिरोभावरूप भगवच्छक्तिथी सर्व सिद्धथाय छे अविकृत निर्गुण ब्रह्म आविर्भाव तिरोभाववडे अक्षर, जीव, जगत सर्वरूपे लीला करे छे.

ब्रह्मवादमां आविर्भावतिरोभाववडे सर्व सामंजस्य छे ए आविर्भावतिरोभाव उभये निर्गुणब्रह्मनीज शक्ति छे. "आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः" तेवो शक्ति न मानतां बीजादिमांथी देहादि थाय नहि. आविर्भावरूपधर्मथीज, घटादिरूपवडे आविर्भावरूप धर्म सिद्धथतां, सर्वकार्य सिद्ध थाय माटे आविर्भावरूप धर्मज कारण मानवुं उपपन्न छे. आविर्भावतिरोभावरूप भगवच्छक्ति स्वीकारतां तेउभयनो नित्यत्वअनित्यत्वनो प्रश्न पण रहतो नथी. शक्तिस्वीकारथी सर्वअनुपपत्तिनो परिहार थाय छे. सांख्यवादमां पण आविर्भावतिरोभाव तो मान्य छे तथापि ब्रह्मवादमां तो सर्व हरिरूप छे एटले अद्वैतश्रुति ब्रह्मवादनो उत्कर्ष सिद्ध करे छे अध्यारोप करी अपवाद करवो, पंकमां पतन करीने पुनः प्रक्षालन करवुं, तेकरतां पंकमां पडीएज नहि तो केवु सरस? भगवद्वाक्यनो आश्रय करीदेतां सर्व समाधान सहज थईशके छे.

आविर्भावतिरोभाववादपर नैयायिकोनो आक्षेप अतिशय छे कारण तेओ उत्पत्तिवादी छे. प्रथम घट नहतो एवो घट उत्पन्न थयो एम तेमनुं मानवुं छे. उत्पत्तिपक्षमां असद् एवुं कार्य उत्पन्न थाय छे ए पण युक्तिसह नथी ज, सद् होय तोज व्यापारवडे तेनी अभिव्यक्ति थाय असद् होय तो शिल्पिसहस्रथी पण सद् थाय नहि, उत्पत्तिमां आणीशकाय नहि, उत्पत्ति मानतां पण उत्पत्तिनामनो कोईक धर्म मानवो पडे अने ते धर्म कोई धर्मीनो आश्रयकरीनेज रहे. पाछो ते धर्मी बीजाधर्मीनो आश्रय करिने रहे एम उत्तरोत्तर कल्पना करतां धर्मीनी पुनः उत्पत्ति, तेनी पुनः उत्पत्ति, एम उत्पत्तिनी उत्पत्तियो कल्पतां अनवस्थानो प्रसंग आवे. कालसंबंध मानतां, ते पण धर्मज एटले तेमर्वनो आश्रय कोई धर्मीज मानवो पडे अने ते पूर्वसिद्ध पण होवो जोइए. "घटो भवति" एम कर्तरिप्रयोग पण उत्पत्तिवादमां संभवे नहि. "भू" धातुनो अर्थ "सत्ता" (अस्तित्व) थाय छे एटले भूधातुना अर्थनीज प्रतीति, उत्पत्तिवाद मानतां थवानी नहि. घट उत्पन्न छे घट नष्ट छे इत्यादि व्यवहार पण असंगत थईजाय, माटे एक सनातनधर्मी बळात्कारे पण नैयायिकने अंगीकार करवोज पडवानो, एवो सनातनधर्मी वस्तुतः भगवान्ज होइशके, अन्य नहि, अद्वैतश्रुतिथी अने सर्वश्रुतिथी धर्मीनुं भगवत्त्व अंगीकार करवुं एटले धर्मनुं पण भगवत्त्व तेजन्यायथी सहज सिद्ध थईशकशे. 'आविर्भावतिरोभाव–शक्ति मानतां नैयायिकोने जे "अभावनी" कल्पना करवीपडे छे ते पण हवे करवीपडवानी नहि. तेवी कल्पनामां प्रमाण तो कांई हतुंज नहि. कारणावस्था ते प्रागभाव, कारणावस्थाथी ते कांई पृथक् नथी; अभावरूप पृथक् भिन्न कारण

कल्पना करवामां प्रमाण कांई नथी. आगळ आविर्भावज्ञानवडे प्रागभावनो अनुभव थईशके छे, अन्यथा अत्यंताभाव थईजाय माटे प्रागभावने कारणमानवानी जरूर नथी. ते कांई व्यापार पण करतुं नथी. कार्यवडे, माटे, प्रागभावनी निवृत्ति थाय छे तिरोभावशक्तिथी अतिरिक्त ध्वंस मानवो पण अशक्य छे. रूपांतर जोतां पूर्वरूपनो तिरोभाव प्रतीत थाय छे अने ध्वंस थयो एम माने छे पदार्थना तिरोभावने अत्यंताभाव माने छे अने तेने नित्य माने छे, माटे अत्यंताभावने नित्य मानवामां जे जे युक्तिओ तेओने आग्रहथी करवी पडे छे ते भगवाननी शक्तिरूपतिरोभावने मानवामां आग्रहवगर अनुकूल थाय छे भगवाननी मूलेच्छाधीज घटमां पटनो तिरोभाव छे अने पटमां घटनो तिरोभाव छे त्यां अन्योन्याभाव मानवानी कल्पनाकरवानी कांई पण जरूर नथी. एवीरीते प्रागभावादिकनी कल्पना नहि करतां आविर्भावतिरोभाववडेज समीचीन व्यवस्था थईशके छे.

१७ परमतथकी शुद्धाद्वैतसिद्धांतनुं वैलक्षण्य.

(क) शांकरमतथकी वैलक्षण्य.

ब्रह्मवादना मुख्यमुख्यविषयनुं दिग्दर्शन थयुं, हवे परमतथी ब्रह्मवादनुं वैलक्षण्य निर्देशकरतां प्रथम मायावाद अने ब्रह्मवाद उभयमां शुं तारतम्य छे? ते जोइए. उभये अद्वैतवादी छे, अद्वैतसिद्धांतनुं संग्रहणकरीने, प्रमाण, प्रमेय, साधन, फळनी योजना करे छे. मायावादमां प्रमाण, प्रमेय, साधन, फळ सर्व व्यावहारिक छे, "पशुसमान" छे, परमार्थतः प्रमाणादि कांईज नथी, मात्र अवशिष्ट केवळ ब्रह्म छे, ब्रह्मवादमां पारमार्थिक, व्यावहारिक, भेद कल्पीने व्यवस्था करवामां आवती नथी परंतु एकज अद्वितीय, ब्रह्म स्वेच्छाधीज प्रमाण, प्रमेय, साधन, फल सर्व थइ अनेकरूपे विविध विचित्र लीला करे छे. मायावाद व्यवहारावस्थामात्रमां प्रमाण मानी प्रत्यक्षादि–षट्प्रमाणनो अंगीकार करे छे, ब्रह्मवादमां स्वतःप्रमाण नित्यशब्दज प्रमाण छे, नित्यशब्दने अनुकूल प्रत्यक्षादि होय तो तेने प्रमाण मानवामां हानि नथी पण आटलांज प्रमाण एम संख्या बांधवानी ब्रह्मवादीने आवश्यकता रहेती नथी, प्रत्यक्षादिप्रमाण पण वस्तुतः जीवना सत्त्वगुणोद्रेकपरज आधार राखे छे, सत्त्वगुणनो समुदय थयो न होय त्यांसुधी राजसतामसाविर्भावमां तो प्रमाणमां पण भ्रमबुद्धि अने अप्रमाणमां प्रमाणबुद्धि पण थाय छे, अक्षर, पद, वाक्य सर्व ब्रह्मज छे एवुं पूर्णज्ञान थयापछी तो सर्व प्रमाणज छे तथापि ज्यांसुधी तेवुं अखंडशुद्धाद्वैतज्ञान आविर्भाव पाम्युं

नथी सांसुधी स्वतःप्रमाण सांगवेद, श्रीकृष्णवाक्य, मीमांसाद्वय, अने श्रीसमाधिभाषा ब्रह्मवादमां प्रमाण मानवामां आवे छे उभयेपक्ष शब्दप्रमाणने उच्चस्थान आपे छे. वेद ब्रह्मनुं निःश्वसित छे एम स्वीकारे छे तथापि मायावादमां ब्रह्ममांथी वेद निःश्वसित थाय छे एम पण मात्र मायावडेज भासे छे. ब्रह्मवादमां तो साक्षात्ब्रह्मनुं निःश्वसितज छे, (मात्र भासे छे एम नहि.) मायावादमां वेदादि जगदंतःपाति होवाथी परमार्थतः मिथ्या छे, ब्रह्मवादमां वेद ब्रह्मरूप, ब्रह्मानन्य ब्रह्माभिन्न छे "वेदो नारायणः साक्षात्" "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः," "सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति" इत्यादिवाक्यनी ब्रह्मवादमां संगति यथायोग्य थाय छे एम सहजप्रतीति थयाविना रहेशे नहि. उभयपक्षमां प्रमेय ब्रह्मज छे; परंतु मायावादमां ब्रह्म परमार्थतः अत्यंत निराकार, निर्गुण, निर्धर्मक निर्विशेष छे, ब्रह्मवादमां सर्वधर्मविशिष्ट छे, ब्रह्मवादमां धर्म मात्र मायावडे भासता नथी पण ब्रह्माभिन्नज छे, सूर्यनो प्रकाश मायावडे भासतो नथी पण "स्वाभाविक" ज छे ब्रह्म, ब्रह्मना धर्म सर्व ब्रह्मज, पृथक् नहि, मिथ्यापण नहि. धर्मधर्मी सर्व निर्गुण, अविकृत, सच्चिदानंद, ब्रह्मज, ब्रह्माभिन्न, एम ब्रह्मवाद आज्ञा करे छे. "आनंदमय" पण ब्रह्म नहि, सगुण छे, आनंदमयनी पेलेपार ब्रह्म तो छे एम मायावाद कल्पे छे, ब्रह्म तेज आनंदमय एज पराकाष्ठा एम ब्रह्मवाद उपदेश करे छे "आनंदमय" करतां व्यतिरिक्त पेलेपार कोई ब्रह्म नथी पण एज ब्रह्म एम "यः सर्वत्र" आदिश्रुति आज्ञा करे छे ब्रह्म तो निर्गुण, आनंदमय तो सगुण एम मायावादी माने छे. ब्रह्म, आनंदमय, मायाशबलईश्वर एवा भेद ब्रह्मवादमां नथी, स्वप्नेपण स्वीकारता नथी, ब्रह्मविद्या तो पराविद्या ईश्वरविद्या तो अपराविद्या एवो "विद्याभेद" पण मायावादमांज, ब्रह्मवादमां नहि. सगुण–निर्गुण भेदकल्पना सांख्यानुसारी मायावादी करे छे. ब्रह्मवादमां विरुद्धसर्वधर्माश्रयथी सर्व समीचीन छे. सर्व ब्रह्मज छे. सगुण तो उपास्य, निर्गुण तो ज्ञेय, सगुणमां तो द्वैतनी कल्पना छे, निर्गुणमां तो अद्वैत छे एवो सर्वभ्रम मायावाद संग्रहण करे छे, ब्रह्मवादमां तो जे छे ते सर्व ब्रह्मज, ब्रह्मरूप, ब्रह्मानन्य, ब्रह्माभिन्न छे, ब्रह्मव्यतिरिक्त, सगुणईश्वर, सगुणउपास्य, अपराविद्या एवुं कांई छे पण नहि अने मायावडे भासतुए नथी. ब्रह्मवादमां तो सर्व निर्गुण निर्गुणज छे. सांख्यानुसारी सगुणादिकल्पना स्मार्त करे छे, वैदिक भागवतसिद्धांतोओ करता नथी मायावादमां ब्रह्म परमार्थतः कर्तृ नथी पण मायावडे तेवुं मात्र भासे छे ब्रह्मवादमां ब्रह्मज स्वतः अभिन्ननिमित्तोपादान कारण छे, मायावादमां ब्रह्मनुं जगद्साथे अनन्यत्व नथी, ब्रह्म सत् छे जगद् परमार्थतः मिथ्या छे एटले सत्–मिथ्यानो अभेदज संभवे नहि. "अनन्य" शब्दनो

अर्थज फेरवीनाखी मिथ्यात्व तेवादीने करवोपडे छे. ब्रह्मवादमां सर्वत्र जड, जीवसाथे ब्रह्मनो अभेद छे, अनन्यता छे, वैषम्यनैर्घृण्यदोषनो परिहार मायानो समाश्रय करी मायावाद करे छे, ब्रह्मवादमां सर्वआत्मसृष्टि लीलार्थ छे' क्रीडार्थ छे, एवुं सरल समाधान छे. मायावादमां ब्रह्म आध्यात्मिक छे, मायाशबल-ईश्वर सगुण मायावडे आधिदैविक भासे एटलेज, ब्रह्मवादमां पूर्ण प्रकटानन्द परब्रह्मस्वरूप आधिदैविक छे, परतःपर छे, अक्षरातीत छे, उत्तमोत्तम छे "अतो ज्यायाँश्चपुरुषः" "यस्मात् क्षरमतीतोहं अक्षरात् अपि च उत्तमः अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः," अक्षरब्रह्मस्वरूप आध्यात्मिक छे तेमां सावधिआनंदनो आविर्भाव छे, आधिदैविकमां सदासर्वदा निःसीम परमानंदनो पूर्ण अखंड आविष्कार छे. मायावादमां सत्चित् "शुष्कानंद" जीव नथी पण ब्रह्मज अविद्यावडे जीवरूपे देखाय छे, अविद्यावडे ब्रह्म जीव देखाय छे एटले जीवस्वरूप अविद्याकार्य छे अर्थात् अनित्य छे एम तेवादमां बलात्कारे पण अंगीकार करवुंज पडशे. ब्रह्मवादमां "पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो हि अस्य बंधविपर्ययौ" तिरोहितानंद ब्रह्मस्वरूप तेज जीवस्वरूप एटले जीव नित्य छे, अविद्यावडे कोई जीवनो आविर्भाव ब्रह्मवादमां थतो नथी पण भगवदिच्छाथी तिरोहितानन्द थईने व्युच्चरण अग्निविस्फुलिंगवत् थयापछी जीवनो "बंध" अविद्यावडे थाय छे अने तेथीज तेबंधनी विद्याथी निवृत्ति थाय छे, विद्यावडे कांई जीवनीज निवृत्ति, (जीवस्वरूपप्रणाश) थाय नहि, पण जीवनो संसार निवारण थतां. आनंदनो आविर्भाव थाय छे, जीवने परमपुरुषार्थसंपत्ति थाय छे. "संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्" मायावादमां जीव चैतन्य छे, ज्ञान छे, ज्ञातृ नथी, ज्ञाता मानतामां तेने त्यां द्वैत आवीजाय छे. ब्रह्मवादमां जीव ज्ञाता छे, धर्मी छे, प्रकाश–चैतन्य–ज्ञान जीवनो धर्म छे. धर्मी मानवाथी ब्रह्मवादमां द्वैत आवीजतुं नथी कारण सूत्रकारेज धर्मधर्मीनी अनन्यता अंगीकार करेली छे. मायावादमां जीव विभुपरिमाण छे, पण बुद्धिसंबंधवडे ते अणु भासे छे. ब्रह्मवादमां ब्रह्म जीवस्वरूप धारणकरी क्रीडा करे छे त्यारे विभुपरिमाण पण तिरोहितकरी अणुपरिमाण थाय छे, पुनः आनंदाविष्कारथतां विभु, व्यापक, अपरिच्छिन्न थाय छे. मायावादमां जीव कर्तृ–भोक्तृ कांई नथी, मात्र बुद्धिसंबंधथी तेवुं भासमान थाय छे, ब्रह्मवादमां ब्रह्म कर्तृ–भोक्तृ छे एटले जीव पण कर्तृ–भोक्तृ भगवदिच्छाथी थाय छे. मायावादमां जीव अंश नथी, दास नथी पण रूपरहितब्रह्मप्रतिबिंब छे आभास छे, अंशवत् छे, ब्रह्मवादमां विरुद्धसर्वधर्माश्रयथी जीव ब्रह्मनो अंश

छे, गर्भदास छे; मायावादमां एकज ब्रह्म अनेकजीववद् अविद्यावडे भासे छे. ब्रह्मवादमां एकज ब्रह्म स्वेच्छाथी अनेक जीवस्वरूप धारणकरी विचित्र विहरण करे छे, मायावादमां भागत्यागलक्षणाना समाश्रयवडे जीवब्रह्मनो अभेद साधवानो कल्पना छे, ब्रह्मवादमां अंशांशिभावथी अभेद छे, अनन्यता छे. मायावादमां जीवज परमार्थतः अवस्तु छे, ब्रह्म वस्तु छे, एटले वस्तु–अवस्तुनो अभेदज संभवतो नथी, अभेद यथातथा कल्पे छे ते पण मात्र जीवनो, जगत्-नो नहि, एटले वस्तुतः मायावाद द्वैतवादज छे तथापि एकदेशी–खंडाद्वैतवाद पण क्वचित् तेने कहेवामां आवे छे. मायावादमां परमार्थतः जगत् मिथ्या मान्युं छे अविद्यावडे जगत् भासे छे, ब्रह्मवादमां जगत् ब्रह्मनुं आधिभौतिक स्वरूप छे, ब्रह्मरूप छे, ब्रह्मानन्य छे. ब्रह्माभिन्न छे, ब्रह्मवादमां द्वैत कांई अविद्यानुं कार्य नथी पण "द्वैतज्ञान" अविद्यानुं कार्य छे माटे द्वैतज्ञान हेय छे. मायावादमां जगत्संसारनो एवो प्रत्यक्षविवेक पण अज्ञात छे, ब्रह्मवादमां जग-त्संसार उभये पृथक् छे, जगत् सत् छे, भगवत्कार्य छे, भगवद्रूप छे, संसार अविद्याकार्य छे, असत् छे, ज्ञानवडे संसारनाश थाय छे कांई जगत्नो नाश थतो नथी. "तदेतत् अक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलं आविर्भावतिरो-भावजन्मनाशविकल्पवत्" एम ब्रह्मवादनो सिद्धांत छे. मायावादमां ब्रह्मनुं विवर्त मान्य छे, ब्रह्मवादमां ब्रह्मनुं अविकृतपरिणाम स्वीकार्य छे, मायावादमां अध्यारोपापवाद छे, ब्रह्मवादमां आविर्भावतिरोभाववडे सर्व सामंज-स्य छे, मायावादमां अनिर्वचनीयख्याति छे, ब्रह्मवादमां पूर्णज्ञानियो अने पूर्ण योगियोने अख्याति छे, बीजाओने अन्यख्याति छे, मायावादमां कर्म–भक्ति–ज्ञान एम साधनक्रम छे, ब्रह्मवादमां कर्म–ज्ञान–भक्ति एम क्रम छे. उपासना अने भक्तिनुं वैलक्षण्य मायावादियोने अत्यंत अज्ञात छे. उपासना कहो, भक्ति कहो सर्व तेमतमां सगुणईश्वरसंबंधी छे, अपर छे. ब्रह्मवादमां सर्वत्र अभेद छे, अपर पर नथी; जेस्वरूपमां आनंद पूर्णप्रकट नथी ते ब्रह्मस्वरूप तेमंस्थामां विभूति कहेवाय छे. भगवान्नां अनंत विभूतिरूप छे, तेमां जेरूपवडे जेकार्य करवानी ब्रह्मनी ईच्छा होय छे तेरूपवडे, सामर्थ्य छे तो पण, तद्व्यतिरिक्तकार्य ब्रह्म करतुंज नथी, कारण तेवीज तेनी लीला छे, आप्रमाणे जेस्वरूपमां पूर्ण आनंदनो आविर्भाव नथी ते स्वरूप विभूति कहेवाय छे अने तेनी पूजा उपासना कहेवाय छे. पूर्णप्रकटानंदस्वरूपनी एवी भक्ति कहेवाय छे एटले ब्रह्मवादमां कर्म–उपासना–ज्ञान–भक्ति एवो क्रम छे. कर्म–उपासना–ज्ञान सर्व भक्तिनां अंग छे. ब्रह्मनुं माहात्म्यज्ञानकरावी सुदृढसर्वतोऽधिकस्नेह–भक्ति प्रकटकराववामां सर्वनो उपयोग छे, परमफळ भक्तिथीज छे. मायावादमां कर्म–भक्ति–ज्ञान सर्व

अविद्यानुं कार्य छे कारण तेमर्व जगदंतःपाती छे, ब्रह्मवादमां कर्म–ज्ञान–भक्ति सर्व ब्रह्मरूपज छे, अविद्यावडे जीव संसारबद्ध थयो तेने मुक्तकरवाने ब्रह्मरूप-वेद, निःश्वसित प्रकटकरी तेमां परमपुरुषार्थनां ब्रह्मरूप–साधने ब्रह्मे स्वतः प्रसिद्ध कर्यां छे माटे वेदमां "तपोब्रह्म" इत्यादि श्रवण छे. तपःप्रभृति साधनने ब्रह्म कह्युं छे. ब्रह्मरूपसाधनथी ब्रह्मरूपजीव ब्रह्मरूपपरमफळनी प्राप्ति करे छे ए ब्रह्मवादनो सिद्धांत छे त्रिविधसाधनरूप ब्रह्म थई विविधफळरूप पण ब्रह्म थई, ब्रह्मज रमणमात्र करे छे, लीला करे छे, खेले छे. मायावादमां अविद्या-निवृत्तिरूप अभावात्मक मोक्ष छे, ब्रह्मवादमां आत्यंतिकदुःखनिवृत्तिपूर्वक पर-मानंदप्राप्तिरूप मोक्ष छे, एटले भावात्मक छे. मायावादमां मोक्ष स्वाश्रय छे, ब्रह्मवादमां पराश्रय छे. मायावादमां मोक्ष कैवल्य कहेवाय छे, ब्रह्मवादमां प्रवेशात्मक सायुज्य कहेवाय छे, आ सर्व मायावादना मोक्षनो अनुवाद समजवो. वस्तुतः मायावादमां मोक्षपण संभवतोज नथी, हुं बद्ध छुं एवो भ्रम जीवने अविद्यावडे थयो छे तेनुं ज्ञानवडे निराकरण ते मुक्ति एम मायावादी कहे छे पण तेम मानतां मिथ्याजगदंतःपाती वेदादिक, तत्प्रणीत–साधन–कर्म, भक्ति, ज्ञान, सर्वपण परमार्थतः मिथ्या अविद्यात्मकज एटले तेवां अविद्यात्मक मिथ्यासाधन-मांथी ज्ञाननोज असंभव छे, अविद्यामांथी विद्या केवीरीतिथी संभवे ? एटले वि-द्यावडे अविद्यानिराकरण ज संभवतुं नथी. विशेष मायावादमां परमार्थतः सर्व मिथ्याज, माया, एटले मोक्ष पण अलीकज, शशशृंगवत्, रज्जुसर्पवत्, वंध्या-पुत्रवत् उपाधिनिवारण थाय त्यारे आभास–प्रतिबिंब कांई बिंबरूप थईजतां नथी पण आभासादिनो नाशज थइजाय छे एटले मायावादमां जीव ब्रह्मरूप न थईशके पण जीवप्रणाश जीवव्युच्छेद एज मोक्ष. मायावादमां स्वरूपप्रणाशज मोक्ष एटले पुरुषार्थ न रह्यो. ब्रह्मवादमां तिरोहितानंद–जीवना आनंदनो आ-विर्भाव ते मोक्ष छे, परम पुरुषार्थ छे, ब्रह्मरूपसाधनवडे आनंदप्राकट्यरूप उत्तमो-त्तम पुरुषार्थ छे. मायावाद बादरिमतानुसारी स्मार्त लागे छे. ब्रह्मवाद सर्वज्ञ-सूत्रकारनो वैदिक--परमभागवत सिद्धांत छे. मायावादीना दृष्टिबिंदुथी ब्रह्मवादी सगुणोपासक कहेवाय अने क्रमशः तेने "पराविद्या" पण प्राप्त थाय एम मायावादी कल्पना करे छे. बीजावादीकरतां ब्रह्मवादीनी साथे मायावादी परम आदरथी वर्तन करे छे. उभयने अद्वैत सामान्य छे परंतु ब्रह्मवादना दृष्टिबिं-दुथी कोइ शुद्ध मायावादीज होय, मायावादनुज दृढ अवलंबन करी बेसतो होय तो अधमाधम गतिज तेनी थाय, परंतु नाममात्र मायावादी छतां श्रीकृष्णनी भक्ति कर्योजाय तो क्रमशः ते मिथ्या–ज्ञान भ्रम–प्रतारणानुं निकंदन थईजतां शुद्ध अखंडाद्वैत--ब्रह्मवादनो अधिकारी थईशके. ब्रह्मवादमां शुद्धाद्वैतज्ञानथीपण

भक्तिनो उत्कर्ष छे तो तेवा भक्त्येकप्राप्य–परमफळनी गंधपण मिथ्याज्ञानी भ्रांत, प्रतारक, शुद्ध–मायावादीने स्वप्नमांए न प्राप्त थाय ए वास्तविक छे.

मायावाद तथा ब्रह्मवाद उभयेपक्षने अद्वैतज ग्राह्य छे. एकपक्ष, सर्वद्वैत, माया, अविद्या, मिथ्या, व्यावहारिक' ईत्यादिशब्दोथी समजावीदेवा प्रयत्न करे छे. बीजो प्रक्ष, भगवदिच्छा, भगवत्कृपा, भगवत्क्रीडा, भगवल्लीला, भगवद्रूप इत्यादिशब्दोथी सर्वनुं सामंजस्य निरूपण करे छे. अद्वैत सिद्धकरवानी बे रीति जणाय छे सर्व परमार्थतः अलीक छे, मिथ्या छे एम सिद्ध थतां अवशिष्ट केवळ रहे तेज अद्वितीय वस्तु ए एक प्रकार छे, सर्व छे ते मिथ्या नथी पण मूळ अद्वितीय वस्तुनुंज स्वरूपांतर छे एम द्वितीय प्रकार छे. प्रथमप्रकार मायावादीनो छे द्वितीयनोआदर ब्रह्मवादीए कर्यो छे, प्रथमने "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" एम अडावतुं पडे छे, बीजाने "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" इत्यादि श्रुति साहाय्यदान करे छे. माया इच्छा सर्व ब्रह्मनीज शक्ति एम मानतां उभयेपक्षीनुं समाधान सुलभ छे तथापि माया ए ब्रह्मनी शक्ति एम श्रवण थतांज मायावादीने दुःसह दुःख थाय छे. ब्रह्म शक्तिमत् सधर्मक थईजाय तो द्वैतापत्ति तेमतमां आवाजाय एवी भीतिथी "इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" प्रभृतिस्थळोमां "ब्रह्म" नी "विचित्रशक्ति" ते "माया" एम मायाशब्दनो अर्थ करे छे तथापि पुनः "अविद्योपस्थापित" प्रभृति शब्द तेने स्वकपोलकल्पित उमेरवा पडे छे, एटले माया–अविद्यावडेज ब्रह्ममां शक्ति देखाय छे, भासे छे; ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमत्, परमार्थतः नथी एम मायावादनुं मर्म छे, प्रत्येक आस्तिक आगम परमतत्त्वने वस्तुतः परमार्थतःज सर्वज्ञ सर्वशक्तिमत्, सर्वव्यापक, सर्वकर्तृ, सर्वभोक्तृ, सर्वरक्षितृ, सर्वसंहर्तृ, सहज स्वीकारीले छे तथापि मायावादनो आसंबंधमां तो परमदुराग्रज छे एम प्रामाणिक विचारकने लाग्याविना रहतुं नथी. परमअद्वैत साधवामां असत् कहो, सदसत् कहो, अनिर्वचनीय कहो,गमे ते कहो,पण मायानुं समाश्रयण करवाथी अद्वैत सिद्ध थईशकतुं नथी. तेवा समाश्रयमांज द्वैतापत्ति आवीपडे छे. अद्वैत सिद्धकरवामां जे साधननो समाश्रयकरवामां आवे तेमां लेशपण द्वैतापत्ति आव्याविना आस्तिक–अद्वैत–सिद्धांत -स्थापनकरवामांज वैदिकनुं भूषण छे, एकविज्ञानथी सर्वविज्ञाननी वेदांतशास्त्रोक्त उत्तमोत्तम प्रतिज्ञा पण, सर्व ब्रह्मनुंज रूप होय, अनन्य होय, अभिन्न होय, तोज परिपूर्ण थाय, अने तेथोज "मृत्सुवर्ण" आदि दृष्टांत श्रुतिमां आपेलां छे. मायावादमां एअद्वितीयप्रतिज्ञानीज हानि थाय छे. एक एवा अध्यारोपापवादना दुराग्रहमां पडी वेद, तत्प्रतिपादित साधन, तत्प्रतिपादित परमपुरुषार्थ–मोक्ष ए सर्व परमार्थतः मिथ्या मानवुं तेकरतां वेद, तत्प्रणीत साधन, तदुक्त फळ सर्व भगवन्माहात्म्य

छे, ब्रह्मरूप छे ब्रह्माभिन्न छे, ब्रह्मज छे एम अंगीकार करवुं कमनीय नथी लागतुं शुं? उत्तमोत्तम वेदादिशास्त्रमां जे विचार छे ते व्यावहारिक नथी, मायिक नथी, परमार्थतः ज छे, निःश्वासवत् सहज छे, स्वाभाविक छे, तथापि तेने व्यावहारिक मानीबेसवामां शुं प्रागल्भ्य नथी लागतुं? धृष्टता नथी? अहंताममतात्मकसंसारमां परिभ्रमणकरनार–जीवोने मुक्तकरवाना ब्रह्मकृतविचारने व्यावहारिक कहेतां, पारमार्थिक नथीज एम आग्रह करतां, नास्तिक्यमां प्रवेश थईजाय छे. निगमनो अर्थ वेदयुक्तिथी न करतां तेमां न्यूनाधिक्य करी अन्यथा परिकल्पना करी आत्मापहारकरवामां शुं स्वारस्य आवतुं हशे? "अग्निमीळे पुरोहितम्" थी प्रारंभीने सांग सकलनिगम, मीमांसाद्वय, मन्वादिस्मृति, श्रीमद्भागवतादिपुराण, श्रीमहाभारत, श्रीरामायणपर्यंत समग्र मान्यशास्त्रमां, स्कंधमां, प्रकरणमां, अध्यायमां, श्लोकमां, शब्दमां अने अक्षरमां ब्रह्मसिवाय इतर शुं छे? सरस्वतीनी केवी निःसीम सर्वतोमुखता छे! आशुं सर्व अध्यारोपापवादज? नहि, नहि, भगवन्माहात्म्यज. आ श्रुति तो उपजीवक छे, आ तो उपजीव्य छे, आ तो ज्ञेयपर छे, आ तो उपास्यपर छे, आ तो अपर, आ तो पर, आ तो सगुणपर, आ तो निर्गुणपर एम अनेक कपोळकल्पित कुतर्क करी सर्ववेदनो, तदर्थनो, तत्साधननो, तत्फलनो सर्वनो सर्वविप्लव करीदईने सकळ आर्यमार्गनो उच्छेदकरवाथीज नवमात्रतारकार्य सिद्ध थाय छे. अनवगाह्यमाहात्म्य ब्रह्म छे एम ज्ञानपूर्वक तत्स्वरूपमां, रति करी, तिरोहितानंदांशनी निष्पत्ति करवी एज सिद्धांत निष्पक्षपातीने हृदयंगम थयाविना रहे नहि. विशेष, असंप्रज्ञातसमाधिमां सर्व मिथ्या छे एम अनुभव थतो नथी पण सर्व ब्रह्म छे, ब्रह्मरूप छे, ब्रह्माभिन्न छे एमज अनुभवाय छे. योगप्रभृतिशब्दनुं याथार्थ्य सायुज्य—संयोगमांज थाय छे स्वरूपप्रणाशकरवा योगस्थ प्रवृत्त थतो नथी, पण सर्व ब्रह्म छे, तद्रूप छे, एम अभेद अनुभवकरवाज ते तत्पर छे. "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" प्रभृतिश्रुतिनुं रहस्य समजी स्वरूपाविष्ट ते थाय छे. "ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप" इत्यादि भगवद्वाक्यपण ब्रह्मज्ञान पछी तद्दर्शन थई, तत्प्रवेश–सायुज्य–नो उपदेश करे छे, कैवल्यनो नहि. "नग्नः प्रविष्टा इव नामरूपे" इत्यादि पण नामरूपव्याकरणरहित प्रवेशज निरूपण करे छे. कैवल्य अने सायुज्यनो भेद मायावादी कल्पे छे, एवो भेद शास्त्रमां तो प्रसिद्ध नथी. ब्रह्मवाद आमप्रकारे मायावादथी विलक्षण छे. श्रुति, युक्ति अने अनुभूतिथी उत्कृष्टोत्कृष्ट छे. ब्रह्मवाद आधुनिक छे, श्रीमदाचार्यचरणे नवीनज-

उत्पन्न कर्यो, एम नथी. अत्यंतप्राचीनपरंपरा ब्रह्मवादनीज छे. वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतमां ते परंपरा सुविदित छे एटलुंज नहि पण मायावादी टीकाकार "तदनन्यत्वम् आरंभणशब्दादिभ्यः" एतत्त्वसूत्रनी टीकामां ब्रह्मवादना सर्वविरुद्धधर्माश्रयमुख्यसिद्धांततुं खंडनकरवा पण मथे छे अने ते परिश्रम तेनो सिद्ध न थतां तेनुं प्रत्यक्ष नास्तिक्यमां पर्यवसान पण थाय छे. बौद्धादिमततुं उत्थापन कर्यापछी तेसमयनी संस्थामां शंकराचार्य बौद्धसदृशमत उपपादन करे एमां ऐतिहासिक स्वाभाविकता छे.

(ख.) भास्करमतथकी वैलक्षण्य.

द्वैताद्वैत त्रणप्रकारनुं छे. कांईक अंशे द्वैत अने कांईक अंशे अद्वैत ते द्वैताद्वैत कहेवाय छे; तेमां त्रणप्रकारनी प्रतीति छे. शुद्धाद्वैतसिद्धांतने अनुसार एकप्रकारनुं द्वैताद्वैत छे अने ते एतन्मार्गीयग्रंथमां क्वचित् क्वचिद् उपदिष्ट पण छे. कार्यअवस्थामां द्वैत ऐच्छिक अने एवा ऐच्छिकद्वैततुं पण धर्म–धर्मीनी अनन्यताद्वारा वस्तुतः कारणावस्थामां अद्वैतज, एटले एवुंज ऐच्छिक द्वैताद्वैत शुद्धाद्वैतीय–मध्यमाधिकारीने अतीव उपयोगी छे. शुद्धाद्वैतमां सर्वअवस्थामां ब्रह्मज छे, ऐच्छिकद्वैताद्वैतमां कार्यावस्थामां ईच्छावडे द्वैत थाय छे अने ते ऐच्छिकद्वैततुं पण कारणावस्थामां पुनः अद्वैत थाय छे एटले शुद्धाद्वैतने अनुकूळ छे. अहिं उदाहरणमां वत्साहरणलीलामां "यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुः" एश्लोकमां लख्याप्रमाणे श्रीकृष्ण सर्वरूप थया छे तेमप्रमाणे ऐच्छिक द्वैताद्वैत समजवुं. परंतु भास्कराचार्यनुं द्वैताद्वैत ऐच्छिक नथी, औपाधिक छे, मायावादसदृश छे, मायाने बदले भास्कराचार्य उपाधिशब्दनो प्रयोग करी पोतानुं मत साधे छे, एटले तेमतमां द्वैत औपाधिक अने अद्वैत शांकरमतवद् पारमार्थिक, वास्तविक, जेवो संबंध शुद्धाद्वैतसाथे ऐच्छिकद्वैताद्वैतनो छे तेवो कांईक संबंध मायावादसाथे भास्कराचार्यना औपाधिकद्वैताद्वैततो छे एटले तेनी सविस्तर पृथक् विचारणा अत्र आवश्यक नथी. निंबार्कना द्वैताद्वैतमां द्वैत वास्तविक छे अने अद्वैत औपचारिक छे एटले तेनुं मत तो माध्वमतसदृश छे.

(ग) भिक्षुमतथी वैलक्षण्य.

विज्ञानभिक्षुतुं मत पण शंकराचार्यनां मतने केटलेक अंशे मळतुं छे. भिक्षुना मतमां ब्रह्म समवायि अने निमित्तकारण नथी पण अधिष्ठान कारण छे. उपादानकारण ज्यां जूदुं न रह्युं होय अने जेना आश्रयवडे उपादानकारण कार्य-

रूपे परिणमे ते अधिष्ठानकारण, जगवतुं मायारूप उपादकारणना ब्रह्मथी विभागरहित रहे छे अने ब्रह्मनो आश्रय करीने पण रहे छे माटे ब्रह्म अधिष्ठान-कारण, समवायि अने निमित्तकारण नहि. "तदात्मानं स्वयम् अकुरुत" इत्यादिश्रुतिमां ब्रह्मने जगवतुं उपादानकारण मानेलुं छे छतां तेम न मानतां ब्रह्ममां विकृति थाय एवी भीतिथी आवी कल्पना करेली छे, पण ब्रह्म विरुद्ध-सर्वधर्माश्रय छे, परिणाम छतां अविकृत छे, माटे ब्रह्मज अभिन्न–निमित्तोपादान कारण एम ब्रह्मवादनो सिद्धांत छे, माया ब्रह्ममां अविभक्त रहे अने आश्रय करीने रहे एम मानवामां भिक्षुमतमां द्वैत प्राप्त थयुं कारण के माया, ब्रह्म वे पदार्थ स्वीकार्या, "आत्मा एव इदम् अग्रे आसीत्" इत्यादि श्रुति द्वैतनो निषेध करे छे उपाधिवडे ब्रह्ममां कर्तृत्वनो उपचार छे एम मानवामां दोषविवेचन प्रथम थईगयेलुंज छे, भिक्षुमतमां जीवो नित्य, भिन्न, व्यापक अने अंश मान्या छे, ब्रह्मजीवनो अविभागरूप भेद स्वीकारीने साजात्य छतां अविभागनो प्रतियोगी ते अंश एवुं अंशनुं लक्षण, अने अविभागनो अनुयोगी ते अंशीनुं लक्षण, तेमतवाळा आपे छे, शरीर, केश, पिता, पुत्र, समूह, अंश एत्रणदृष्टांतमां तेवो अंशाशिभाव घटावे छे, अने जीवो पण ब्रह्मना एवीजरीतिथी अंशछे एम माने छे, लय-समये नित्य, सर्वावभासक विषयभासनरूप स्वलक्षणनो त्याग करीने जीव ब्रह्मथी अनन्य थाय छे, सर्गकाळमां ब्रह्ममांथी विषयभासनस्वरूप ग्रहणकरीने, पिताथी पुत्रवत्, प्रकट थाय छे माटे जीवअंश कहेवाय छे, शरीरकेशादिदृष्टांतमां केशादि शरीरनो विकार छे तो दार्ष्टांतिकमां ब्रह्मनो विकार जीव तेमतमां मानवोपडे, प्रकृतिनुं परिणाम मानतां जीव ब्रह्मनो अंश न थाय पण प्रकृतिनो अंश तेमतमां थईपडे, जीवोने नित्य, भिन्न मानवामां एकविज्ञानथी सर्वविज्ञानप्रतिज्ञानी हानि थाय, जीव व्यापक पण न होईशके "एष अणुः आत्मा" इत्यादिनो विरोध आवे, "नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे" इत्यादि ब्रह्ममां जीवनो प्रवेश निरूपण करे छे ते पण जीव व्यापक होय तो संभवे नहि, देह-जेटलो व्यापक मानवामां मध्यमपरिमाण जीवने प्राप्त थाय अने तेवा परिमाणमां दोष प्रथम बताव्यो छे, जीवनी अविभागवडे स्थिति पण संभवती नथी, "ब्रह्म एव सन्" प्रभृति श्रुति निषेध करे छे.

(घ) रामानुजमतथकी वैलक्षण्य.

श्रीरामानुजाचार्यनुं ज मत विशिष्टाद्वैत कहेवाय छे. विशिष्टनुं अने विशिष्टनुं अद्वैत ते आचार्य माने छे, अर्थात् सूक्ष्मचित्विशिष्टनुं अने स्थूलचित्विशिष्टनुं अद्वैत, अने सूक्ष्मअचित्विशिष्टनुं अने स्थूलअचित्विशिष्टनुं अद्वैत तेने

ग्राह्य छे, अविशिष्ट–अखंड–सत्चित्नुं अद्वैत जेम ब्रह्मवादमां छे तेवुं एमतमां नथी, एमतमां तो जडनो अभेद जडसाथेज अने चित्नो अभेद मात्र चित्-साथेज स्वीकार्य छे, ब्रह्मवादमां जडमां पण चिदानंदनो आविष्कार थतां जड पण अखंड ब्रह्म छे, चित्मां आनंदांशनो आविर्भाव थतां चित् पण अखंड ब्रह्म छे परंतु विशिष्टाद्वैतमां तो प्रलयअवस्थामां पण जडनो अभेद जडसाथेज अने चित्नो अभेद चित्साथेज, ब्रह्मवादमां जेम संपूर्ण अविशिष्ट अखंड अभेद छे तेवो कार्यकारणनो अभेद श्रीरामानुजनामतमां नथी, ब्रह्मवादमां सर्वअवस्थामां वस्तुतः ब्रह्मज छे, ब्रह्मरूप छे, ब्रह्माभिन्न छे, परंतु विशिष्टाद्वैतमां कारण–कार्य उभयेअवस्थामां ब्रह्मना शरीरनां जड अंश छे, अने चैतन्य पण शरीरनो पृथक् अंश छे, जड जडमां अभेद पामे अने चैतन्य चैतन्यमां अभेद पामे एटले ब्रह्मनां तेतेशरीरमां तेतेभागनो अभेद छे, पूर्ण अखंड अभेद नहि, ब्रह्मवादमां तो सर्वत्र एकरस अनन्यता छे, अखंड अद्वैत छे, प्रमाणनिर्देश करतां तेमतवाळा वेदने साक्षात् भगवन्निःश्वासज माने छे, मायावादीवत् वेदादिने परमार्थतः मिथ्या कहेवानी धृष्टता करता नथी, प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाण श्रीरामानुजाचार्य माने छे, ब्रह्मवादमां आटलांज प्रमाण एम संख्यानिर्णय नथी, वेदानुकूल सर्व प्रमाण, तदितर सर्व अप्रमाण एम ब्रह्मवादनो सिद्धांत छे, पूर्णज्ञानावस्थामां तो ब्रह्मवादमां सर्व प्रमाण छे, श्रीरामानुजना मतमां पण प्रमेय एकज छे, परंतु ते प्रमेय ब्रह्मनां चिदचित्शरीर छे, अने तेशरीरनुं परिणाम तेवादीयो माने छे, मायावादी जेम सगुण, निर्गुण कल्पना करे छे तेवो भेद एमतमां नथी, ब्रह्मने दिव्यधर्मवत् माने छे परंतु ब्रह्मवादमां विरुद्धधर्माश्रय मानेल छे ते विशिष्टाद्वैत-वादीने प्रायः अज्ञात छे, ब्रह्मवादवत् एमतमां पण ब्रह्म कर्तृ खरुं परंतु ब्रह्मवादमां अविकृत ब्रह्मज परिणाम पामे छे, रामानुजमतमां ब्रह्मनुं "शरीर" परिणाम पामे छे, संपूर्ण अखंड अद्वैत एलोकने ग्राह्य नहि, तेओनुं अद्वैत विशिष्ट मात्र एटले वैषम्यनैर्घृण्यदोषनो परिहार पूर्ण एमतमां थईशके नहि, जेटले अंशे ते-मतमां द्वैत तेटले अंशे एदोषनो परिहार अशक्य, ब्रह्मवादमां तो रमणार्थ आत्म-सृष्टि एटले वैषम्यनैर्घृण्यदोषनी गंध पण नहि, अक्षरब्रह्मने भगवद्धाम ए-मतमां मान्युं छे परंतु अक्षरने जेम ब्रह्मवादमां आध्यात्मिकस्वरूप मान्युं छे तेवुं कांई तेमतमां जणातुं नथी, ब्रह्मवादमां अंतर्यामी सत्, चित् अने कांईक आनंदरूप छे, विशिष्टाद्वैतमां आनंदांश अंतर्यामी खरो पण तेअंतर्यामीमां सदंश चिदंश तो संदिग्धज रह्या, सूक्ष्मचित्मांथी स्थूलचित्जीवोनुं विनिर्गमनज विस्फुलिंगवत् एमतमां थाय छे, ब्रह्मवादमां सत्चितनो आविर्भाव अने आनं-दनो तिरोभाव एवुं जीवनुं स्वरूप मान्युं छे तेवुं कांई आवादमां थयुं नहि,

ब्रह्मवादमां जीव सच्चित् छे परंतु विशिष्टाद्वैतमां तो जीवनुं सत्त्वपण संदिग्ध, ब्रह्मवादीवत् विशिष्टाद्वैती पण जीवस्वरूप नित्य माने छे, ज्ञाता पण माने छे; विशिष्टाद्वैतमां जीवनुं परिमाण अणु मानेलुं छे अने ते सदा सर्वदा अणुज रहेवानुं, ब्रह्मवादमां तो जीव अणु छे छतां आनंद अभिव्यक्त थतां अणुपरिमाण जीव व्यापक थाय छे, अनंतकोटिब्रह्मांडनी ब्रह्मवादमां जीवविषे तेसमये प्रतीति थाय छे, तेवुं कांई एवादमां नथी, जीव कर्ता–भोक्ता ब्रह्मवादवत्ज, जीव अनेक माने छे परंतु ब्रह्मवादमां एकज ब्रह्म स्वयं स्वतः अनेक स्वरूप धारणकरी जीवस्वरूपे लीला सिद्ध करे छे तेवुं ऐच्छिक आविर्भावतिरोभावात्मक अनेकत्व विशिष्टाद्वैतमां नथी, अनेकत्व तेमतमां सदा सर्वदाज, जीवनुं दास्य ब्रह्मवादवत्ज स्वीकार्य छे, ब्रह्मवादमां अंशांशिभावथी विरुद्धधर्माश्रयवडे अभेद सिद्ध थाय छे, विशिष्टाद्वैतमां "तस्य त्वम्" एम विग्रह करवोपडे छे, विशिष्टाद्वैतमां जगत् सत् छे, कारण के ते अचित्सूक्ष्मशरीरनुं परिणाम छे, आविर्भावतिरोभाव तेवादीने अज्ञात छे, जगत्संसारभेद पण एवादीने सर्वथा अज्ञात छे, विशिष्टाद्वैतमां पण ब्रह्मवादवत् कर्म–ज्ञान–भक्ति एवोज साधनक्रम छे परंतु ब्रह्मवादमां उपासना--भक्तिनुं वैलक्षण्य छे तेवुं कांई तेमतमां नथी,उपासनाथी भक्तिना विशेषनुं तेमने ज्ञानज नथी, ब्रह्मवादमां भावात्मक मोक्ष छे, विशिष्टाद्वैतमां अभावात्मक छे, उभये पराश्रयज मोक्ष स्वीकारे छे, विशिष्टाद्वैतमां सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य मोक्ष स्वीकारेला छे, ब्रह्मवादमां सायुज्यमोक्षनो अंगीकार छे, बीजा सर्व मोक्ष स्वरूपनो संबंध राखी स्वरूपात्मकज मानेला छे, ब्रह्मवादमां रामानुजाचार्यना मतनुं अनुकरण छे एशंकानुं निकंदन हवे थईजगयुं, ब्रह्मवादमां प्रमाणसंख्या निर्णीत नथी, विशिष्टाद्वैतमां प्रत्यक्षादिप्रमाणनी संख्या मानी छे, ब्रह्मवादमां कार्य, कारण, जीव, ईश्वर, नाम, रूप, सर्वनी शुद्ध, पूर्ण, अखंड, अविशिष्ट, अनन्यता छे, विशिष्टाद्वैतमां सूक्ष्मचित्नुं स्थूलचित्साथे ऐक्य अने सूक्ष्मअचित्नुं स्थूलअचित्साथे ऐक्य छे, चिदचित्सर्वनो अखंड अभेद कदापि तेवादमां थतो नथी, चिदचित् एवो भेद कारणावस्थामां पण तेमतमां रहेवानोज, ब्रह्मवादमां सर्व एकरस ब्रह्म छे, ब्रह्मवादमां आविर्भावतिरोभावथी व्यवस्था करवामां आवे छे त्यारे विशिष्टाद्वैतमां पूर्वोक्त वैशिष्ट्य करी व्यवस्था करवानो यत्न छे, जीव मोक्षसमये ब्रह्मवादमां व्यापक पण थईशके छे, विशिष्टाद्वैतमां एवो विरुद्धधर्माश्रयज नथी, जीव सदा सर्वदा अणुज रहेवानो, जीवनुं अनेकत्व तेवादीए वास्तविकज मान्युं छे, ब्रह्मवादमां सर्व ऐच्छिकज छे, जगत्संसारनो विशेष तेमतमां नथी, उपासना–भक्तिनुं तारतम्य तेवादीने अज्ञात छे, तेवादमां सालोक्यादि चार भेदात्मक मोक्ष छे, ब्रह्म-

वादमां अभेदात्मक सायुज्य मोक्ष छे, रामानुजाचार्यनी अख्याति छे, ब्रह्मवादमां प्रायः अन्यख्याति अविद्वद्दशामां छे अने पूर्णज्ञानियोनी तथा पूर्णयोगियोनी दृष्टिथी अख्याति छे, आवा मुख्य मुख्य भेद घणा छे, केटलुंक साम्यपण छे, रामानुजना मतने शुद्धाद्वैती राजसज्ञान कहे छे, एकदेशी कहे छे, क्रमे क्रमे राजसज्ञाननो तिरोभाव करी सत्वोद्रेक थई निर्गुण थई शुद्धाद्वैतज्ञाननो अधिकारी विशिष्टाद्वैती थईशके खरो. शुद्धअभेदसिवाय रामानुजने ब्रह्मवादनुं सर्व रुचे. मायावादनो अति विस्तार थतां उपासनाभक्तिनो उच्छेद वलीजतां शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यथी मायावादनुं सहन न थईशकतां, तेआचार्ये वृत्तिकारादिना मतनुं संग्रहण करी मायावादना खंडनपूर्वक उपासनाभक्तिपोषक मार्ग यथा–शक्ति चलाव्यो एवो ऐतिहासिक क्रम छे.

(ङ.) शैवमतथकी वैलक्षण्य.

शैवमतनुं विवेचन करवानो अत्र आवश्यकता नथी. क्वचित् विशिष्टाद्वैतनुं अने क्वचित् द्वैतनुं अनुकरणमात्र तेमतमां छे. शिवोपासनासिद्ध्यर्थ हरिने बदले परमेश्वर, पशुपति आदिशब्दोनो प्रयोग करेलो छे. ब्रह्मवादसाथे ए-मतनो विभ्रम थाय एवो संभव नथी.

(च.) माध्वमतथकी वैलक्षण्य.

पूर्ण शुद्ध द्वैतविना भक्ति–उपासना थईज शके नहि, अद्वैत सर्व प्रतारणा छे एम मानतां मायावाद अने विशिष्टाद्वैत उभयमतथी संतोष न पामतां हनुमदवतार पूर्णप्रज्ञाचार्ये द्वैतमतनुं अवलंबन कर्युं, शांकरनो परिपूर्ण शत्रु माध्व छे, द्वैतवादी शब्द, प्रत्यक्ष अने अनुमान एम त्रण प्रमाण माने छे, ब्रह्मवादमां एवो कांई संख्या निर्णीतज नथी, ब्रह्म प्रमेय छे, परंतु ए एकज तत्त्व एम नथी, जीव पण एक तत्व छे, अने जगत् पण पृथक् तत्त्वज छे, एत्रणेनुं कोईपण रीतिथी अद्वैत नथी स्फुट निःसंदिग्ध द्वैत छे, एम ते वाद आग्रह करे छे, ब्रह्म निर्धर्मक नहि पण सधर्मक एम पण जरा तेओ मायावादसामे विशेषबळथी प्रतिपादन करे छे, ब्रह्मवादमां ब्रह्म सधर्मकनिधर्मक उभये छे, विरुद्धधर्माश्रयवडे ब्रह्मवादमां सर्व समीचीन छे, द्वैतीने विरुद्धधर्माश्रयज अज्ञात छे, ब्रह्म कर्तृ खरुं पण मात्र निमित्त-कारण, उपादानकारण तेमतमां प्रकृति छे, ब्रह्मवादमां ब्रह्मज अभिन्ननिमित्तो-पादान कारण छे, अनन्यत्व माध्वने स्वीकार्यज नहि, ब्रह्मवादमां अखंड पूर्ण शुद्ध अनन्यत्व मान्य छे, वैषम्यनैर्घृण्यादिदोषपरिहार द्वैतमतमां सर्वथा दुष्परि-हार्य छे, ब्रह्मवादमां रमणार्थ आत्मसृष्टि अभेदात्मकज छे एटले तेदोषनो लेश पण नहि, आध्यात्मिक अक्षरब्रह्मस्वरूप पण माध्वने अज्ञात छे, जीव

पृथक् तत्वज, शुद्धाद्वैतमां तो जीव ब्रह्मनुंज स्वरूप छे, ब्रह्मवादवत् जीव नित्य छे, ज्ञाता छे, द्वैतमतमां जीव सदासर्वदा अणुज, ब्रह्मवादमां व्यापकत्व मोक्षावस्थामां विरुद्धधर्माश्रयथी स्वीकार्युं छे, ब्रह्मवादवत् ज जीव कर्ता, भोक्ता, सर्व खराज, द्वैतवादमां जीव अनेक पण वास्तविकज, ऐच्छिक नहि, द्वैतमतमां जीव अंश खरा पण तेथीज जीवनो ब्रह्मथी विभेद, ब्रह्मवादमां अंशाशिभावथी अनन्यता स्वीकारी छे, माध्वाचार्ये चित्सादृश्यमात्रथी अभेद स्वीकार्यो छे, केटलाक "अतत् त्वम् असि" एम पण विग्रहकरवा चूकता नथी, द्वैतमतमां जगवनुं सत्यत्व वास्तविकज, ब्रह्मवादवत् ऐच्छिक नहि, जगत्संसारनो भेद माध्वने पण अज्ञात, कर्म–ज्ञान–भक्ति एवोज तेमतमां पण साधनक्रम छे, उपासना–भक्तिनुं तारतम्य पूर्णप्रज्ञाचार्यने अज्ञात ज छे, द्वैतमतमां मोक्ष अभावात्मक, ब्रह्मवादमां भावात्मक, सालोक्यादि भेदात्मक चतुर्धा मुक्ति द्वैतमतमां मानेली छे, ब्रह्मवादमां अभेदात्मक सायुज्य परम पुरुषार्थ छे, उभये पराश्रयज मोक्ष माने छे, द्वैती अभिनव, अन्यथाख्याति माने छे, ब्रह्मवादसिद्धांती अन्यख्याति प्रायः स्वीकारे छे अने पूर्णज्ञानावस्थामां के पूर्णयोगिनी अवस्थामां " अनागतमतीतं च वर्त्तमानमतीन्द्रियम् । सन्निकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः " एश्लोकप्रमाणे अख्याति स्वीकारे छे, द्वैतविना भक्ति–उपासना थायज नहि एम माध्वनो दुराग्रह छे, ब्रह्मवादनुं एज साम्राज्य छे के शुद्ध अखंड अद्वैत छतां तेवो पूर्ण शुद्ध अखंड अनुभव थया पछी पण माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेहथी कृतार्थता मानी छे, द्वैतपूर्वक भक्ति तो अज्ञानी पण करे पण "ज्ञानी" भक्तनो उत्कर्ष छे माटे सर्व भगवद्रूप, भगवदभिन्न, भगवदनन्य, भगवन्माहात्म्यमानी पूर्ण शुद्ध अद्वैतज्ञानपूर्वक भगवत्सेवा करवी, भगवद्भक्ति कराववी ए शुद्धाद्वैतनी विजयपताका छे, एकज ब्रह्म अनेकानेक स्वरूप धारणकरी विविध विहार करे एमां सर्व समीचीनज छे, श्रीमान् भाष्यकार सर्ववादीकरतां द्वैतीपर कृपा राखे छे, माध्वनी विहित भक्तिज एवी शुद्ध छे, द्वैताग्रह दूर करी अद्वैतश्रुतिनो अर्थ करतां बलात्कार न करतां ऐच्छिकभेद स्वीकारी ले, तो क्रमशः शुद्धाद्वैतमां प्रवेश बीजाकरतां तेनो जलदी थाय, द्वैत करतां शुद्ध अद्वैतमां ब्रह्मनुं माहात्म्य विशेष छे, पूर्ण अखंड शुद्ध अद्वैतपछी सुभगस्नेहनो समुदय थाय ए स्वाभाविक छे.

जगत्सत्यत्व, जीवांशत्व, जीवाणुत्व, जीवकर्तृत्व, जीवभोक्तृत्व, जीवदास्य, जीवानेकत्व, पराश्रयमोक्ष, मोक्ष छतां भक्ति, ज्ञानथी भक्तिनुं आधिक्य, प्रभृति सर्वविषयमां किंचित् किंचित् भेद साग करी, रामानुज, माध्व, श्रीमदाचार्य, सर्व वैष्णवाचार्य मायावादनुं खंडनकरवा सदा बद्धपरिकर ज थाय छे.

सर्व वैष्णव आचार्यो वेदादिप्रमाण उपरांत श्रीमद्भागवत, महाभारत,

रामायण, नारदपंचरात्र, शांडिल्यसूत्र, नारदसूत्र आदि वैष्णव आगमने पण प्रमाण माने छे, रामानुजाचार्य रामायणने अने मध्वाचार्य महाभारतने वेदतुल्य माने छे, रामानुजाचार्य प्रायः रामचंद्रनी, अने मध्वाचार्य हरिना गमे ते-अवतारनी समभावथी परम दैवत मानी, उपासनां करे छे, श्रीमद्आचार्यवर्य श्री-मद्भागवतशास्त्रने चतुर्थ प्रस्थान माने छे, अने तत्प्रतिपाद्य सकलशिरोमणि श्रीकृष्णचंद्रनी सेवा करे छे, "एते चांशकलाः पुंसः कृष्णः तु भगवान् स्वयम्" इत्यादिवाक्य प्रमाणमां आपे छे, पूर्ण श्रीकृष्ण स्वाभिन्न, विविध, कळा, अंश, विभूति आदि ग्रहणकरीने विविधरसनिष्पत्त्यर्थ अनेकशः रमण करे छे एम शुद्धाद्वैती ब्रह्मवादी अंगीकार करे छे.

(छ.) निंवार्कमतथकी वैलक्षण्य.

निंवार्क मत पण द्वैताद्वैत कहेवाय छे तेमां द्वैत वास्तविक अने अद्वैत औपचारिक छे, प्रायः माध्वमतसदृश ते मत छे एटले माध्वमतना विवेचन पछी ते-मतनी विचारणानी आवश्यकता अत्र न रही केमके ब्रह्मवादसाथे तेमतनो विभ्रमज अशक्य छे.

(ज.) शाक्तमतथकी वैलक्षण्य.

शाक्तमतमां ब्रह्म उपादनाकारण छे अने शक्ति निमित्तकारण छे, शक्ति उपादानकारण थाय तो तेमां विकृति प्राप्त थाय एवी कांई भीतिथी ब्रह्मने उपादानकारण कहे छे अने शक्ति मात्र निमित्त कारण अेम ते वादी कल्पना करे छे. अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ब्रह्मज छे एम पूर्व अनेकशः कहेवाय-लुंज छे, शक्तिनुं वर्णनज वेदांतशास्त्रमां नथी तो कारण सुदूरज, पृथक् कारण मानतां सर्वात्मत्वमां हानि आवे, एकविज्ञानवडे सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा संभवे नहि द्वैतापत्ति थाय; अने वेदमां द्वैतनी गर्हा छे, "कर्ता कारयिता हरिः" प्रभृति वाक्यमां विरोध आवे, ब्रह्मज सर्वकारणकारण छे, शक्तिनो समावेश पण कार्यसृष्टि मात्रमां छे अने तेनी उत्पत्ति पण श्रीविष्णुमांथी छे एम "मम योनिरप्स्वंतः समुद्रे" श्रुति प्रतिपादन करे छे. "योनिश्च हि गीयते" सूत्रमां ब्रह्मनेज योनि कहेवामां आवेली छे, "प्रकृतिश्च" सूत्रमां "च" वडे निमित्त-कारणनो पण संग्रह छे, "जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात् इतरतः" इत्यादि-स्थलोमां उपादान निमित्त कारण सर्व ब्रह्मज छे एम स्पष्ट प्रतिपादन छे, विशेष विस्तृतिनी आवश्यकता नथी.

१८ भक्तिसाम्राज्य,

शुद्धाद्वैतसिद्धांतना मुख्य मुख्य विषयनुं दिग्दर्शन थयुं, इतरमतथकी ब्रह्मवा-

दनुं वैलक्षण्य पण निरूपित थयुं, तेप्रस्तावमांज ज्ञानदृष्टिथी अने भक्तिदृष्टिथी ब्रह्मवादना उत्कर्षनो पण यत्किंचित् साक्षात्कार थयो, हवे शुद्धाद्वैतीयज्ञानी-करतां पण शुद्धाद्वैतीयज्ञानयुक्त भक्त उत्कृष्ट छे ए निरूपण करी उत्तमोत्तम साधन भक्तिज छे एम प्रतिपादनकरवामां आवशे.

एकज अद्वितीय, सच्चिदानंद, निर्गुण, पूर्ण, प्रकटानंद, ब्रह्मना आधिदैविक, आध्यात्मिक अने आधिभौतिक एम त्रण स्वरूप छे, जेवां रमणार्थ त्रण स्वरूप छे, तेवाज रमणार्थ त्रण मार्ग छे, कर्म आधिभौतिक मार्ग छे, ज्ञान आध्यात्मिक मार्ग छे, भक्ति आधिदैविक मार्ग छे, कर्म आधिभौतिक मार्ग छे अने तेवडे प्रायः आधिभौतिक–जगत्मां आवृत्तिरूप विषयानन्द फल प्राप्तथाय छे, "आवृत्तिः असकृत् उपदेशात्" "अयं शारीर आत्मा एभ्योऽङ्गेभ्यः सम्प्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति प्राणायैव" "तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च" "प्राप्यान्तंकर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम्। तस्माल्लोकात् पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे" ज्ञान आध्यात्मिक मार्ग छे अने तेवडे आध्यात्मिक–अक्षरब्रह्मस्वरूपमां जीवनो पुनरावृत्तिरहित लय थाय छे, "अनावृत्तिः शब्दात्" तेस्वरूपविषे ते जीव ब्रह्मानंदनो अनुभव करे छे, उपासनायोग्य अल्पानंद–विभूतिनो प्रादुर्भाव अक्षरब्रह्मद्वाराज थयो माटे तेवी विभूतिनी उपासनाथी पण क्रममुक्तिनो अधिकार थाय छे, शिवादि उपास्यविभूतिना लोकमां स्थिति करीने ज्यारे शिवादि उपास्यविभूतिना अक्षरब्रह्मस्वरूपविषे लीन थाय छे, त्यारे तद्विभूत्युपासक जीव पण अक्षरब्रह्ममां क्रमशः लयपामे छे, भक्तिमार्ग आधिदैविक छे तेमार्गमां तो पूर्वे अक्षरब्रह्मस्वरूपमां लयपामेला ज्ञानवान्‌जीवनुं पण पुनरुद्धरण थई आधिदैविक पुरुषोत्तमस्वरूपनो सहभाव थई कृपानंदनुं परिपूर्ण पान थाय छे, शुद्धाद्वैतीयज्ञानीने अक्षरब्रह्मज परमफलरूप प्रतीत थाय छे, अक्षरब्रह्मज सच्चिदानंदत्व, देशकालापरिच्छेदत्व स्वयंप्रकाशत्व, गुणातीतत्वादिधर्मवत् छे एम ज्ञान शुद्धाद्वैतीयज्ञानीने थाय छे, ए अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तमनुं परमधाम छे एवो अनुभव तो, "मल्लानाम् अशनिः" श्लोकोक्तन्यायप्रमाणे, मात्र भगवदीओनेज थाय छे. "अव्यक्तः अक्षर इत्याहुः तमाहुः परमां गतिम् यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" इत्यादि वाक्य अत्र प्रमाण छे "अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि एम शुद्धाद्वैती ज्ञानी अक्षरब्रह्मनी भावना करे छे, भगवदीय "तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः" थईने आक्षिप्तचित्ताः प्रमदाः रमापतेः ताः ताः विचेष्टाः जगृहुः तदात्मिकाः" भगवत्कृत सर्व लीला पण

साक्षात् स्वतः करीदे छे, कर्ममार्गीयजीव मूलेच्छाथी व्युच्चरण पामे छे. ज्ञानमार्गीयनुं वाणीमांथी निर्गमन थाय छे अने भक्तिमार्गस्थ जीव तो साक्षात् आधिदैविकस्वरूपना आनंदरसमय–श्रीअंगमांथी प्रकट थाय छे, हरि सर्व निजेच्छाथी करशे एवो उत्तमोत्तम विवेक प्राप्तकरी चित्तमां प्रसन्नता राखवी ए कर्ममार्गीय निष्ठा छे, तक्रवत्, जडवत्, देहवत्, गोपभार्यवत् धैर्य राखवुं, दुःखत्रयनुं मरणपर्यंत सहन करवुं, सर्वत्र अखंड–शुद्ध–अद्वैतनो अनुभव करवो ए उत्कृष्टोत्कृष्ट ज्ञानमार्गीय निष्ठा छे, ऐहिकपारलौकिकसर्वमां कर्म, वचन अने मनस्वडे श्रीहरितुंज शरण राखवुं, अनन्यआश्रय राखी श्रीकृष्णचंद्रनो प्रसाद प्राप्तकरवो ए उत्तमोत्तम भक्तिमार्गीयनिष्ठा छे. आप्रकारे उत्कृष्टोत्कृष्टविचारकरतां कर्म–विवेक, ज्ञान–धैर्य, उभये भक्ति–आश्रयनां अंग थई तेनुंज परिपोषण करे छे.

शुद्धाद्वैतीयज्ञानमार्गमां जे ज्ञान निरूपण करेलुं छे ते सर्व अक्षरविषयक छे, ज्ञानमार्गमां अक्षरब्रह्मज पराकाष्ठा छे, परागति छे; माटे शुद्धाद्वैतीय शुष्क–ज्ञानीनो अक्षरब्रह्ममांज निर्विशेष लय थाय, सायुज्य थाय, ए सर्वथा अभ्युपपन्न छे. "यथा सैंधवखिल्यः उदके प्रास्तः उदकम् एव अनुविलीयते," "नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे," इत्यादिश्रुति पण शुद्धाद्वैतीयज्ञानीनो एवो निर्विशेष लयज अक्षरब्रह्ममां निरूपणकरे छे. "निर्गुणनो निर्देश अटपटो रसना शी पेरे कहिये, रूप, वर्ण, वपु, दृष्टपदारथ तहां एको नव लहिये" इत्यादि महानुभावी भगवदीयवाक्य पण एजसिद्धांतनुं परिपोषण करे छे. वस्तुतः शुद्धाद्वैतीय–ज्ञानीनो आवो अक्षरब्रह्ममां निर्विशेष लय पण भक्तिविना थईशकतो नथी. "माम् एव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरंति ते" इत्यादिश्रीमुखवाक्य एज उपदेश करे छे. ऐश्वर्यादिषड्धर्मयुक्तभगवान्‌नो एक धर्म ज्ञान छे अने जेनामां ए ज्ञानधर्मस्वरूपमात्र प्रकटकरवानी इच्छा छे तेवाने भक्त्यादि विहितसाधन करावी ज्ञानदान करे छे, अक्षरब्रह्ममां सायुज्यमुक्तिदान करे छे, ब्रह्मानंदमां प्रवेश करावे छे. भगवद्भक्तिविना मोक्षपण सिद्धयतो नथी केमके श्रीमद्भगवद्गीताना १३ मा अध्यायमां ज्ञाननुं लक्षण कहेल छे तेमां "मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी" एम अनन्य अने व्यभिचरित न थाय तेवी भक्ति होय त्यारेज ज्ञान कहेवाय अने ते न होय तो तो अज्ञान कहेवाय एम "अज्ञानं यत् अतः अन्यथा" ए श्रीमुखवाक्यवडे आज्ञा करेली छे. एमां एक अन्य उपपत्ति पण छे के अध्यास बेप्रकारना छे, एक जीवकृत अने एक भगवत्कृत, जीवकृत–अध्यास ज्ञानादिथी निवृत्ति

कदाचित् पामे, पण भगवत्कृत–अध्यासनी निवृत्ति भगवदिच्छाविना कदापि थइशकती नथी. आवा कांई हेतुथीज इतर आचार्य पण ज्यां ज्यां भक्तिनो उपदेश करे छे त्यां त्यां " वासुदेव " (कृष्ण) नीज भक्तिनो उपदेश करे छे केम के वासुदेव चित्तना अधिष्ठाता छे. अक्षरब्रह्ममां जे लय निरूपण कर्यो ते शुद्धाद्वैतीय–ज्ञानीनोज समजवो. शुद्धाद्वैतसिद्धांतव्यतिरिक्त ज्ञानमार्गज नथी, भ्रांतमार्ग छे, एटले इतर तामसज्ञानवाळा आसुरीसंपत्प्रमाणे वर्त्तनारा तो " केवलांधंतमोगाः " केवळ अंधंतमःना अधिकारी छे. सात्विक अने राजस-ज्ञानी पण क्रमशः निर्गुण थाय त्यारेज तेमनो अक्षरब्रह्ममां लय थाय छे एतुं विस्मरण अत्र न थवुं जोइए.

केटलाकजीव भगवदनुग्रहवडे श्रवणादिभक्ति करे छे, तेवी स्नेहरूपभक्ति पण करे छे तथापि ते जीव मुमुक्षु होवाथी, मर्यादामार्गमां तेजीवनो अंगीकार होवाथी, उत्कटस्नेह संभवतो नथी, तेमना हृदयमां प्रभुप्राकट्य संभवतुं नथी, माटे स्वस्वप्रकृतिमां तेवा जीवना संघातनो लय थयापछी शुद्धथईने तेजीव भक्तिवडे मुक्ति प्राप्त करे छे. मुमुक्षावडेज श्रवणादिमां तेमनी प्रवृत्ति थाय छे एटले भगवान्मां प्रीति पण मुक्तिदातृत्ववडेज थाय छे, निरुपाधिप्रीति तेमने होती नथी. कदाचित् भक्तिरूप वस्तुस्वभावथी मुक्तीच्छा निवृत्ति पामे तथापि तेमनी भक्ति साधनमार्गीय होवाथी अंतमां " अनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुंक्ते " एवाक्यप्रमाणे मुक्तिज थवानी. " अंते मुक्तिः एव भवित्री " एमार्गमां श्रवणादिवडे पापक्षय थतां प्रेमोत्पत्ति थाय छे अने तेवडे मोक्ष थाय छे. प्रेमने विद्यातुं एकपर्व आगळ कह्युं छे ते पण हवे स्पष्ट थशे. पूर्वोक्त शुद्धाद्वैतीय शुद्ध-ज्ञानी करतां आ सोपाधिभक्तिवाळो ज्ञानी विशिष्ट छे, कारण के साधनावस्थामां यथाधिकार सोपाधिस्नेहरसनुं पण पान करे छे, भक्तिथी पण आम क्वचित् पूर्ण, अखंड, शुद्धाद्वैतज्ञान प्राप्तथई निर्विशेष सायुज्य थाय एमां पण भक्तिने भूषण छे.

सामान्यतः शुद्धाद्वैतीय–ज्ञानीनो ब्रह्ममां निर्विशेष लय थाय एम सोपपत्तिक निरूपण थयुं. ज्ञानीनो दुःखाभावात्मक–मोक्ष नामरूपरहित निर्विशेष होवाथी ते तो सर्वदा अवर्णनीयज छे तथापि मोक्ष सदासर्वदा दुःखाभावरूपज नथी. भक्ति-मार्गीयदृष्टिबिंदुथी निरीक्षण करतां मोक्षनो अर्थ पुरुषोत्तमप्राप्ति छे. अर्थात् आत्यंतिकदुःखनिवृत्तिपूर्वक निःसीमआनंदनी अवाप्ति एम कर्याविना उपायज नथी; अने ते भक्तिमार्गीयदृष्टिथी मोक्ष अनिर्वचनीय छतां पण हवे स्पष्ट व्यक्त सविशेष बनीरहे छे ! आ–सर्व भूत–भव्य ब्रह्म छे प्रपंचमात्र ब्रह्म छे, क्रीडा-

भांड छे, एम ब्रह्मना माहात्म्यज्ञानपूर्वक शुद्ध, अखंड, अद्वैत, ज्ञान थयापछी सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेहभक्ति प्राप्त थाय छे. "माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिः इति प्रोक्तः" इत्यादि एजसिद्धांतनुं प्रतिपादन करे छे. "ब्रह्मवित् आप्नोति परम्" श्रुतिमां ब्रह्मज्ञानने परप्राप्तिनुं साधन कह्युं छे एटले ब्रह्मज्ञान थयापछी, ब्रह्मानंदमां शुद्ध, अखंड, अद्वैत, अनुभव थयापछी, परब्रह्मनी प्राप्ति थाय एवोज क्रम छे. "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्" ए श्रीमुखवाक्य पण जीवने ब्रह्मभावानंतर "परा" भक्तिनी प्राप्तिथाय एवोज मर्यादानुकूळ निर्देश करे छे. अने त्यारपछी "भक्त्या मामभिजानाति" ए वाक्यमां श्रीकृष्णे मने भक्तिवडे जाणे छे एम कह्युं छे ते "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" ए श्रुतिमां ब्रह्मने जाणनार जे परने पामे छे एम कहेल छे तेपर–पुरुषोत्तमने भक्तिवडे जाणे छे एम समजाय त्यारे बन्नेनी एकवाक्यता थाय अने त्यारपछी "विशते तदनन्तरम्" एम कहेल छे ते पूर्णानन्द–श्रीपुरुषोत्तमना स्वरूपमां प्रवेश करे छे (अक्षरब्रह्ममां नहिं) अतिअनुग्रहविशिष्टनो तो लीलामां प्रवेश थाय छे. ए अभिमत व्यवस्था छे. "मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्" तत्त्वसूत्र पण मुक्तथयापछीज अखंडब्रह्मभावथया–पछीज, उपसर्पण, परब्रह्मसमीप गमन, आधिदैविकस्वरूपसमीपगमन निरूपणकरे छे. "मुक्तानाम् अपि सिद्धानां नारायणपरायणः । सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने" इत्यादिनी पण संगति एवाजप्रकारथी थाय छे. "जन्मांतरसहस्रेषु तपोध्यानसमाधिभिः । नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते" इत्यादिवाक्यमां पण ब्रह्मज्ञान थयापछी तपोध्यानसमाधिवडे कल्मषक्षय थयापछी जन्मांतरसहस्रमां, ब्रह्मानंदमां शुद्ध, अखंड, अद्वैत, थयापछी, परब्रह्म कृष्णविषे भक्ति सिद्ध थाय एवोज क्रम छे. "ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः" इत्यादिवाक्यप्रमाणे सर्वत्र ब्रह्मभाव थयापछी शुद्ध "वीर्यवत्तर" कर्म संभवे, तेमज, "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" प्रभृति श्रुत्युक्तरीतिथी सर्वत्र ब्रह्मभाव, सर्वत्र अखंड, शुद्ध, अद्वैतनो अनुभव, थाय त्यारपछीज परमभक्तिनो लाभ पण संभवे माटेज "चतुर्विधा भजंते मांम्" एम उपक्रम करी ज्ञानवान्‌भक्तनुं उत्तमोत्तम भगवदीयत्व श्रीकृष्णे स्वतः- श्रीमुखे प्रतिपादनकर्युं छे. तत्त्वदीपनिबंधकार श्रीमदाचार्यचरण पण एजआशयथी "ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्मात् नास्ति अधिकः परः" एम आज्ञा करे छे. आप्रकारे पूर्व अक्षरब्रह्मनुं ज्ञान थयापछी पण प्रभु कृपाकरी भक्तिदान करे तो "भक्त्या माम् अभिजा-

नाति" भक्तिवडे साक्षात् पूर्ण, प्रकटानन्द, आधिदैविक, उत्कृष्टोत्कृष्ट–स्वरूपनुं अभिज्ञान थाय, तदनंतर तेमनी लीलामां प्रवेश थाय. पूर्वोक्त ब्रह्मसंपन्न–ब्रह्मभूत–जीवपर प्रभुनो अत्यनुग्रह थाय, स्वीयत्ववडे अंगीकार करी भजनानंददान करवानी प्रभु कृपा विचारे तो तो भगवत्स्वरूपबळवडे लयमांथी पुनः तेजीवनी उद्धृति (आविर्भाव) थईजाय छे; "संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् "तत्त्वसूत्र पण जीवनी ब्रह्मसंपत्ति थयापछी पुनः आविर्भाव कथनकरे छे. ब्रह्मज्ञानने परमाप्तिनुं साधन कह्युं छे एटले ब्रह्मज्ञान थयापछी, ब्रह्मानंदमां शुद्ध, अखंड, अद्वैत–अनुभव थयापछी, परब्रह्मनी प्राप्ति थाय, एवोज क्रम छे, तो अक्षरब्रह्मज्ञानवडे अविद्यानिवारण थईजतां प्राकृतधर्मराहित्य प्राप्तथतां, शुद्धिसंपादन थयापछी, पुरुषोत्तमप्राप्तिविषे स्वरूपयोग्यता सिद्धथाय छे. एवा शुद्धस्वरूपयोग्य जीवनुं वरण–अंगीकार करे तो निरुपाधिभक्तिभावथी सहकारियोग्यता सिद्ध थई पुरुषोत्तमप्राप्ति तेने थाय एम निर्णय छे. ब्रह्मज्ञानपछी पण जेनुं वरण करे तेनेज परप्राप्ति थाय एटले "ब्रह्मवित् आप्नोति परम्" अने "यम् एव एष वृणुते तेन लभ्यः" एवेश्रुतिमां विरोध पण न रह्यो. एम एकवाक्यता न थाय तो पूर्वश्रुतिमां ब्रह्मज्ञानने परप्राप्तिनुं साधन कह्युं छे, अने द्वितीयश्रुतिमां वरणव्यतिरिक्त साधननो निषेध कर्यो छे एटले श्रुतिद्वयनो विरोधपरिहार थईशके नहि, माटे ब्रह्मज्ञानपछी पण जेनुं वरण (अंगीकरण) प्रभु करे तेजीवनेज परप्राप्ति थाय ए सिद्धांत निष्प्रत्यूह छे. "मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्" इत्यादिनुं स्वारस्य पण हवे लक्षमां आवीजशे. "नायम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन," "नायम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः" श्रुत्युक्तप्रकारप्रमाणे आधिदैविकस्वरूपनी प्राप्ति तो ब्रह्मज्ञानानंतर पण जेज्ञानीनुं वरण करे छे तेनेज मात्र, थाय छे,(सर्वने नहि) वस्तुतः एवा जीवनो ब्रह्ममां प्रवेश पण अलौकिकाकार सिद्धकरवाज करेलो छे माटे स्नेहभावथी तेना विप्रयोगदुःखनुं सहन न थईशकतां आप तेनो लयमांथी पुनः उद्धार करे छे. अवतारदशामां पण आपे आ तारतम्य प्रकट बताव्युं छे. "ते तु ब्रह्महृदं नीताः मग्नाः कृष्णेन च उद्धृताः ददृशुः ब्रह्मणो लोकम्" इत्यादि अत्र प्रमाण छे. चतुर्विधमुक्तिपर भक्तिनो एटलो बधो उत्कर्ष छे के स्वतः श्रीमुखे तेनी प्रशंसा करे छे. "इत्थंभूतगुणो हरिः" श्रीहरिना गुणज एवा छे के आत्माराम मुनियो होय छे तेओने कोयग्रंथनो अभ्यास करवानी जरुर नथी तो पण जेनी अंदर भगवानना गुणो निरूपित होय छे तेवा ग्रंथोनो अभ्यासकरी निष्कारण भक्ति करे छे; तेथीज

सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य अने सायुज्य चतुर्विधमुक्तिदान प्रभु करे छे तो पण भगवदीयो सेवाविना इतर कांई ग्रहण करताज नथी. "दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः" माटे ब्रह्मज्ञानवान्‌नो पण भगवान् अंगीकार करे त्यारेज भक्ति उदय पामे छे. ए भक्ति अत्यंत प्रचुर थतां आप तेना हृदयमां प्रकट थवानी इच्छा करे छे त्यारे स्वस्थानभूत व्यापिवैकुंठ ते-जीवनी गुहामां-(हृदयाकाशमां) प्रकाश करे छे. "सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्" इत्यादि एजसिद्धांतनुं समर्थन करे छे. एव्यापिवैकुंठ–अक्षरधाममां पुरुषोत्तम निहित छे माटेज स्वमार्गीयग्रंथोमां एस्वरूपने "दक्षिणांग" वा "धर्मस्वरूप" कह्युं छे प्रसिद्ध "मर्यादा-पुरुषोत्तम" पण एज स्वरूप "अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषो-त्तमः" प्रमाणमार्गमां ज्ञानीभक्तज निरुपधिप्रीतिवान् होवाथी उत्तमोत्तम छे, तेमां पण जेटले अंशे अंगीकार--कृपाविशेष तेटले अंशे पुष्ट्यंश समजवो.

पूर्वोक्तशुद्धाद्वैतज्ञानवान्‌नो अक्षरब्रह्ममां लय थयो हतो तेलयमांथी भग-वान् कृपाकरी तेजीवनो आविर्भाव करे छे, उद्धृति करे छे, स्वभोगानुरूप लीलायोग्य सत्यज्ञानानंदात्मक ब्राह्म (ब्रह्मसंबंधी) शरीरादिदान करे छे, "ब्राह्मेण जैमिनिः उपन्यासादिभ्यः" तत्त्वसूत्रमां जैमिनिऋषिनी भक्त-विग्रहमां संमति सूत्रकार आपे छे. औडुलोमिऋषि मुक्तजीवनी पुनः शरीरादि-प्राप्ति अंगीकार करता नथी एम "चिति तन्मात्रेण" तत्त्वसूत्रनो आशय छे. बादरिआचार्य पण मुक्तजीवनो देहादिअभाव माने छे. "अभावं बादरिः आह हि एवम्" सूत्रमां बादरिना मतनो अनुवाद सूत्रकारे करेलो छे. परंतु सूत्रकार "एवम् उपन्यासात् पूर्वभावात् अविरोधं बादरायणः" "द्वा-दशाहवत् उभयविधं बादरायणः अतः" सूत्रमां तत्त्वसूत्रकार विरुद्धसर्व-धर्माश्रयन्यायथी एम निर्णय करे छे के मुक्तजीवने शरीरनो निषेध कह्यो ते तो प्राकृतशरीरादिनोज निषेध मानवो, अप्राकृत, लीलायोग्य, आनंदमय, ब्रह्ममय, विग्रहादिनो कोई निषेध नथी. अप्राकृत, ब्रह्ममय, द्वादशअंगवडे लीलोपभोग कह्यो छे माटेज "द्वादशाह" नुं साम्य सूत्रकार प्रतिपादनकरे छे. अलौ-किक (वैदिक) प्रमेयमां सूत्रकारनोज निर्णय स्वीकार्य छे, बादरिऋषिप्रभृतिनुं मत स्वीकार्य नथी, एम तो वेदांतीमात्र अंगीकार करेज छे माटे मुक्तजीवने अलौकिक--ब्रह्मसंबंधी देहादि भगवदिच्छामात्रथी प्राप्तथाय एम निःसंदिग्ध निष्प्रत्यूह वैदिकमात्रमान्य सिद्धांत छे. "मुक्तः प्रतिज्ञानात्" मीमांसासूत्रनुं मर्म पण हवे स्पष्ट थशे.

अलौकिकविग्रह सिद्धकरिने तद्भक्तसमीप प्रभु स्वरूपप्राकट्य करे छे. नेत्रवडे अने मनवडे श्रीमुखसुधापान करतां मोद थाय छे, त्यारपछी एवा कोई प्रचुरभावनुं संजनन थाय छे के सर्वइंद्रियवडे तेस्वरूपसह संभापण, आश्लेप, आदि संगमरसभोगकरवानी इच्छा थाय छे. दर्शन थयापछी क्वचित् क्वचित् तो वेणुनिनादमात्रथी पण प्रभुसह संभापणादि संयोगरसोपभोग करवानी इच्छा प्रकट थाय छे, त्यारे भगवदानंदसंपन्नमनना संबंधथी ते मनोरथ परिपूर्ण थईजशे एम विचारकरी वाणी मनसाथे समागम करे छे मन अने वाणीनो आप्रकारे समागम थतां वाणी भगवद्रससंपन्न थईजाय छे. संभापणादिचिकीर्पा परिपूर्ण थईरहे छे. एजप्रमाणे सर्वइंद्रियो मननी संगतिकरिने भगवद्रति संपादनकरे छे. छांदोग्यउपनिपदना छठ्ठा प्रपाठकना ८ मा खंडमां लख्युं छे के "जेम सूत्रप्रबद्धपक्षी प्रत्येकदिशामां पतनकरिने, कोईपणस्थलमां आयतन प्राप्त न थतां, बंधननो उपाश्रय करे छे तेमज सर्वेंद्रियविशिष्ट मन, कोईपण स्थलमां आयतन प्राप्त न थतां प्राणनो उपाश्रय करे छे." "सर्वेंद्रियमनोविशिष्ट" प्राण साक्षात् प्रकट अध्यक्ष प्रभुसमीप जाय छे. "सः अध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः" तत्त्वसूत्रनुं एज तात्पर्य छे. प्रभुये एनुं वरण कर्युं छे, अंगीकार कर्यो छे, माटे सकलमनोरथ परिपूर्ण करे छे. "ब्रह्म एव सन् ब्रह्माप्येति" एज अभिसंधि छे. "अथ मर्त्यः अमृतः भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते" हवे मर्त्य अमृत थाय छे, लीलाप्रवेशानंतर अलौकिकशरीरवान् थाय छे त्यारपछी तेअलौकिकशरीरमां भगवल्लीलारसनो सम्यक् भोग करे छे, अशन करे छे, अनुभव करे छे.

अक्षरानंदकरतां आ पुरुपोत्तमनो आनंद अगणित छे. "ते ये शतं प्रजापतेः आनंदाः स एकः ब्रह्मणः आनन्दः" इत्यादिश्रुति अने "इयत् आमननात्" तत्त्वसूत्र आध्यात्मिकअक्षरब्रह्मस्वरूपनुं सावधित्व, गणितानंदकत्व, प्रतिपादन करे छे. "अतो ज्यायाँश्च पुरुषः" "पुरुषः स परः पार्थ" "अक्षरात् अपि च उत्तमः" इत्यादि पण आधिदैविकस्वरूपनी उत्तमता पुनः पुनः कथनकरे छे. आधिदैविकपुरुपोत्तमनी आवी स्निग्धभक्तिआगल शुष्कब्रह्मवादनुं अखंड अद्वैतज्ञान अल्प होय ए सहज ज छे. स्थायीरसभावमां अखंड शुद्धअभेदभाव पण एक व्यभिचारिभावमात्र छे एवा शुद्ध भक्तिमार्गस्वर्णाचल आगल अखंड, शुद्ध, अद्वैत ज्ञान पण सर्पपतुल्य छे तो इतरमार्गीय–सात्विक, राजस, तामस, मिथ्याज्ञान, भ्रम, प्रतारणानी तो तेना आगल तुलना पण नज थईशके ए सर्वथा अभ्युपपन्न छे. भक्तिमां साक्षात् कृपानंद छे. रसपान छे. शुद्धाद्वैतज्ञानमां

दुःखाभावमात्र फल छे, तदुपरि फल नथी. भक्तिमां पूर्णानंदानुभव फल छे, अक्षरब्रह्ममां प्रलय फल छे. भक्तिमां भिन्नस्थितिथी रसपान छे, ज्ञानमां निमग्नता (लय) थईजाय छे एटले आनंदना अनुभवनो पण अवकाश नथी. भक्तिमां आत्मासह एकादशइंद्रिय–बाह्यपरिकरादि पण आनन्दरसभावावगाह करे छे, ज्ञानमां आत्मामात्रनुंज कल्याण करे छे, ज्ञानकरतां भक्तिमां अनुग्रह विशेष छे. भक्तिमां आरंभथीज अत्यंत निःसीम आनंद छे, ज्ञानमां तो आरंभावस्थामां अतिकष्ट अने अंतमां मात्र दुःखाभाव वा गणितानंद मात्र फल प्राप्त थाय छे. शुद्धाद्वैतीय ज्ञानी "अहं ब्रह्मास्मि" प्रभृति वाक्यवडे अक्षरब्रह्मनी भावनामात्र करे छे, भगवदीयतो "तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः" थईने "आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेः ताः ताः विचेष्टाः जगृहुः तदात्मिकाः" भगवत्कृत सर्वलीला पण साक्षात् स्वतः करीदे छे. काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जे ज्ञानना बाधक (प्रतिबंधक) छे ते भक्तिमां साधक थईजाय छे, फलप्राप्तिमां उपयोगी थईजाय छे. अहिं " कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च । नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते" "गोप्यः कामात् भयात् कंसो द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः।सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहात् यूयं भक्त्या वयं विभो!" भक्तिनुं तिरोधान थवानी भीति नथी. "आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति" "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनंदं ब्राह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन" ज्ञानतिरोधान थई जवानी पण भीति रहे छे " ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलात् आकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति " एम अनेकधा विहितभक्तिनुं ज्यारे शुद्ध–अद्वैतज्ञानपर आटलुं साम्राज्य छे तो "केवलेन हि भावेन गोप्यो गावः खगाः मृगाः" "न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेत् इह" इत्यादिवाक्यप्रतिपादित स्वतंत्र रसात्मक रसभर निरुपधि भक्तिमार्गनो उत्कर्ष तो सर्वथा अवर्णनीयज छे.

ब्रह्मवादी आम सर्वतः भक्तिसाम्राज्य प्रतिपादनकरे छे तेमां केटलाएक वादी असहिष्णुताथी प्रत्यवस्थान करे छे के भक्तिमां भगवद्दर्शनादि करवानां छे "यत्र हि द्वैतम् इव भवति तत् इतर इतरं पश्यति" यत्र तु अस्य सर्वम् आत्मा एव अभूत् तत् केन कं पश्येत्" इत्यादि श्रुति भेद निंदा करे छे, अन्यदर्शनादिनो निषेध करे छे. माटेशुद्धाद्वैतीयब्रह्मवादीथी भक्तिज न थइशके आ प्रथम शंका छे. समाधान सरल छे. " यत्र हि द्वैतम् " श्रुति सर्वदर्शनमात्रनो निषेध करती नथी किंतु जगदंतःपाति पदार्थमां भेददर्शननो

निषेधमात्र करे छे, लोकवेदातीत प्रपंचातीत पुरूषोत्तमना दर्शननो विधि वा निषेध ए श्रुति करती नथी. पुरूषोत्तमना दर्शनादिमां द्वैत पण आवीजतुं नथी. प्रत्युत "सवा एष एवं पश्यन् एवं मन्वानः एवं विजानन्" श्रुति स्पष्ट दर्शनादिप्रतिपादन करे छे. "सदा पश्यंति सूरयः" इत्यादि पण सूरिकृत, विद्वत्कृत, भक्तकृत, नित्यदर्शननुं समर्थन करे छे. "मन्मनाः भव मद्भक्तः मद्याजी मां नमस्कुरु" इत्यादि श्रीमुखवाक्य पण दर्शनयजनादि-भक्तिनुं पोषण करे छे. माटे ब्रह्मभावानंतर पण भगवद्दर्शनादि करवां एम वैदिकसिद्धांतडिंडिम छे. ब्रह्मभावानंतर पण निर्गुण-पराभक्ति एज अत्र अद्भुत माहात्म्य छे.

द्वितीय शंका ए छे के "सः अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" श्रुति ब्रह्मसह सर्वकामाशन, सर्वकामोपभोगनी आज्ञा करे छे. कामोपभोग सगुण छे माटे भक्ति अने तत्सेव्य पुरुषोत्तम सगुण छे, निर्गुण नथी, निर्गुणमां कामाशन संभवतुं नथी. आशंकानो परिहार कैमुत्यन्यायथी सहज छे. "ब्रह्मवित् आप्नोति परम्" श्रुतिनुं विवरण "सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म यः वेद निहितं गुहायाम् परमे व्योमन् सः अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" श्रुति करे छे. एम तो "तदेषाऽभ्युक्ता" एवीजानी संमति आपिने श्रुतिज सिद्ध करे छे. हवे विचारवुं जोइ ए के "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" एश्रुतिमां ब्रह्मज्ञान परप्राप्तिनुं साधन लख्युं छे, ज्यां परप्राप्तिनुं साधन ब्रह्मज्ञान निर्गुण छे, त्यां तत्साधनसाध्य परप्राप्ति, अने तेपर-पुरुषोत्तमसह सर्वकामोपभोग निर्गुण होय एमां तो आश्चर्यज शुंछे? माटे भक्ति परा छे, निर्गुण छे, पुरुषोत्तम पण निर्गुण छे, सगुण नथी, प्राकृतगुणमय नथी. ब्रह्मभावनो संपूर्ण अनुभव थयापछी पण सर्वकामोपभोग अने ते पण निर्गुण सर्वथा गुणातीत, एज भगवल्लीलानुं वैचित्र्य.

केटलाक द्वैती असंभावनाथी प्रत्यवस्थान करे छेके द्वैतविना भक्ति संभवेज नहि ब्रह्मवादी शुद्ध अद्वैती छे माटे सेव्यसेवकभाव ब्रह्मवादमां घटे नहि, ए तेनी शंकानुं मूळ छे. समाधान परम ऋजु छे. "माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतः अधिकः स्नेहः भक्तिः इति प्रोक्तः" ए प्रमाणवाक्य द्वैतीने पण शिरसा माननीय छे. माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह ते भक्ति एम कह्युं एटले माहात्म्यज्ञानसिवाय सुदृढ सर्वतोधिक स्नेहभक्तिनो संभवज नथी एम एवाक्यनुं स्पष्ट तात्पर्य छे, पूर्ण माहात्म्यज्ञान शुद्धाद्वैतीविना कोइने पण संभवतुंज नथी, वत्साहरणलीलामां जेम वत्स, गोप, तेनां अवयवो, स्वभाव, गुण, आकृति, विहार, यष्टि, वेत्र, वेणु, शिक्य अने भांडादिसर्वरूप श्रीकृष्ण थया हता त्यां से-

सेवकभाव अने भोक्तृभोग्यभाव (सर्व श्रीकृष्णरूप हता छतां) रह्यो हतो,, अने तेथीज ब्रह्माजीजेवा पण मोहित थइगया हता, तेवीजरीते जीवरूप, जडरूप सर्व ब्रह्म छे, सर्वधर्मविशिष्ट पूर्णब्रह्म अनेकस्वरूपे अनेक विहार स्वेच्छामात्रथी करे छे, ते छतां ते शुद्धाद्वैतना स्वरूपने जाण्यावगरज शंकाकरी ब्रह्ममां अने ब्रह्मना धर्ममां, इयत्ता आणीमुके छे, माहात्म्यहानि करे छे, ब्रह्मना अनियतधर्मवादपूर्वक निःसीम, अगाध, अनवगाह्य, माहात्म्य तो शुद्धाद्वैतमांज छे, शुद्धाद्वैतव्यतिरिक्त कोइ पण मार्गमांज नथी एटले माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह–भक्ति शुद्धाद्वैतब्रह्मवादमांज संभवे छे.

हवे कोइपण जातनुं प्रत्यवस्थान रह्युं नहि. भक्तिनुं अखंड पूर्ण साम्राज्य प्रतिपादन थयुं. भक्ति उत्कृष्टोत्कृष्ट फळ छे एटलुंज नहि पण सर्वजनीन साधन छे माटे प्रज्ञावान् पुरुषो सदासर्वदा भक्तिनोज आदर करी, प्रभुने स्वात्मार्पण करी, रसप्रफुल्लित रहे छे. कृपाविशेषथी शुद्धस्वतंत्रमार्गमां प्रवेश थयो न होय, वा कर्म, उपासना, शुद्ध अद्वैतज्ञान, नवधा वा दशधा भक्तिरूप वैदिक साधन अत्यंत कठिनलागतां होयतेवा जीवोए पण "सर्वधर्मान्परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज" सर्वधर्मनो परित्याग करी आधिदैविक उत्तमोत्तम धर्मस्वरूपनीज प्रतिपत्ति करवी-एवा शरणथकी, हे कृष्ण ! हुं आपनो छुं, एम परम आर्तिथी दीन थई, आर्द्रार्द्र थई, निरंतर भावनाथकी पण अनेकजीवने परमफळनी वास्तविक आशंसा छे. एथीज सहज उत्तमोत्तमफळनो अनुभव थईजाय छे. जीव आनंदपरिपूर्ण थइजाय छे. शुद्धाद्वैतज्ञानीने पण क्वचित् मोहसंभव होय परंतु शरणे गयला जीव मायातरण करीदे छे. "माम् एव ये प्रपद्यंते मायाम् एतां तरन्ति ते." "कौंतेय! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति" एम श्रीमुखनी प्रतिज्ञा छे, माटे सदासर्वदा शरणभावनाज कलिकाळमां उत्तमोत्तम साधन जणाय छे.

(१९) पुष्टिशिखर.

अत्यंत शोचनीय वात छे के अत्रत्य अने पाश्चात्य आधुनिक विद्वानोना भारतधर्मसंबंधी लेख जोतां एम प्रतीति थाय छे के एमांना एकने पण श्रीमद्वल्लभाचार्य अने तद्धर्मनुं लेशमात्र पण ज्ञान नथी. ज्ञान लेवा दरकार पण राखी नथी. आवी खेदजनक अज्ञानदशामां ते गौडपंडितो आधर्मसंबंधमां मौन वा उदासीन वृत्ति धारण करी बेसता होय तो ते पण ठीक छे, परंतु श्रीमदाचार्यवर्य अने तद्धर्मनुं पूर्ण अज्ञान छतां तत्संबंधमां अनेकानेक विचारशून्य लेख करे छे. "श्रीमद्वल्लभाचार्यवर्यना मार्गमां ज्ञानसाहित्य नथी" ए एक आक्षेप छे.

"वल्लभविलास" नामना पुस्तकना प्रथमभागमां श्रीमद्वल्लभसंप्रदायना आजपर्यंतना मुख्य मुख्य विद्वानोनां अने तद्विरचित पुस्तकोनां नाम अपायलां छे. ग्रंथनां नाममात्र वांचवाथी संतोष न पामता होय तेवा पुरुषोए मुबाईमां भा-मा-वे-भ-गट्टूलालजीनां पुस्तकालयनी झांखी एकवार करवा परिश्रम लेवो. एथी पण वधु अकांक्षा होय तो सुरतमां श्रीबालकृष्णलालजीना मंदिरमां, राजनगरमां श्रीनटवरलालजीना मंदिरमां काशीजीमां श्रीगोपालमंदिरमां, श्रीनाथद्वारामां विद्याविभागादिमां जई प्राचीनग्रंथोनुं निरीक्षण करवुं. बीजो प्रौढतर आक्षेप एवो करे छे के, "श्रीमद्वल्लभाचार्ये प्राचीनवैष्णवमार्गने विषयात्मक बनावी दीधो" श्रीमद्वल्लभाचार्यना ग्रंथनां अज्ञानसाथे "पुष्टि" शब्दना अर्थना अज्ञानपं-क्रमां आ शंकावृक्षनुं मूल छे. विषयात्मक देहेंद्रियपोषणमां तेओ ए "पुष्टि" शब्द योजीदीधेलो जणाय छे. श्रीमदाचार्यवर्ये तो "पोषणं तदनुग्रहः" ए श्रीमद्भागवतवाक्यनो आशय लइ भगवानना अनुग्रहात्मकमार्गने पोषण वा पुष्टि-मार्ग कह्यो छे. श्रीमद्वल्लभाचार्यजीना शब्दनोज अत्र उल्लेख थाय छे. "कृतिसाध्यं साधनं ज्ञानभक्तिरूपं शास्त्रेण बोध्यते ताभ्यां विहिताभ्यां मुक्तिः मर्यादा, तद्रहितानाम् अपि स्वस्वरूपबलेन स्वप्रापणं पुष्टिः इति उच्यते (अणुभाष्य ३ । ३ । २९) साधनं विना स्वस्वरूपबले-नैव कार्यकरणे हि पुष्टिः (अणुभाष्य ४ । १ । १३) , साधनक्रमेण मोचनेच्छा हि मर्यादामार्गीया मर्यादा, विहितसाधनं विनैव मोच-नेच्छा पुष्टिमार्गमर्यादा (अ-भा-४ । २ । ७), पुष्टिमार्गः अनुग्रहैकसा-ध्यः प्रमाणमार्गात् विलक्षणः (अ.) भा. ४ । ४ । ९) मर्यादापुष्टिभेदेन वरणं द्विधा उच्यते । तत्र सहकार्यन्तरविधिस्तु मर्यादापक्षेण उच्यते पुष्टौ तु न अन्यापेक्षा (अ० भा० ३ । ४ । ४६) आ सर्व श्रीमद्भाष्य-कारनां वचनथी "पुष्टि" शब्दनो अर्थ विषयात्मक देहेंद्रियपोषण नथी एटलो तो निर्णय अत्र स्पष्ट थयोज. आवाक्योनुं विवेचन विशेष आगळ आवशे. "प्राचीन-वैष्णवमार्गने विषयात्मक बनावीदीधो" "के विषयगंधरहित करीनाख्यो" ते हवे जुओ. "विषयाक्रान्तदेहानां न आवेशः सर्वथा हरेः" (सं० नि०६ "जेमना देह विषयाक्रांत छे तेमने सर्वथा हरिनो आवेश नथी." "संसारावेश-दुष्टानां इंद्रियाणां हिताय वै । कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्नः ईशस्य योज-येत् (नि० ल० १२) गुणेषु आविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः संसा-रविरहक्लेशौ न स्याताम् (नि० ल० १३) "संसारावेशवडे दुष्ट इंद्रियना निश्चय कल्याणार्थ सर्ववस्तु भूमन् ईश, श्रीकृष्णनी छे एवी भावनाथी श्रीकृष्ण-

मां योजवी. मुरारिना गुणविषे जेमनां चित्त सर्वदा आविष्ट छे तेमने संसारविरहक्लेश नथी'' "वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो भक्तिश्च केशवे पंचपर्वा तु विद्या इयम्" (त० नि० ४८-४९) वैराग्य सांख्य, योग, तपस्, अने भक्ति एम पंचपर्वा विद्या छे. अत्र वैराग्यने विद्यानुं (ज्ञाननुं) एक पर्व कह्युं छे. श्रीमदग्निकुमारना प्रपौत्र श्रीमान् हरिरायजिए तो एक "कामाख्यदोषविवरण" नामनो ग्रंथज लखेलो छे. "दोषेषु प्रथमः कामः विविच्य विनिरूप्यते।यस्मिन् उत्पद्यते तस्य नाशकः सर्वथा मतः। विषयावेशहेतुत्वात् विक्षेपोत्पत्तिकारणम् रजोगुणसमुत्पन्नः रजः प्रक्षेपको मुखे" एम तेना आद्य बे श्लोक छे. "दोषमां प्रथम काम छे, तेनुं विवेचन करी विनिरूपण करवामां आवे छे, जेनामां ते (दोष) उत्पन्न थाय छे ते (पुरुष) नो सर्वथा नाश करे छे. विषयावेशनो कामदोष हेतु होवाथी कामदोष विक्षेपोत्पत्तिनुं कारण छे. कामदोष रजोगुणमांथी समुत्पन्न छे, मुखमां रजः (धूल) नंखावे छे." नित्यपाठना ग्रंथमां आ "कामाख्यदोषविवरण" ग्रंथ सुप्रसिद्धज छे. आमार्गमां भगवदीय सर्व व्रजभक्तरूप छे अने तेमणे विषयभोग कर्यो एम पण नथी. वस्त्राहरणलीलामां कात्यायनीव्रत जेओए करेल छे तेओ सर्व कुमारिकाओ (पांचवर्षनी अंदरनां) हतां अने तेओए श्रीकृष्णपति थवामाटे ज कात्यायनीनुं अर्चनकरवानुं व्रत कर्युं हतुं तेओना उपर प्रसन्न थई श्रीकृष्णे पोतानी साथे रात्रिमां रमण करवानुं वरदान आप्युं तेनेमाटे रासरमणनो उपक्रम छे. ए सर्व बाबत श्रीमद्भागवतमां सुप्रसिद्ध छे अने तेकुमारिकाओने माटेज श्रीकृष्णे वेणुनाद करेल पण बृहद्वामनपुराणमां लख्याप्रमाणे जेओने वरदान मळेल तेओने वेणुनादनुं श्रवण थतां तेओ पण आव्यां तेसमय श्रीकृष्णनुं वय ११. वर्षनुं हतुं तेथी त्यां कामवासना बीलकुल नथी ते सर्व हकीकत. "संत्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलं" इत्यादि श्रीमद्भागवतना श्लोकथी निःसंदिग्ध सिद्ध थाय छे. सर्वविषयोनो सम्यक् त्यागकरीने व्रजभक्त श्रीकृष्णना पादमूलनी आकांक्षा करेछे. "ता नाविदन्" ए श्रीसमाधिभाषाना श्लोकमां पण व्रजसीमंतिनीनो विषयनिवृत्तिपूर्वक पूर्णभाव निरूपण करेलो छे. श्रीसुबोधिनीकार स्वतःज रासपंचाध्यायीनीज कारिकामां पण एमज आज्ञा करे छे. "क्रिया सर्वाऽपि सा एव अत्र परं कामः न विद्यते । तासां कामस्य संपूर्तिः निष्कामनेहेति ताः तथा॥कामेन पूरितः कामः संसारं जनयेत् स्फुटम्। कामाभावेन पूर्णः तु निष्कामः स्यात् न संशयः ॥अतः न का अपि मर्यादा भग्ना मोक्षफलाऽपि च।अत एतच्छ्रुतौ लोकः निष्कामः सर्वथा भवेत्॥भगवच्छ-

रितं सर्वं यतः निष्काममम् ईर्यते।अतः कामस्य न उद्बोधः ततः शुकवचः स्फुटम् (सु० कारिकाः) " अत्र क्रिया सर्वं तेज छे परंतु काम विद्यमान नथी. निष्काम–श्रीकृष्णे तेमनो काम संपूर्ण कर्यो माटे ते (व्रजसीमंतिनी) निष्काम छे. कामवडे काम पूर्ण थाय तो संसारजननज स्फुट थाय. निष्कामताथी पूर्ण थयेलो काम निष्काम थाय एमां संशय नहि. तेथी कांई पण मर्यादा भग्न थई नथी. मोक्षफल आपनारी ते लीला पण तेथीज थई. माटेज आ (रासपंचाध्यायी) ना श्रवणथी लोक सर्वथा निष्काम थाय छे भगवच्चरित्र सर्वं निष्कामज कहेवाय छे एटले कामनो उद्बोध नथी माटे शुकवचन स्फुट छे." वस्तुतः व्रजसीमंतिनी सर्वात्मभावपूर्ण छे अने ए सर्वात्मभावरूप–साधननुं स्वरूपानंद फल छे माटे श्रीकृष्णे विरलभक्तोने रसात्मक, फलात्मक, भावात्मक, स्वरूपात्मक, आनंदनुं परमदान कर्युं छे. कामनो अने स्वरूपानंदनो विशेष भेद आगळ वर्णवाशे. "विक्रीडितं व्रजवधूभिः इदम् च विष्णोः श्रद्धान्वितः अनुशृणुयात् अथ वर्णयेत् यः। भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगं आशु अपहिनोति अचिरेण धीरः" श्लोकमां तो शुकदेवजी एमज आज्ञा करे छे के "जे श्रद्धान्वित पुरुष बाह्याभ्यंतररसाविष्ट-स्वरूपनुं व्रजवधूसह आ विहारनुं अनुश्रवण करे वा वर्णन करे तो तेपुरुषने भगवान्‌विषे पराभक्तिनो प्रतिलाभ थाय छे अने ते धीरपुरुष कामरूप हृदयरोगथी तत्कालज निवृत्त थइजाय छे." "परदाराभिमर्शन" शंकानुं निवारण तो " धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः" इत्यादिश्लोकथी पण श्रीशुकदेवजीए करीजमुक्युं छे. वस्तुतः कांतभावथकी पण श्रीकृष्णने भजनाराओनी बुद्धि भगवन्निष्ठ थइजइ लौकिककाम निवृत्त थइजतां तेओ स्वरूपानंदना उत्तमोत्तम अधिकारी थाय छे एज निःसीम अनवगाह्य माहात्म्य छे, एज रमणीय सिद्धांत छे. इतरमार्गमां दोपनिवृत्ति ज्ञान–भक्ति प्रभृति धर्मथी थाय छे अने आक्रमनीयमार्गमां तो दोपनीज संभावना नथी परंतु एवो कोइ अनिर्वचनीय उत्कट भाव उदय पामे छे के ज्ञान, भक्ति आदि धर्मरूप साधनथी पण हृदयमां संतोप थतो नथी साक्षात् रसात्मक धर्मिस्वरूपना अमंदसंगमविना विकलत्व अस्वास्थ्य सहज थइरहे छे सारे स्वकीयप्राप्तिमां प्रतिबंधनिवारण पण साक्षात् धर्मिस्वरूप कृपाकरी स्वकीयबळवडेज करिदे छे. सर्व कार्य, साक्षात् धर्मिस्वरूप स्वप्रमेयबळवडे आमार्गमां करिलेछे एज परम उत्कर्प छे. आ अलौकिक शृंगाररसनो प्राकृतविपयभोगसाथे संभ्रम न करवो. श्रीमद्‌भाष्यकार " ननु लोके अपि शृंगाररसभाववति पुंसि नार्यां च त्वदुक्तभावसंबंधिव्यभिचारिभावाः श्रूयन्ते सा एव सर्वत्र स एव सर्वत्र इति, एवं सति लौकिकसधर्मत्वात् न त्वदुक्तभा-

वस्य अलौकिकज्ञानादिभ्यः आधिक्यं वक्तुं शक्यम् अलौकिकविषयत्वात् लौकिकत्वम् अपि न तथा इति भवति संशयः" एम पूर्वपक्ष करीने भाष्यना साधनाध्यायना तृतीयपादना ६७ मा तत्त्वसूत्रमां विषय अने अलौकिक शृंगाररसनुं तारतम्य निरूपण करे छे. वस्तुतः लौकिक विषय, रसज नथी पण रसाभास मात्र रसशास्त्रमां निरूपण करेल छे, ते तेना दृष्टान्तथी तेवीरीतना भाववाळां भगवद्भक्तोनी (भगवान् विना विह्वल थइजवा विगेरे) रीतिनी भावना करवा माटे ऋषियोए निरूपण करेल छे, कांइ लौकिकविषयमां ऋषियोनुं तात्पर्य होवुं योग्य नथी. "लौकिकपुंसि नार्यां वा तदाभासो रसशास्त्रे निरूप्यते तद्दृष्टान्तेन भगवद्भावबद्भक्तरीतिभावनार्थं नतुऋषीणां लौकिके तात्पर्यं भवितुमर्हति" एम स्पष्ट आज्ञा छे. लौकिकशृंगारने श्रीमदाचार्यचरण रसज कहेता नथी, रसाभास मात्र कहे छे. प्राकृतशृंगाररसाभासना आधार तो आगमापायी छे, अनित्य छे; प्रीति करवी, स्नेह करवो, शृंगाररसोपभोग करवो तो ते पण अत्र नित्यपदार्थसाथेज करवो अने एवो नित्य पदार्थ श्रीकृष्णव्यतिरिक्त कोइज नथी माटे शृंगाररस तो श्रीकृष्णचंद्रमांज उपपन्न छे. प्राकृतविषयीना देह, इंद्रियादि पंचमहाभूतनिर्मित प्राकृत छे. "अवजानन्ति मां मूढाः मानुषींतनुम् आश्रितम्। परं भावं अजानंतः" "न तु माम् अभिजानंति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते" "जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यः वेत्ति तत्त्वतः" गीतावाक्यमां अलौकिकशृंगाररसना आधार जीव, देह, इंद्रिय, कर्म मानुप प्राकृत नथी एम प्रतिपादन करिने तेमां प्राकृतभाव माननारानुं च्यवन निरूपण करिने, सर्व रससामग्री दिव्य छे, अप्राकृत छे, रसप्रचुर छे, एम गीताकार समर्थन करे छे. "भावात्मकस्वरूपस्य भावात्मानः व्रजस्थिताः। सदा तदेकसहिताः तद्रूपाः न हि संशयः। तस्य सर्वैव सामग्री मंतव्या हि तथा विधा" एम महानुभावीनां वचनामृत पण एज हृदयंगमसिद्धांतनुं पोषण करे छे. प्राकृत विषयी जीव ब्रह्मनी इच्छाथी व्युचरण पाम्या छे, भजनानंदरसिकपुष्टदैवशिरोमणि जीव तो साक्षात् रसात्मकधर्मिस्वरूपना श्रीअंगमांथी प्रकट थया छे. "यम् एव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्" इत्यादि पुष्टश्रुति अत्र प्रमाण छे. प्राकृतविषयनी सर्व कृति स्वार्थमात्रपरायण होय छे, अत्र तो प्रभुसुखनीज उत्कट आकांक्षा होय छे. प्राकृत आसुरीनो कृति मात्राहिक मात्र होय छे, शृंगाररसघन उत्कृष्टोत्कृष्ट भगवदीयनी कृति–मात्र सर्वात्मभावपरिपूर्ण होय छे, प्राकृत विषयीने रोगादि उपद्रव स्पष्ट प्रतीत थाय छे, अलौकिक भगवद्रसपानकरनारने रोगादि उपद्रव कदापि पण थतो नथी." न ते पापण्डतां

यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः। महानुभावाः प्रायेण " इत्यादि वचनामृतनुं पण एमज तात्पर्य छे. " द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् " श्लोकमां प्राकृतविषयिने आसुर कहेला छे अलौकिक भजनानंद रसिक तो दैवीजीवशिरोमणि छे. "मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यः मनाक् अपि" एम मात्र भगवद्ज्ञान पूर्ण होय छे. एवा रूपपूर्ण गुणपूर्ण अनुरागपूर्ण भजनानंदरसिक भगवदीयो तो साक्षात् रसमयपुरुषोत्तमने वश करिले छे. "वशे कुर्वन्ति माम् भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा" "अहं भक्तपराधीनः हि अस्वतन्त्रः इव द्विज" एम श्रीमुखवाक्यपण भगवदीयकृत वशीकरणनुं साक्षात् प्रतिपादन करे छे. भक्तपराधीनता स्वतः निरूपण करे छे साक्षात्पूर्णपुरुषोत्तम पण एवा अनन्य भजनानंद रसिक भगवदीयना सदा सर्वदा ऋणी छे. " न पारये अहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषा अपि वः। याः मा अभजन् दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना " श्लोकमां पण भगवान् स्वतः ऋणित्व कबुल करे छे. जेमना सर्वात्मभावनी छटामात्रथी उद्धवसदृश ज्ञानी भक्त पण स्नेहविवश थइजइ " सर्वात्मभावः अधिकृतः भवतीनां अधोक्षजे, विरहेण महाभागाः महान् मे अनुग्रहः कृतः" एम प्रार्थना करे छे; " वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुम् अभीक्ष्णशः " जेमनां चरणतामरसनी रजःनुं वंदन करे छे एवां उत्कृष्टोत्कृष्ट भगवदीयनां उत्तमोत्तम सौभाग्य सर्वथा अवर्णनीय छे. प्राकृतविषयमां देश, काळ, लोक, वेदनी सर्वतः भीति रहे छे. अप्राकृत भगवत्शृंगाररसनुं पानकरनार विरल रसिकनुं सर्वथा भयराहित्य छे. " सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति " " आनंदं ब्रह्मणः विद्वान् न बिभेति कुतश्चन " श्रुति सर्वतः निरूपण करे छे. " तान् अहं द्विषतः " गीतावाक्यमां आसुरी प्रवाहिक विषयिने नरकरूप अधमाधम गति प्राप्त थाय एम प्रतिपादन कर्युं छे. रसात्मक प्रभुना अलौकिक शृंगाररसोपभोगथी लौकिक विषयवासना मात्र निवृत्त पामीजाय छे, लीलात्मक स्वरूपानंद प्राप्त थाय छे. " रसः वै सः रसं हि एव अयं लब्ध्वा आनंदी भवति " श्रुति आपनुं रसात्मकत्व प्रतिपादन करिने एरसनीज प्राप्तिथी जीव आनंदपूर्ण थाय छे एम स्पष्ट आज्ञा करे छे, प्रत्यक्ष श्रुति उत्कृष्टोत्कृष्ट फलनुं कथन करीरही छे. प्रवाहिक जीवने इच्छामात्रथीज फळ प्राप्त थाय छे. रसप्रचुरपुष्टजीवने साक्षात् रसरूप श्रीअंगमांथी सकल फल प्राप्त थाय छे. माटेज "प्रवाहे अपि समागत्य पुष्टिस्थैः न युज्यते" पुष्टजीव प्रवाहमां समागमन करे छे. तथापि पेला विषयी प्रवाहिक आसुर जीवसाथे संसर्गज राखतो नथी एवुं महावैलक्षण्य छे. श्रीमद्वल्लभा-

चार्यवर्ये प्राचीनवैष्णवमार्गने प्रावाहिक, आसुर विषयात्मक बनावी कलुषित करिनांख्यो नथी पण पुष्ट दैवशिरोमणि विषयगंधरहित विमल भजनानंद रसात्मक भावप्रचुर करिदीधो छे. श्रीमदाचार्यचरणे प्राचीन वैष्णवमार्गमांथी Sensuality नो Touch मात्र अत्यंत निवारण करी शुद्ध उत्कृष्टोत्कृष्ट रसात्मक Lyric tone आपीपुष्टिमार्गनी सप्रमाण उत्तमोत्तमता सुप्रसिद्ध करी छे. प्रावाहिक प्राकृतमार्गना जीव, देह, कृति, फल सर्वथी स्वकीयमार्गमां महद्वैलक्षण्य प्रतिपादन करी उज्वल यशःविस्तृति श्रीमदाचार्यवर्ये तो करी छे. रसात्मक लीला प्रकट करे छे तथापि श्रीमदाचार्यचरण "धर्मसेतूनां वक्ता कर्ता" अने "अभिरक्षिता" छे एज निःसीम माहात्म्य छे.

प्रावाहिक आसुर विपर्यीसृष्टिथी पुष्टिमार्गनो भेद निरूपण थयो हवे दैवी मार्यादिकमार्गथी दैवशिरोमणि पुष्टिमार्गनुं वैलक्षण्य निरुपण थशे. मार्यादिक वैदिकमार्ग ब्रह्मनी वाणीमांथी प्रकट थयो छे, पुष्टिमार्ग साक्षाद् श्रीअंगमांथी आविर्भूत थयो छे, मर्यादामार्गमां वेदोक्त फल छे, पुष्टिमार्गमां श्रीअंगमांथी फलप्राप्ति छे, मर्यादामार्गमां वेदादि "शब्द" फलप्राप्तिमां प्रमाण छे, पुष्टिमार्गमां भगवान् अथवा तत्कृत वेणुनाद "शब्द" प्रमाण छे, मर्यादामार्गमां ब्रह्म प्रमेय छे, पुष्टिमार्गमां "रसो वै सः," "यः सर्वत्र," "सर्वकामः," "सर्वरसः" श्रुतिप्रतिपादित रसरूप पुष्टपुरुषोत्तम प्रमेय छे, मर्यादामार्गमां ज्ञान, भक्ति, साधन छे, पुष्टिमां विप्रयोग रसात्मक सर्वात्मभावप्रदान साधन छे; मर्यादामां प्रायः सायुज्य फल छे, अत्र साक्षाद् भगवाननुं अधरामृत फल छे.

मर्यादामार्गना संन्यासमां वैराग्यथी अधिकार थाय छे; पुष्टिमार्गमां कृष्णसेवा-वडे संसिद्ध विप्रयोगात्मक स्वरूपविषे सेवात्मक अनुराग संन्यास साधन छे. मर्यादामार्गीय संन्यासमां श्रवण, मनन, निदिध्यासन, करवानुं छे, चित्तने अस्वास्थ्य थईजाय; माटे एकत्र अवस्थिति पण तेसंन्यासमां नथी, विरहभावमां बाधकएवा पुष्टिमार्गीयसंन्यासमां श्रवणादिनो पण निषेध छे, अप्राकृत विकलत्व अने अस्वास्थ्य एज पुष्टिमार्गीयनो सहज स्वभाव छे एटले निरोधस्थलथकी एकत्रज अवस्थिति छे. मर्यादामार्गीय संन्यासिने मनःप्रसादसिध्यर्थ पृथ्व्यटन करवानुं छे पुष्टिमार्गमां विशेष अस्वास्थ्यजनक पदलीलादि दर्शनार्थेज अटन छे. मर्यादामार्गमां देहरक्षार्थ भिक्षाटन छे; अत्र विप्रयोगानलवडे देहपातार्थ सर्व समुद्यम छे एटले देहरक्षार्थ भिक्षाटन पण न रह्युं. मर्यादामार्गमां श्रीकृष्णमाहात्म्यप्रतिपादक-वेदांतश्रवण करवानुं छे. तेवडे संसारदुःखव्यावर्तन थईजाय छे, आत्मसुख प्रकर्षवडे सिद्धथाय छे; पुष्टिमार्गमां माहात्म्यबोधकवेदांतश्रवण पण नथी, अत्र(भग-

वानना विरहनी भावनामां) तो ज्ञान पण स्वास्थ्यजनक होवाथी बाधक छे. मर्यादामार्गमां संन्यासिना केटलाएक धर्म पण निरूपण करेला छे, पुष्टिमार्गना संन्यासमां कोई पण धर्मनुं निरूपण नथी, साक्षात् पुष्टिमार्गना स्वामी "सर्वधर्मान्परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज" एम श्रीमुखवडे सर्वधर्मपरित्याग प्रतिपादन करे छे, मर्यादामार्गमां कषायवेष पण संन्यासनुं अंग छे, अत्र संबंधियोथी बंधमात्रनिवृत्त्यर्थज वेषधारण करवामां आवे छे. मर्यादामार्गमां मोक्षनी आकांक्षा होय छे, अत्र मोक्षनी पण वांछना नथी, मात्र श्रीहरिनीज वांछना छे, केटलाएक केवल विप्रयुक्तीने तो ते वांछना पण नथी, मर्यादामार्गीयसंन्यासमां प्रतिबंधनी पण भीति रहे छे, अत्र साक्षात् श्रीकृष्ण पण प्रतिबंध करिशकता नथी तो इतर कोई प्रतिबंध क्यांथी ज करिशके? मर्यादामार्गमां प्रणवमंत्रनुं ध्यान, उच्चारण छे, अत्र तापात्मक विप्रयोगक्लेश मात्रनी भावना छे, त्यां बहिः लीलानुभव थाय छे, अत्र सर्व अनुभव आंतर थाय छे पुष्टिमार्गीय संन्यास केवल अनुग्रहातिशयसाध्य छे, जीवकृतिसाध्य नथी एज महत् वैलक्षण्य छे..

जीवने श्रीकृष्णसंबंध एज भक्तिमार्गमां विमोचन कहेवाय छे. एमोक्ष द्विप्रकारक छे, एक जीवकृत अने द्वितीय भगवत्कृत. मार्गनिष्ठतावडे क्रमशः जीवने कृष्णसंबंध थाय, परमानंदमां प्रवेश थाय तेनेज सायुज्य कहे छे, स्वतः श्रीकृष्ण जीवमां प्रवेश करे ते मुक्ति सद्योमुक्ति कहेवाय छे, एमां कांई पण साधन नथी; अत्यंत कृपावडे स्वप्रमेयबलथी श्रीकृष्ण जेक्षणमां जीवविषे प्रवेश करे छे तेज क्षणमां (प्रवेशक्षणमांज) मुक्ति थईजाय छे, लीलामध्यपात थईजाय छे, पूर्वमार्गमां जीवने भगवत्प्राप्ति थाय छे, पुष्टिमार्गमां भगवान्ने जीवनी प्राप्ति थाय छे!!!

भक्तिद्विप्रकारक छे. एकचरणांबुजनी भक्ति अने द्वितीय मुखारविंदनी भक्ति. प्रथमभक्ति शीतल छे कारण श्रवणकीर्तनादिवडेज तेभक्तिमां मुखसंबंध थाय छे, ते भक्ति नारदादिने सुलभ छे, द्वितीयभक्ति तो दुर्लभ छे, कारण श्रीकृष्णना अधरामृतनुं सेवन छे, गोपसीमंतिनीना भावभावनारूप विरहानुभवात्मक ते प्रचुर उत्कट भक्ति छे अने एनुं दान हरि स्वतः प्रमेयबलथकीज करे छे. एक भक्ति वेदसिद्ध छे, द्वितीय भक्ति स्वतंत्र छे, उपनिषदुक्त भेदबोधक सृष्टिकर्तृत्वादिवाक्यवडे, माहात्म्यज्ञानभाववडे, एक भक्ति थाय छे, "मैवं विभो अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं" इत्यादि सर्वभावनिरूपक सृष्टिवाक्यवडे पुष्टिभक्तिमां तो माहात्म्य छे, "गतिस्मित" इत्यादिवाक्यनो अभेदभावबोधन पुष्टिमार्गमां छे, पूर्वमां सायुज्य फल छे, अत्र साधनरूप उभये छे, मर्यादामार्गमां फला-

पेक्षा छे, फलनी अत्र निरपेक्षता छे. मर्यादामार्गीय पुरुषोत्तमथी पण पुष्टि-मार्गीय पुरुषोत्तम विलक्षण छे. ते स्वरूप धर्मरूप छे पुष्टिमार्गीय स्वरूप धर्मिस्वरूप छे. मर्यादापुरुषोत्तम "दाक्षिणांग" छे, पुष्टपुरुषोत्तम "वामांग" छे. मर्यादापुरुषोत्तम "निहित" छे. आ साक्षात् छे, मर्यादा-पुरुषोत्तमनुं स्थल अक्षरात्मक व्यापिवैकुंठ छे, आ पुरुषोत्तमनुं स्थल तो श्रीमद्गोकुल छे. "तानि परे तथा हि आह" तत्त्वसूत्रमां सूत्रकार श्रीमद्गो-कुलनुं व्यापिवैकुंठथी परत्व (उत्कर्ष) प्रतिपादन करे छे. मर्यादापुरुषोत्तम व्यापि-वैकुंठमां लक्ष्मीजी साथेज लीला करे छे. एटले व्यापिवैकुंठमां लक्ष्मीजीनुं स्वातंत्र्य छे; पुष्टिपुरुषोत्तम तो श्रीमद्गोकुलमां व्रजमां, लक्ष्मीजीथकी उत्कृष्ट अनेकभक्त-साथे नित्य विहार करे छे. एटले लक्ष्मीजी व्रजमां सदासर्वदा भगवत्संगमाकां-क्षाथी दास्यभक्ति कर्याकरे छे, इतर पालिकाशक्तिरूप लक्ष्मीजीनो तो व्रजली-लामां प्रवेश पण नथी, मर्यादामार्गीय पुरुषोत्तमना अधिकारी शुद्धाद्वैतज्ञानी भक्त छे, आ पुरुषोत्तमना अधिकारी स्वतंत्र रसिकभक्त छे. मर्यादापुरुषोत्तमना अधिकारीनो पूर्व अक्षरब्रह्ममां लय थाय छे, पुनः तेमांथी उद्धार थाय छे; पुष्टभग-वदीयोनो तो लय पण कदापि थतो नथी, उद्धार पण थतो नथी, जेम पुष्टपुरु-षोत्तम स्वयं प्रकटथईने लीला करे छे. तेमज अत्यंत अनुग्रहवडे स्वांतःस्थित भक्तने पण प्रकट करिने तेना स्नेहातिशयवश थईजई स्वलीलारसानुभव करावे छे. मर्यादामार्गमां पापक्षयपछी, शुद्ध थयापछी भक्तिनो अधिकार थाय छे, पुष्टभगवदीय सदासर्वदा शुद्ध छे, मर्यादामार्गमां ज्ञानादिनुं पण सहकारित्व छे, पुष्टिमार्गमां भक्तिनिरपेक्ष, अन्यसहकारिनिरपेक्ष स्वतंत्र छे; स्वेच्छामात्रथी कोइ भगवदीयने सगुणदेहदान कदापि करे तथापि तेसगुणदेहादिनो नाश तज्जीवकृतसाधनथी, (कर्म, ज्ञान, भक्तिथी,) थईशकतो नथी पण पुष्टपुरुषोत्तम धर्मिस्वरूप स्वकीयप्रमेयबलवडेज स्वदत्तसगुणदेहादिनो नाश करी, निरोधदान करे छे, माटेज सूत्रकार "अत एव च अनन्याधिपतिः" एम सूत्र योजे छे. "नायम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यः" "केवलेन हि भावेन गोप्यः गावः खगाः मृगाः" "न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयः भवेदिह" इत्यादि फलमार्गीय वाक्यनो पण आशय एज छे.

विहितमार्ग-वैदिकमार्ग-आर्यमार्ग-साधनमार्ग-प्रमाणमार्ग इत्यादिअभिधानथी प्राचीन सनातन मर्यादामार्ग सुप्रसिद्धज छे, कलिकालमां मायावादआदि विप-रीतवादध्वांतथी ते सनातनमार्ग कलुषित थयो हतो तेथी श्रीमद्वैश्वानराचार्य-वर्ये प्रकट थई, मायावादादिध्वांतनुं, भाष्यद्वय, सुबोधिनी, निबन्ध, तत्त्वदीपवडे-निराकरण करी, सनातनप्रमाणमार्ग पुनः भूतलमां प्रकाशित कर्यो, अविहित मार्ग, स्वतंत्रमार्ग-भजनानंदरसमार्ग-कृपामार्ग-निःसाधनमार्ग-फलमार्ग-प्रमेयमार्ग-

निरूपधिस्नेहमार्ग इत्यादिअभिधानथी अतिप्रसिद्ध पुष्टिमार्ग प्रमाणमार्गथी अत्यंतविलक्षण छे.

हवे पूर्वोल्लिखित पुष्टिवैलक्षण्यबोधक भाष्यवाक्य सुस्पष्ट थईजशे. कृतिसाध्य (जीवनी स्वकीयकृतिथीसाध्य) ज्ञान-भक्तिरूप साधन शास्त्रमां जणावेलां छे, तेसाधनवडे मुक्ति ए मर्यादा, शास्त्रोक्त-ज्ञानभक्तिसाधनरहितजीवने पण भगवान्, स्वस्वरूपबलथी स्वप्राप्ति कराविले ते पुष्टि कहेवाय छे, साधनविना, (जीवकृतसाधनविना,) स्वरूपबलवडेज भगवान् कार्य करे, जीवनुं सकल कार्य सिद्ध करे, ए पुष्टि, साधनक्रमवडे मुक्तीच्छा मर्यादामार्गीयमर्यादा छे, विहित-वैदिक-साधनविनाज मुक्तीच्छा पुष्टिमार्गीयमर्यादा छे, पुष्टिमार्ग अनुग्रहमात्रसाध्य छे, प्रमाणमार्गथी विलक्षण छे, मर्यादा अने पुष्टि एम बेभेदथी अंगीकार बेप्रकारना कहेवाय छे, तेमां अन्यसहकारिनी जे अपेक्षा ते मर्यादापक्षमां, पुष्टिमां तो अन्यनी अपेक्षाज नथी, "संकल्पादेव तच्छ्रुतेः" "स्वामिनः फलश्रुतेः इति आत्रेयः" इत्यादि तत्त्वसूत्रनो पण एज उत्कृष्ट सिद्धांत छे. "सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज" इत्यादि श्रीमुखवाक्यनुं पण स्वारस्य हवे सहज लक्षमां आवशे. सर्वधर्मनो परित्याग करिने स्वरूपात्मक धर्मिस्वरूपने शरणे जवानोज एमां उत्तमोत्तम उपदेश छे.

आसुर, विषयात्मक, प्रवाहमार्गथी तेमज कर्म-उपासना-शुद्धाद्वैतज्ञान-भक्त्यात्मकदैवीमर्यादामार्गथी पण अनुग्रहात्मक पुष्टिमार्ग अत्यंत पृथक् छे एम प्रतिपादन थयुं, हवे पुष्टिमार्गना स्वरूपनुं विशेष दर्शन करीये. जेमार्गमां फलप्राप्ति थवामां निःसाधनताज साधन छे, जेमार्गमां फल छे, ते साधन छे अने साधन छे तेज फल छे, तेने पुष्टिमार्ग कहे छे. जेमार्गमां लौकिक अने वैदिक सिद्धि अनुग्रहवडेज थयाकरे छे, यत्नवडे नहि, ते मार्ग पुष्टिमार्ग कहेवाय छे, "अनन्याः चिंतयतः मां ये जनाः पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहामि अहम्" एम श्रीमुखनीज प्रतिज्ञा छे. तात्पर्यज्ञानपूर्वक जेमार्गमां स्वरूपमात्रपरता छे, जेमां साक्षात् धर्मीस्वरूपपरज अनन्य निष्ठा छे, धर्मस्वरूपपर निष्ठा नथी तेमार्गने पुष्टिमार्ग कहे छे. जेमार्गमां अंगीकारकरवामां योग्यतादिविचार नथी, कोईप्रकारनो प्रभुकृत विलंब नथी ते पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. ज्यां प्रभुकृतिमां कांई पण गूढदोषविचारणा नथी, प्रभुकृतिमां ज्यां सर्वत्र उत्तम ज्ञान छे, तेने पुष्टिमार्ग कहे छे. "जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यः वेत्ति तत्त्वतः" इत्यादिनुं स्वारस्य पण एमज छे. जेमार्गमां सर्वथा लोकवेदनी अपेक्षा नथी. श्रीकृष्णना सुखमात्रनीज अपेक्षा छे ते मार्ग पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. "त्रैगुण्यविषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यः भव अर्जुन" इत्यादिमां पण एज गूढ तात्पर्य छे. अंगीकार करवामां, जेमार्गमां, प्रभुने अणुमात्र पण स्वार्थ नथी, केवल निजेच्छा-

थीज वरण करे छे तेमार्गने पुष्टिमार्ग कहे छे, ज्यां आविर्भावनी पण अपेक्षा नथी, भक्ति स्वतंत्र छे, सानुभावस्वरूप छे, ते पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. जेमार्गमां भावोद्रेक एटलो उत्कट-प्रचुर- छे के लोकथी पण भय नथी, वेदथी पण भय नथी, प्रभुव्यतिरिक्त सर्व बाधक छे एम स्फूर्ति थाय छे तेने पुष्टिमार्ग कहे छे. "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" "एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानाम्" "आनंदं ब्रह्मणः विद्वान् न बिभेति कुतश्चन" इत्यादि पण एज समुत्कृष्ट सिद्धांत प्रतिपादन करे छे. ज्यां स्वरूपसंबंधज साधन छे, स्वरूपसंबंधज फळ छे, अने ए संबंध पण ज्यां स्वेच्छामात्रथीज थाय छे, तेने पुष्टिमार्ग कहे छे. इतरत्र मोक्ष फळ छे, अत्र मोक्षविरुद्ध बंध, संबंध, सम्यक् बंध फळ छे; फळ छे एटलुंज नहि पण साधन पण ते संबंधज छे. ! ! ! ज्यां तत्संबंधीमां तद्भाव छे, तद्विरोधीमां विरुद्ध भाव छे, उदासीनमां समभाव छे ते पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. विद्यमानदेहादिनी पण जेमार्गमां स्वीयत्वेकरीने भावना नथी, परोक्षमां पण तदर्थित्व छे तेमार्गने पुष्टिमार्ग कहे छे. जेमां सेव्यस्वरूपना भजनमां कोईप्रकारनी कचित् उपकृति नथी, भावमात्रनुंज पोषण छे, ते मार्ग पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. जेमार्गमां फळदानथी प्रभु भजननो अपवाद करता नथी, तेने पुष्टिमार्ग कहे छे. ज्यां सर्वलीलानुभाव होवाथी विप्रयोगमां संयोगकरतां विशेष सुखसंबंध थाय छे ते पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. ज्यां फळ अने साधनमां सर्वत्र विपरीतभाव छे, साधनज फळ छे तेमार्गने पुष्टिमार्ग कहे छे. जेमार्गमां भगवत्संबंधकृति होवा छतां पण दैन्योद्भावार्थ सदासर्वदा पश्चात्ताप तापात्मक क्लेश थयाकरे छे ते मार्ग पुष्टिमार्ग कहेवाय छे. जेमार्गमां हृदयस्थप्रभुना बहिःप्राकट्य थवामां सापेक्ष एवुं दैन्यज साधन छे, विप्रयोगजन्य दैन्य फळ छे तेने पुष्टिमार्ग कहे छे. "विषयत्वेन तत्त्यागः स्वस्मिन् विषयतास्मृतेः यत्र वै सर्वभावेन पुष्टिमार्गः स कथ्यते"

आपुष्टिमार्गना पण मिश्र अने शुद्ध एम बे प्रकार छे. प्रवाहमिश्रित, मर्यादामिश्रित अने पुष्टिमिश्रित एम मिश्रना पण त्रण भेद छे. शुद्धमिश्रादिभेदमां भगवद्विचारज बलिष्ठ छे. विविधरसभावप्राकट्यार्थ तेवां तेवां वैचित्र्य अंगीकार करे छे. "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" तत्त्वसूत्रनी पण एज रसिक अभिसंधि छे. शुद्धअने मिश्र पुष्टभक्तनो साधनदशामां पण साक्षात् धर्मीसाथेज संबंध होय छे. प्रावाहिक विषय वा मार्यादिक कर्म, उपासना, ज्ञान विहितभक्ति, कांई ए सर्वने सोहातुं नथी. आ शुद्धमिश्रभेद भगवद्रसनिष्पत्त्यर्थज छे. एटले उभये पुष्टभक्तने रसनिष्पत्तिप्रयोजन समान छे. प्रवाहमिश्रित पुष्टभक्त क्रियासक्त होय छे; श्रीमद्व्रजभूमिआदिस्थलमां तीर्थपर्यटनआदि अनेकानेक क्रिया करावी भगव-

द्रसमाकट्य करवुं एम ए प्रवाहमिश्रितपुष्टभक्तपरत्वे भगवदिच्छा होय छे. मर्यादामिश्रित पुष्टभक्त गुणज्ञ होय छे, भगवद्धर्ममां तेमनी रति होय छे, गुणगान करी काळनिर्गमन करे एम आमर्यादामिश्रितपुष्टभगवदीयपरत्वे भगवदिच्छा होय छे. "तव कथामृतं तप्तजीवनं" श्लोकमां गुणगानादि भगवद्धर्मनुं भगवत्साम्य सुस्पष्ट निरूपण करेलुंज छे. आभक्तनी प्रायः अत्यागदशा होय छे. क्वचित् मानसत्यागदशा पण होय छे. " हृदयस्थ पूर्णप्रभु स्वगुणश्रवण करीने एभगवदीयोने स्वरूपानंदमां प्लाव करावे छे. " हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् " वचनामृतनो पण एमज आशय छे. केटलाक आप्रकारना भगवदीयनो साक्षात् पुरूषोत्तममां भगवदिच्छाथीज सायुज्य लय पण थाय छे, पुनः रमणावसरमां प्रकट करी परिपूर्ण दान करे छे. " विष्णोः पदे परमे मध्वः उत्सः ", " विष्णोः सुमतिं भजामहे " प्रभृति श्रुति-प्रतिपादित साक्षात् परमसुंदर पुष्ट धर्मिस्वरूपने स्वकीय देह, प्राण, इंद्रिय, अंतःकरण, तद्धर्म, दार, आगार, पुत्र, आप्त, वित्त, सर्वआत्मा सहसमर्पणकरी, प्रभुविनियोगमां ते ते वस्तु ले छे, वेदादिना अविरोधथी आ भगवदीय निरंतर भगवत्सेवा करे छे, मकरंदपानकरी कृतार्थ थाय छे. प्राणेशना गुणगान करी निरुपधि कृपानंदसुधानो आस्वाद करे छे. पुष्टिविमिश्रित पुष्टभक्त सर्वज्ञ होय छे. रसात्मकस्वरूपना सर्व अभिप्राय जाणे छे. पुष्टिमार्गनुं तत्त्व अतिसूक्ष्म छे, दुर्ज्ञेय छे, पुष्टिमर्यादानुं पण अतिक्रमण करीने पुष्टमिश्रित पुष्टिमार्गमां प्रवेश करे छे त्यारे अनुभव थईशके छे, एमार्गमां प्रवेशज अत्यंत कठिन छे; अतिशय अनुग्रहविना थईशकतोज नथी. एमार्गनो उपदेश पण थईशकतो नथी. ब्रह्मविद्वत् स्वास्थ्य होय तो उपदेश थईशके पण आ रसिक भगवदीयने तो विरहदशा अने संगमदशा ए बेज दशा छे. विरहदशा अतिदुःसह छे. सर्वभावनुं तेदशामां उपमर्दन थाय छे माटे उपदेश संभवतो नथी. संगमदशामां प्रभु समीप विराजे छे, एटले उपदेश संभवतो नथी. एवाकोटिमां विरल रसिक भगवदीय यथातथा स्वकीयकाल निर्गमनार्थज बे अक्षर आज्ञा करीदे तो तेमांथी पण आधुनिक उत्कृष्टोत्कृष्ट अधिकारीने निःसीम लाभ थईजाय छे. पुष्टमिश्रित पुष्टभक्तने प्रभु संन्यासवरणरूप दान करे छे. साग आभगवदीयने सदासर्वदा पृष्ठलग्न होय छे, भावभावनामांज सदासर्वदानिमग्न होय छे. " विकलत्व " अने " अस्वास्थ्य " एमनो स्वभाव होय छे. " ज्ञानं गुणाश्च तस्य एवं वर्तमानस्य बाधकाः " एश्लोकमां एभगवदीयनी दशानुंज वर्णन छे. प्रभु कदापि आभगवदीयने स्वास्थ्यदान करताज नथी. शुद्धपुष्टभक्तमां प्रेमसिवाय इतर कांई होतुं नथी. " शुद्धाः प्रेम्णा अतिदुर्लभाः " आ शुद्धपुष्ट रसिकभगवदीय अतिदुर्लभ छे, अतिविरल छे. एमार्गमां प्रियतमसंगमसंजातहास्यरूकस-

लिलवडे स्नान छे; प्रियना तांबूलचर्वितथी अभ्यवहार छे, करूणाकृतस्मितावलोकवडे पान छे, चरणारविंदमां प्रणतिरूप त्रिपवण छे, प्रकृष्टदैन्यवडे सम्यक् ध्यान एज संध्या छे, तापक्लेशयुक्त विगाढभाववडे नामकीर्तन एज जप छे, अस्तंगच्छत्सूर्याग्निमां दिवसदुःख होमे छे, प्रियवार्ताकथन ब्रह्मयज्ञ छे, मनोरथसिद्धिद्वारा सर्वेंद्रियनुं आप्यायन तर्पण छे, रस एज जीवन छे, रस एज एमनुं अंग छे, रस एज एमनी संपत्ति छे, निरुपधिस्नेहविना एक क्षण पण एमने रूचतुं नथी, "वैष्णवत्वं हि सहजम्" अंतर्बाह्यरसाविष्टत्व एज एमनो स्वाभाविक धर्म छे, "त्रुटिर्युगायते त्वाम् अपश्यताम्" रसात्मक प्राणेशना प्रकट दर्शनविना पल युगसम लागे छे, प्रभु पण कामभोग समर्पणकरवाने क्रीडा करे छे, क्रीडामां पण विजयेच्छा करे छे, भक्तसह व्यवहार करे छे, भक्तने स्वमाहात्म्यादिद्योतन करे छे, भक्तनी स्तुति करे छे, भक्तने मोददान करे छे, भक्तने भक्तिमद संपादन करे छे, स्वप्नमां सुरतनाथनां दर्शन थाय माटे स्वप्रदान करे छे, भक्तनी कांति करे छे, भक्तसमीप जई विराजे छे. "दिवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा कस्य नो भवतीति वा यः देवः", "दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकांतिगतिषु" एम निरुक्त अने धातुपाठप्रतिपादित "देव" शब्दना अर्थ आ रसिकभगवदीओने प्रकट करे छे.

जेम रसात्मक पुष्टपुरुषोत्तम लोकमां प्रकटथईने लीला करे छे तेम अत्यंत अनुग्रहवडे स्वांतःस्थितभक्तने पण प्रकटकरीने तेना स्नेहातिशयथी तद्वशथईने स्वलीलारसानुभव करे छे. ए भगवदीय पुष्टपुरुषोत्तमसाथे सर्व कामभोग करे छे. शुद्धमिश्रादिभेद पण विविधरसनिष्पत्त्यर्थज छे. साधनदशामां पण शुद्ध अने मिश्र उभये पुष्टभगवदीयनो संबंध साक्षात् धर्मीस्वरूपसाथेज छे ए सिद्धांतनुं विस्मरण थवुं न जोईये. रसशास्त्रोक्त दृक्भंग, मनःसंग, संकल्प, जागर, कृशता, रति, ह्रीत्याग,उन्माद, मूर्छा, अंतपर्यंत दश दशामां पूर्णप्रेम, आसक्ति, व्यसन सिद्धकरी, निरोधरूप व्यसनात्मक मानसीसेवापर्यंत विप्रयोगरसदान करी, पुष्टभक्तमात्रनो प्रभु लीलामध्यपात करे छे. एवा लीलामध्यपाती भाग्यवान्ने आप प्रथम निरुपधि स्नेहरूप सर्वात्मभाव दान करे छे. परम सुभग अत्यंतकृपापात्रने अभीष्ट सर्वात्मभाव केवळ अनुभवैकवेद्य होवाथी कोइ पण रीतिथी तेसर्वात्मभावनुं ज्ञान न बनीशकवाथी, स्वसाधनसाध्य न होवाथी, प्रमेयबळथी कृपाकरी प्रभुज प्रदान करे छे. सूत्रकार पण एवीज रसिकअभिसंधिथी "प्रदानवत् एव तत् उक्तम्" एम तत्वसूत्र योजे छे. उक्त भक्त सदैव परमसुकुमार आर्द्रार्द्र परमार्त अतिविगाढविप्रयोगमहारसाब्धिनिमग्न होवाथी स्वरूपप्राप्तिविलंब सहनकरीशकतां नथी, स्वरूप अतिरिक्त तेने कांइ स्फूर्तिज रहेती नथी, चेतनाचेतनविवेकरहित विविध अन्वेषण करे छे, गुण-

गान करे छे, तथापि स्वरूपस्पर्श थतो नथी त्यारे स्वाशक्यत्व जाणीने, स्वसाधनवैफल्य मानीने, अतिदीन थइजाय छे. सहजस्नेहजन्य विविध भाववान् थइजाय छे. "हा नाथ! रमण! प्रेष्ठ! क्व असि क्व असि महाभुज!" एम रसात्मकप्रभुसंगमार्थे तापक्लेश करे छे, विकळ बनीजाय छे, अस्वस्थ थइरहे छे. ब्रह्मानंदाधिक-पूर्णानंद-स्वरूपना विप्रयोगथी मरण आसन्न थइजाय छे. नीलांबुदश्याम हृदयमांथी अपगम करे तो सारूं एम पण अतिविरहक्लेशथी भावना थईआवे छे. छतां अपसरण थईशकतुं नथी. नीलांबुदश्याम आकाशरूप थईने आपपण रसनुंज पोषण करे छे. "रसो वै सः रसं हि एव अयं लब्ध्वा आनंदी भवति कः हि एव अन्यात् कः प्राण्यात् एष आकाशः आनंदः न स्यात् एष हि एव आनन्दयाति" प्रभृति रसभरश्रुतितुं आज मर्म छे. एवा परमपूर्ण विरहीभाग्यवान्नां देहादि साक्षाल्लोलोपयोगी थईजाय छे. भगवच्चरणरजवडे एभगवदीयनुं नवीन श्रीअंगप्राप्त थाय छे. एना अन्नरूप आप थाय छे, एना प्राणरूप आप थाय छे, एनी वाणीरूप आप थाय छे, एनां नेत्ररूप आप थाय छे, एनां श्रोत्ररूप आप थाय छे, एनां मनरूप आप थाय छे, एनी त्वचारूप आप थाय छे, विशेष शुं, एना आत्मारूप पण आप थईने रहे छे!!! एना अन्नमां अन्नमय प्रवेश करे छे; प्राणमां पण तेमज. ज्ञानेंद्रियमां विज्ञानमय प्रवेश करे छे. विप्रयोग एटलो बधो प्रचुर थईगयो छे के ज्ञानादि सर्व तिरोधान थईजाय, संगमरसनो पण त्यार पछीथी अनुभवज न थाय, एम न थाय माटे रसात्मकप्रभु स्वतः पोते तेभगवदीयना अनुभवात्मा थईने ज्ञानेंद्रियमां विज्ञानमयस्वरूपथी प्रवेश करे छे. मनमां मनोमयथी प्रवेश करे छे. जीवमां साक्षात् "आनंदमय" प्रवेश करे छे. ए सुखस्वरूप पूर्णविप्रयोगरसनुं दिग्दर्शन करतां "यो वै भूमा तत् सुखम् न अल्पे सुखम् अस्ति भूमा एव सुखम् भूमा तु एव विजिज्ञासितव्यः' आज्ञा करे छे के जे भूमा ते निश्चय सुख, जे भूमा ते निश्चय सुख, ज्यां अन्यदर्शन नथी, अन्य-श्रवण नथी, अन्य-विज्ञान नथी, विरहभावमां अत्यंत विगाढभावथी सर्वत्र तेरसिकस्वरूपनीज स्फूर्ति थाय छे, कदाचित् पोतामांज भगवत् स्फूर्ति पण थाय छे, "अथ अहंकारादेशः" अहंकारादेश थाय छे. आ प्रकारे पूर्णविप्रयोगरसात्मकदान करीने, तद्गत सर्वव्यभिचारिभावनो पण संपूर्ण अनुभव करावीने दुःखसहन न थइशकतां, "क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तः यदा भवेत् तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः" श्लोकोक्तप्रकारे "मारां प्रकटदर्शन आ आर्द्रार्द्र सुकुमार भगवदीयने थाओ" एम प्रभुनी इच्छाथी साक्षात् कोटिमन्मथमन्मथस्वरूप प्रकट थाय छे. स्वरूप-

प्राकट्य थयापछी नेत्रवडे अने मनवडे श्रीमुखसुधापान करतां करतांज मोहवडे एवा कोइ प्रचुरभाववतुं संजनन थइजाय छे के सर्व इंद्रियवडे तेस्वरूप सह संभापण, आश्लेपआदि संगमरसभोग करवानी इच्छा थाय छे. दर्शन थया पछी क्वचित् क्वचित् तो वेणुनिनादमात्रथी पण प्रभुसह संभापणादि संयोगरसोपभोग करवानी इच्छा प्रकट थाय छे. त्यारे भगवदानंद–संपन्न–मनना संबंधथी ते मनोरथ परिपूर्ण थइजशे एम विचार करी वाणी मनसाथे समागम करे छे. मन अने वाणीनो आप्रकारे समागम थतां वाणी भगवद्रस संपन्न थइ-जाय छे. संभापणादिचिकीर्पा परिपूर्ण थइरहे छे. एजप्रमाणे सर्वइंद्रियो मननी संगति करीने भगवद्रस संपादन करे छे. "सर्वेंद्रियविशिष्ट" मन प्राणनो समागम करे छे. "स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धः दिशंदिशं पतित्वा अन्यत्र आयतनम् अलब्ध्वा बंधनम् एव उपश्रयते एवम् एव खलु सौम्य तत् मनः दिशं दिशं पतित्वा अन्यत्र आयतनं अलब्ध्वा प्राणम् एव उपश्रयते" जेम सूत्रप्रबद्धपक्षि प्रत्येकदिशामां पतनकरीने कोइ पण स्थले आयतन प्राप्त न थतां बंधननो उपाश्रय करे छे. तेमज मन प्रत्येकदिशामां पतनकरीने आयतन प्राप्त न थतां, प्राणनो उपाश्रय करे छे. "सर्वेंद्रियमनो-विशिष्ट" प्राण साक्षात् प्रकट अध्यक्ष रसात्मक प्रभुसमीप जाय छे. "सः अध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः" तत्वसूत्रनुं एज तात्पर्य छे. एम प्रमोद पामी रसिकभगवदीय "ता वां वास्तूनि उष्मसि गमध्यै यत्र गावः भूरिशृंगाः अयासः अत्र अह तत् उरुगायस्य विष्णोः परमं पदम् अवभाति भूरि" श्रुति अने "तानि परे तथा-हि आह" तत्त्वसूत्रप्रतिपादित–आधिदैविक श्रीयमुनापुलिन, उपवन, निकुंज, गह्वर, प्रदेश, अद्रिमां अलौकिक रसशास्त्रनिरूपित गतिसंगी-तादि सह, सामान्य, विशेप, अंतः, बाह्य एम विविधप्रकारे द्वादशांग रमण करे छे, अष्टविध आनंदपान करे छे. "आत्मरतिः आत्मक्रीडः आत्ममिथुनः" प्रभृति रसभर–श्रुतिप्रकटित–प्रकारवडे स्वकीयात्मा रसात्मकपुरुषोत्तम सह रति करे छे, क्रीडा करे छे, मिथुन करे छे. "भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यंते सर्व-संशयाः" हृदयग्रांथि छुटीजाय छे, संशयमात्रनो उच्छेद थईजाय छे. "सः अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" विविधरसभोगचतुर रसिकपुरूपोत्तमसाथे आ रासमंडलमंडनभगवदीय सर्वकामभोग करे छे. आ अलौकिक शृंगाररसमां भक्तकृत अमंद कामभोग मुख्य छे, प्रभुकृत गौण छे; तेथी "सः" प्रथमाविभक्तिमां छे, अने "ब्रह्मणा" तृतीयविभक्तिमां छे. "वशे कुर्वन्ति माम् भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा" "अहं भक्तप-

राधीनः हि अस्वतंत्रः इव द्विज " इत्यादि प्रतिपादित वशीकरणनुं पण स्वारस्य हवे सविशेष स्पष्टतर थशे. "सदा पश्यन्ति सूरयः दिवि इव चक्षुः आततम् " " विष्णोः यत् परमं पदम् " " ध्रुवासः अस्य कीरयः " जज्ञानः एव व्यबाधत स्पृधः" श्रुति, " अवजानंति मां मूढाः मानुषीं तनुम् आश्रितम् परं भावं अजानंतः ' " जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यः वेत्ति तत्त्वतः ' प्रभृति इत्यादि श्रीमुखवाक्य, " अविभागः वचनात्" " तद्भूतस्य तु न अतद्भावः" "अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात् " आदि तत्त्वसूत्रनुं पर्यवसान बाह्याभ्यंतर-रसाविष्टस्वरूपनी विमल-नित्यलीलामांज छे " लोकवत् तु लीला कैवल्यम् " तत्त्वसूत्रनुं रहस्य पण हवे उद्घाटन थईगयुं. "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् एव अवशिष्यते " निगूढ अभिसंधिनुं पण हवे निरीक्षण करीलो. प्राक् निरूपित ब्रह्मसर्वधर्मत्व, विरुद्धसर्वधर्माश्रय, ब्रह्म-सर्वकर्तृत्वादिनुं पण हवे रमणीयदर्शन प्रमेयदृष्टिथी करीलो. एकज अविकृत निर्गुण नित्य धर्मीस्वरूप स्थायीरस शुद्ध शृंगाररस अनेकानेक भाव, विभाव, अनुभावस्वरूपे परिणमे छे. एकज शृंगाररसनो आश्रय करी तदात्मक विविधभाव, विभाव, अनुभाव, सर्व रहेला छे. संयोग अने विप्रयोग उभये परस्पर विरुद्ध छे तथापि ते उभये शृंगारात्मकज छे. शृंगाररसज उभये विरुद्धधर्मनो आश्रय छे ए मधुर सिद्धांत निष्यंदमां पण हवे अवगाहन करीलो. "क्षणे क्षणे यत् नवताम् उपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" ए सिद्धांत पण हवे हृदयमां धारण करीलो. " तम् एव एकं जानीथ आत्मानं अन्या वाचः विमुंचथ अमृतस्य एष सेतुः " " तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः " " न अनुध्यायात् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तव " प्रभृति श्रुतिनुं तात्पर्य ग्रहण करीलो. " रसः वै सः रसं हि एव अयं लब्ध्वा आनंदी भवति " "आनंदमयः अभ्यासात् " "प्रतिपादित श्रीमद्भागवतरसिकानंदनुं वारंवार पुनः पुनः सदासर्वदा पान करो.

" यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्य एते कथिताः हि अर्थाः प्रकाशंते महात्मनः" ॥

MAGANLAL GANPATRAM SHASTRI B. A.
LATE FELLOW, BARODA COLLEGE.

मगनलाल गणपतराम शास्त्री बी. ए.
लेट फेलो वडोदरा कॉलेज.

श्रीकृष्णाय नमः । श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।

शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डः सटीकः ।

श्रीमन्मुकुन्दरायाख्यश्रीमद्गोपाललालयोः ।
अङ्घ्री श्रीवल्लभाचार्यश्रीविट्ठलपदाम्बुजे ॥ १ ॥
श्रीमतां यदुनाथानां तदीयान्वयशोभिनाम् ।
श्रीमद्गिरिधराख्यानां पादपद्मे प्रणम्य हि ॥ २ ॥
शुद्धाद्वैतविचारे ये तैः श्लोकाः समुदाहृताः ।
तदाज्ञया तान् विशदीकरवाणि यथामति ॥ ३ ॥

तत्र मङ्गलमाचरन्तो यथार्थसिद्धान्तबोधकचरणान् नमन्ति श्रीमदाचार्यचरणावित्यादि—

श्रीमदाचार्यचरणौ श्रीविट्ठलपदाम्बुजे ।
श्रीमतां यदुनाथानां श्रीमद्गिरिधरः सुधीः ॥ १ ॥
चरणाम्बुजकिञ्जल्कपरागान् प्रणिपत्य तम् ।
शुद्धाद्वैतविचारार्कं तनुते सुधियां मुदे ॥ २ ॥

श्रीमदाचार्याणां पुरुषोत्तमास्यत्वेन श्रुतीनां वाग्रूपत्वेन तत्कृपया तदर्थस्फूर्त्यर्थं नमनमिति भावः । "भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवा"निति वाक्यात् चरणयोरुद्धारकत्वात् स्वस्याप्युद्धार आभ्यामेवेति भावः । विदा ज्ञानेन ठान् शून्यान् लाति–स्वदासत्वेनाङ्गीकरोति स विट्ठलः । एतेन पूर्णकरुणामयत्वं सूचितम् । पदाम्बुजत्वोक्त्या भक्तिप्रवर्त्तकत्वं भक्तिमतां सन्तापहारकत्वं भक्तरूपमधुपसेवितत्वञ्च ध्वनितं प्रेमपूरभरितमानसेषु प्रादुर्भावो भवतीत्यपि ध्वन्यते । यदोः पुष्टभक्तत्वेन तन्नाथत्वात् पुष्टिभक्तानामिष्टफलदातृत्वं सूचितम् । श्रीमद्गिरिधरचरणाः श्रीप्रभुचरणतनयश्रीयदुनाथवंशोद्भवाः अस्मदाराध्यचरणाः । चरणाम्बुजेत्यादि—परागसम्बन्धेन मनोमुकुरनिर्मलतया सर्वसिद्धान्तप्रतिफलनं ध्वन्यते । प्रणिपातः साष्टाङ्गप्रणामः 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते

ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' इति श्रीभगवदुक्तेः । तनुते विस्तारयति । एतेन स्वकल्पितत्वमपास्तम् । सुधीत्वञ्च भगवदेकशरणत्वं तेषां सिद्धान्तावलोकनेनानन्दो भविष्यतीत्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥

एवं प्रतिज्ञायाऽद्वैतज्ञानस्य द्वैतज्ञानसापेक्षत्वेन द्वैतपदार्थमाहुः द्विधा ज्ञानं त्विति—

द्विधा ज्ञानं तु यद्यत्स्यान्नामरूपात्मना मुहुः ।
ईशजीवात्मना वाऽपि कार्यकारणतोऽथ वा ॥ ३ ॥
द्वीतं तदेव द्वैतं स्यादद्वैतं तु ततोऽन्यथा ।
सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति पठ्यते ॥ ४ ॥

द्विप्रकारं ज्ञानमित्यर्थः । "नामरूपे व्याकरवाणी"ति श्रुत्या नामरूपयोर्भगवत्कृतत्वेन भगवद्रूपत्वम् एतेन—'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यर्थपञ्चकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं मायारूपं ततः परम्' इति नामरूपयोर्मायिकत्वमपि निरस्तम् । केचित्त्वत्र जगद्रूपं ततः परमिति पठन्ति तत्र नामरूपयोर्जगद्रूपत्वेन जगतः कार्यत्वात् कार्यकारणयोरभेदान्नातिप्रतिकूलं यथा मृद्घटयोः । अत एव 'नामरूपविभेदेन जगत्क्रीडति यो यतः' इति श्रीमदाचार्यचरणैरुक्तम् । यदि च सधर्मत्वभिया तयोर्मायिकत्वमुच्यते तर्ह्यस्तित्वादिनाऽपि सविशेषत्वापत्तिः "तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" "एष ह्येवानन्दयाति" इत्यादिश्रुतिभिः स्वतः प्रकाशत्वं सर्वाभासकत्वं सर्वानन्ददातृत्वं यथोक्तं तथा 'नामरूपे' इति श्रुत्या नामरूपप्रकाशकत्वमतो न तयोर्मायिकत्वमिति दिक् । नामरूपभेदज्ञानमेवाविद्यकं न तु ते । एवमीशजीवभेदज्ञानं तथा कार्यकारणभेदज्ञानमिति । द्वीतमिति ये गत्यर्थकास्ते ज्ञानार्थका इति न्यायेन गत्यर्थकादिण्धातोर्भावे क्ते इतमिति सिद्धौ द्विधा-इतं द्वीतं तस्मात्स्वार्थेऽणि द्वैतमिति निष्पन्नं तस्य च द्विप्रकारकज्ञानमित्यर्थः । अन्यथा भेदज्ञानाभावे न द्वैतमद्वैतमिति विग्रहः । ननु कया श्रुत्याऽभेद उक्त इति चेत्तत्राहुः सर्वमित्यादि । छान्दोग्ये शाण्डिल्यविद्यायां तृतीये प्रपाठके पठितमस्ति 'तज्जलानि' त्यस्याग्रे 'शान्त उपासीते' ति अर्थस्तु जायते, लीयते, अनिति-इति जलान्-तस्मिञ्जलान् तज्जलानिदं सर्वं विश्वं

खल्वृत्पत्तिस्थितिलयावस्थासु तस्मिन्नतः सर्वं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यर्थः॥३॥४॥

श्रुत्यर्थमाहुः सर्वमित्यादि—

सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वमिदमा बोध्यते पुरः ।
सर्वशब्देन यावद्धि दृष्टश्रुतमदो जगत् ॥ ५ ॥
बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम् ।
कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैव स्यात्तु कारणम् ॥ ६ ॥

इदमेतीदंशब्दस्य प्रत्यक्षवाचित्वात् ॥ सनातनमिति सदावर्त्तमानं नित्यमिति यावत् । 'सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाना' इति 'कथमसतः सज्जायेत' 'तत्सत्यं यदिदं किञ्चित्' 'तत्सत्यमित्याचक्षत' इत्यादिश्रुतेः । असत्यत्वेन ज्ञानं त्वासुराणामेव तथा च गीतायां 'असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्' इति । ननु जगतो नित्यत्वे द्वैतापत्तिरित्याशङ्कायामाहुः कार्यस्य ब्रह्मेति विश्वस्य नित्यत्वेऽपि मृद्घटयोरिव कार्यकारणयोरैक्यान्न द्वैतापत्तिरिति भावः । सर्वं खल्वि' त्यादिना बोधितब्रह्मरूपस्य, ब्रह्मैवेत्येवकारेण मायादिकारणं निरस्तम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

ब्रह्मणः कारणत्वे मानमाहुर्जन्माद्यस्येत्यादि—

"जन्माद्यस्ये"त्यादिसूत्रैर्व्यासपादैर्निरूपितम् ।
"यतो वे"त्यादिवाक्येषु वेदे स्पष्टं प्रतीयते ॥ ७ ॥

अत्राधिकरणचतुष्टयेन ब्रह्मणः कारणत्वं विचारितं तत्र "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वादि'ति" सूत्रे 'यतो वे'त्यादिवाक्यं विषयीकृत्य किं ब्रह्म कर्तृ उताकर्तृ इति संशये 'ब्रह्मविदाप्नोतिपर' मितिश्रुत्या ब्रह्मविदः परप्राप्तिं प्रतिज्ञाय 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे'तिश्रुत्या स्वरूपलक्षणमुक्त्वा परस्यसर्वान्तररूपत्वबोधनायाकाशाद्वायुरिति सृष्टिरुक्ता तत्र प्रकृतिगतं कर्तृत्वं ब्रह्मण्यारोप्यते एवं "भृगुर्वैवारुणि"रित्यत्रापि गौणमेव कर्तृत्वमनूद्यतइति पूर्वपक्षेऽस्येति प्रत्यक्षस्य जन्मादि जन्मस्थितिलया यतो यस्मात्तत्कर्तृ कुतः शास्त्रयोनित्वात्. शास्त्रे योनिस्तस्यभावः शास्त्रयोनित्वं तस्माच्छास्त्रोक्तकारणत्वादित्यर्थः पूर्वोत्तरकाण्डसृष्टिवाक्यानां सङ्ग्रहार्थं सामान्यग्रहणं स्वरूपलक्षणवाक्यशेषे कर्तृत्वनिषेधाकथनात्प्रत्युत कारणत्वस्य कथनादुपनिषदन्तरेऽस्थूलादिवाक्ये धर्म-

निषेधनिरूपणेऽपि विरुद्धधर्माश्रयत्वेन प्राकृतधर्मनिषेधेनोपपत्तौ लक्षणापादकस्यारोपस्य दुष्टत्वात् । किं च प्रकृतौ कर्तृत्वस्य निषिध्यमानत्वेन जीवस्य स्वातन्त्र्याभावेन च कर्तृत्वाभावाद् ब्रह्मण्यारोपासम्भवस्तस्मात्सकलजगत्कारणं ब्रह्म अत्र 'जन्माद्यस्य यतः' 'शास्त्रयोनित्वादि'ति योगविभागः सर्वमते तन्न । अग्रिमसूत्रेषु साध्यहेतुनिर्देशपूर्वकमेव दर्शनेनात्रापि तथैव युक्तत्वात् । ये तु जन्माद्यधिकरणं शास्त्रयोनित्वाधिकरणभिन्नमङ्गीकुर्वन्ति तत्र हि प्रथमसूत्रे हेतोरभावाद्द्वितीयेच' साध्याभावान्न वाक्यार्थसिद्धिरित्यादिदोष इति श्रीपुरुषोत्तमचरणैर्भाष्यप्रकाशे बहुशः खण्डितो योगविभागः । द्वितीयेऽधिकरणे तत्तु समन्वयादिति सूत्रे ब्रह्म समवायि? उत नेति संशये समवायित्वे विकारित्वापत्तिरिति न तादृशमिति पूर्वपक्षे तत्समवायिकारणं ब्रह्म कुतः समन्वयात् सम्यगनुवृतत्वात् घटे मृद इवास्तिभातिप्रियाणां जगत्यनुवृतत्वादित्यर्थः । तादात्म्यसंम्बन्धेन यदाश्रयं कार्यं भवति तत्समवायिकारणम् । अस्यैवावस्थाविशेष उपादानं तल्लक्षणं च स्वसमानसत्ताकं कार्याकारेण यदाविर्भवति तदुपादानम् । तृतीयेऽधिकरणे चिद्रूपेण कारणत्वमानन्दमयाधिकरणआनन्दरूपेण कारणत्वं व्यासपादैर्विचारितमित्यर्थः । 'यतो वेत्यादि' 'भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार–अधीहि भगवो ब्रह्मेति तदे होवाच यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति. तद्ब्रह्मेति तद्विजिज्ञासस्व' इति स्पष्टमेव कारणत्वं ब्रह्मणि प्रतीयतइत्यर्थः ॥ ७ ॥

एवं ब्रह्मणःकारणतामुपपाद्य ब्रह्मणो लक्षणमाहुः साकारमित्यादि-

साकारं सर्वशक्त्येकं सर्वज्ञं सर्वकर्तृ च ।
सच्चिदानन्दरूपं हि ब्रह्म तस्मादिदं जगत् ॥ ८ ॥

आनन्दाकारमित्यर्थः 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक' इति तैत्तरीये श्वेताश्वेतरे चास्ति श्रुतिः । अत्र मुखादीनां सर्वत्र विद्यमानत्वमुक्तं सर्वेन्द्रियोपलक्षणं तेन साकारस्यैव व्यापकत्वम् । बाहुभ्यामिति द्विवचनेन ब्रह्मणो द्विभुजत्वं श्रुतिसिद्धं चतुर्भुजत्वं तु स्मृतिप्रसिद्धम् । देव इत्यनेन लीलास्थपुरुषोत्तमस्यात्र ग्रहणं दिवुधातोः क्रीडार्थकत्वात् । छान्दोग्ये 'सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरस' इत्युक्तं

'रसो वै स' इति तैत्तिरीये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपा'दिति पुरुषसूक्तेऽपि साकारत्वमग्रे 'ततो विराडजायत' इति कथनान्नायं विराट् पुरुषः 'सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुख' मित्यादि गीतायां 'आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिरिति नारदपञ्चरात्रे 'अथवा परमात्मानं परमानन्दविग्रह'मिति याज्ञवल्क्यस्मृतौ। नन्व 'पाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' 'अस्थूलमनण्वि' त्यादिषु श्रुतिषु निषेधात्कथं साकारत्वमितिचेन्न अपाणिपादत्वमुक्त्वा यज्जवनगृहीतृत्वमुक्तं तेन (तद्वाक्यं) लौकिकपाणिपादादिनिषेधपरम्। अनण्वित्यादिवाक्येऽपि—अग्रे 'एतस्य प्रशासने गार्गि! द्यावाभूमी विधृते तिष्ठत' इत्युक्तं"यथा सैन्धवो घनो वाह्योन्तरः कृत्स्नो रसघन एवं वाऽरेऽयमात्मा कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवे'ति श्रुतौ घनपदेन साकारत्वलाभादर्थस्तु यथा सैन्धवः परिदृश्यमानः रसघन एवं ब्रह्मापि यावत्तावत्प्रज्ञानघनमेवेति। 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चे'ति श्रुतेः। 'यः सर्वज्ञः सर्वविदि'ति श्रुतेः। 'सर्वकर्त्ता सर्वभोक्ता चे'ति 'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्मे'ति श्रुतेरानन्दमात्रमेव। एवं चकारादिदं परिदृश्यमानं सर्वं ब्रह्मैव ॥ ८ ॥

सच्चिदानन्दरूपब्रह्मणः सकाशाज्जगदुत्पत्तौ जडजीवान्तर्यामिणां सदादिभ्य उद्गम इत्याहुर्जडेत्यादि—

जडजीवान्तःस्थितानां यथाक्रमश उद्गमः।
अग्नेर्यथा विस्फुलिङ्गास्तथा जीवोद्गमः स्फुटः ॥ ९ ॥

उद्गमो निःसरणं जीवोद्गमे श्रुत्युक्तं दृष्टान्तमाहुरग्नेरिति 'यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति। एवमेव तस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे जीवाः कपूयचरणा रमणीयचरणा' इति मुण्डकश्रुतौ। एतेन जीवस्योत्पत्तावनित्यत्वापत्तिरिति निरस्तं जीवस्य निःसरणमेवोच्यते न तूत्पत्तिः ॥ ९ ॥

ननु जीवस्य विस्फुलिङ्गवन्निःसरणेऽणुत्वे सर्वशरीरगतचैतन्यानुपलम्भस्तत्राहुः विसर्पीत्यादि—

विसर्पिगुणचैतन्योऽणुर्जीवोंशो हरेः स्मृतः।
जडे चिदानन्दयोस्तु चित्यानन्दस्य सर्वशः ॥ १० ॥

तिरोधानं हरीच्छातो निबन्धादिषु वर्णितम् ॥
आविर्भावे तु सर्वं हि ब्रह्मैवेति न संशयः ॥ ११ ॥

विसर्पि प्रसरणशीलं चैतन्यं गुणो यस्य सः यथा मणेः प्रभा तथा च व्याससूत्रं 'गुणाद्वाऽऽलोकवत्' अर्थस्तु जीवस्य चैतन्यं गुणस्तस्मात्सर्वशरीरव्यापी तत्र दृष्टान्तः आलोकवत् सूर्यमण्यादिप्रभा यथा बहुदेशं व्याप्नोति तद्वदित्यर्थः । अग्रे 'व्यतिरेको गन्धवत्' अर्थस्तु व्यतिरेकोऽधिकदेशवर्तिचैतन्यं गुणो गन्धवत्—यथा चम्पकादेर्गन्धश्चम्पकाधिकदेशस्थलउपलभ्यते तद्वदित्यर्थः । न च चम्पकात्तदवयवानां निःसरणे गन्धोपलब्धिरिति वाच्यम् । निःसरणे न्यूनत्वापत्तेः।भोग्यादृष्टत्वेन तदवयवपूरणकल्पनायां गौरवात्। किञ्चोग्रगन्धादेः स्पर्शे मुहुर्मुहुः क्षालनेन सुगन्धानपगमादनेकचर्मपुटवेष्टितस्य मृगमदस्य सुगन्धोपलब्धेश्चातोऽवयवकल्पना निरस्तेति दिक् । किञ्च तृतीयोऽपि दृष्टान्तः 'अविरोधश्चन्दनवत्'—अर्थस्तु यथाचन्दनमेकदेशस्थितं सर्वशरीरे सुखं शैत्यं च जनयति तद्वदणुत्वेऽपि सर्वशरीरचैतन्योपलब्धिरित्यर्थः । 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य' इति श्रुतेः 'नित्यः सर्वगतस्थाणु' रिति स्मृतेश्च सर्वगतेन ब्रह्मणा सह तिष्ठतीति सर्वगतस्थः 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इति श्रुतेः स चासावणुश्चेति तदर्थः । यदि यथाश्रुतार्थः स्यात्तर्हि स्थाण्वचलपदयोः पर्यायत्वापत्तौ पुनरुक्तिः स्यात्। 'अंशो नानाव्यपदेशादि' ति व्याससूत्रादंशः—अर्थस्तु जीवो ब्रह्मणोंऽशः कुतः नानाव्यपदेशात् क्वचिद्ब्रह्मत्वेन क्वचिदज्ञत्वेन क्वचिदीशितव्यत्वेन निरूपणादेकस्यैव विरुद्धधर्माश्रयत्वं ब्रह्मातिरिक्तस्य न सम्भवत्यतो जीवो ब्रह्मांश इति हरेरिति 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' इति गीतावाक्यतः । ननु सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वेन कथं त्रैविध्यमत आहुर्जडेत्यादिना । आनन्दतिरोभावेन भेद इति भावः ॥ तिरोधानमिति—'एकोऽहं बहु स्यामि' ति श्रुतिसिद्धेच्छात इत्यर्थः । ननु तर्हिभेदापत्तिरतआहुः आविर्भावेत्वित्यादि आनन्दाविर्भावे जीवे चिदानन्दयोर्जडे ॥ १० ॥ ११ ॥

ननु जीवादिभावे किं प्रयोजनमत आहूरमणार्थमिति

रमणार्थमिदं सर्वं ब्रह्मैव स्वेच्छयाऽभवत् ।
यथा सर्पः स्वेच्छया हि कुण्डलाकारतां गतः ॥ १२ ॥

न विकारि तथा ब्रह्मव्यासैः सूत्रे निरूपितम् ।
सुवर्णस्याविकारित्वं कामधेनोर्मणेरपि ॥ १३ ॥

"एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्" "तदात्मानꣳ स्वयमकुरुते" त्यादिश्रुतेः। ननु तर्हि विकारित्वापत्तिस्तत्राह यथेति। सूत्रइति—'उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलव'दितिसूत्रइत्यर्थः। अर्थस्तु—उभयोर्विरुद्धधर्मयोर्व्यपदेशस्तस्मान्निर्गुणत्वेनानन्तगुणत्वेन परिणामित्वेनाविकारित्वेन विरुद्धधर्मरूपेण व्यपदेशाच्छ्रुतौ कथनात्सर्वाकारं ब्रह्मेत्यर्थः। तथा च श्रुतिषु "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चे"त्युक्त्वा "एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति"ततो यदुत्तरं "तदरूपमनामय "मित्यग्रे सर्वाननशिरोग्रीवं" इतिश्वेताश्वतरे तैत्तरीये "यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं" "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुख" इत्यादि चोक्तं तथानन्दवल्यां "तदात्मानं स्वयमकुरुत" "यद्वैतत्सुकृत" मिति "अविनाशी वाअरेऽयमात्मे" त्यादिकं चान्यत्रोक्तमेवं विरुद्धधर्माश्रयत्वेन बहुशो व्यपदेशादित्यर्थः। तर्हि कथमेकमनेकधेति तत्राहु "रहिकुण्डलव"द्यथा सर्पः सरलः कुण्डलाकारश्च भवति तद्वद्ब्रह्म सर्वाकारं भवति नहि सर्पस्य कुण्डलाकारे कोऽपि विकारः। भाष्ये तु सर्वाणितैजसान्यविकृतानीत्युक्तम्। एवं च सुवर्णस्यानेकाकारत्वेऽपि न सुवर्णस्यान्यथाभावः। सुबोधिन्यां तु कामधेनुकल्पद्रुमचिन्तामणेश्च जायमानाः पदार्था दृश्यन्ते तेन न कामधेन्वादीनां विकृतत्वमित्युक्तमिति दिक्॥ १२॥ १३॥

ननु सर्वस्य घटादेरुत्पत्तिनाशदर्शनेनानित्यत्वात्कथं भगवद्रूपत्वं कार्यस्येत्याशङ्कामपनयन्ति—आविर्भावेत्यादि—

आविर्भावतिरोभावौ पदार्थानां यतस्ततः ।
नानित्यता तु विज्ञेया शास्त्रविद्भिर्विचक्षणैः ॥ १४ ॥
तिरोभावे तु कार्यं हि वर्त्तते कारणात्मना ।
आविर्भावे तु कार्यं हि यथा मृदि घटादयः ॥ १५ ॥

घटपटादिसर्वाकारस्वरूपेण या भगवत आविर्भावेच्छा तयाऽऽविर्भवति तथाच श्रीमदाचार्यचरणैर्निबन्धे 'मृदादि भगवद्रूपं घटाद्याकारसंयुतम्। मूलेच्छातस्तथा तस्मिन् प्रादुर्भावो हरेस्तदा' इति

व्याख्यातं च तैरेव मृदि घटादयो यावन्तो भविष्यन्ति ते सर्वे कारणत्वेन वर्त्तन्ते इत्यङ्गीकर्त्तव्यं अन्यथा ततः प्रादुर्भावो नोपपद्येत ततः सामर्थ्यं भगवत्त्वेन सङ्गच्छते अतो मृदादि भगवद्रूपे घटादिकार्यं च तत्रैव तिष्ठति मूलेच्छातः पुरुषोत्तमेच्छात इति 'तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम् । आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ' इति विष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे । वस्तुतो नित्यं किन्त्वाविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत्– आविर्भावश्च तिरोभावश्च– आविर्भावतिरोभावौ तावेव जन्मनाशविकल्पौ तद्वदित्यर्थः । 'आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिण' इति वाक्यं श्रीमदाचार्यचरणैरुक्तम् । भगवच्छक्तित्वादेव वीर्यादिपरिणामानां देहादिभावः । "पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चे"ति श्रुतेरनन्तशक्तित्वाद्भगवतः । आविः प्रकटं भावयति कारणान्तःस्थं कार्यं बहिः प्रकटीकरोति या शक्तिर्निमित्तगतोपादानगता च सा–आविर्भावशक्तिः या कार्यं कारणे तिरोभावयति सा शक्तिस्तिरो भावशब्दवाच्येत्यभिप्रेत्याहुस्तिरोभावेत्वित्यादि। अत्रैवं ज्ञेयं तन्तुतुरीवेमादिभ्यः पटोत्पत्त्या मृद्दण्डचक्रादिभ्यश्च घटोत्पत्त्य तस्य तस्य पटघटजनने शक्तिरिति निश्चीयते सा च नस्वभावो नापि स्वरूपं तथा सति तस्य सार्वदिकत्वात्–शीर्णेभ्योऽपि तन्त्वादिभ्यः पटाद्युत्पत्तिः स्यात् भर्जिताद्बीजादप्यङ्कुरोत्पत्तिः स्यात् प्रतिबन्धकमणिसमवधानेऽपि वह्निस्तृणादिकं दहेत स्वभावस्यानपायात् स्वरूपस्य च सत्त्वात् । अतः शीर्णतन्त्वादिषु कालेन भर्जितेषु भर्जनेन च नाश्या-- अग्नेर्मणिसन्निधेन प्रतिबन्ध्या च काचित् स्वभावात् स्वरूपाच्चातिरिक्तैव शक्तिरङ्गीकार्या । ननु तन्त्वादीनामविशीर्णत्वेन बीजानामप्यभर्जितत्वेन रूपेणैव कार्यजननदर्शनात् तेनैव रूपेण कारणतेति नातिरिक्तशक्तिकल्पनं गुरुभूतं वह्निस्थलेऽपि प्रतिबन्धकमण्यभावेन निर्वाहाच्चेति चेन्नादावदग्धवेत्रबीजेभ्यः कदलीकाण्डजननस्य भामत्यां प्रदर्शितत्वात् काचिच्छक्तिर्भर्जनेन नाश्यते–अपरा आधीयतइति मन्तव्यं वह्निस्थले प्रतिबन्धसमवधानउत्तेजकेन मणिना दाहदर्शनात् । उत्तेजकाभावविशिष्टमण्यभावविशिष्टवह्नेरेव कारणत्वेऽति गौरवम् । तथा हि–मण्यभावत्वेन प्रवेशो नानाकार्यकारणभावकल्पनाऽत्यन्तमेव गुर्वी । मन्त्रौषधादिनाऽपि दाहाभावात् । एवमुत्तेजकानामपि नानात्वात्तत्तत्स्वरूपेण प्रवेशे ततोऽप्यत्यन्तगौरवम् । यत्किञ्चित्त्वेन प्रवेशो यावत्तदभाव-

विशिष्टमण्यभावविशिष्टस्याग्नेर्दाहं प्रत्यकारणत्वासतो दाहाभावापत्तिः। यावत्त्वेन प्रवेशे यत्किञ्चिद्वैशिष्ट्ये दाहाभावापत्तिः। यथाकथञ्चित्त्वेन प्रवेशेऽपि तादृशकार्यकारणभावज्ञानस्योत्तेजकतदभावतद्वैशिष्ट्यज्ञानाधीनतया तादृशगुरुशरीरकारणतास्वरूपकारणस्यैव दौर्घल्यमिति तदपेक्षया शक्तिकल्पनमेव ज्याय इति सर्वनिर्णयावरणभङ्गे श्रीपुरुषोत्तमचरणैर्विस्तरशो निरूपितमिति ततोऽवधेयम्। तस्मादाविर्भावतिरोभावयोः शक्तित्वं शक्तिमति भगवद्रूपे घटे तिष्ठति। अतएव घटो भवतीति कर्त्तरि प्रयोगः स्वमते सर्वेषां भगवद्रूपत्वात्। इच्छासहकारेण नित्ययोरप्याविर्भावतिरोभावयोर्न सदैवोद्गमः विशेषस्तु विद्वन्मण्डने श्रीमत्प्रभुचरणैरुक्तः॥ १४॥ १५॥

आविर्भावतिरोभावलक्षणमाहुः—यदेत्यादि–

यदाऽनुभवयोग्यत्वं वर्त्तमानस्य वस्तुनः।
आविर्भावः स विज्ञेयस्तिरोभावस्ततोऽन्यथा॥ १६॥

योग्यतानिवेशेन दरीविवराङ्कुरेषु नाव्याप्तिः शशशृङ्गादौ च नातिव्याप्तिः। वृद्धिपरिणामादिष्वपि वृद्धौ पूर्वरूपतिरोभावेन द्वितीयस्याविर्भावः परिणामे रूपान्तरस्य। क्षये तु तिरोभावः। अन्यथेति तदयोग्यत्वमित्यर्थः॥ १६॥

नन्वनयोरङ्गीकारे प्रागभावादिसत्त्वे चातिगौरवमत आहुः प्रागभावादय इति

प्रागभावादयो नाङ्गीकार्या आभ्यां यतोऽखिलम्।
तद्विस्तरभिया नात्र लिख्यतेऽन्यत्र दृश्यताम्॥ १७॥

प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावः एते नाङ्गीकार्या यत आभ्यामाविर्भावतिरोभावाभ्याम्। कया रीत्या सिद्धिस्तत्राहुस्तदित्यादि। अन्यत्र प्रागभावखण्डने सर्वनिर्णयनिबन्धावरणभङ्गादिषु तत्र प्रागभावः कारणावस्थातो नातिरिच्यते तस्य भिन्नकारणत्वकल्पनायां प्रमाणाभावात् अग्रिमजननज्ञानेनैव तस्यानुभव इति श्रीमदाचार्यचरणैरुक्तं निबन्धे। न चेह कपाले घटो नास्तीति प्रतीतिस्तत्र मानं तस्या घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविषयतया सामान्यत्वेन प्रागभावाख्यविशेषानवगाहित्वात्। एवं ध्वंसोऽपि दण्डादिस्वरूपमेव तिरोभावशक्त्यतिरिक्तस्य ध्वंसस्य निरूपयितुमशक्यत्वात् तेन रूपान्तरं पश्यन् पूर्वस्य तिरोभावमेव मन्यते ध्वस्त इति श्रीमदार्यचरणैस्तत्र निरू-

पितमातिरः-अप्रकटं भावयतीति तिरोभावनं वा तिरोभावः उभयथाऽपि निमित्तोपादानान्यतरस्वरूपातिरिक्तो ध्वंसो न निरूपयितुं शक्यः, तदतिरिक्तस्यादर्शनात् । तथा च कार्यप्रतिकूला कारणावस्थैव ध्वंस इति तदर्थः । प्रागभावादिप्रयोगाश्च घटस्यानन्यथासिद्धपश्चाद्भाविंत्वं दण्डस्य तादृशपूर्वभावित्वं चापेक्ष्य यथा घटदण्डयोः कार्यकारणप्रयोगः, तथा घटादेरग्रिमजननमाकारान्तरं चापेक्ष्य कारण एव प्रागभावध्वंसपदप्रयोगः । घटः पटो नेत्यन्योन्याभावप्रतीतावपि मूलेच्छया घटे पटादीनां तिरोभावः, एवं पटे घटादीनाम् । यद्यपि सर्वेषां पदार्थानां ब्रह्मरूपत्वेन सर्वधर्मत्वं तथाऽपि मत्स्याद्यवतारवज्जलाहरणकार्यार्थमेव घटब्रह्मण आविर्भावः, एवमावरणकार्यार्थं पटरूपब्रह्मणः । एतेनान्योन्याभावानङ्गीकारे घटेन पटकार्यं स्यादित्यादि निरस्तं भगवतस्तथेच्छातः सर्वमनवद्यम् । एवमत्यन्ताभावोऽपि तिरोभावेनैव गतार्थ इति दिक् । अभावस्याधिकरणरूपत्वमित्यन्यत्र विस्तरः ॥ १७ ॥

एवं प्रपञ्चस्य सत्यत्वमुपपाद्य तत्प्रसङ्गेनाविर्भावतिरोभावौ निरूप्य प्रस्तुतं कार्यस्य, कारणस्या, धिकरणस्या, पादानस्य, सम्बन्धस्य, कर्मणः, कर्तुः, प्रकारस्य च ब्रह्मरूपत्वमेवेति श्रीभागवतपद्येनाहुः यत्रेत्यादि—

> यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ।
> स्यादिदं भगवान् साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १८ ॥
> इति भागवते पद्ये सर्वेषां ब्रह्मता श्रुता ।
> श्रुतिसूत्रैः स्मृतिगणैर्दृष्टिः स्वर्णार्थिनो यथा ॥ १९ ॥

यदेति कालार्थकदाप्रत्ययेन कालस्यापि ब्रह्मत्वमुक्तमतएव "कालोऽस्मी" ति भगवद्वाक्यमेतेनास्मन्मते न द्वैतलेशः । एतेनोपादानत्वे निमित्तत्वानुपपत्तिस्तत्त्वे चोपादानस्येति परास्तं सर्वभवनसमर्थत्वाद्ब्रह्मणः । विरुद्धधर्माश्रयत्वस्य ब्रह्मणो लक्षणत्वात्तच्च प्रागेव निरूपितम् ॥ १८ ॥ इतीत्यादि—श्रुतयः "सर्वं खल्विदं ब्रह्मे" त्यादयः । "एवं चात्मा कात्स्न्यं" मित्यादिसूत्राणि. "भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णु" रिति विष्णुपुराणे "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ" इति गीतायाम् ॥ १९ ॥

दृष्टान्तमुपपादयन्ति सुवर्णस्येत्यादि—

सुवर्णस्य च ये खण्डाः कटका मुद्रिकादयः ।
सुवर्णत्वेन गृह्णाति तथा ब्रह्मविदो मतिः ॥ २० ॥

"यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु। एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः" इति श्रीभागवतद्वादशस्कन्धवाक्यात् "यथा सुवर्णं सुकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य । तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य तद्व"दिति तस्यैवैकादशस्कन्धवाक्याच्चेति भावः ॥ २० ॥

तत्र श्रुतिं प्रमाणयन्ति यथेत्यादि—

"यथा सौम्ये" त्यादिश्रुतौ स्पष्टमेव निरूपितम् ।
तथा "तत्त्वमसी" त्यत्राभेदोंऽशांशिविचारतः ॥ २१ ॥

"यथा सौम्य ! एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं भवती" त्यादिश्रुतौ यथा मृत्तदवयवयोरभेदस्तथा तत्त्वमसीत्यत्राभेदोंऽशांशिनोरभेदादित्यर्थः । अत्र सर्वेषां मतसङ्ग्रहश्लोकः—केचित्तत्त्वमसीति वाक्यविषये तत्त्वंपदे लक्षणां केचित्तत्र ङसो लुकं विदधते भाष्यं तु केचिज्जगुः । केचिच्चिद्विषयादभेदमपरे छिन्दन्त्यतत्त्वं पदं सिद्धान्ते तु सुवर्णवज्जगदिदं ब्रह्मैव जीवस्तथा ॥ अस्यार्थस्तु केचित् शङ्कराचार्याः तच्छब्देन सर्वज्ञत्वादिविशिष्टं ब्रह्म त्वंशब्देनाल्पज्ञत्वादिविशिष्टो जीवस्तयोरभेदो न संभवतीति भागयोस्सर्वज्ञत्वाल्पज्ञत्वयोस्त्यागे केवलं चिदंशमात्रग्रहणेनाभेदः सोऽयं देवदत्त इति वद्भागत्यागलक्षणां विदधते, केचित् रामानुजमाध्वशैवाः तत्त्वमित्यत्रसुपांसुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्याया जाल इति सूत्रेण ङसो लुकं विदधते तस्यभावः, केचिद्रामानुजादिमतव्याख्यातारः भाष्यं व्याकरणभाष्यं प्रातिपदिकनिर्देशे यां यां विभक्तिं बुद्धिरुपजायते सा सा आश्रयितव्येत्यचःपरस्मिन्नितिसूत्रे तदितिप्रातिपदिकं तेन षष्ठीविभक्तेराश्रयेणेत्यर्थः पूर्ववत्, केचिन्निम्बार्काः चिद्विषयात् चित्त्वसाधर्म्यात् अभेदः, केचिन्माध्वैकदेशिनः श्वेतकेतोऽतत्त्वमसीति पदं छिन्दंति तत्रार्थस्तु तद्ब्रह्म त्वं नासि किंतर्हि जीवोऽसीत्यर्थः, सिद्धांते ब्रह्मवादिसिद्धांते सुवर्णस्यांशाः सुवर्णरूपास्तथा ब्रह्मांशं जगत् ब्रह्मैव तथा जीवोऽपि चिदंशो ब्रह्मानेन वाक्येन बोध्यते इत्यर्थः ॥ एवमुक्तानां मतानां खंडनसंग्रहश्लोकः ॥ तत्रोपक्रमसङ्गतिर्बहुविधा भग्ना प्रतिज्ञाश्रु-

तिर्भक्तिः स्याद्यदि न त्वमेव कथयेद्भेदे च वैषम्यता॥साधर्म्येऽपि तु भेद एव रसितश्छेदो न सम्यग्यतः सिद्धान्तः श्रुतिसम्मतो विलसति प्राज्ञैर्विचार्यं मुहुः ॥ २ ॥ एतदर्थस्तु शङ्कराचार्यादिव्याख्यानेषु उपक्रमस्य सङ्गतिर्बहुप्रकारेण भग्ना स्यात् तथाहि–तत्त्वमसीतिवाक्यं श्वेतकेतूपाख्यानेऽस्ति तत्रोपक्रमे "अपि वा तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवती" त्यादिना एकविज्ञाने सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञातं तदेकमेव चेत्सर्वं भवेत्तदोपपद्यते यथा सुवर्णकार्यं सुवर्णखंडाः सर्वं सुवर्णमिति सुवर्णज्ञानेन तज्ज्ञानंभवति तदर्थं "सदेव सौम्ये"त्यारभ्य निरूपितम् ततो जडस्य सर्वस्यापि सदात्मकत्वार्थं "ऐतदात्म्यमिदंसर्व"मित्युक्तं तत्र जडगतासत्यत्वादिदोषपरिहारार्थमाह "तत्सत्य"मिति तेनाविर्भावतिरोभावौ पदार्थानां ज्ञेयौ। पूर्वोत्तरयोर्जडजीवयोः सदात्मकत्वे हेतुमाह "स आत्मे"ति एवं जडस्य ब्रह्मात्मकत्वमुक्त्वा जीवस्याप्याह "तत्त्वमसी"ति॥ उपदेशश्चायं "आवृत्तिरसकृदुपदेशा"दिति ब्रह्मसूत्रात् ॥ अतः सम्पूर्णमहावाक्यमुपदेशः तत्र यथा "ऐतदात्म्य"मिति सदंशे न भागत्यागलक्षणा तथोत्तरत्रापि चिदंशे न भागत्यागलक्षणा । नापि श्वेतकेतुरवतारः पूर्वं स्तब्धत्वादिदोषकीर्तनात् । अतो ब्रह्मवाक्यत्वात्तदेकदेशस्तत्त्वमसीति केवलं जीवब्रह्मणोरैक्यं न बोधयति वाक्यभेदप्रसङ्गात् उपक्रमविरोधाच्चेति सर्वं श्रीमदाचार्यचरणैरुक्तम् ॥ एवं च "उपक्रमोपसंहारे योऽर्थस्तु प्रतिपाद्यते ॥ स एवोत्तरपक्षः स्यात्पूर्वपक्षस्ततोऽन्यथे" त्यभियुक्तोक्तेरुपक्रमविरोधेन लक्षणा नाङ्गीकार्येत्यर्थः॥ भेदवादिनामपि मते सर्व विज्ञानप्रतिज्ञाभंगो जगतो भिन्नत्वात् ॥ नहि सुवर्णज्ञाने मृद्विकारा ज्ञायन्ते किं तु सुवर्णविकारा एव, वास्तविकभेदाभेदवादिनां मते भेदज्ञानस्य वास्तवत्वेन तेषां भेदवादिवदुपक्रमविरोधः प्रतिज्ञाहानिश्च, किंच भक्तिर्लक्षणा यदि स्यात्तर्हि त्वंशब्दवाच्यस्य पिंडस्य ब्रह्मत्वमिष्टं न स्यात्तर्हि न त्वमसीत्येव ब्रूयात् त्वमल्पगुणोपाधिको ब्रह्म नासीत्यर्थः कथयति त्वेवं तस्माल्लक्षणा नाभिमता, भेदे च तस्य त्वमसीति व्याख्याने भेद एव स्थितस्तथा च जीवस्य भिन्नत्वात् कस्यचित् सुखं कस्यचिद् दुःखमिति ब्रह्मणि वैषम्यतेत्यर्थः एतच्चाग्रे वक्ष्यति भेदाभेदवादिमते चित्त्वसाधर्म्येणाभेदस्तथा च भेद एव रसितः पर्यवसित इत्यर्थः, एवं च भेदवादिवत्तेषामपि मते दोषः, अतत्त्वमसीति छेदस्तु न वैदिकसम्मतः इति श्रीमदाचार्यचरणोक्तेर्न सम्यक् तस्मिन्पक्षे

अतत् ब्रह्म त्वं नासीत्यर्थाज्जीवोऽसीति पर्यवसिते जीवत्वस्य स्वतः सिद्धत्वेन ब्रह्मत्वस्याप्राप्त्या च तादृशपदच्छेदो न सम्यगित्यर्थः अत एव पूर्वश्लोके छिन्दन्त्यतत्त्वं पदमित्युक्तं तत्रातत्त्वमवैदिकसम्मतं पदं छिन्दन्तीत्यपि श्लोकार्थः । सिद्धान्तः शुद्धाद्वैतसिद्धान्तः श्रुतिसम्मत उपक्रमोपसंहारश्रुतिसम्मत इति प्राज्ञैः पण्डितैर्विचार्यमित्यर्थः ॥ २१॥

एवमद्वैतपदार्थं निरूप्य शुद्धपदव्यावर्त्यमाहुरत्रैवेत्यादि–

अत्रैव शाङ्कराः प्राहुर्मायिकं नश्वरं जगत् ।
मायासम्बन्धतो ब्रह्म कारणं नान्यथैव हि ॥ २२ ॥

कार्यकारणविचारे शङ्करा एव शाङ्कराः स्वार्थेऽण्–ईदृशं घटपटाद्यात्मकं जगत् मायिकमतो नश्वरं नाशशालि तेषां मते प्रपञ्चस्य मायिकत्वेन तस्य कारणेन तादृशेनैव भवितव्यं कारणसजातीयत्वात् कार्यस्य तच्चाज्ञानमेव कारणं ब्रह्मणस्तु "निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जन" "मथात आदेशोनेतिनेती' त्यादिश्रुतिभ्य "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" "यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इत्यादिश्रुतिभ्यो निराकारत्वमकर्तृत्वमुपास्यस्याब्रह्मणत्वम् । किञ्च यद्यत्कर्तृ तत्तत्सधर्मकं यद्यत्साकृति तत्तन्नश्वरमित्यनुमानत आकारस्य नश्वरत्वेन च ब्रह्मणो निराकारत्वसिद्धिः॥ अज्ञानं चाहमज्ञ इत्यनुभवसिद्धं तस्य नामान्तरं माया चाविद्येति सा विचित्रपरिणामशीला तया विचित्रं जगत्प्रतीयते शुद्धसत्त्वप्रधाना माया मलिनसत्वप्रधानाऽविद्येति भेदः तत्र यथा जलदर्पणादिषु सूर्यप्रतिबिम्बवन्मायाविद्यादिब्रह्मप्रतिबिम्बिततयेशर्जीवव्यवहारः यथा वाऽऽकाशस्य वृक्षवनादिना परिच्छेदप्रतीतौ वृक्षवनाकाशादिव्यवहारस्तथाऽविद्यामायासम्बन्धेन जीवेशादिव्यवहारः अथवाऽङ्गुलिसम्पर्कादिना द्विचन्द्रादिप्रतीतिस्तथा मायासम्बन्धतो जीवेशादिप्रतीतिरत एव 'आभास एव चे' ति सूत्रे व्यासैर्जीवस्याभासत्वमुक्तं यथा रज्जौ सर्पाभासस्तथा ब्रह्मणि जीवाभास इति अत एव "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्य"मिति श्रुतौ वाचैवारभ्यते विकारो घटादिर्न वस्तुतः सन्नित्यर्थः । "यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः । नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमय"मिति श्रीभगवद्वाक्येनापि मायिकत्वेन नश्वरत्वसिद्धेरतो भ्रान्त्यैव जगत्प्रतीतिरतो ब्रह्मण्यपि कर्तृत्वादिकं भ्रान्तिरेव । ननु "विश्वतश्चक्षुः" सह-

स्रशीर्षा" "सम्बाहुभ्यां धमति" "प्रज्ञानघनः" विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" "जन्माद्यस्य यतः" कर्त्ता कारयिता हरिः" "अहं सर्वस्य प्रभवः" इत्यादिश्रुतिसूत्रस्मृतिभिः साकारस्य कर्तृत्वस्य च सिद्धत्वादिति चेन्न शुद्धब्रह्मणो दुर्ज्ञेयत्वेन शाखारुन्धतीन्यायेनोपासनार्थं सधर्मकत्वं ब्रह्मण्यारोप्य पश्चान्निषेधतया कर्तृत्वाद्यपेतं ब्रह्म बोधयति–उपासनया हि चित्तशुद्धौ सत्यामद्वैतस्फूर्त्याऽविद्यानिवृत्त्या ब्रह्मैव भवतीति तेषां मतं तन्न। "यदिदं किञ्च तत्सत्यमित्याचक्षते" "तत्सत्यं" सर्वं खल्वि" त्यादि "तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिल" मित्यादिवाक्याद्युक्तवाक्यतश्च जगतः सत्यत्वं ब्रह्मत्वं चोक्तमिति जगतो मायिकत्वे मानाभावात् प्रत्यक्षैकादशशाखासु च मिथ्यात्वकथनाभावात् कार्यकारणयोः साजात्याद् ब्रह्मणः कर्तृत्वं "यतो वे" त्यादि जन्माद्यस्ये" त्यादिवाक्यैः प्रतिपादितमसतोऽज्ञानस्य कारणत्वाभावात्।न चासतः स्वप्नस्य शुभाशुभफलसूचकत्वेन कारणत्वमिति वाच्यम् । जागरितदशायां दृष्टश्रुतस्य मननसम्बन्धेन स्वप्नदर्शनादतः सत एव कारणत्वमन्यथा स्वाप्निकभोजनाद्वास्तविकतृप्तिः स्यात् । "निष्कल" मित्यादिश्रुतौ लौकिकक्रियाकलासत्वादिगुणजन्यशरीरविकारीन्द्रियजडधर्मनिषेधपरत्वेन कथनात् । सामान्यनिषेधे तु "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीव्न्वती"ति कलायाः– "आसीनो दूरं व्रजती" त्यादौ क्रियायाः– "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" इत्यादौ गुणाना "मपाणिपादो जवनो गृहीते"ति– "उतामृतत्वस्येशान" इत्युक्त्या सर्वतः पाणिपादकथनादन्यथा शरीरस्याविकारीन्द्रियाणा "मणोरणीयान्महतो महीयानि"त्यादावणुत्वादिबोधकानां विरोधापत्तेः । "अथात" इत्यत्रेतिशब्दः प्रकारवाची तेन लौकिकप्रकारकं न भवतीत्यर्थः– व्यासचरणैः"प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूय"इति सूत्रं पठितं तत्र निषेधवाक्यैरेतावत्त्वं स्थूलत्वादिकं प्रकृतं लौकिकं प्रतिषेधति नतु ब्रह्मधर्मान् ततो ब्रवीति च भूय इति यत्र वाक्ये प्रकरणे वा निषेधति तत्रैव पुनस्तद्धर्ममाह श्रुतिः।अस्थूलाद्युक्त्वा "एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि ! द्यावाभूमी विधृते तिष्ठत" इत्यर्थः यदिदं सूत्रं मूर्तामूर्त्तनिषेधपरं तर्हि प्रकृतैतावत्पदयोरन्यतरवैयर्थ्यापातः । अथवा प्रकृते ब्रह्मणि यदेतावत्त्वं तत्प्रतिषेधतीति " इन्द्रो मायाभि"रिति तु "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव यत्तस्य रूपं प्रतिचक्षणाय–इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयत" इति मन्त्रस्तत्र माया ज्ञानं प्रति कारणं न तु ब्रह्मणो बहु-

स्वरूपत्वेऽन्यथा पूर्वार्द्धएव मायाभिः पुरुरूपो बभूवेति वदेत्। "यद्वा-चेत्यस्यार्थस्तु यद्वागाद्यगम्यं तत्प्रेरयितृ तदेव ब्रह्म विद्धि नेदं वागादि तर्हि कथं तस्य ज्ञानमितिचेत्तत्राह यदिदं श्रुतिप्रसिद्धं–उपासते वैदिका इति शेषः। यद्युपास्यस्याब्रह्मत्वमभिप्रेयात् पुनरिदंकारं न ब्रूयात् नेदं यदुपासतइत्येतावतैव सिद्धेः। यद्यत्साकृति तत्तन्नश्वरमित्यनुमाने तु जन्यत्वात् प्राकृतत्वाद्वेति हेतोरवश्यं वाच्यत्वेनेश्वरे तदभावात्। अ-ज्ञानं चेत्यादिकथनं त्वपेशलम्। तदज्ञानं ब्रह्मणि जीवे वा आद्ये ब्रह्म-ण आधारत्वापत्तौसविशेषत्वापत्तिः अज्ञानित्वापत्तिश्च जीवस्यत्व-ज्ञानरूपत्वमेवेति न द्वितीयः। जलादौ स्वच्छाधारे सति प्रतिबिम्बद-र्शनेन मायाया मलिनत्वेन मिथ्यात्वेन ब्रह्मणश्चारूपत्वेन प्रतिबिम्बा-सम्भवः अन्यथा वायोरपि काष्ठे स्यादित्यादि विद्वन्मण्डने बहुशो निरूपितम्। आकाशस्य तु न प्रतिबिम्बः किन्तु प्रभामण्डलस्य। किञ्च पञ्चीकरणप्रक्रिययाऽऽकाशे पृथिव्यंशत्वेन स्वरूपवत्तया प्रतिबिम्बत्वो-पपत्तेः वायौ त्वनुद्भूतरूपवत्त्वेन रूपवत्त्वाप्रतीतेः। 'एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्' इतिदृष्टान्तः एकस्य नानात्वे न तु प्रतिबिम्बत्वे। किञ्च प्रतिबिम्बपक्षे ब्रह्मणो बिम्बत्वापत्तौ सविशेषत्वापत्तिः। "आभा-स एव चे"ति सूत्रं त्वनाचारिब्राह्मणे ब्राह्मणाभासस्तथा तिरोहितान-न्दांशे ब्रह्माभास इति बोधकम्। रज्जुसर्पदृष्टान्तोऽपि न सम्भवति अन्यत्र वास्तविकदृष्टसर्पस्य दृश्ये रज्जौ तृतीयस्य द्रष्टुः सर्पाभासः अत्र जगतो वास्तविकत्वाभावात् ब्रह्मणश्चादृश्यत्वेन द्रष्टुश्चासंभवेन वैषम्यात्। किंच घटपटाद्यात्मनाऽऽभासे, यथा रज्जौ नाश्वाकाराभासः किन्तु सर्पाभास एव तत्सादृश्यात् एवं ब्रह्मण्यपि तादृशत्वापत्तौ सा-कारत्वापत्तिः। गन्धर्वनगरादिष्वपि वायुसम्बन्धस्य जायमानत्वेना-न्यस्याभावान्नात्र दृष्टान्तसम्भवः। वाचारम्भणवाक्यं तु ब्रह्माभि-न्नत्वबोधकमित्यग्रे वक्ष्यते। यदिदमितिश्लोके तु चक्षुरादिभिर्नश्वरं गृ-ह्यमाणं यत्तन्मायामनोमयं विद्धि इत्यन्वयेन स्वाप्निकस्यैव नश्वरत्वेन तस्यैव मायिकत्वात्। अत एव "मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्व-रूपत्वादि"ति व्यासपादैः स्वाप्निकप्रपञ्चस्य मायिकत्वमुक्तमत एव "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिव" दित्यनेन जगतः स्वप्नादिवन्निषेधेन जगतो मायिकत्वाभावात्। श्रीप्रभुचरणैस्तु यदिदं यादवकुलं चक्षुरादिभि-र्गृह्यमाणं मायिकं नश्वरं विद्धि विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनामिति प्रश्नो-त्तरप्रकरणे निरूपितत्वात्। अतो न केनापि वाक्येन मायिकत्वम्।

किञ्च "मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते" इति श्रीमदाचार्यचरणैरुक्तम्। उपासनार्थं धर्मारोप इत्यादिकमप्ययौक्तिकम् नहि शाखावत्प्रत्यक्षं ब्रह्म यस्मिन्नरुन्धतीवद्धर्मा आरोप्यन्ते। किञ्चोपहितस्य त्याज्यत्वेन पुत्रादिवत्तत्यागापत्तिः। किञ्च मिथ्याज्ञानेन न चित्तशुद्धिः अन्यथा प्रापञ्चिकज्ञानेनापि चित्तशुद्धिः स्यात्। किञ्च जीवन्मुक्त्युच्छेदापत्तिः ज्ञानोदयेऽविद्याशरीरनिवृत्तेः। किञ्च प्रवेशानुपपत्तिः जीवहानिरेव मोक्षः जीवस्य मायिकत्वेन मायानाशे तन्नाश इति दिक्॥२२॥

मायामूलस्यास्य मतस्यातो मायाजन्यान्यत्वे पृष्ट्वोभयं दूषयन्ति किञ्चेत्यादि—

किञ्च जन्या त्वजन्या वा मायाऽऽद्ये जनको हि कः।
अन्याभावात्तु ब्रह्मैव सविशेषत्वमागतम्॥ २३॥
द्वितीये त्वद्वैतभङ्गः कादाचित्कं त्वसङ्गतम्।
आत्मैवेदमग्रआसीदित्यादिश्रुतिवाधतः॥ २४॥
अनादित्वे तु सान्तत्वमिति पक्षोऽप्यसङ्गतः।
अनादित्वे त्वनन्तत्वं मायाया इति निश्चयात्॥ २५॥

आद्ये जन्येतिपक्षे। ब्रह्मैव जनकमिति चेत्तर्हि भद्रं सविशेषत्वं ब्रह्मण्यागतमित्यर्थः॥ द्वितीयइति अजन्येतिपक्षइत्यर्थः॥ अजन्यत्वेन नित्यत्वादद्वैतभङ्गः। कादाचित्कमिति माया कादाचित्केति तृतीयः पक्षः सोऽप्यसङ्गतः। कादाचित्कत्वेन सनिमित्तत्वाद्ब्रह्माणि तदभावेन वक्तुं न शक्यमित्यर्थः। तर्हि अनादिः सान्ता मायेति पक्षः स्यात्तत्तु सर्वथा अयोग्यमित्यत्र श्रुतिमाहुः आत्मैवेदमित्यादि। एवकारेणात्मनोऽन्यस्य व्यवच्छेदात्। आदिशब्देन सदेव सौम्येदमग्रआसीदित्यादिशब्दार्थः॥ यद्यदनादि तत्तदनन्तं यथा ब्रह्म इत्यनुमानेन मायाया अप्यनन्तत्वापत्तेः। अथानादिःसान्तः प्रागभाव इति नायं नियम इति चेन्न प्रागभावखण्डनस्योपपादितत्वेन न व्यभिचारः (मायाया भावपदार्थत्वेन तन्मते स्वीकारादपि प्रागभावदृष्टान्तो नयदत्ते)॥२३॥२४॥२५॥

एवं तन्मतं खण्डयित्वा प्रकृतमाहुरेतन्मतइति—

एतन्मते सुनिष्पन्नं साङ्कर्यं कार्यकारणे।
तन्निवृत्त्यर्थमाचार्यैः पदं शुद्धं विशेषितम्॥ २६॥

शङ्कराचार्यमतइत्यर्थः । अविद्यावच्छिन्नं चैतन्यं कार्यं मायावच्छिन्नं चैतन्यं कारणमिति साङ्कर्यमित्यर्थः । तन्निवृत्त्यर्थमद्वैतपदे विशेष्ये विशेषणतयाऽन्वितमित्यर्थः ॥ २६ ॥

एवं शुद्धपदप्रयोजनमुक्त्वा समासमाहुः शुद्धाद्वैतपदइत्यादि–

शुद्धाद्वैतपदे ज्ञेयः समासः कर्मधारयः ।
अद्वैतं शुद्धयोः प्राहुः षष्ठीतत्पुरुषं बुधाः ॥ २७ ॥
मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥ २८ ॥
इति ब्रह्मविदां हार्दं शुद्धाद्वैतं श्रुतेर्मतम् ।
तत्रोत्तमा मध्यमाश्च कनिष्ठा ह्यधिकारिणः ॥ २९ ॥
तेषां प्रतीतिः प्रथमस्कन्धे तु श्रीहुताशनैः ।
"इदं हि विश्व"मित्यत्र सुबोधिन्यां निरूपिता ॥ ३० ॥
सर्वं ब्रह्मैव तत्राऽऽद्ये द्वितीये भगवान्यथा ।
तथा विश्वमिदं सर्वं ब्रह्मकार्यं निजेच्छया ॥ ३१ ॥
कार्यरूपेण भेदो हि न भेदः कारणात्मना ।
भेदसत्वे ह्यभेदोऽत्र तादात्म्यं परिकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥
तृतीये भगवान् भिन्नो जगतः कर्तृतः स्फुटम् ॥
इति द्वैतप्रतीतिस्तु श्रुतिबाधान्न गृह्यते ॥ ३३ ॥
शुद्धाद्वैतविदां या हि प्रतीतिः सोत्तमा मता ।
भेदाभेदप्रतीतिस्तु मध्यमानां प्रकीर्त्तिता ॥ ३४ ॥
अतो हि मध्यमः पक्षः शुद्धाद्वैतानुरोधतः ॥
बोधाय बहुसन्दर्भे गोस्वामिपुरुषोत्तमैः ॥ ३५ ॥
श्रीमदाचार्यचरणैर्यत्रकुत्रापि दर्शितः ।

कर्मधारय इति शुद्धं च तदद्वैतमिति विग्रहः । न चाद्वैते सति साङ्कर्याभावः स्पष्ट एवेति शुद्धपदमपार्थमिति वाच्यम् । परेषां मते पूर्वं साङ्कर्यं ततोऽद्वैतं मन्मते तु सदैव शुद्धत्वमिति ज्ञेयमत एव स्पष्टतया बोधाय

षष्ठीतत्पुरुषमाहुः ।.अत्र शुद्धे कारणे कार्यस्याद्वैतमिति पक्षे कार्येऽशुद्धत्वमयं दोषः, शुद्धेन ब्रह्मणाऽद्वैतमिति तृतीयातत्पुरुषेऽपि, शुद्धाभ्यामद्वैतमितिपक्षे तार्तीयोऽपेक्षितः, शुद्धाभ्यां नामरूपाभ्यामिति समासे कारणेऽशुद्धत्वम्, एवं शुद्धस्य कार्यस्येति पक्षे कारणेऽशुद्धत्वं प्राप्तम्, एवं शुद्धानां पदार्थानामद्वैतमित्यत्रापि ॥ मायासम्बन्धरहितामिति न चाहंताममताध्यासस्य मायाकृतत्वेन मायासम्बन्धस्य स्वमतेऽपि सम्भव इति वाच्यम्।स्वमते मायाया अपि "मम माये"ति वाक्यात् भगवच्छक्तित्वेन तस्याश्चाभिन्नत्वेन न परमतवन्मायासम्बन्धः । किं चाध्यास एव मायिको न जीवः । जीवस्य मायिकत्वं तु पूर्वं निरस्तम् ॥ इतीति । श्रुतिरिति जातावेकवचनं नृसिंहतापिन्यां योनित्वं ब्रह्मणः समर्थयित्वा "सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवाः सर्वमयाः सर्वावस्थासु तथाऽप्यल्पा" इत्युक्तम्। तथाऽपि सर्वरूपत्वेऽप्यल्पाः अणुपरिमाणाः।अग्रे च "श्वरः सर्वभूतादीनि सृष्ट्वा प्रविश्यास्त" इति निरूप्याग्रे "सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः प्रमाणैरेतैरवगत" इति वाक्यं पठितम् । अनेन परमात्मनः शुद्धत्वमुदितम् अग्रे च जगतोऽविद्यायाश्च सद्रूपत्वेन ब्रह्माभेदो ब्रह्मण्यविद्याभावो निरूपितः उपसंहारे "विष्णुरीशानो ब्रह्मान्यदपि सर्वं सर्वग" मिति वाक्यं पठितम् । तत्सर्वगं कारणभूतं ब्रह्म तदेव विष्ण्वादिरूपं घटादिरूपं चेतनाचेतनात्मकमित्यर्थः । एतदग्रे सर्वस्य जगतः शुद्धात्मत्वाय वाक्यं पाठितम् "सर्वमत एव शुद्धोऽबाध्यस्वरूपो बुद्धः सुखरूप आत्मे"ति । एवं च श्रुतिषु सर्वस्य शुद्धाद्वयत्वं स्पष्टमतः श्रुतेर्मतमित्यर्थः । तेषामिति अधिकारिणामित्यर्थः श्रीहुताशनैः श्रीमदाचार्यचरणैः "इदं हि विश्व" मित्यत्रेति "इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यस्मिन् जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः । तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथाऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् इतिश्लोकइत्यर्थः । अत्रेदं विश्वं भगवानित्युत्तमप्रतीतिः इदं विश्वं भगवानिवेति मध्यमस्य तत्र यथा भगवान् सच्चिदानन्दरूपस्तथा जगदिति इदं विश्वं भगवानितरो जगत्कारणत्वादिति कनिष्ठस्येति श्लोकार्थः ॥ तत्रेति अधिकारिष्वित्यर्थः । आद्ये उत्तमाधिकारिणि सर्वं भगवानेवेति सर्वत्र भगवत्स्फूर्त्तिः सदेत्युत्तमाधिकारिणः प्रतीतिः द्वितीये मध्यमेऽधिकारिणि, तृतीये कनिष्ठेऽधिकारिणि यथा घटोत्पादकः कुलालो घटतो भिन्नस्तथा भगवान् जगतो भिन्न इत्यर्थः । श्रुतिबाधादिति "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं" "आत्मैवेदं सर्वं" "पुरुष

एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं" "द्वितीयाद्वै भयं भवति" "य एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति" "योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मि न स वेद यथा पशुः" इत्यादिश्रुतिबाधादित्यर्थः॥ शुद्धाद्वैतविदामिति सर्वत्र भगवत्स्फूर्त्त्या विषयान्तरानुसन्धानानुदयादिति भावः। भेदाभेदप्रतीतिरिति कार्यरूपेण भेदः कारणात्मनाऽभेद इति प्रतीतिरित्यर्थः। मध्यमानामिति अधिकारिणामित्यर्थः॥ शुद्धाद्वैतानुरोधत इति कार्यत्वेन भेदेऽपि ब्रह्मत्वं न व्यभिचरतीति शुद्धाद्वैतानुरोधात्तस्मादित्यर्थः। सन्दर्भइति ग्रन्थइत्यर्थः। "वाक्यसन्दर्भो ग्रन्थ" इति लक्षणात्॥२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५ श्रीमदाचार्यचरणैरिति सुबोधिन्यादिषु यत्रकुत्रापि दर्शित इत्यर्थः॥

ननु भेदाभेदपक्षस्तु निम्बार्कभास्कराणामिति शङ्कायां स्वस्माद्भिन्नत्वं समर्थयन्ति निम्बार्केत्यादि—

निम्बार्कभास्कराचार्यौ भेदाभेदनिरूपकौ॥ ३६॥

तत्राऽऽद्यानां वास्तवः स भास्कराणामुपाधितः।

तत्राऽऽद्ये वास्तवो भेदो माध्वाचार्यवदेव हि॥ ३७॥

विभिन्नांशास्सदा जीवा न स्वांशा इति निश्चयः॥

अभेदश्चित्त्वसाधर्म्यादेवं तेषां मतस्थितिः॥ ३८॥

तत्रेति उभयोर्मध्यइत्यर्थः आद्यानां निम्बार्काणां स भेदाभेदः उपाधित इति उपाधिकृत इत्यर्थः। तत्रेति भेदाभेदपक्षइत्यर्थः। आद्ये निम्बार्कभेदाभेदे तत्राभेदो भेदश्चेति कोटिद्वये भेदो वास्तवः माध्वाचार्यवदिति दृष्टान्तेन माध्वाचार्यस्य मतमनूदितम्॥ ३६॥ ३७॥ माध्वाचार्याणां मते अंशा द्विविधाः करचरणादिवत्स्वांशाः पुत्रादिवद्विभिन्नांशाः तत्र स्वांशा मत्स्यादयः विभिन्नांशा जीवाः। अंशत्वं नाम राश्येकदेशत्वं माध्वानुयायिवनमालिदासस्तु तद्भिन्नत्वे सति तत्सदृशत्वमंशत्वं यथा चन्द्रमण्डलाच्छतांशो गुरुमण्डलम्। तथांशो नानाव्यपदेशादित्यादिषु तेन जीवेषु न कदाऽपि ब्रह्मत्वमिति। तद्वन्निम्बार्काचार्याणाम्। तर्हि कथं भेदाभेदस्तत्राहुरभेद इति चित्त्वसाधर्म्यादिति। यथा मुखं चन्द्र इत्यत्राह्लादकत्वादिधर्मसाम्यान्मुखे चन्द्रारोपान्मुखं चन्द्र इति व्यवहारस्तथा चित्त्वसाधर्म्याज्जीवो ब्रह्मेति व्यवहार इति भावस्तेषां निम्बार्काणाम्॥ ३८॥

कनिष्ठा सा प्रतीतिस्तु नास्मन्मतमवेक्षते।
अभेदो वास्तवः स्वांशा जीवा इति निजे मते॥ ३९॥
भेदः कार्यतया जातः क्रीडार्थन्तु हरीच्छया।
पश्चाल्लये कारणे हि स्थितिर्दृष्टा यथा मृदि॥ ४०॥

कनिष्ठाधिकारिप्रतीतिरतः कनिष्ठेत्यर्थः। निम्बार्कभेदाभेदप्रतीतिस्त्वित्यर्थः। अस्मन्मतं शुद्धाद्वैतमतम्। एवं भेदाभेदं निरूप्य स्वमते प्रतीयमानं भेदाभेदं निरूपयन्ति अभेदो वास्तव इति। स्वांशा ब्रह्मांशाः तेनांशांशिनोरभेदः स च वास्तव इत्यर्थः॥ क्रीडार्थमित्यादि"एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्""एकोऽहं बहु स्यामित्यादिश्रुतेः" "क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियः परईश!कुर्यु"रितिवाक्यात्। "क्रीडाभाण्डं विश्वमिद"मिति वाक्याच्च लयइति तिरोभावे। कारणे कार्यस्येति शेषः। "त्वय्यग्रआसीत्त्वयि मध्यआसीत्त्वय्यन्तआसीदिदमात्मतन्त्रे। त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मा"दित्यष्टमस्कन्धेऽमृतमथने ब्रह्मवाक्यात्। तदेव दृष्टान्तमुपपादयन्ति यथा मृदीति॥ ३९॥ ४०॥

पूर्वावस्थेति—

पूर्वावस्था तु मृद्रूपा घटावस्था ततोऽभवत्।
घटोऽपि मृत्तिकारूपो लये पश्चाच्च मृत्तिका॥ ४१॥
कार्यकारणयोरैक्यं स्वमते न परे मते।
नैम्बार्के नेदृशो मार्ग इति वोद्धव्यमञ्जसा॥ ४२॥

कारणावस्थेत्यर्थः। ततः कारणरूपान्मृदः। ननु घटावस्थायां कथमद्वैतं तत्राहुः घटोऽपीति। एवं च तिसृष्वप्यवस्थासु मृदेवैवं जगद्ब्रह्मैवेति न द्वैतसञ्चारः। अनेन "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्य"मिति श्रुत्युक्तं संङ्गृहीतम्। श्रुत्यर्थस्तु यो विकारः पृथुबुध्नोदरादिः स वाचारम्भणं वाचिकक्रियात्मको न तु कारणाद्व्यक्तिभेदापादकः यथा सुप्तउत्थितउपविष्टे च पुरुषेऽवयवविन्यासभेदो न तु पुरुषभेदोऽतो नामधेयं कारणस्यैव। नामधेयं कारणमेव हि तत्तदर्थक्रियानिष्पत्त्यर्थं घटशरावादिनाम्ना व्यवह्रियतइति कारणादभिन्नं कार्यं तदाह "मृत्तिकेत्येव सत्यम्"। कारणरूपेण सत्यं न तु मिथ्या अन्यथा कार्याभावेन ब्रह्म कस्य कारणं भवेत्? कारणाभावे कारणप्रतिपादिका "यतो वे"त्या-

दिश्रुतयो विरुध्येरन्। यदि विकारे वाङ्मात्रतामभिप्रेयाद्वाचारम्भणं विकारो मृत्तिकैव सत्यमिति वदेत् तावतैव कार्यस्य मिथ्यात्वसिद्धेः नतु नामधेयमितिपदाभ्यां घटितं तेन कारणादभिन्नं कार्यमित्यभिप्रायादुक्तएवार्थः। किञ्च वाचारम्भणमिति वाक्यमुपक्रम्याग्रे "कथमसतः सज्जायेते"ति "सदेव सौम्येदमग्रआसी"दिति पठितमत एव सूत्रकार इमामेव श्रुतिं विषयीकृत्य "तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य" इत्यवदत्। अर्थस्तु वाचारंभणमित्यादिशब्देभ्यस्तदनन्यत्वं कारणादभिन्नत्वं बोध्यतइत्यर्थः। अत्रादिपदेनेतिशब्दो, नामधेयपदं सदेवेत्यादीनि वाक्यानि च संगृह्यन्ते। परे स्वमताद्भिन्ने। शङ्कराचार्याः कार्यकारणयोरनन्यत्वं कार्यस्य मिथ्यात्वाश्रयेण कथयन्ति तेषां कार्यकारणयोरनन्यत्वं न सिध्यति सत्यमिथ्ययोरभेदानुपपत्तेः। अत्र सर्वमतोपन्यासखण्डने च विस्तरभिया नोच्यते। नैम्बार्कइति निम्बार्कस्येदं नैम्बार्कमतं तस्मिन्मतइत्यर्थः। ईदृशो जगद्ब्रह्मणोरैक्यबोधको मार्गः॥ ४१॥ ४२॥

भास्कराचार्यमतमाह सोपाधिक इति—

सोपाधिको भास्करे हि स्वस्माद्भिन्नस्तु सर्वथा॥
भेदपक्षे तु जीवानां सुखदुःखादिदानतः॥ ४३॥
वैषम्यनैर्घृण्यइति दूषणे द्वे परे स्थिते।
अनादि कर्म चाश्रित्य समाधाने त्वनीशता॥ ४४॥

तदनन्यत्वाधिकरणे वाचारम्भणवाक्यव्याख्याने कारणमेव हि कार्यात्मनाऽवतिष्ठते मृत्समन्वितं हि त्रिष्वपिकालेषु कार्यं नाश्वमहिषवद्देशतः कालतो वा व्यतिरिक्तमुपलभ्यते। कारणस्यावस्थामात्रं व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तं शुक्तिरजतवदागमापायिधर्मत्वात् अनृतमनित्यमिति च व्यपदिश्यते तदर्थमेव मृत्तिकेत्येव सत्यमित्युक्तम्। भेदस्त्वौपाधिक इति "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेराप" इत्यादिक्रमेण जीवस्योत्पत्तेरनुक्तत्वात्। "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः" "अविनाशी वाअरेऽयमात्मे"त्यादिश्रुतीनामन्यथाकर्तुमशक्यत्वेन चोपाधिकृतभेदाभिप्रायेण विस्फुलिङ्गश्रुतिर्विपरिणेयेत्यङ्गीकृत्याणुत्वं संसारदशायां लिङ्गशरीराभिप्रायेण मनसो लिङ्गस्य चाणुत्वात् वस्तुतो व्यापक इति चाङ्गीकृत्य जीवस्यांशत्वमुपाध्यवच्छिन्नत्वेनाङ्गीकृतम्। तथा च ब्रह्मणो निरवयवत्वेन "यथाऽग्ने"रिति श्रुतौ

दृष्टान्तकथनेन यथाऽऽकाशस्य पार्थिवाधिष्ठानावच्छिन्नत्वं तथा जीवोऽपि ब्रह्मणो भिन्नाभिन्नस्वरूपस्तस्य भिन्नरूपमौपाधिकमभिन्नरूपं तु स्वाभाविकमित्यादि प्रतिपादितम् भास्कराचार्यैरतस्तेषां मते सोपाधिको भेदाभेद इत्यर्थः। स्वमते व्यतिरेकमाहुः स्वस्मादिति स्वमते जीवस्याणुत्वं वास्तवं "एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य" इति श्रुतेः। लिङ्गशरीराभिप्रायकथनेन लक्षणाङ्गीकारे गौरवात् बीजाभावाच्च। "एष महानज आत्मे" त्यादिव्यापकश्रुतीनां ब्रह्मप्रकरणस्थत्वादेव "नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारा" दिति तत्त्वसूत्रं सङ्गतं भवति। सूत्रार्थस्तु जीवोऽणुर्न अतच्छ्रुतेः एष महानित्यादिना इतिचेन्नेतराधिकारात् इयं श्रुतिर्ब्रह्माधिकारे पठिता तस्मादित्यर्थः। विस्फुलिङ्गश्रुत्या जीवस्योद्गम एवोच्यते नोत्पत्तिरिति सिद्धान्तादतो नाजो नित्य इत्यादिश्रुतिविरोधः। आकाशादिसृष्टौ तु क्रमेणोत्पत्तिः तत्रा"ग्न्यन्नात्पुरुषः स वाएष पुरुषोऽन्नरसमय"इत्युक्तेर्जीवस्य प्रादुर्भाव उक्तः तच्छब्देनोपादानात्। विस्फुलिङ्गन्यायेन तु सर्वस्योत्पत्तिरेकरीत्या उपाधिकल्पनायां प्रमाणाभावः। व्यापकत्वं तु ब्रह्मत्वेनोत जीवत्वेन? आद्ये शङ्करमतप्रवेशः द्वितीये नैयायिकमतप्रवेशेनौपाधिकभेदस्य निरासेन स्वमतप्रच्युतिः। किञ्च व्यापकत्वे देवदत्तेनाम्रे भक्षिते यज्ञदत्तस्यापि तद्रसानुभवापत्तिः आत्ममनःसंयोगकारणस्य तत्रापि सत्त्वात्। किञ्च जीवब्रह्मणोर्व्यापकत्वे नियम्यनियामकश्रुतिविरोध इति दिक्। न चाणुत्वे सकलशरीरचैतन्यानुपलम्भः प्रभावदुपपत्तेरित्यादिपूर्वमुदितम्। स्वमते भेदस्तु सुवर्णखण्डवदंशांशिभावेन स्पष्ट एवेति पूर्वापरावलोकनेन महद्वैलक्षण्यमत आहुः सर्वथेति। एवं भास्करमतं दूषयित्वा वास्तविकभेदे दूषणमाहुः भेदपक्षे त्विति भेदपक्षे तावत् "अपि वा तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवति" "यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्या" दित्यादिषु श्रुतिषु सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा मृत्पिण्डदृष्टान्तश्च विरुध्येत ॥ ४३ ॥ किञ्च कस्यचित्सुखं कस्यचित् दुःखमिति वैषम्यं परक्लेशाभावकरणसामर्थ्यवत्त्वे तदकरणे नैर्घृण्यं परे ब्रह्मणि। ननु स्वार्जितकर्मणा प्राप्तं सुखं दुःखं भुज्यते उत्तरोत्तरकर्मणः पूर्वं पूर्वं कर्म निमित्तम्। कर्मणश्चानादित्वान्नेश्वरे दोषप्रसक्तिरत आहुः अनादिकर्मेति कर्मण एव फलदातृत्वे ईश्वरस्याप्रयोजनतयाऽनीश्वरवादापत्तिः। कर्मणो जडत्वेन तदनुसारेण फलभोक्तृत्वमुक्तं तत्रापि कर्मकारयितृत्वमीश्वरस्य तथा चा-

ह श्रुतिः "तमेव साधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषति तमेवासाधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषति" एतेन "साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवती"ति श्रुतौ भगवत्प्रेरणया साधुपापकर्मकर्तृत्वं बोध्यम्। तमेवेति श्रुत्यनुरोधात्। अत एव "कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वा"दिति सूत्रेण विध्यादिबोधितकर्मकर्तृत्वं जीवस्यातो विध्यादिशास्त्रार्थो जीवोद्देशेन प्रवृत्त इति कर्तृत्वंजीवस्योक्त्वा स्वतो वा भगवत्प्रेरणया वेति संशये "परात्तुतच्छ्रुते" रिति सूत्रेण परादीश्वरात्तस्य कर्तृत्वस्य श्रुतेरिति समाधानं सङ्गच्छते। तस्मात्कर्म्माश्रयत्वेन समाधाने त्वनीशत्वापत्तिः ॥ ४४ ॥

अत्र सर्वेषां मतस्य दुष्टत्वेन तेषां नामान्याहुरत्रापीति—

अत्रापि शाङ्कराः शैवा माध्वा रामानुजादयः।
निम्बार्का भास्करा भिक्षुर्येऽन्ये ते दोषसंश्रिताः ॥ ४५ ॥

कर्माश्रयत्वेन परिहारेऽपि शबलस्य ब्रह्मणो दोषपरिहाराय कर्माश्रयेण समाधानं शङ्कराचार्यैः कृतम्। शैवो रामानुजमततस्करो विशिष्टाद्वैतवादिनां तस्य मतं त्वग्रे विवेच्यं भिक्षुमतमप्यग्रे। दोषसमाश्रिता इति ईश्वरेऽनीश्वरत्वापत्तिरूपदोषविशिष्टा इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

ननु तर्हि सिद्धान्तेऽपीमौ दोषौ स्थितौ नेत्याहुरात्मसृष्टेरिति—

आत्मसृष्टेर्न वैषम्यं नैर्घृण्यं चापि विद्यते।
श्रीमदाचार्यचरणैर्निबन्धइदमीरितम् ॥ ४६ ॥
श्रीमत्प्रभुवरैर्विद्वन्मण्डनेऽपि निरूपितम्।
रमणार्थमिदं विश्वमुच्चनीचादिभावतः ॥ ४७ ॥
आत्मरूपं चकारातो हरिर्यस्मान्न दूषणम्।

"तदात्मानं स्वयमकुरुते"ति श्रुत्या ब्रह्मैव जगदाकारेण स्वेच्छयैव रमणार्थमुच्चनीचादिभावेन जातमिति बोधितमतोऽभिन्नत्वान्न वैषम्यं नापि नैर्घृण्यमित्यर्थः। निबन्धे शास्त्रार्थे। विद्वन्मण्डने इति तत्र हि पूर्वं जीवानामानन्दादितिरोधाने मिथ्याज्ञानादिप्रसक्तावुपस्थितहान्यकृताभ्यागमदोषपरिहाराय स्वेच्छाया एव हेतुत्वमुक्त्वाऽन्यथा जगत्स्थितिसंहारेऽपीमौ दोषौ प्रसज्येयातामित्युक्त्वैतत्साधकयुक्तीर्विस्तरशो निरूप्य "कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्य"

इति सूत्रमुपन्यस्य "एकोऽहं बहु स्या" मिति प्रपञ्चे रमणेच्छया हि भगवान् क्रीडार्थं कृतप्रयत्नः विविधमर्यादादिरूपः जन्मकालादारभ्या-मोक्षं विचारितवान् तदाऽहि क्रीडैव मुख्याऽन्यत्सर्वमुपसर्जनीभूतम् । तथा च तदपेक्षो भगवान् तदनुसारेणैव कारयति यतो विहितस्य यागादेः प्रतिषिद्धस्य विप्रहननादेरवैयर्थ्यमेव भवेत् मर्यादाभावे तु स्वर्गनरकादिदातृत्वेन विधिनिषेधवैयर्थ्यं भवेदित्युक्तम् अतः कृतहा-न्यकृताभ्यागमवैषम्यनैर्घृण्यादिरूपदूषणे नेत्यर्थः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभेदो यः स न बाधकः ॥ ४८ ॥
तत्र भेदो न चैवास्ति शक्तेर्ब्रह्मत्वनिश्चयात् ।
भिन्नत्वे तु जडत्वं स्याद्भेदो यो बोधनाय सः ॥ ४९ ॥
धर्मधर्मिविचारेऽपि ज्ञेयमेवं विचक्षणैः ।
प्रकाशाश्रयदृष्टान्तेऽप्यभेदो बोध्यते किल ॥ ५० ॥

एवं प्रासङ्गिकं वैषम्यादिदोषं परिहृत्य शक्तिशक्तिमतोर्भेदं परिह-रन्ति शक्तिशक्तिमतोरिति ॥ तत्रेति ब्रह्मणीत्यर्थः ॥ ननु "प्रकाशाश्र-यवद्वा तेजस्त्वा" दितिन्यायेन प्रकाशप्रकाशाश्रययोर्भेदाभेद इति चेत्तत्राहुः प्रकाशाश्रयेत्यादि–सूत्रार्थस्तु ब्रह्मधर्मा भिन्ना उताभिन्ना इति संशये धर्माणां नित्यत्वेन भिन्ना इति प्राप्तआहुः प्रकाशेत्यादि । वाशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः यथा प्रकाशाश्रयाः सूर्यादयः प्रकाशतो न भिन्नाः एवं ब्रह्मधर्मा ब्रह्माभिन्नाः कुतस्तेजस्त्वात् यथा तेजः सूर्यश्च तेज एव "सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवं वाऽरेऽयमात्मा कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवे"तिश्रुत्या एकरूपत्वकथनादत्रापि तेजस्त्वदृष्टान्तेन सर्वं ब्रह्मैवेति धर्मिधर्माभेद एव बोध्यते ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

धर्माणां ब्रह्मत्वे द्वितीयं सूत्रं प्रमाणमाहुररूपवदित्यादि–

अरूपवत्सूत्रवाक्ये धर्माणामपि ब्रह्मता ।
निरूपिता प्रभुवरैः श्रीविद्वन्मण्डने स्फुटम् ॥ ५१ ॥

सूत्रं तु "अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वा"दिति तत्त्वसूत्रइत्यर्थः । अर्थस्तु रूप्यते व्यवह्रियतइति रूपं सर्वव्यवहारविषयत्वं तद्वद्विश्वं तद्विलक्षणं ब्रह्मेत्यर्थः । अथवा रूप्यते व्यवह्रियतेऽनेनेति रूपं करायुच्यते यथा लोके करादिभिन्नतदभिमानी रूपवद्भिन्नः एवं ब्रह्म न निरूप्यते किन्तु ब्रह्मै-

व निरूप्यते इति रूपवदित्यर्थः । तत्राहुस्तत्प्रधानत्वात् सर्वेषां वेदान्तानां ब्रह्मैव प्रतिपाद्यं यतः करादीनामपि ब्रह्मत्वेनैव निरूपणमन्यथा तेषामब्रह्मत्वे "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य" इति नियमव्याहृतिः अतः करादिनिरूपकाः साक्षाद्ब्रह्मप्रतिपादका एवेति। हि युक्तोऽयमर्थः। "यथा सैन्धवघन' इति "सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मे" ति "आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि" रिति "आनन्दमयोऽभ्यासा" दिति श्रुतिस्मृतिन्यायैक्वाक्यतया सच्चिदानन्दरूपत्वं करादीनामवधेयम्। अत एव "आह च तन्मात्र" मिति सूत्रकारो जगाद। अर्थस्तु तन्मात्रमानन्दमात्रं करादीनां श्रुतिः स्मृतिश्चाहेति श्रीविद्वन्मण्डने धर्माणां ब्रह्मता स्फुटं निरूपितेत्यर्थः। योगियाज्ञवल्क्यस्मृतावपि "अथवा परमात्मानं परमानन्दविग्रह" मित्युक्तम् ॥ ५१ ॥

अतःपरं रामानुजाचार्यमतमेकदेशीति सूचयितुं स्वमतं तन्मते प्रविष्टमित्याशङ्क्य स्वमतस्य तस्मादतिरेकं साधयन्ति अथेत्यारभ्य विचक्षणैरित्यन्तम्।

अथ श्रीमन्निजाचार्यैर्निबन्धइदमीरितम्।

य: सर्वत्रैव सन्तिष्ठन्नन्तरः संस्पृशेन्न तत्।
शरीरं तन्न वेदेत्थं योऽनुविश्य प्रकाशते ॥ ५२ ॥

निबन्धइति शास्त्रार्थइत्यर्थः ॥ यः सर्वत्रेति–सर्वत्र पृथिव्यादिषु अन्तरो मध्यः तत्पृथिव्यादि न संस्पृशेत् लोकवत्तद्गतसुखदुःखादिभाङ् न भवतीत्यर्थः। शरीरं पृथ्व्यादि कर्तृ तमीश्वरं न जानाति यः पृथिव्यादिष्वनुप्रवेशं कृत्वा प्रकाशतइत्यर्थः । तथा च श्रुतिः "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिवीमन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति "य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयती" त्यादि ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इतीति—

इति तेन शरीरन्तु हरेस्तु चिदचित्स्मृतम्।
जडजीवान्तःस्थितानां भेदेन सुनिरूपणैः ॥ ५३ ॥

निबन्धे यन्निरूपितं तेन निरूपणेनेति योजना ॥ ५३ ॥

तत्त्वत्रयमिति—

तत्त्वत्रयं समायाति विशिष्टाद्वैतवादिनाम् ।
रामानुजानामिति चेन्न दोषोऽस्मन्मते शृणु ॥ ५४ ॥

विशिष्टाद्वैतवादिनां तत्त्वत्रयं समायाति स्वमतइति शेषः । विशिष्टाद्वैतमित्यस्य विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे विशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतमिति समासः सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टं कारणं स्थूलचिदचिद्विशिष्टं कार्यं तयोरद्वैतमित्यर्थः ॥ ५४ ॥

जडजीवान्तरात्मान इति कार्ये भिदा श्रिता ।
वहु स्यान्तु प्रजायेयेत्यादिश्रुतिषु वर्णनात् ॥ ५५ ॥

कार्ये भिदेति भेदोऽपि न घटपटवत् किन्तु मृद्घटशरावत् । रामानुजाचार्याणां तु वस्तुतो भेदः ॥ ५५ ॥

न कारणे भिदा ज्ञेया तत्रैकोऽहं निरूपणात्।
आत्मैवेदमग्रआसीदित्यादिषु च दर्शनात् ॥ ५६ ॥

तत्र कारणावस्थायां आत्मैवेत्येवकारेणाचितो निषेधात् इत्यादिषु श्रुतिषु ॥ ५६ ॥

तत्रैकाकी न रमते द्वितीयेच्छा निरूपिता ।
श्रुतिविद्भिरतो ज्ञेयं ब्रह्मैकं नान्यदेव हि ॥ ५७ ॥

नान्यदिति ब्रह्मातिरिक्तं नान्यदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

अन्यस्य च स्थितौ तत्र द्वितीयस्य च सम्भवात् ।
रमणार्थं द्वितीयेच्छा श्रुत्युक्ता भग्नतामियात् ॥ ५८॥
एकोऽहमित्यपि मुधा तस्माच्छ्रुतिविरोधतः ।
तत्त्वत्रयं कारणे हि त्याज्यमेव विचक्षणैः ॥ ५९ ॥

त्याज्यं नाङ्गीकर्त्तव्यमित्यर्थः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

यत्र येनेति—

यत्र येनेति पद्येतु निवन्धे सुनिरूपितम् ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालश्च हरिरेव हि ॥ ६० ॥

पद्ये पद्यव्याख्याने। निबन्धे शास्त्रार्थे। सुनिरूपितमिति श्रीमदाचार्यचरणैरिति शेषः। इदं पूर्वं निरूपितं पद्यं श्रीभागवतस्थं श्रीमदाचार्यचरणैर्निबन्धे स्थापितम् ॥ ६० ॥

एकमेवाद्वितीयं तु ब्रह्म सर्वत्र रूप्यते।
यः सर्वत्रैवेतिपद्ये गोस्वामिपुरुषोत्तमैः ॥ ६१ ॥
सृष्टिकाले भगवतः शरीरं चिदचित्स्मृतम्।
अन्तर्यामिण एतेन विशिष्टाद्वैतमेव यत् ॥ ६२ ॥
तदेकदेशि विज्ञेयमित्युक्तं तैर्विचक्षणैः।

यः सर्वत्रैवेतिपद्ये इति निबन्धटीकाव्याख्याने आवरणभङ्गइत्यर्थः ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ विचक्षणैरिति एतन्मतस्यैकदेशित्वनिरूपणेन बुद्धिमत्त्वरूपाकाङ्क्षाया उत्थितत्वान्न समाप्तपुनरात्तदोषः। एवं रामानुजाचार्यमतं दूषयित्वा तत्तस्करमतखण्डनमाहुः शैवोऽपीति

शैवोऽप्येतेन विध्वस्तो यतस्तच्चोर एव हि ॥ ६३ ॥

शैवस्तावद्विशिष्टाद्वैतमेवाङ्गीकृत्य "मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगदि" ति श्वेताश्वतरश्रुतिं "आत्मा तस्याष्टमी मूर्ति" रिति स्मृतिं चोदाहृत्य ब्रह्मावयवत्वेन विशिष्टांशं जीवस्य प्रकृतेश्चाह। सर्वत्र शिवपरत्वेन श्रुतिं स्मृतिं चाह च स तु एतेन विशिष्टाद्वैतखण्डनेन। मायां त्वित्यात्मेतिश्रुतिस्मृती कार्याभिप्राये इति न दोषः। शिवपरत्वादिखण्डनञ्च श्रीपुरुषोत्तमचरणैर्भाष्यप्रकाशे प्रहस्ताख्ये पण्डितकरभिन्दिपालाख्ये च निरूपितं ततोऽवलोकनीयम्। तच्चोर इति रामानुजमतचोरः कश्चिन्मध्वमतस्यापि तदेवोक्तं श्रीपुरुषोत्तमचरणैर्भाष्यप्रकाशे "रामानुजमतस्यैव चोरो मध्वमतस्य च। क्वचित् क्वचित्तद्विरुद्धां शैवः श्रुतिमुदाहरन्" भिन्नप्रस्थानं मन्यतइति ॥ ६३ ॥

एवं शैवमतं दूषयित्वा विज्ञानेन्द्रभिक्षुमतखण्डनमाहुर्मायोपाधिककर्तृत्वमिति—

मायोपाधिककर्तृत्वं भैक्षवे दृश्यते तु यत्।
तन्मायावादध्वंसेन ध्वस्तप्रायं विशेषतः ॥ ६४ ॥

भिक्षोः इदं भैक्षवं तस्मिन् भैक्षवे मतइत्यर्थः। स हि ब्रह्म न समवायि, नासमवायि, नापि निमित्तं किन्त्वधिष्ठानकारणं तल्लक्षणं च

यत्राविभक्तं येनोपष्टब्धं च सदुपादानकारणं कार्याकारेण परिणमते तदधिष्ठानकारणमेतल्लक्षणसमावेशस्तु यत्र ब्रह्मण्यविभक्तं विभागरहितं येन ब्रह्मणा–उपष्टब्धं च सत् साक्षितामात्रेणाङ्गीकृतं च सत् उपादानकारणं प्रकृतिरूपं कार्याकारेण जगद्रूपेण परिणमते तद्ब्रह्माधिष्ठानकारणमित्यर्थः। ब्रह्मणश्च कर्तृत्वं सोपाधि मायौपाधिकं परिणामित्वरूपोपादानत्वञ्च प्रकृतितत्कार्याद्यौपाधिकमिति जगाद तदसङ्गतम्। "आत्मैवेदमग्रआसी" दित्यादिश्रुतिषु प्रत्यक्षस्य जगतः पूर्वमात्मत्वादिकथनेनेतरस्याभावादविभागाख्यस्वरूपसम्बन्धस्य तदानीं वक्तुमशक्यत्वेनाधिष्ठानलक्षणेनातिव्याप्तेः। "एकोऽहं" मिति श्रुतिविरोधाच्च "ब्रह्म ह वाइदमग्रआसीत्" "आत्मैवेदं सर्वम्" "तदात्मानं स्वयमकुरुत" "बहु स्यांप्रजायेये" त्यादिश्रुतिषु ब्रह्मण उपादानत्वकथनान्न प्रकृतेरुपादानत्वसिद्धिः। मायौपाधिकं कर्तृत्वं प्रकृतितत्कार्यौपाधिकं परिणाम्युपादानत्वमित्यप्यसङ्गतम् "आनन्दरूपममृतं विभाति" "सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाये" त्यादि श्रुतिभि "रानन्दमात्रकरपादमुखोदरादि" रित्यादिस्मृतिभिश्च ब्रह्मण आनन्दाकारत्वे सिद्धे मूलरूपस्योपाधिकल्पनायां बीजाभावात्। विकारित्वपरिहारायौपाधिकत्वमुच्यते तन्निरस्तं प्राक्। किञ्चौपाधिकपक्षस्य मायावादानुसारित्वात्तत्खण्डनेनैतस्यापि खण्डनप्रायत्वाच्चेत्याहुः तन्मायावादध्वंसेन ध्वस्तप्रायमिति। प्रायपदात्सर्वांशतो न ध्वस्तमतस्तन्मतमनूद्य खण्ड्यते। तथाहि—यज्जीवानां नित्यभिन्नत्वं व्यापकत्वं चाङ्गीकृत्याविभागलक्षणमभेदं चाङ्गीकृत्य सजातीयत्वे सत्यविभागप्रतियोगित्वमंशत्वं तदनुयोगित्वं चांशित्वं अविभागश्च "सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामहे" इत्यादिश्रुत्या "प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ लीयते परमात्मनि" इत्यादिस्मृत्या बोधितः। लिङ् श्लेषणे पदगतावित्याद्यनुशासनेन लयसम्पत्त्यव्ययशब्दानामविभागार्थकत्वात्। एवं च यथा शरीरकेशादिरंशो राशेश्चैकदेशः पितुश्च पुत्र इति दृष्टान्तत्रयमुक्त्वा सर्वे जीवाः पितरि पुत्रचेतना इव चिन्मात्रे ब्रह्मणि नित्यसर्वावभासके विषयभासनरूपं लक्षणं विहाय प्रलये लक्षणानन्यत्वं गच्छन्ति सर्गकाले च तत एव लब्धचैतन्यफलोपधाना आविर्भवन्ति पितुरिव पुत्रः अतो जीवा ब्रह्मांशा भवन्ति "आत्मैव जायते पुत्र" इत्यादिश्रुत्या पुत्रे पितुरविभागलक्षणाभेदवज्जीवेऽपि ब्रह्मणोऽविभागलक्षणोऽभेदः "बहु स्यां प्रजायेये" त्यादि श्रुत्या सिद्ध इति। अतो जीवा ब्रह्मांशा मुख्या एव

भवन्तीत्याह तदप्यरमणीयम् । नित्यभेदे सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाभङ्गो वैषम्यादिदोषप्रसक्तिश्च । व्यापकत्वे "एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य" इति श्रुतिविरोधः । ब्रह्मणो व्यापकत्वे जीवस्यापि व्यापकत्वे लयकथनस्य "नद्यः प्रविष्टा इव नामरूप" इति श्रुत्या "विशते तदनन्तर" मिति स्मृत्या च प्रवेशकथनस्यासङ्गतत्वं स्यात् । देहमात्रव्यापकताङ्गीकारे हस्तिकायव्याप्तजीवस्यापि पिपीलिकाकाये प्रवेशोऽप्यनुपपन्नः अविभागेन स्थितिरपि न सम्भवेत् "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येती"ति "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवती" ति श्रुतिविरोधात् । एवकारेण ब्रह्मातिरिक्तस्थितिनिषेधात् । दृष्टान्तत्रयमपि स्वमताननुगुणम् । तथाहि केशादिकं शरीरस्य विकारः एवं ब्रह्मणो विकारो जीव इति विकारित्वं ब्रह्मण्यागतम् प्रकृतेः परिणामित्वाङ्गीकारे शरीरस्थानापन्ना प्रकृतिः केशादिस्थानापन्नो जीव इति प्रकृत्यंशत्वं न ब्रह्मांशत्वं स्यात्, एवं दृष्टान्तद्वयेऽपि बोध्यम् । "बहुस्या" मितिश्रुत्या ब्रह्मण एव सर्वभवनसिद्धयोपाधिकल्पनाया असङ्गतत्वात् स्वमतभङ्ग इति दिक् ॥६४॥

एवं भिक्षुमतं खण्डयित्वा शक्तिमतमुपन्यस्यन्ति शाक्तानां त्वित्यादि—

शाक्तानां तु मते ब्रह्म विश्वोपादानमेव हि ।
निमित्तकारणं शक्तिर्विकारित्वभयादतः ॥ ६५ ॥

॥ ६५ ॥ तद्दूषयन्ति—

तत्रात्मनो विकारित्वं श्रुतिशास्त्रविरोधि हि ।
"प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ ६६ ॥
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् । "
इति भागवते पद्ये उपादानत्वमीरितम् ॥ ६७ ॥
तद्विरुद्ध्येत मम तु ब्रह्मतो-न पृथक् च सा ।
मनस्त्वमिति पद्येतु शाङ्कराणाञ्च शाम्भवी ।
परिणामन्तु सम्प्राप्तेत्युक्तेर्बाधः प्रसज्यते ॥ ६८ ॥

शङ्कराचार्यरचितसुन्दरलहरीश्लोकविरोधमाहुः मनस्त्वमिति-पद्यं तु "मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम् । त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे,, इति ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पवनमयि ! पावकमयि क्षोणिमयि ! गगनमयि !
कृपीटमयि ! रविमयि ! शशिमयि ! दिङ्मयि !
समयमयि ! प्राणमयि ! शिवे ! पाहि" ॥ ६९ ॥
इति दुर्वाससा प्रोक्तं सर्वात्मत्वं विरुद्ध्यते ।
सर्वोपनिषदो या हि ब्रह्मतत्त्वनिरूपिकाः ॥ ७० ॥

दुर्वाससेति ललितास्तवरत्नइति शेषः ॥ ७० ॥

नास्तीति—

नास्ति शक्तेर्वर्णनं हि कारणत्वं तु दूरतः ।
व्यासैस्तु प्रकृतेः सर्वकारणत्वं तिरस्कृतम् ॥ ७१ ॥

यत्र वर्णनमेव नास्ति तत्र कारणत्वस्य सम्भावनाऽपि नास्तीत्यर्थः । ननु केषांचिच्छाक्तानां मते शक्तिरेव ब्रह्म सैव समवायिकारणम् किञ्च साङ्ख्यमतेऽपि प्रकृतेरपि तत्त्वमितिचेत्तत्राहुर्व्यासैरिति साङ्ख्यमतखण्डनेन सर्वकारणत्वं समवायिनिमित्तकारणत्वं तिरस्कृतं ब्रह्मसूत्रैरित्यर्थः ॥ ७१ ॥

तर्हि समवायिनिमित्तकारणं ब्रह्म इतिचेत् लोके समवायिनिमित्तकाणयोर्भेदात् कथमुभयं ब्रह्म यथा समवायिकारणं मृत् निमित्तकारणं कुलालदण्डचक्रचीवरादिरित्याशङ्कामपहरन्ति ब्रह्मण इति—

ब्रह्मणः समवायित्वनिमित्तत्वे निरूपिते ।
ऋग्वेदे तु यतो देवीसूक्तमस्ति तु तत्र हि ॥ ७२ ॥

निरूपितइति व्यासैरिति शेषः 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' 'योनिश्च हि गीयते' इत्यादिनाऽनयोरर्थस्तु पूर्वं समवायिकारणं प्रकृतिरेवेति प्राप्ते आह प्रकृतिश्चेति मृत्प्रकृतिर्घटः तन्तुप्रकृतिः पट इत्यादौ प्रकृतिशब्दः समवायिनमाह एवं च ब्रह्म समवायिकारणं चकारान्निमित्तकारणं कुतः प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् "अपि वा तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवती" ति प्रतिज्ञा दृष्टान्तो "यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं भवती" ति अनयोरनुपरोधात् अबाधनादित्यर्थः । द्वितीये जडानां ब्रह्मैव कारणं चेतनेषु तु योनिबीजयोः समवायित्वदर्शनात् पुरुषत्वात् शक्तिवादनिराकरणोपचारः । किञ्च "तदात्मानꣳ स्वयम-

कुरुत" "यतो वे" त्यादि "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्" "तत्तु समन्वयात्" "कर्त्ता कारयिता हरि" रिति "जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चे" त्यादिश्रुतिस्मृतिश्रीभागवतादिषु ब्रह्मण एव समवायिनिमित्तत्वयोः सिद्धेस्तत्रान्वयात् समवायिकारणात् इतरतो निमित्तकारणात् इति श्रीमदाचार्यचरणैः सुबोधिन्यामुदितम्। "तत्तु समन्वया" दित्यर्थस्तु तद् ब्रह्म समवायिकारणं कुतः समन्वयात् सम्यगन्वयो यथा मृदो घटे तथा ब्रह्मणो जगतीति विशेषस्तु भाष्यकारैर्बहुशो निरूपितं तत्ततोऽवधेयम्। ननु ब्रह्मरुद्रादिकारणत्वं देव्या उदितं तत्राहुः ऋग्वेदइति ॥ ७२ ॥

देवीसूक्तेऽपि विष्णुर्देव्याः कारणमिति बोधाय देवीसूक्तमन्त्रमाहुरहमेवेत्यादि—

"अहमेव स्वयं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं
सुमेधामहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन् मम योनिर-
प्स्वन्तःसमुद्रे ॥ ७३ ॥

देवेभिर्देवैः मानुषेभिर्मानुषैः जुष्टं सेवितं यं जीवं कामयइच्छामि तं तं जीवमुग्रं रुद्रं कृणोमि करोमीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

एवमित्यादि—

एवं श्रुतौ तु देव्या हि स्वकारणतयोदितः।
पयोधिशायी यो विष्णुः स उक्तोऽतो न सा परा ॥ ७४ ॥

एवंरीत्येत्यर्थः। सेति देवीत्यर्थः। एवञ्च परत्वं सर्वजगत्कारणत्वं विष्णोरेवेति सिद्धम् ॥ ७४ ॥

"उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठ" इतिकोषाच्छिवः स्मृतः।
अस्येति रुद्रो निर्दिष्टोऽ"हं रुद्राये" तिवाक्यतः ॥ ७५ ॥

कोषादमरकोषात्। वाक्यत इति "अहं रुद्राय धनुरातनोमी"ति तत्रत्यश्रुतिवाक्यत इत्यर्थः ॥ ७५ ॥

प्रक्रान्तत्वात् पिता ब्रह्मा तद्योनिः शक्तिरत्र हि।
तस्यास्तु जनको विष्णुः सिन्धुशायी निरूपितः ॥ ७६ ॥

प्रक्रान्तत्वादिति प्रक्रमप्राप्तत्वादित्यर्थः। पितेति रुद्रपिता निर्दिष्ट इति पूर्वेणान्वयः। एवं शक्तिपदेऽपि तद्योनिरिति तस्य ब्रह्मणो योनिः

कारणम् । अत्र हि देवीसूक्ते मन्त्रे मूर्द्धन्नित्यस्य मुख्यमित्यर्थः ।'सुपां सुलुगि' ति सूत्रेण सुब्लोपः । तर्हि शक्तेः किं कारणं ? तत्राह तस्यास्त्विति "मम योनिरप्स्वन्तःसमुद्र" इति मन्त्रेण निरूपित इत्यर्थः । मम शक्तेर्योनिः कारणं समुद्रे अप्सु अन्तः अस्तीति शेषः । समुद्रशायित्वं विष्णोरेवेति विष्णुः कारणमित्यर्थः ॥ ७६॥

अस्माकमिति—

अस्माकं व्यासचरणैर्यदुक्तं न ततोऽन्यथा ।
"अथातो ब्रह्मजिज्ञासे" त्युक्त्वा तल्लक्षणेन हि ॥ ७७ ॥

मतइति शेषः । व्यासचरणैरिति तदेव ग्राह्यमिति शेषः अन्यथा व्यासोक्तिविरुद्धम् । ननु व्यासचरणैः कस्य कारणत्वमुक्तं ? तत्राह "अथात" इत्यादि । इदं चोत्तरतन्त्रादिमं सूत्रं ब्रह्मणः ब्रह्मसम्बन्धी जिज्ञासा विचारः अथशब्दस्तावदारम्भार्थकः आरभ्यतइत्यर्थः । यतः कर्म्मादिभ्यो ब्रह्मज्ञानं पुरुषार्थसाधकं अतस्तज्ज्ञानाय विचार इति अतःशब्दार्थः ॥ ७७ ॥

"जन्माद्यस्ये" त्यादिसूत्रैः कारणं ब्रह्म कीर्त्तितम् ।
तन्त्रशास्त्रेण चेद्दूष्येत्तदवैदिकसम्मतम् ॥ ७८ ॥

ब्रह्म किं लक्षणकमिति शङ्कायां "जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वा" दित्युक्तमर्थस्त्वधस्तात्प्रतिपादितः "असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु । यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते" इति प्रतिज्ञाय "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ! ॥ बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ ! सनातन" मिति गीतायां पुरुषोत्तमवाक्यात् । अग्रेऽपि तत्रैव "परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् । पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा । असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे" इत्यर्जुनवचनात् "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तत" इति पुरुषोत्तमवाक्याच्च जगत्कारणत्वं श्रीकृष्णस्यैव न देव्याः । नन्वनेकेषु तन्त्रेषु तस्याः कारणत्वोक्तिरित्यत्राहुस्तन्त्रशास्त्रेणेति "श्रौतार्चनं तु विप्राणां विशेषेण भवेत्सदा । श्रौतागमार्चने क्षत्रे वैश्ये केवलमागम" मिति वाक्यात् "तन्त्रेषु दीक्षितो मर्त्यो वैदिकं न स्पृशेत्सदा । वैदिकश्चापि तन्त्रेषु दीक्षितं न स्पृशेत्सदे" तिवासिष्ठलैङ्गोक्तेः

"क्वचित्तन्त्रानुरोधेन धर्मं पौराणिका अपि । वदन्ति तादृशोंऽशस्तु ग्राह्यस्तन्त्रावलम्बिने" ति पराशरोक्तेः। पाराशरीयपुराणे "प्रत्यक्षवेद-सिद्धार्थः स ग्राह्यः सर्वचेतनैः। अप्रत्यक्षं श्रुतेरर्थं स्मरन्ति मुनिसत्त-माः॥ स्मृतयश्च पुराणानि भारतप्रमुखान्यपि । क्वचित्कदाचित्तन्त्रा-र्थकटाक्षेण मुनीश्वराः। अधिकारविशेषाणां प्रवदन्त्यर्थमास्तिकाः। ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽन्यो निःशङ्कं तत् परित्यजेत्॥ वर्णाश्रमपरिभ्रष्टः प्रायश्चित्तेष्वनुन्मुखः। वेदेतरागमं गत्वा पापी तद्धर्ममाचरेत्। वेद-बाह्यरताः शाक्ता बहवो नरकं गताः" इति कौर्मपुराणेऽपि ब्राह्मणानां गौतमशापेन त्रयीबाह्यत्वे जाते तैः स्तुतौ शिवकेशवावित्युपक्रम्य "च-कार मोहशास्त्राणि केशवः स शिवस्तथा। कापालं लाकुलं वामं भै-रवं पूर्वपश्चिमम्। पाञ्चरात्रं पाशुपतं तथाऽन्यानि सहस्रशः। क्वचित् क्वचित् पुराणादौ वेदमूलेऽपि सर्वथा। सन्ति निर्मूलतन्त्रांशास्ते तु ग्राह्या न वैदिकै" रित्यादि वाक्यानि सप्तशतीटीकायां नागोजीभ-ट्टेन भट्टोजीदीक्षितादिभिरप्युपनिबद्धानि । अत एवाश्वलायनगृह्यप-रिशिष्टे सन्ध्याप्रकरणे सावित्र्या ऋषिदेवता छन्दांस्यनुस्मृत्य दैवतमे-व चानुस्मृत्य, " तामेतां चतुरक्षरेण विभक्तां मन्त्रयोजितैः पञ्चभिश्चाग-ममन्त्रैर्यथाभागमात्मनि विन्यस्य भावये"दित्युक्त्वा हृदयादि षडङ्ग-न्यासमुक्त्वा एनमप्येके नेच्छन्ति स हि विधिरवैदिक" इति निरूपितं सङ्गतं भवतीति दिङ्मात्रमुदितं तदेवाह—तदवैदिकसम्मतमिति अवै-दिकानां सम्मतमित्यर्थः । वेदविरुद्धार्थस्य तन्त्रत्वेन व्यवहारः सर्व-निर्णयनिबन्धे श्रीमदाचार्यचरणैः " छलयोगस्तथा साङ्ख्यं शाक्तो मार्गोऽभिधीयते" इति साङ्ख्ययोगौ मिलितौ धर्ममार्गविरोधेनामेध्य-भक्षणसुरापानादिपोषितौ शाक्तो मार्गस्तत्र सप्त भेदा उक्ताः वैदिका, वैष्णवाः, शैवाः, शाक्ता, वामाः, सिद्धान्ताः, कौलाः, लोके व्यामोहकं शास्त्रं सप्तानां बोधकः शिवः। कलौ जनिष्यमाणानामसुराणां क्षयाय हि । सर्वेषां नरके वास" इत्युक्तम् । एतद्दीपिकायां त्याज्यत्वे हेतु-रुक्तः "महापातकिसंसर्गेऽपि महापातकित्वश्रवणा"दिति । तत्र" क-र्मासक्तास्तु ये तत्र वैदिकाः समुदाहृताः"। लोके सन्माननार्थं कर्मा-सक्ताः सिद्धान्तानां तु आसुरसिद्धान्तः सर्वं मिथ्येति कर्म सर्वथा त्यक्तव्यं बाधकमिति तथा भक्तिरपि केवलं वाचःपेशैर्मोहयन्ति ये ते सिद्धान्तास्तेषां लोकसङ्ग्रहो नियामकः, कौलानां तु न लोकापेक्षे-ति भेदः "पत्नीत्वं दीक्षया रण्डाश्चण्डा अपि भजन्ति हि। दिगम्बरा-

श्चर्मचिन्हाः सुरामांसपरायणाः। पापरूपा दुराचारास्ते कौलाः परिकीर्त्तिताः। तेषामनुग्रहनिग्रहादिकं दृष्टं फलं तन्मार्गसेवितया दुष्टतामसशक्त्या सिद्धान्तस्य लोके सन्माननं फलं ततो व्यामोहो लोकस्य भवतीत्युक्तम् । , वैष्णवास्तु गोपालनृसिंहसंयुक्तां शक्तिमुपासते ते यथा गोपालसुन्दरीनृसिंहसुन्दर्याविति, एवमेव शिवयुक्तां तामुपासते शैवाः, केवलशक्त्युपासकाः शाक्ताः, वामाश्च वामाचारेण सुरासम्बन्धादिना तामुपासते ते वामाः, अत्र तन्त्रे उक्तं "पञ्चप्रेतासनारूढां परब्रह्मस्वरूपिणीम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले व्यवस्थिताः" इति श्रीमदाचार्यचरणैस्तु तत्रैवैतन्निर्णयः कृतः तत्र त्रिपुरसुन्दर्यादिशक्तयः सेव्याः, योगश्च साध्य, इति बुद्धिः, तत्र नाधिकारे शैववैष्णवौ तस्याः शक्तेः पादत्वेन पञ्चप्रेतमध्ये निरूपितौ, न शब्दमात्रेण किञ्चिद् दुष्यति पदार्थस्त्वन्य एव अतो भूतादिरेव विष्णुशिवादिनाम धृत्वा तथोपासत इति तत्रोभयश्लोकेऽपि प्रेतमहाप्रेतत्वेनोक्ताः एवं च तन्त्रशास्त्रस्य वैदिकानामुपेक्षणीयत्वेन चतुःषष्ठितन्त्राणां प्रतिपाद्यार्थसहितानां नामानि लिख्यन्ते तत्र महामायाशम्बरतन्त्रम्--अन्यस्मिन् पदार्थेऽन्यथाप्रतिभासनरूपमायाप्रपञ्चरचनोपायप्रतिपादकमैन्द्रजालविद्यारूपम् ॥ १ ॥ योगिनीजालशम्बरतन्त्रम् ॥ योगिनीजालप्रतिपादकम् ॥ २ ॥ तत्त्वशम्बरतन्त्रम् ॥ इन्द्रजालविद्याविशेषः पृथिव्यादितत्त्वानामन्यत्रान्यबोधोपायप्रतिपादकम् ॥ ३ ॥ सिद्धिभैरवतन्त्रम् ॥ ४ ॥ मायिकभैरवतन्त्रम् ॥ ५ ॥ कङ्कालभैरवतन्त्रम् ॥ ६ ॥ कालाग्निभैरवतन्त्रम् ॥ ७ ॥ शक्तिभैरवतन्त्रम् ॥ ८ ॥ योगिनीभैरवतन्त्रम् ॥ ९ ॥ महाभैरवतन्त्रम् ॥ १० ॥ भैरवनाथतन्त्रमिति भैरवाष्टकमिदं कापालिकप्रतिपादकम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मीतन्त्रम् ॥१२॥ माहेश्वरीतन्त्रम् ॥१३॥ कौमारीतन्त्रम्॥१४॥ वैष्णवीतन्त्रम्॥१५॥ वाराहीतन्त्रम्॥१६॥ इन्द्राणीतन्त्रम्॥१७॥ चामुण्डातन्त्रम् ॥१८॥ शिवदूतीतन्त्रम् । ब्राह्म्यष्टकमिदं तत्तद्देवताप्रतिपादकम् ॥ १९ ॥ रुद्रयामलम् ॥ २० ॥ भैरवयामलम् ॥ २१ ॥ शिवयामलम् ॥ २२ ॥ विष्णुयामलम् ॥ २३ ॥ स्कन्दयामलम् ॥ २४ ॥ ब्रह्मयामलम् ॥ २५ ॥ देवीयामलम् ॥ २६ ॥ यामलम् ॥ २७ ॥ इति रुद्रयामलान्यष्टौ सिद्धान्तप्रतिपादकानि चतुःषष्ठितन्त्राणामपि यामलत्वेन व्यवहारः । चन्द्रज्ञानतन्त्रं कामैश्वर्यादिषोडशनित्याप्रतिपादकं तिथिनामधेयं नित्येति

॥ २८ ॥ मालिनीतन्त्रं, समुद्रयानोपायप्रतिपादकम् ॥ २९ ॥ महासम्मोहनतन्त्रं जागृतामपि निद्रोपायप्रतिपादकम् ॥ ३० ॥ वामसेवितं वामकेश्वरतन्त्रम् चतुःशतीत्यपिकथ्यते ॥ ३१ ॥ महादेवतन्त्रं बटुकादिसिद्धकुलाचारप्रतिपादकम् ॥ ३२ ॥ वातुलम् ॥ ३३ ॥ वातुलोत्तरम् ॥३४॥कामिकम् चेति त्रीण्येतानि तन्त्राणि क्षेत्राकर्षणादिविधिप्रतिपादकानि ॥ ३५ ॥ हृद्भेदतन्त्रं कापालिकाचारप्रदर्शकम् ॥ ३६ ॥ तन्त्रभेदगुह्यतन्त्रयोः प्रकाशं रहस्यं वा परकृतमन्त्रतन्त्रप्रयोगाणां परावृत्त्युपायाः प्रदर्शिताः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कलावादं कामशास्त्रं वात्स्यायनादिमतम् ॥ ३९ ॥ कलासारं रूपादिवृद्ध्युपायप्रतिपादकम् ॥ ४० ॥ कुण्डिकामतं गुटिकासिद्धिप्रदर्शकम् । गुटिकापानपात्रम् ॥ ४१ ॥ मतोत्तरतन्त्रम् रससिद्धिप्रकाशकम् ॥ ४२ ॥ वीणातन्त्रम् वीणानामयोगिनीसम्भोगस्याक्षिणीत्यस्या नामान्तरं तस्याः साधनोपायदर्शकम्॥ ४३ ॥ त्रोतलतन्त्रम् गुटिकाञ्जनपादुकासिद्धिप्रदर्शकम् ॥ ४४ ॥ त्रोतलतन्त्रोत्तरतन्त्रम् चतुःषष्टिसहस्रयोगिनीनां दर्शनोपायनिरूपकम् ॥ ४५ ॥ पञ्चामृततन्त्रम् । पृथिव्यादिपञ्चभूतानां साधनेन मरणाभावप्रतिपादकम् । कापालिकतन्त्रम् ॥ ४६ ॥ रूपभेदादिपञ्चतन्त्राण्युच्चाटनादिप्रतिपादकानि॥ ५१ ॥ सर्वज्ञानादितन्त्रपञ्चकं कापालिकसिद्धान्तैकदेशिदिगम्बरमताचारप्रदर्शकम् ॥ ५६ ॥ पूर्वतन्त्रादिदेवीमतपर्यन्तं तन्त्राष्टकं दिगम्बरैकदेशिक्षपणमताचारप्रदर्शकम् ॥ ६४ ॥ एवमेतानि तन्त्राणि मोहकानि त्याज्यानि वैदिकैरिति बोधाय लिखितानि ॥ ७८ ॥

तन्त्रशास्त्रस्याप्रामाण्यं प्रतिपाद्य चतुष्टयं प्रमाणमित्याहुर्वेदा इति—

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ ७९ ॥
एतद्विरुद्धं यत्सर्वं न तन्मानं कथञ्चन ।
इति श्रीमन्निजाचार्यैरुक्तं तन्त्राणि न प्रमा ॥ ८० ॥

वेदाः पूर्वोत्तरकाण्डस्थिता अर्थवादादिरूपा अपि यथा बृहस्पतिः स्वां वपामुदखिदत्, इत्यत्र वपोत्खेदे बृहस्पतेर्जीवनं न स्यादत इदं वाक्यं यज्ञप्राशस्त्याधायकम् । एवं ग्रावाणः प्लवन्ते इत्यपि यत्रैते तत्रान्यप्लवने कः सन्देह इति नाश्मनां प्लवने तात्पर्यमिति केचित् तन्न आद्ये बृहस्पतेर्देवत्वेन वपोत्खेदने न जीवस्यहानिरिति

द्वितीये तु सेतुबन्धनसामयिकी व्यवस्थामनुवदतीयमृगित्यादि ज्ञेयम् । विशेषतस्त्वन्यतोऽवधेयम् । श्रीकृष्णवाक्यानि गीतायां चकाराद्व्यासूत्राविरुद्धानि जैमिनिसूत्राणि एवं मन्वादिस्मृतीनां व्यासाविरुद्धत्वेन प्रामाण्यं समाधिभाषा श्रीभागवतम् ॥ ७९ ॥ ८० ॥

श्रीमदाचार्यचरणैरिति–

श्रीमदाचार्यचरणैरत एव निरूपितम् ।
शाक्तास्ताँश्चेत्ततो ब्रूयुस्ते सन्मार्गाद्बहिष्कृताः ॥ ८१ ॥

अणुभाष्यइति शेषः सन्मार्गात् ॥ ८१ ॥

इति सर्वेषु मार्गेषु दोषाः सन्ति ततो हरिम् ।
शुद्धाद्वैतावलम्बेन भजेत सुविनिश्चितम् ॥ ८२ ॥

शुद्धाद्वैतावलम्बेनेति "अखण्डाद्वैतभाने हि सर्वं ब्रह्मैव नान्यथे" ति सर्वत्र भगवद्दृष्ट्या विषयान्तराभावः फलमिति भावः । सुविनिश्चितमिति श्रुतिस्मृत्यादिष्वित्यर्थः ॥ ८२ ॥

भजधातोः सेवार्थकत्वेन सेवालक्षणं श्रीमदाचार्यचरणोक्तमाहुः चेतस्तत्प्रवणं सेवेति–

चेतस्तत्प्रवणं सेवा फलरूपा तु मानसी ।
तत्सिद्ध्यर्थं देहवित्तजनिः कार्या ततो भवेत् ॥ ८३ ॥
संसारदुःखनाशो हि ब्रह्मात्मत्वावबोधनम् ।
ब्रह्मज्ञस्य परप्राप्तिरानन्दवृततो स्फुटा ॥ ८४ ॥

इदं च सिद्धान्तमुक्तावल्यामुदितं तत्र हि कृष्णसेवा सदा कार्येति पूर्वमुक्तवन्तस्तच्छब्देन श्रीकृष्णस्य ग्रहणं हरिमित्युक्तत्वात् तद्ग्रहणं फलरूपा त्विति सा व्रजाङ्गनासु ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् इति श्रीभागवतवचनात् इयं सर्वात्मभावकाष्ठा तृतीयाध्याये भाष्ये स्फुटा तत्सिद्ध्यर्थं सर्वात्मभावरूपमानसीसेवासिद्ध्यर्थं तनुवित्ताभ्यां जन्यते या सा तनुवित्तजनिः उभयोः साधकत्वं नैकस्या इति बोधाय समस्तपदम् ॥ ८३ ॥ संसारेत्यादि– संसारोऽहन्ताममतारूपः । ब्रह्मात्मत्वावबोधनमिति "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतिसिद्धम् । "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ" इत्यादिस्मृतिसिद्धम् सर्वस्य जगतो ब्रह्मत्वं तस्यावबोधनं याथार्थ्यज्ञानमित्यर्थः । तर्हि ब्रह्मज्ञानस्य किं फलमित्याहुः

ब्रह्मज्ञस्येति श्रीमदाचार्यचरणैर्भाष्ये "ब्रह्मज्ञानेनाविद्यानिवृत्त्या प्राकृतधर्मराहित्येन शुद्धत्वसम्पादनेन पुरुषोत्तमप्राप्तौ स्वरूपयोग्यता सम्पद्यते तादृशे जीवे स्वीयत्वेन वरणे भक्तिभावात् सहकारियोग्यतासम्पत्त्या पुरुषोत्तमप्राप्तिर्भवतीति निर्णीयत" इत्युक्तम्। नन्वत्र किं मानमत आहुः आनन्दवृततावितित आनन्दवल्ल्यामित्यर्थः। वल्ली तु वृततिर्लतेत्यमरात्। तस्यां हि "ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाऽभ्युक्ता सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' इति। अर्थस्तु ब्रह्मवित् परं ब्रह्मणः सकाशादुत्कृष्टं पुरुषोत्तमं प्राप्नोतीत्यर्थः। परशब्देनात्र ब्रह्मैवोच्यते चेत्तर्हि ब्रह्मप्राप्तेर्ज्ञानात्मकत्वेन ब्रह्म प्राप्तो ब्रह्म प्राप्नोतीत्यर्थः स्यात् सत्वसङ्गतः साध्यसाधनव्याघातस्तस्मात्परशब्दस्योत्कृष्टवाचित्वेनोत्कर्षस्य सान्निध्याद् ब्रह्मणः सकाशात् परंपुरुषोत्तममित्येवार्थः। विशेषतस्तद्विवक्षमाणाऽनुभवैकगम्योऽयमानन्दो न मनोवाग्विषय इति सूचयितुमाह तदेषेत्यादि तदित्यव्ययं तद् ब्रह्मविदः परप्राप्तिलक्षणमर्थं विशदतया प्रतिपाद्यत्वेनाभिमुखीकृत्य ऋगेषा विदितपरब्रह्मकैरुक्ता पूर्ववाक्यविवरणमनयाक्रियतइत्यर्थः। तामेवाह सत्यमित्यादि गुहायां हृदयाकाशे परमे व्योमन् परमव्योम्नीत्यर्थः। अक्षरब्रह्मात्मके व्यापिवैकुण्ठे निहितं स्थापितमिव यो वेद स भक्तो ब्रह्मणा विपश्चिता विविधभोगचतुरेणेत्यर्थः। अत्र विविधं पश्यच्चित्त्वं विपश्चित्त्वं पृषोदरादित्वाद्यच्छन्दलोपः तेन सह सर्वान् कामानश्नुते भुङ्क्ते इत्यर्थः। अत्र तृतीयया ब्रह्मणो गौणत्वं भक्तस्य भोगे मुख्यत्वं बोध्यते। "अहं भक्तपराधीनो" "वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा" इत्यादिवाक्यादिदमनुग्रहैकलभ्यमित्यर्थः। विशेषतो भाष्यादवधेयम् ॥८४॥

नन्वविद्यायाः प्रतिबन्धकत्वे कथं परप्राप्तिरित्याशङ्कायां "विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव! शरीरिणाम्। मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते" इति श्रीभागवतवाक्येन मायानिर्मितत्वादविद्याया अतो मायापगमे तस्या अपि नाशो भविष्यतीत्यभिप्रायेण गीतावाक्यमाहुः मामेवेत्यादि—

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"।
इति वाक्यात् तु भक्तानामविद्याविनिवृत्तितः ॥ ८५ ॥
अलौकिकाकारसिद्ध्यै प्रवेशो हरिणोदितः।

एवकारेणान्यप्रपत्तिर्न मायातरणकारिका " अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । मत्तः परतरं किञ्चिन्नान्यदस्ति धनञ्जय " इत्यादि श्रीमुखवाक्यात् । पुरुषोत्तमस्य सर्वोत्कृष्टज्ञाने प्रपत्तिर्भवति एतादृशज्ञानस्य फलं तु " असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु । यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज् ज्ञातव्यमवशिष्यते" इतिवाक्यादक्षरज्ञानादिदं सर्वं सुलभमतो भक्तानां तु श्रीकृष्णप्रपत्त्यैवाविद्यानिवृत्तिरिति भावः ॥ ८५ ॥ ततः किमत आहुरलौकिकाकारसिद्धयाइति सिद्धयर्थमित्यर्थः। प्रवेश इति " यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानु विलीयते " " नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे " इत्यादिश्रुतिसिद्धप्रवेश इत्यर्थः । हरिणेति श्रीकृष्णेनेत्यर्थः । गीतायामिति शेषः । " विशते तदनन्तरम् ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परतन्तप " इत्यादिश्लोकैरित्यर्थः-नन्वक्षरे लये कथं पुरुषोत्तमप्राप्तिरित्याशङ्कायां पुरुषोत्तमगृहरूपत्वात्तत्र प्रवेशे प्राप्तिर्भवतीति तत्पुरुषोत्तमगृहे गीताप्रमाणमाहुः "अव्यक्त " इत्यादि--

" अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥ ८६ ॥"
" यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम । "
इति वाक्येन भगवद्गृहं ब्रह्म प्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥

अक्षरब्रह्मणोऽव्यक्तइतिनाम एतेनाव्यक्तशब्देनाक्षरब्रह्मैव ज्ञेयम् । एतेन जगतो मायिकत्वं निरस्तम् । परमां सर्वोत्कृष्टां गतिमाहुस्तत्त्वविद इति शेषः ॥ ८६ ॥ न निवर्त्तन्तइति " न स पुनरावर्त्तत " इतिश्रुतेः मम क्षराक्षरातीतपुरुषोत्तमस्य धाम गृहमित्यर्थः । अत्र भक्तानां त्वक्षरब्रह्मणः पुरुषोत्तमगृहरूपत्वेन ज्ञानं ज्ञानिनां तु पुरुषोत्तमरूपत्वेनैव । " मज्ज्ञानामशनि " रित्यादिवाक्यात् स्वभावानुसारेण " यद्यद् धिया तउरुगाय ! विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय " इति श्रीभागवतात् ॥ ८७ ॥

तर्हि अक्षरब्रह्मैव परं प्राप्यस्थानमितिचेत्तत्राहुः पुरुष इत्यादि—

"पुरुषः स परः पार्थ ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया । "
इत्यग्रिमेण वाक्येन गेहाधीशो निरूपितः ॥ ८८ ॥

" यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम" इतिवाक्यात् परः पुरुषः पुरुषोत्तमः श्रीकृष्ण-

इत्यर्थः । अत्र सिद्धान्ते जन्ममरणाद्युपाधितया क्षरो जीवः अक्षरः अन्तर्यामी अक्षरातीतः पुरुषोत्तमः "द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च" इत्यादि गीतावाक्यात् । अयं विचारः श्रुतिरहस्यप्रकाशे निपुणतया निरूपितो मयेति नेह तन्यते ॥ ८८ ॥

पुरुषोत्तमलाभः कथं तत्राहुर्भक्त्येति—

भक्त्या लाभो हि निर्दिष्टो भक्तिश्चाचार्यसंश्रयात् ।
श्रीमदाचार्यचरणभजनादेव नान्यथा ॥ ८९ ॥

श्रीमदाचार्यचरणेत्यादि--अत्र क्रमस्तु पूर्वं भगवत्कृपाङ्कुरस्य स्वतः संस्कारेण भगवन्मार्गीयसङ्गादिना वा उद्बोधे मार्गेऽस्मिन्रुचिः ततोऽस्मिन्प्रवेशेच्छा, तत्राप्यङ्कुरस्य दृढत्वेऽस्मिन् मार्गे सर्वोत्तमत्वभानं प्रवेशश्च, द्वारभूतश्रीमदाचार्यकुलगुरुद्वारा शरणागतिः, ततः शुद्धः कृष्णं भजेदिति सिद्धान्तात् सपरिकरस्य स्वस्य शुद्धिरपेक्षिता सा लोके दुर्घटाऽतो "दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदन" मितिविधिपूर्वकं सिद्धं समर्पणं, तेन च "ब्रह्मसम्बन्धकरणादि"त्यादिवाक्येन सर्वदोषनिरासोक्तेः समर्पणोत्तरं सर्वत्र दोषाभावात् प्रतीयमानानां चाभासमात्रत्वात् गङ्गाजलन्यायेन दोषाणां गौणभावाच्च सेवायामधिकारः, ततः सतां द्वारभूतश्रीगुरोर्वा सङ्गेन शिक्षया वा श्रीमदाचार्यचरणेषु भगवदभेदबुद्धिः, सर्वोत्तमस्तोत्रादिभिस्तद्भजनं, तत एतन्मार्गीयसङ्गेन भगवद्भजनस्वीयग्रन्थावलोकनश्रवणादिना प्रतिबन्धनिवृत्तौ दोषनिवृत्तिः, सेवोपयोगिगुणवृद्धिश्च ततः सेवानैरन्तर्ये सकुटुम्बस्य भगवत्प्राप्तिरिति । अन्यथेति श्रीमदाचार्यचरणशरणं विनेत्यर्थः । अत एव श्रीहरिराया आहुः "नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी । नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्मभूतले' इति वृथेत्यस्य निष्फलमित्यर्थः ॥ ८९ ॥

श्रीमदाचार्यचरणद्वाराङ्गीकृतस्य लीलाधिकारिणो यत्करोति भगवाँस्तदाहुः ब्रह्मभावमित्यादि—

ब्रह्मभावं तु सम्पाद्य परमानुग्रहाद्विभुः ।
गृहस्थितं स्वीयजीवं समुद्धरति यत्नतः ॥ ९० ॥

"यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते" इत्यादि-

श्रुत्या" नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे" इत्यादिश्रुत्या "विशते तदनन्तर" मिति स्मृत्या निरूपितब्रह्मणि लयो ब्रह्मभावसम्पत्तिस्तादृशं कृत्वेत्यर्थः। परमानुग्रहात् स्वीयत्वेनाङ्गीकारात्" यमेवैष वृणुते तेन लभ्य" इतिश्रुतेः । मुक्तिदानं तु सर्वेभ्यः भक्तिस्तु परमानुगृहीतस्यैव " मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोग"मिति श्रीभागवतोक्तेः । अक्षरं ब्रह्म पुरुषोत्तमस्य गृहं तत्र ब्रह्मैक्यतया स्थितं स्वयं समुद्धरति तस्मात् पृथक्करोतीत्यर्थः। यत्नत इत्यनेन तस्योपरिस्नेहभरेण तद्वियोगासहिष्णुस्तस्योद्धरणे इच्छां करोतीति सिद्धम्।अत्र प्रमाणं तु व्याससूत्रं"सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दा"दिति अर्थस्तु ब्रह्म सम्पाद्य स्वेन पुरुषोत्तमेनाविर्भावः क्रियते एवं कथमुच्यते तत्राह शब्दादिति "यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिते"ति शब्दात् । अत्र पुरुषोत्तमसाहित्येन सर्वकामोपभोगो जीवस्य निरूपितः सलीनस्योद्धरणं विना न सम्भवत्यस्मादुद्धरतीत्यर्थः । तथा च श्रीभागवते" ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः। ददृशुर्ब्रह्मणो लोक" मिति श्रीमदाचार्यचरणैरपि फलप्रकरणप्रारम्भे " ब्रह्मानन्दात् समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने । लीला या युज्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यत" इति शुद्धपुष्टिलीलास्थजीवानां न ब्रह्मणि सायुज्यमुद्धरणं च अत एव गोपानामेव मग्नत्वमुद्धृतत्वमुक्तं न व्रजसुन्दरीणामतएव दामोदरदासादिषु लीलानुभवः स्पष्टः सङ्गच्छते । नन्वलौकिकदेहाप्तौ देहस्यानित्यत्वमायातं तद्विषयिण्या लीलाया अपीति चेत् न पुरुषोत्तमस्य लीलाया नित्यत्वं श्रुतिस्मृतिन्यायादिसिद्धम् । उपपादितं चास्मत्प्रभुचरणैर्विद्वन्मण्डने भक्तविषयिण्या लीलाया अपि नित्यत्वं " ध्रुवासोऽस्य कीरय " इति श्रुतिसिद्धम् ।यथाऽक्षरब्रह्मणः सर्वत्र व्यापकत्वमेवं भगवद्भक्तस्यालौकिकाकारस्य व्यापकत्वेन प्राकृतशरीरेऽपि तिरोहिततया वर्त्तमानमानन्दाकाररूपम् । अत एव " निराकारास्तदिच्छये" त्युक्तं श्रीमदाचार्यचरणैः । आनन्दस्यैवाकारत्वेन तत्तिरोधाने निराकारत्वं तत्प्रादुर्भावे साकारत्वमेवं तद्विषयिण्या लीलायास्तदैवाविर्भावः अतो नानित्यत्वमिति दिक् । येषान्तु सायुज्यं तेषामलौकिकाकारप्रादुर्भावार्थमेव लयः मर्यादायास्तथात्वात् येषां च न तेषां तच्छरीरएवालौकिकाकारस्याविर्भावात् । ननु लीलानुभवार्थमाविर्भावे पुरुषोत्तमेन सह भेदो जीवस्यायात इतिचेत् सत्यम् । अत्र लीलास्थानां ब्रह्मरूपत्वेन न भेद इति, वस्तुतस्तु जीवस्याभेदोऽक्षरब्रह्मणा

सह, अभेदबोधकाश्च श्रुत्यादयः अक्षरब्रह्माभेदं बोधयन्ति न पुरुषोत्तमाभेदं तथा च श्रीमदाचार्यचरणाः "पुरुषोत्तमे लयेन लीलाननुभवे नाश एव सः" अत एव श्रीमत्प्रभुचरणपौत्रैर्देवकीनन्दनैः "अक्षरेण सहैक्यं हि जीवस्य श्रुतयो जगु" रित्युक्तम् । अत एव परेणाभेदबोधको मार्गस्तामसानामिति पाद्मउत्तरखण्डउक्तं शिवेन "शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम् । येषां स्मरणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि । इति शैवपाशुपतवैशेषिकन्यायसाङ्ख्यचार्वाकबौद्धशास्त्राणि तामसानीत्युक्त्वा "मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते । मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥ अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शितं लोकगर्हितम् । कर्मस्वरूपत्याज्यत्वं त्वत्रैव प्रतिपाद्यते ॥ सर्वकर्मपरिभ्रष्टं विकर्मत्वं तदुच्यते । परेशजीवयोरैक्यं मयाऽत्र प्रतिपाद्यते । ब्रह्मणस्तु परं रूपं निर्गुणं वर्ण्यते मया । सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं कलौ युगे । वेदार्थवन्महच्छास्त्रं मायावादमवैदिकम् । मयैव कथितं देवि जगतां नाशकारणात्" । इति नागोजीभट्टस्तु मार्कण्डेयान्तर्गतदेवीमाहात्म्यटीकायां मायावादमितिश्लोके चरणत्रयं यथास्थितं पठित्वा जगतां नाशकारणादिति पपाठेति तत्तु प्राचीनार्वाचीनसन्दर्भावलोकनेन ब्राह्मणरूपिणेति प्रतिभातीति तुच्छमेवेति । अत एव सायुज्यं लयः सहयुनक्तीति सयुक् सयुजो भावः सायुज्यमिति द्वयं ब्रह्मपरब्रह्मविषयत्वेन सङ्गतं भवतीति दिङ्मात्रमुक्तम् ॥ ९० ॥

ननूद्धारानन्तरं तस्य कथं स्थितिस्तत्राहुरुद्धृताविति—

> उद्धृतौ परमक्लेशो विरहानलसम्भवः ॥
> यदा देहादिनाशाय समर्थो जायते तदा ॥ ९१ ॥
> निजं श्रीमत्कृष्णचन्द्रः स्वाधिकारानुसारतः ।
> परमानन्दलीलां तामनुभावयति प्रभुः ॥ ९२ ॥

भक्तस्य ब्रह्मानन्दादुद्धृतौ विरहानलाद्वियोगाग्नेः सकाशात् सम्भवउत्पत्तिर्यस्य एतादृशो यः परमक्लेशो देहादिनाशाय यदा समर्थो जायते तदेत्यन्वयः । यद्वा परमक्लेशः विरहानलसम्भवस्ताप इति शेषः तदा तस्मिन् काले ॥९१॥ निजं जीवं परमकारुणिकः श्रीमत्कृष्णचन्द्रो यथाधिकारं परमानन्दलीलामनुभावयतीत्यर्थः । गणितानन्दव्यावृत्त्यर्थं

परमेत्यानन्दस्य विशेषणम् । तामनुग्रहैकलभ्याम् । प्रभुः समर्थः।अनुभवे भक्तस्य प्राधान्यं तदुदितं प्राक्। "रसो वै सः रस ँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयाती" ति श्रुतेः । अत्र रसात्मकभगवत्स्वरूपलाभे सति आनन्दी भवतीत्यानन्दवत्त्वमुक्त्वा जीवनहेतुत्वं परमानन्दहेतुत्वं चोच्यते । मरणहेतूपस्थित्यभावे जीवनहेतुत्वं न वदेत् अतो रसस्य संयोगविप्रयोगभावत्वेन पूर्णतया विरहतापस्योपमर्दकत्वेन प्राणस्थितिरपि न स्यात् यद्येष स्फुरद्रूपः आनन्द आकाशो भगवान् न स्यात् को वा जीवयेन्न कोऽपि इत्यर्थः । एतादृशापन्निवारणं भगवत एवेति ज्ञापनाय श्रुतौ हिशब्दः तादृशस्य जीवनमावश्यकमिति ज्ञापनाय एवकारः । तापात्मकस्यानन्दरूपत्वायानन्दपदं तदनन्तरं प्रकटीभूय तदन्यः को वा दर्शनस्पर्शनाश्लेषणभाषणादिभिः स्वरूपानन्ददानेनान्यात् पूर्वतापनिवृत्तिपूर्वकमानन्दपूर्णं कुर्यादित्यर्थः । अन्यथाऽन्यात् प्राण्यादित्युभयत्रानतेः सत्त्वात् पौनरुक्त्यं स्यादिति श्रीमद्भाष्यकारचरणैः " स्पष्टो ह्येकेषाम् " इति सूत्रे " एकेषां शाखिनां भगवत्स्वरूपलाभानन्तरं दुःखतन्निवर्त्तनलक्षणोऽर्थः स्पष्टः पठ्यते " इत्युक्तोक्तमिति विस्तरावलोकनेच्छुभिस्ततोऽवधेयम् ।दुःखस्य परमफलरूपत्वं तु भाष्यविद्वन्मण्डनादौ निरूपितम् मयाऽपि श्रुतिरहस्यप्रकाशे प्राकाशि ॥ ९२ ॥

मुख्यकारणमाहुः इति श्रीवल्लभाचार्येत्यादि—

इति श्रीवल्लभाचार्यचरणाब्जकृपाभरात् ।
प्राप्यते नान्यथा चैतद् ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥ ९३ ॥

" आचार्यवान् पुरुषो वेद " इति श्रुतेः " कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिरत्र न संशयः " इतिवाक्यात् " सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेमा विमुक्तिदः । रासलीलैकतात्पर्यः कृपयैतत्कथाप्रदः " इतिवाक्याच्च । ब्रह्मादीनां सुदुर्लभमिति " न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः पुत्र ! ताः श्रुतयः किल । नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचित् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा॥तथाऽपि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणव" इति बृहद्वामनपुराणवाक्यात् । लीलाप्रधानभक्तचरणरेणुरपि दुर्लभस्तदा श्रीकृष्णाधरामृतास्वादनायतिदुर्लभतरमिति भावः ॥ ९३ ॥

ज्ञानिनां मुक्तिमाहुर्ये त्विति—

ये तु ज्ञानैकसन्निष्ठास्तेषां तु लय एव हि ॥
भक्तानामेव भवति लीलास्वादोऽतिदुर्लभः ॥ ९४ ॥

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" "ज्ञानादेव च कैवल्यम्" इतिश्रुतेः लय एव हीति "न स पुनरावर्त्तते" इतिश्रुतेः । ननु सिद्धान्तेऽक्षरब्रह्मणा सहैक्ये भगवतोद्धारः क्रियते इति "न स" इति श्रुतिविरोध इतिचेन्न । अनया संसारावर्त्तनं निषिध्यते न तु ब्रह्मातीतपुरुषोत्तमप्राप्तिः । "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ! मामुपेत्य तु कौन्तेय ! पुनर्जन्म न विद्यते" इति भगवद्वाक्यात् विशेषतो निरूपणं तु भाष्य-विद्वन्मण्डनादौ । यत्राक्षरप्राप्तावपि न पुनरावर्त्तते तत्र तदतीतप्राप्तौ तत्सम्भावनाऽपि नेति । भक्तानामेवेति "मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने !" इति श्रीभागवतवाक्यान्नारायणभक्तस्यातिदौर्लभ्यम् । "नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत ! सगुणं ब्रह्म सर्वेदं वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः ॥ ब्रह्मेति पठ्यतेऽस्माभिर्यद्रूपं निर्गुणं परम् । वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत्" इत्याद्युक्त्वा "आनन्दमात्रमितियद् वदन्तीह पुराविदः॥ तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः" इत्यादिबृहद्वामनपुराणे श्रुतिप्रार्थनावाक्यात् तत्परस्य पुरुषोत्तमस्य भक्तानां श्रैष्ठ्ये किमु वाच्यम् । तत्र ताभिःस्तुतो भगवानक्षरब्रह्मस्थं श्रीवृन्दावनश्रीयमुनाश्रीगिरिगोवर्द्धनादिलोकं तत्रस्थितश्रीगोपिकाकदम्बस्थितस्वस्वरूपं च दर्शयित्वा भगवानाह "ब्रूत किं करवाणि वः" इति ततः श्रुतयः नित्यसिद्धगोपिकावन्मनोरथं याचितवत्यः ततः "दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथः । मयाऽनुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति" इत्याहेति लीलास्वादोऽनुग्रहैकलभ्योऽतोऽतिदुर्लभो लीलास्वादो भक्तानामेव भवतीत्यर्थः । तत्रैव पुराणे "स्त्रियो वा पुरुषा वाऽपि भक्तिभावेन केशवम् । हृदि कृत्वा गतिं यान्ति श्रुतीनां नात्र संशयः" इति वाक्यात् एतत्पुराणवाक्यानि विद्वन्मण्डने प्रभुचरणैर्निरूपितानि ॥ ९४ ॥

एवं निरूप्य समाप्तिं प्रतिजानते इति श्रीश्रीमदाचार्येत्यादि—

इति श्रीश्रीमदाचार्यचरणाब्जप्रसादतः ।
प्रोक्तं गिरिधरेणेदं पश्यन्तु हरिभावुकाः ॥ ९५ ॥

अत्र श्रीद्वयोपादानमुभयभागस्थितस्वामिनीवाचकं तेन लीलास्थ-पुरुषोत्तमत्वमत एषां चरणाब्जप्रसादेऽयं रसः सदाऽऽस्वाद्यो भवतीति बोध्यते ॥ ९५ ॥

एतद्ग्रन्थावलोकनकर्तॄणां फलमाहुः सूर्योदये इत्यादि—

सूर्योदये शीतमपैति सर्वं मार्गावलोको जलजप्रकाशः ।
तमोनिवृत्तिर्द्विजकर्मवृत्तिस्तथैव मार्त्तण्डनिबन्धबोधे ॥ ९६ ॥

इति श्रीमन्मुकुन्दरायसहजमाधुरीपरमानिर्वचनीयसरसव-
दनतामरससुधाह्रदावगाहिश्रीमदाचार्यकृपापार-
सारश्रीमत्प्रभुचरणात्मजमहाराजश्रीयदुना-
थकुलोद्भवगोस्वामिश्रीगोपालात्मज-
नुषा श्रीगिरिधरेण विरचितः शुद्धा-
द्वैतमार्त्तण्डः समाप्तिमफाणीत् ।

शीतस्य जाड्यत्वेन जाड्यं गच्छति, निजाचार्यप्रकटितमार्गज्ञानं, भक्तहृदयाब्जप्रकाशः, तमोऽज्ञानं तस्य निवृत्तिः, द्विजस्य ब्राह्मणादेः सूर्योदये सन्ध्यावन्दनादिकर्मसु यथा वृत्तिः प्रवृत्तिः तथा ब्रह्मसम्बन्धिनः "कर्म्माण्येकं तस्य देवस्य सेवा" इतिवचनात् सेवारूपकर्मणि प्रवृत्तिः, आत्मनिवेदिनामेव भगवत्सेवायामधिकारः "आत्मनिवेदिनो हि भगवत्सेवार्हा नेतरे गायत्र्युपदेशजसंस्कारव"दिति प्रभुचरणाः । तथाच गायत्र्युपदेशेन द्विजत्वमेवमात्मनिवेदनेनात्र भगवत्सेवाधिकारत्वसंपादकद्विजत्वं यथा जन्म ब्राह्मणकुले तदनुगायत्र्युपदेशेन कर्माधिकार एवं शरणमन्त्रोपदेशो वैष्णवत्वं तदन्वात्मनिवेदने सेवाधिकार इति भावः । निबन्धो ग्रन्थः ॥ ९६ ॥

इति श्रीयदुनाथानां कुलचूडामणेर्गुरोः ।
श्रीमद्गिरिधरस्याङ्घ्रिसरोरुहपरागलिट् ॥ १ ॥

रामकृष्णः स्वबोधाय व्यरचत्तत्कृपालवात् ।
शुद्धाद्वैताख्यसिद्धान्तमार्त्तण्डस्य प्रकाशकम् ॥ २ ॥
यदिदं सदसद्वापि प्रोक्तं धाष्टर्यान्मयाऽत्र हि ।
तत्र श्रीवल्लभाचार्याः क्षपयन्तु निजेश्वराः ॥ ३ ॥

इति श्रीमदखण्डपण्डिताडम्बरखण्डनप्रचण्डपचनमरीचिश्रीमदाचार्यात्मजश्रीमत्प्रभुचरणात्मजश्रीमहाराजयदुनाथकुलकमलविकासककरश्रीमद्गोपालात्मजश्रीमद्गिरिधरचरणकमलमकरन्दमधुपायमाननेतोपनामकरामकृष्णभट्टरचितशुद्धाद्वैतमार्त्तण्डप्रकाशः समाप्तिमगमत् ॥

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।

अथ शुद्धाद्वैतपरिष्कारः ॥

अथ शुद्धाद्वैतपरिष्कृतिरियं लिख्यते ॥
शुद्धाद्वैतविचारेण मायावादनिवर्त्तकान् ।
श्रीमदाचार्यचरणान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥ १ ॥

अथ शुद्धाद्वैतस्य किं लक्षणमितिचेत् इतरसम्बन्धानवच्छिन्नकार्यकारणादिरूपद्वित्वप्रकारकज्ञानप्रतियोगिताकाभाववत्त्वमिति गृहाण । अत्र हि द्वित्वप्रकारकज्ञानप्रतियोगिताकाभाववत्त्वमित्यनेनैवेतरसम्बन्धानवच्छिन्नत्वप्रतीतेरनवच्छिन्नान्तविशेषणस्य किं प्रयोजनमिति चेत् सत्यं कार्यकारणादिद्वित्वप्रकारकपदार्थस्य मायिकत्वाभावाय तद्विशेषणम् । शङ्कराचार्याणां मते मायाविद्योपाध्यवच्छिन्नेश्वरजीवरूपकारणकार्ययोरशुद्धत्वात् अन्यथा तेषां मते कार्यकारणयोः शुद्धत्वे द्वैतापत्तिः । अतएव स्वरूपलक्षणे सत्यादिपदलक्ष्यमेव ब्रह्म सर्वत्रैव हि वाक्यार्थो लक्ष्यएवेति च स्थित इत्युक्तेः । तत्रापि वदामः लक्षणायाः शक्यसम्बन्धरूपत्वात् तस्य च द्विनिष्ठत्वात् ब्रह्मणि सत्त्वेन वान्ताशित्वापातः । अथ च सम्बन्धस्यापि मायिकत्वमिति चेत्

लक्ष्यत्वरूपधर्मवत्त्वेन दोषस्तदवस्थः। लक्ष्यत्वमपि तथैव मायिकं चेत् भद्रं लक्षणावैयर्थ्यम्। किञ्च लक्ष्यस्य तीरस्यागङ्गात्ववत् सत्यादिलक्ष्यस्यासत्यत्वादित्वापातः। उपाधिवादस्य च श्रीमदाचार्यचरणादिभिः खण्डितत्वान्नेह तन्यते। अथ च "सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्" इति न्यायेन विशेषणस्येतरभेदकत्वेन मायासम्बन्धराहित्याभावादेव व्यावर्त्याभावादपार्थमिदं विशेषणमिति चेत् दत्तोत्तरत्वात् बोधाय निरूपणयित्वेनेतरमतजन्यज्ञानस्य निरसनीयत्वात्। किञ्च सन्ध्याधिकरणानुरोधेन स्वाप्निकसृष्टेर्मायिकत्वेन तद्व्यावृत्त्यर्थं वा तत्। स्वाप्नसृष्टेरवास्तविकत्वेन अस्याः सृष्टेश्च वास्तविकत्वेन भेदो "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिव"दिति सूत्रादिभिर्व्यासचरणैरेव प्रतिपादितः। इतरसम्बन्धविशेषणं तु ब्रह्मणो धर्मधर्मिभावसम्बन्धावच्छिन्नतया तस्यापि निरासे शङ्करमतप्रवेशवारणाय। तर्हि धर्मधर्मिभावसम्बन्धाङ्गीकारे द्वित्वप्रकारकज्ञानप्रतियोगिताकाभावाद्व्याप्तिरिति चेत् धर्मधर्मिभावस्याभिन्नत्वस्य "प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्"इत्यादिसूत्रैर्निर्णीतत्वात्। "पराऽस्यशक्ति"रित्यादिष्वभेदएव षष्ठ्यङ्गीकारात्। एतेन भेदाभेदवादिनौ निम्बार्कभास्कराचार्यौ प्रत्युक्तौ॥ तत्राद्यस्य वास्तविकभेदाभेदत्वेन मध्वाचार्यस्येव भेदस्य वास्तविकतया द्वित्वप्रकारकेत्यादिना निरस्तत्वात् द्वितीयस्य भेदाभेदेन भेदस्यौपाधिकत्वेनेतरसम्बन्धेत्यादिना व्यावर्त्तितत्वात्। तर्हि अवच्छिन्नान्तमेव तदिति चेत् शङ्करमतापत्तिरतः कार्यादीति। तर्हि रामानुजाचार्यमतेऽपि मायासम्बन्धाभाववत्कार्यकारणयोरद्वैततया तन्मतप्रवेश इति चेच्छृणु तन्मते हि चिदचिद्विशिष्टस्य सूक्ष्मस्य स्थूलस्य कारणस्य कार्यस्य च सत्त्वेन स्वमते "आत्मैवेदमग्र आसी"दित्यादिश्रुत्या अचितः कारणावस्थायां निषेधात् केवलात्मनः कारणतया ततो वैलक्षण्यं कार्यावस्थायामपि तेषां मते परस्परभेदस्य वास्तविकत्वेन स्वमतेऽभेदस्य वास्तविकत्वेनापि वैलक्षण्यम्। न च घटपटादीनामभेदो न सम्भवतीति वाच्यम्। सर्वेषां ब्रह्मोपादानस्यैकत्वेन तस्यैवावस्थान्तरत्वेन चाभेदात्। यथा सुप्तउत्थितउपविष्टे च पुरुषेऽवस्थाभेदेऽपि न पुरुषभेदः। किञ्चेतरसम्बन्धानवच्छिन्नत्वेनाचितो वास्तविकभिन्नचितश्च निरासेन न तत्रातिव्याप्तिः। किञ्च विशिष्टाद्वैतमित्यस्य विशेषणविशिष्टत्वेन विशेषणस्य चेतरव्यावर्तकत्वेन सम्भवोऽपेक्षितोऽत्र व्यावर्त्याभावतया वैशिष्ट्यकथनं नोपपद्यत-

इति । एतेन शैवोऽपि दत्तोत्तरः । भिक्षुस्तु अविभागाद्वैतवादमवलम्ब्यौपाधिककर्तृत्वादिकमङ्गीचकार तदपीतरसम्बन्धावच्छिन्नाभावत्वेन निरस्तम् । द्वित्वप्रकारकाद्यभावत्वान्तेन मध्वाचार्यमतस्य निरासः । लीलास्थभावस्य बाधाभावाय कार्यकारणादिरूपमिति ज्ञानस्य विशेषणम् । द्वित्वप्रकारकप्रतियोगिताकाभावस्य मायावादमतेऽपीष्टत्वात् तन्निवारणाय ज्ञानस्येति प्रतियोगिनि विशेषणमिति सुष्ठु ॥ अत्र शुद्धाद्वैतपदे कोऽसौ समास इति चेत् शुद्धं च तदद्वैतं चेति कर्मधारयः। अत्र इतरसम्बन्धानवच्छिन्नत्वे सति इत्येवं योज्यम् । उक्तलक्षणं तु शुद्धयोः कार्यकारणयोरिति षष्ठीतत्पुरुषपक्षे बोध्यम् । अत्र नरसिंहतापिन्यां योनित्वं ब्रह्मणः समर्थयित्वा "सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवाः सर्वमया सर्वावस्थासु तथाऽप्यल्पा" इत्याद्युक्त्वा "सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः प्रमाणैरेतैरवगम्यते" इति वाक्यं पठितम् । अग्रे च "सर्वमत एव शुद्धोऽबाध्यस्वरूपः सुखरूप आत्मे"ति निरूपितम्। "सर्वं खल्विदं ब्रह्मे"त्यादिश्रुतिषु शुद्धाद्वैतं स्पष्टमेव प्रतीयतइति बोध्यम् । विस्तरस्तु मत्कृतशुद्धाद्वैतमार्तण्डप्रकाशे बोध्यः । श्रीमद्गिरिवराधीशपादाम्बुजपरागभृत् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णोऽसौ शुद्धाद्वैतपरिष्कृतिम् ॥ ॥ १ ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टविरचिता शुद्धाद्वैतपरिष्कृतिः समाप्ता ॥

इति शुद्धाद्वैतपरिष्कारः समाप्तः ।

---

१ विशिष्टाद्वैतवादिरामानुजमतस्य चौरत्वात्

शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डः

ઘણા લોકો રૂબરૂમાં તેમ જ પત્રદ્વારા શુદ્ધાદ્વૈતનું સ્વરૂપ જાણવાની ઇચ્છા રાખી તે વિષે વિવેચન કરી સમજાવવાનું જણાવે છે, પણ વેદ, શ્રીમદ્દભગવદ્દગીતા, વ્યાસસૂત્ર અને શ્રીમદ્દભાગવત વિગેરેમાં જેનું વિસ્તારથી નિરૂપણ કરેલું છે, તેની સમજણ રૂબરૂમાં એકાદ વખત કહેવાથી કે પત્રમાં લખવાથી બરાબર થઇ શકે તેવી નહિ હોવાથી તે બાબતનો ગ્રંથ પ્રસિદ્ધ કરવાનો સભાનો વિચાર થતાં, કાશી-વાળા ગોસ્વામી શ્રીગિરિધરજી મહારાજે, સંક્ષેપમાં શુદ્ધાદ્વૈતનું સ્વરૂપ વૈષ્ણવોના જાણવામાં આવવા માટે शुद्धाद्वैतमार्तण्ड નામનો ગ્રંથ શ્લોકાત્મક કરેલો છે; તેમાં અત્યંત સંક્ષેપથી સર્વ બાબતો લખેલી હોવાથી, સાધારણ માણસો સારી રીતે સમજી શકશે નહિ, એમ ધારી, તે ઉપર તેમના આશ્રિત રામકૃષ્ણભટ્ટજીએ પ્રકાશ નામનો ગ્રન્થ કરેલો છે, તે ગ્રંથ અહિં દાખલ કરવાનું યોગ્ય જણાતાં તે મૂળ તથા પ્રકાશમાં જે જે સ્થળે સંક્ષિપ્ત લેખ છે, તે તે સ્થળે विद्वन्मण्डन વગેરે બીજા ગ્રંથોનો અભિપ્રાય લઈ, સુધારા તથા વધારા સાથે તે ગ્રંથ અહિં દાખલ કરવામાં આવે છે; તેમાં શ્રી-ગિરિધરજીમહારાજકૃત મૂળગ્રંથની કારિકાઓ દાખલ કરી, તેનો ગૂજરાતીમાં શબ્દાર્થ લખી ટીકામાં પ્રકાશ તથા બીજા ગ્રંથોનો અભિપ્રાય લખી, ગૂજરાતીમાં વિવેચન લખવામાં આવશે; માટે સંસ્કૃત ટીકા સાથે આ ગૂજરાતી ટીકા મેળવતાં કમી જાસ્તી જોવામાં આવે ત્યાં સાધારણ જનના બોધ માટે સુધારો વધારો કરેલ છે એમ સમજવું.

શ્રીગિરિધરજીમહારાજ પ્રથમ બે શ્લોકવડે મંગળાચરણ કરીને શુદ્ધાદ્વૈત-માર્ત્તણ્ડ નામનો ગ્રંથ કરવાની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.

मूलम् । श्रीमदाचार्यचरणौ श्रीविट्ठलपदाम्बुजे ।
श्रीमतां यदुनाथानां श्रीमद्गिरिधरः सुधीः ॥ १ ॥
चरणाम्बुजकिञ्जल्कपरागान्प्रणिपत्य तम् ।
शुद्धाद्वैतविचारार्कं तनुते सुधियां मुदे ॥ २ ॥

શબ્દાર્થ—શ્રીમદાચાર્યજીનાં ચરણારવિંદ, શ્રીગુસાંઇજી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીનાં ચરણકમલ અને શોભાયુક્ત શ્રીયદુનાથજીનાં ચરણકમલના તંતુના પરાગને પ્રણી-પાત કરીને સારી બુદ્ધિવાળા શ્રીગિરિધરજી સારી બુદ્ધિવાળાના હર્ષને માટે શુદ્ધાદ્વૈત વિચારના સૂર્યને વિસ્તારે છે.

ટીકા—શ્રીમદાચાર્યજી શ્રીપૂર્ણપુરુષોત્તમના મુખારવિન્દરૂપ હોવાથી ભગ-વાનની વાણીરૂપ વેદનું તાત્પર્ય શ્રીઆચાર્યજીની કૃપાવડે જ જણાય; તેટલા માટે પ્રથમ તેમનાં ચરણને નમન કર્યું છે. ચરણ ઉદ્ધારકરનાર હોવાથી ચરણને નમન

કરેલ છે. ચરણ ઉદ્ધારકરનાર છે એ હકીકત શ્રીભાગવતદશમસ્કંધમાં ગર્ભસ્તુતિમાં બ્રહ્માજીયેં કહેલ છે કેઃ–

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्! भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥

અર્થ–હે પ્રકાશયુક્ત ભગવન્! આપના ભક્તો, કાયથી તરી શકાય નહિં એવા ભયંકર સંસારરૂપ સમુદ્રને ભક્તિરૂપ આપનાં ચરણારવિંદવડે પોતે સારી રીતે ઉતરીને સર્વ ઉપર ઘણા સૌહૃદવાળા હોવાથી આપનાં ચરણારવિંદરૂપ ભક્તિમાર્ગાત્મકનાવને તેઓ અહિં પૃથ્વી ઉપર રાખીને તેઓ પરમપદને પ્રાપ્ત થયા છે. ભક્તિમાર્ગરૂપ નાવ અહિં રાખેલું હોવાથી તેનાવમાં બેસનાર વગરમહેનતે સંસારરૂપસમુદ્રને તરશે કેમકે તેમાર્ગને પ્રવર્ત્તાવનાર ઉપર આપનો અનુગ્રહ છે તેથી તેમના પ્રવર્ત્તાવેલા માર્ગ ઉપર આપને પક્ષપાત રહે છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં ચરણારવિંદરૂપ ભક્તિમાર્ગ ઉદ્ધારકરનાર છે એમ કહીને ચરણારવિંદને ઉદ્ધારકપણું બતાવ્યું છે; માટે પોતાનો ઉદ્ધાર પણ આચરણારવિંદથીજ છે એમ સૂચવ્યું છે. શ્રીગુસાંઈજીનું નામ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી છે તેનો અર્થ એવો થાય છે કે જ્ઞાનરહિતજીવોનો દાસપણાંથી અંગીકાર કરે છે એવા કરુણામય છે. તેમના ચરણકમલને નમનકરવાનું કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે ભક્તિમાર્ગના પ્રવર્તક છે. ભક્તિવાળાઓના તાપને હરનાર છે અને ભક્તરૂપ ભ્રમરો તેમનું સેવન કરે છે. તેમજ પ્રેમના પૂરથી જેનું મન ભરેલું હોય તેના મનમાં તેમનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે એમ પણ સૂચવ્યું છે. શ્રીયદુનાથજી (પોતાના પિતાજી)નાં ચરણકમલના કિંજલ્કના પરાગને નમન કરવાનો અભિપ્રાય એવો છે કે યદુરાજા પુષ્ટભક્ત હતા તેના નાથ હોવાથી પુષ્ટિભક્તોને ઇષ્ટ ફળ આપવાનું સૂચવ્યું છે (૧) તેમનાં ચરણારવિંદના પરાગને નમન કરવાનો અભિપ્રાય એવો છે કે જેમ દર્પણ મલિન હોય તેને રજ લગાવી નિર્મળ કરે તો તેમાં મુખ સારી રીતે દેખાય તેમ ચરણકમલનાં પરાગવડે મનરૂપ દર્પણ નિર્મળ થાય તો તેની અંદર સિદ્ધાંતસ્વરૂપની સારી સ્ફુરણા થાય. સાષ્ટાંગ પ્રણામને પ્રણિપાત કહે છે. તેવી રીતે અહિં પ્રણિપાત કરવાનું કહેવાનો અભિપ્રાય એવો છે કે શ્રીભગવાને ગીતાજીમાં કહેલ છે કેઃ–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

અર્થ–તત્ત્વને જોનાર જ્ઞાનિયો, પ્રણિપાતવડે, પરિપ્રશ્નવડે અને સેવાવડે તને જ્ઞાનનો ઉપદેશ કરશે તે તું જાણ. એમ કહ્યું છે. ત્યાં જ્ઞાનનો ઉપદેશ મળવાનું સાધન પ્રણિપાત લખેલ છે તેથી અહિં પ્રણિપાત કહેલ છે. શુદ્ધાદ્વૈતમાર્ત્તંડનો વિસ્તાર કરવાનું કહેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે અસલ જે બાબત શાસ્ત્રમાં સિદ્ધ છે તેનો વિસ્તાર કરું છું. કાંઇ કપોલકલ્પિત આ બાબત નથી. સારીબુદ્ધિવાળાના હર્ષમાટે કરવાનું કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે જે, ભગવાનનીજ

એકશરણે હોય તે સારી બુદ્ધિવાળા કહેવાય છે. તેવાઓને આસિદ્ધાંતના અવ-
લોકનથી આનંદ થશે. (૨)

એવી રીતે ગ્રંથ કરવાની પ્રતિજ્ઞા કરીને દ્વૈતનું સ્વરૂપ જાણવામાં આવે ત્યારપછી અદ્વૈતસ્વરૂપ જણાય તેસારૂ પ્રથમ દ્વૈતપદાર્થનું સ્વરૂપ બતાવી અ-દ્વૈતનું નિરૂપણ કરે છે.

मूलम् । द्विधा ज्ञानं तु यद्यत्स्यान्नामरूपात्मना मुहुः ।
ईशजीवात्मना वाऽपि कार्यकारणतोऽथवा ॥ ३ ॥
द्वीतं तदेव द्वैतं स्यादद्वैतं तु ततोऽन्यथा ।
सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति पठ्यते ॥ ४ ॥

શબ્દાર્થ—નામ તથા રૂપાત્મકથી, ઇશ્વર તથા જીવરૂપથી અને કાર્ય તથા કારણથી જે જે બેપ્રકારનું જ્ઞાન થાય તે દ્વીત કહેવાય છે દ્વીતતેજદ્વૈત અને તેથી ઉલટું તે અદ્વૈત કહેવાય છે. તે વેદમાં सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान् (ઉત્પત્તિ લય અને સ્થિતિ આજગતની બ્રહ્મમાંજ છે તેથી આ દેખાતું નામરૂપાત્મક સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે) એમ કહેલ છે.

ટીકા—બેપ્રકારનું જ્ઞાન થાય તે દ્વૈત કહેવાય છે. દ્વૈત શબ્દનો અર્થ એવી રીતે થાય છે કે બેપ્રકારે થનારું જ્ઞાન હોય તે દ્વીત કહેવાય અને દ્વીત તેજ દ્વૈત કહેવાય છે. જેમ કે ઈશ્વર અને જીવ, નામ અને રૂપ તેમજ કાર્ય અને કારણ એવી રીતના બેપ્રકારનું જે જ્ઞાન થાય તે દ્વૈત કહેવાય છે. છાંદોગ્ય ઉપનિષદના છઠ્ઠા પ્રપાઠકમાં नामरूपे व्याकरवाणि (નામ અને રૂપનો વિસ્તાર કરું) એમ લખેલ છે તેથી નામ અને રૂપ એવો વ્યવહાર ભગવાને કરેલો હોવાથી તેને ભગવદ્રૂપ પણું છે; માટે अस्ति (છે) भाति, (પ્રકાશે છે) प्रिय, (આનંદ રૂપ) रूप (આ-કાર) અને नाम (ઘટ, પટ એવાં નામ) એ પાંચમાંથી પ્રથમનાં ત્રણ (અસ્તિ, ભાતિ અને પ્રિય) બ્રહ્મરૂપ છે અને રૂપ તથા નામ માયારૂપ છે એમ માયાવા-દિઓ કહે છે તેનો નિરાસ થયો; કેમકે છાંદોગ્યની શ્રુતિમાં નામ તથા રૂપ ભગ-વાને કરેલાં હોવાથી ભગવદ્રૂપ છે એમ લખેલું છે તો ભગવદ્રૂપ હોય તે માયારૂપ કહેવાયજ નહિં. કેટલાએક નામ તથા રૂપ જગદ્રૂપ છે એમ કહે છે તે વધારે પ્રતિકૂલ નથી; કેમકે નામ અને રૂપને જગદ્રૂપપણું છે, જગત્ કાર્ય છે તેનું કારણ બ્રહ્મ છે, અને મૃતિકારૂપ કારણ તથા ઘટરૂપ કાર્યને જેમ ભેદ નથી તેમ બ્રહ્મરૂપ કારણ અને જગદ્રૂપ કાર્યને ભેદ નથી; તેથીજ નિબંધના પ્રા-રંભમાં શ્રીઆચાર્યજીમહાપ્રભુજીયેં આજ્ઞા કરી છે કે:—

तस्मै नमो भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः ॥

અર્થ—રૂપ અને નામ એવા વિશેષભેદવડે જે જગદ્રૂપ છે, રૂપ અને

નામ એવા વિશેષભેદવડે જે ક્રીડા કરે છે અને રૂપ તથા નામ એવા વિશેષભેદવડે જેનાથી જગત્ થાય છે તે અદ્ભુતકર્મવાળા ભગવાન્શ્રીકૃષ્ણને નમન કરૂં છું.

શંકા—નામ અને રૂપને બ્રહ્મરૂપપણું માનશો ત્યારે નામરૂપવાળુ બ્રહ્મ થવાથી સધર્મક (સગુણ) બ્રહ્મ થશે, માટે માયિકપણું નામરૂપને માનવું તે ઉત્તમ છે.

ઉત્તર—અસ્તિ, ભાતિ અને પ્રિય, એ ત્રણ ધર્મને બ્રહ્મરૂપપણું માનવાથી પણ સધર્મપણું તો બ્રહ્મને થશેજ; માટે જેમ तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति (પ્રકાશિતથનાર તેઆત્માની પાછળજ સર્વ પ્રકાશિત થાય છે અને તેની કાંતિવડે આ સર્વ જગત્ પ્રકાશિત થાય છે) એશ્રુતિમાં સર્વને પ્રકાશ-કરનાર આત્મા છે એમ કહ્યું છે અને एष ह्येवानंदयाति (આ આત્માજ સર્વને આનંદરૂપ કરે છે) એશ્રુતિમાં સર્વને આનંદઆપનાર આત્મા છે. એમ કહ્યું છે તેવી રીતે नामरूपे व्याकरवाणि (નામ તથા રૂપનો હું વિસ્તાર કરું) એશ્રુતિમાં નામરૂપનો પ્રકાશકરનાર બ્રહ્મ છે એમ કહ્યું છે તેથી નામ તથા રૂપને માયિક-પણું નથી. અર્થાત્ નામ તથા રૂપ બ્રહ્મથી જૂદાં છે એવું જ્ઞાનજ માયિક છે પણ નામ તથા રૂપ માયિક નથી. એવીજ રીતે ઈશ્વર તથા જીવનો ભેદ અને કાર્ય તથા કારણનો ભેદ છે એમ સમજવું તે માયિક જ્ઞાન કહેવાય છે.

બેપ્રકારનું જ્ઞાન તે દ્વીત કહેવાય છે દ્વીત તેજ દ્વૈત કહેવાય છે. દ્વૈતથી ઉલટું તે અદ્વૈત કહેવાય છે. છાંદોગ્યઉપનિષદના ત્રીજા પ્રપાઠકમાં કહ્યું છે કેઃ—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान् ।

અર્થ—આ દેખાતું સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે; કેમકે બ્રહ્મથી ઉત્પન્ન થાય છે, બ્રહ્મમાં લીન થાય છે અને બ્રહ્મમાંજ તેની સ્થિતિ છે; અર્થાત્ ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લયની અવસ્થામાં આ જગત્ બ્રહ્મમાંજ રહે છે તેથી નામરૂપસહિત સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપજ છે. (૪)

ઉપર છાંદોગ્ય ઉપનિષદની શ્રુતિ પ્રમાણમાં આપી તેનો અર્થ કહે છેઃ—

मूलम् । सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वमिदमा बोध्यते पुरः ।
सर्वशब्देन यावद्धि दृष्टश्रुतमदो जगत् ॥ ५ ॥
बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम् ।
कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैव स्याच्च कारणम् ॥ ६ ॥

શબ્દાર્થ=શ્રુતિમાં इदम् (આ) શબ્દ કહેવાથી આગળ દેખાતું સર્વ જગત્ બતાવે છે, અને સર્વશબ્દથી જેટલું જોયેલું તથા સાંભળેલું જગત્ બતાવે છે. તેથી સર્વદા રહેલું સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે એમ બતાવાય છે. બ્રહ્મરૂપ કાર્યનું કારણ બ્રહ્મજ હોય.

ટીકા—सर्वं खल्विदं ब्रह्म (આ સર્વ નિશ્ચય બ્રહ્મ છે) એ શ્રુતિમાં इदम् શબ્દ કહેલ છે તે પ્રત્યક્ષને કહેનાર હોવાથી પ્રત્યક્ષ દેખાતું સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે એમ

બોધ કરાય છે અને સર્વ (બધું) શબ્દ કહેલ છે તે જોયેલા તથા સાંભળેલા તમામને કહેનાર હોવાથી જોયેલું તથા સાંભળેલું તમામ બ્રહ્મરૂપ છે એમ બોધ કરાય છે, તેથી સર્વ જગત્ સનાતન બ્રહ્મરૂપ છે એમ બોધ થાય છે. તેબાબત છાંદોગ્યઉપનિષદના છઠ્ઠા પ્રપાઠકમાં શ્વેતકેતુના આખ્યાનમાં તેના પિતા ઉદ્દાલકે બોધ કરેલો છે કેઃ–

सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ।
तत्सत्यम् यदिदं किंच तत्सत्यमित्याचक्षते ॥

અર્થ–હે સોમ્ય! આ પ્રજાનું મૂળ સદ્રૂપ બ્રહ્મ છે, રહેવાનું સ્થાનક સદ્રૂપ બ્રહ્મ છે, અને છેવટ બ્રહ્મમાંજ રહેનાર છે તે સત્ય છે. જે આ કાંઇ છે તે સત્ય છે એમ પ્રાચીન ઋષિઓ કહે છે. વળી કહેલ છે કેઃ–

कथमसतः सज्जायेत ।

અર્થ–અસત્યથી સત્ય કેમ થાય? એટલે માયાથી જગત્ ઉત્પન્ન થયું છે એમ કહિએં તો માયા ખોટી છે એમ સ્વીકારનારને કહે છે કે અસદ્રૂપમાયાથી સદ્રૂપ જગત્ કેમ થાય? તેમ જગત્ પણ અસદ્રૂપ થયું છે એમ કહેશો તો અસદ્રૂપ જગત્ કહેવાથી જગતમાં રહેલ વેદ, ગુરુ અને તેનાં વાકયો છે તે પણ અસત્ છે એમ કહેવું જોશે ત્યારે તેવા અસત્ય ઉપદેશથી સદ્રૂપ બ્રહ્મ કેમ ફળીભૂત થાય? એવી રીતે અનેક તર્કોથી જગતને અસત્ય કહેવામાં બાધ આવે છે. તેમ છાંદોગ્ય-ઉપનિષદના છઠ્ઠા પ્રપાઠકના પ્રથમ ખંડમાં કહેલ છે કે અરુણિના પુત્ર ઉદ્દાલકનો પુત્ર શ્વેતકેતુ હતો તેને તેના પિતાએં કહ્યું કે હે શ્વેતકેતુ! બ્રહ્મચર્ય ધારણ કરી વિદ્યાભ્યાસ કરય. આપણાં કુલમાં ઉત્પન્ન થયેલો કોય *બ્રહ્મબંધુજેવો વિદ્યા નહિંજાણનાર હોતો નથી. એમ પિતાએ કહ્યું ત્યારે શ્વેતકેતુ બારવર્ષનો હતો તે ગુરુના સમીપમાં જઇ ચોવીશવર્ષનો થયો ત્યાંસુધીમાં ચારે વેદ અર્થસહિત ભણ્યો ત્યારે પોતાની બરોબર ભણેલો કોય નથી એમ તે માનવા લાગ્યો એટલે નમ્રસ્વભાવવગરનો ઉદ્ધત થઇને આવ્યો તેને જોઈને તેના પિતાએ તેના અભિમાનની નિવૃત્તિ કરવામાટે પૂછ્યું કેઃ–

यन्नु सोम्येदं महामना अनूचमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशम-
प्राक्ष्यः? येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति ।

અર્થ–કોમળ આમંત્રણ કરિને કહે છે કે હે સોમ્ય! જે આ મ્હારા જેવો બીજો કોય નથી એમ માનીને હું ઘણું ભણી ગયો છું મ્હારા જેટલું બીજો ભણેલો નથી એમ માનનાર તું ઉદ્ધત થયો છે તે શું એવી રીતનો ઉપદેશ તેં તારા ગુરુને પૂછ્યો છે? કે જેનાથી નહિં સાંભળેલું હોય તે સાંભળેલું થાય છે, ન માનેલું હોય તે (તર્કમાં આવીને) માનેલું થાય છે અને ન જાણેલું હોય તે (નિશ્ચય કરીને) જા-

---

* બ્રાહ્મણ પોતાના બંધુ છે એમ બતાવે પણ પોતામાં બ્રાહ્મણનું આચરણ હોય નહિ તે બ્રહ્મબંધુ કહેવાય.

ણેલું થાય છે. એમ પિતાએ પૂછયું ત્યારે શ્વેતકેતુએ કહ્યું કે કેવી રીતનો તે ઉપદેશ થાય છે? અર્થાત્ તમે તેવો ઉપદેશ કરો એમ શ્વેતકેતુના કહેવાથી ઉદ્દાલકે કહેલું છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।

અર્થ—હે સોમ્ય! મૃત્તિકાનો એક પિંડો જાણવાથી મૃત્તિકાના તમામ પદાર્થ જેમ જણાય, તેમ એક બ્રહ્મ જાણવાથી બ્રહ્મમાંથી થયેલ તમામ કાર્યરૂપ જગત્ જણાય: મૃત્તિકામાંથી થયેલ ઘટાદિકમાં જે પેટને ભાગે પહોળાઈ અને કાંઠાના ભાગમાં સાંકડાઈવાળો વિકાર જણાય છે તે વાણીની ક્રિયારૂપ છે, કાંઈ મૃત્તિકાથી ઘડો જૂદો છે એમ બતાવનાર નથી. (જેમ પુરુષ સૂતો હોય, ઉભો થયો હોય કે બેઠો હોય તેમાં તે પુરુષ જૂદા જૂદા નથી પણ એકજ પુરુષ જૂદી જૂદી રીતેં અવયવો રાખીને રહેલ છે તેવી રીતેં એકજ મૃત્તિકા જૂદા જૂદા પ્રકારે રહેલ છે. મૃત્તિકાથી ઘટ કાંઇ જૂદો નથી.) માટે ઘટ અને શરાવાદિક એવાં જૂદાં જૂદાં રૂપથી મૃત્તિકાજ રહેલ છે. તેવીજ રીતેં ઘટ તથા શરાવાદિક નામ છે તે પણ મૃત્તિકાનાંજ છે. જળ લાવવાના કામમાટે ઘડારૂપથી અને ભોજનાદિક કામમાટે શરાવાદિકરૂપથી મૃત્તિકાજ વ્યવહારમાં આવે છે. કારણરૂપ મૃત્તિકાથી ઘડોવિગેરે કાર્ય જૂદું નથી એમ બતાવવા સારૂ मृत्तिकेत्येव सत्यम् (એપ્રકારની મૃત્તિકા છે તેથી તે સત્ય છે.) એમ કહ્યું છે; તેથી બ્રહ્મમાંથી જગત્ થયું છે તે જૂદે જૂદે પ્રકારે બ્રહ્મજ છે. એમ બતાવવાસારૂ આ મૃત્તિકાનું દૃષ્ટાંત આપેલ છે. નામ તથા રૂપ મિથ્યા છે એમ કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોત તો मृत्तिकैव सत्यम् (મૃત્તિકાજ સાચી છે) એમ કહેત પણ मृत्तिकेत्येव सत्यम् (એપ્રકારની મૃત્તિકાજ છે તેથી તે સત્ય છે) એમ કહેત નહિં, અને અહિં તો પ્રકારના અર્થને બતાવનાર इति શબ્દ કહેલો છે તે એવા પ્રકારની મૃત્તિકાજ છે એમ બતાવનાર છે. તેમ મૃત્તિકાજ સત્ય છે (અને મૃન્મય કાર્ય ખોટું છે) એમ કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોત તો मृत्तिका શબ્દ સ્ત્રીલિંગેં હોવાથી सत्या એમ સ્ત્રીલિંગે સત્યશબ્દનો પ્રયોગ કહેત પણ सत्यम् એમ નપુંસકલિંગનો પ્રયોગ વાપરેલો છે તેથી सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् (બધું મૃત્તિકામય જાણેલું થાય) એમ સામાન્ય રીતેં મૃત્તિકાના વિકારને કહેનાર मृन्मय શબ્દ પ્રથમ નપુંસકલિંગેં લખેલ છે તે સત્ય છે એમ કહેવામાટે છેવટ सत्य શબ્દ નપુંસકલિંગે લખ્યો છે; તેમ એક જાણવાથી બધું જણાય એવો ઉપદેશ કરવાના પ્રસંગમાં મૃત્તિકાનું દૃષ્ટાંત આપેલ છે તે જેમ મૃત્તિકા જાણવાથી ઘટશરાવાદિક બધા જણાય છે. કેમકે તે મૃત્તિકારૂપ છે તેવી રીતેં આ જગત્ બ્રહ્મરૂપ હોવાથી બ્રહ્મ જાણવાથી બધું જણાય. એવો અભિપ્રાય કહેલ છે તે પણ જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે એમ સિદ્ધ કરે છે; માટે આશ્રુતિથી એટલુંજ સમજવાનું છેકે જગત્ બ્રહ્મથી જૂદું નથી તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

सदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः ।

અર્થ—બ્રહ્મથી અનન્યપણું જગતને છે; કેમકે वाचारंभणम् ઈત્યાદિક શ્રુતિઓમાં બ્રહ્મથી જગત્ જૂદું નથી અર્થાત્ બ્રહ્મરૂપજ છે એમ કહેલ છે. આસૂત્રમાં આદિ શબ્દ છે તે स आत्मानं स्वयमकुरुत (તેઆત્માયેં પોતેં પોતાના આત્માને જગદ્રૂપ કરેલ છે.) स हैतावानास (તે આત્મા નિશ્ચય આટલા (જગદ્રૂપ) થયેલ છે.) ઈત્યાદિક શ્રુતિયોનો બોધ કરે છે. તેમ શ્રીભાગવતએકાદશસ્કંધમાં પણ કહેલ છે કેઃ—

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजतीश्वरः ।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रीयते हरतीश्वरः ॥

અર્થ—આ જગત્ આત્માજ છે તે પોતેં સૃજાય છે અને ઈશ્વર પોતેં સૃજે છે, વિશ્વરૂપ પોતેં રક્ષાકરાય છે અને પોતેં રક્ષા કરે છે તેમજ પોતેં હરાય છે અને પોતેં ઇશ્વરજ હરે છે; એટલેં સૃજાય છે તે અને સૃજે છે તે, જેની રક્ષા થાય છે તે અને જે રક્ષા કરે છે તે તેમજ જેનો સંહાર થાય છે તે અને જે સંહાર કરે છે તે ઇશ્વરજ છે, ઇત્યાદિક અનેક પ્રમાણોથી આ જગત્ બ્રહ્મરૂપ અને સત્ય છે એમ સિદ્ધ થાય છે; માટે જગત્ અસત્ય છે, એવું જ્ઞાન તો આસુરજીવોને થાય છે, તેવિષે શ્રીમદ્‌ભગવદ્‌ગીતાના સોળમા અધ્યાયમાં આસુરી સંપદનું નિરૂપણ છે ત્યાં કહેલ છે કેઃ—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।

અર્થ—તે આસુર જીવો જગત્ અસત્ય છે એમ કેટલાએક કહે છે, સ્થિતિવગરનું છે એમ કેટલાક કહે છે અને ઇશ્વરવગરનું છે એમ કેટલાક કહે છે, એમ કહ્યું છે તેથી જગતને અસત્યકહેનારને ભગવાને આસુર કહેલા છે તે સ્પષ્ટ છે. જગતને નિત્ય અને સત્ય કહેશો તો બ્રહ્મ તથા જગત્ બન્ને નિત્ય થયાં ત્યારે દ્વૈત થયું એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે કે બ્રહ્મરૂપ કાર્યનું કારણ પણ બ્રહ્મજ હોય માટે મૃત્તિકા અને ઘટની માફક કાર્ય અને કારણને એકતા હોવાથી દ્વૈતપણું થતું નથી. सर्वं खल्विदं ब्रह्म (આ સર્વ નિશ્ચય બ્રહ્મ છે) ઇત્યાદિક શ્રુતિયોથી જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે એમ સિદ્ધ છે ત્યારેં બ્રહ્મરૂપ જગતનું કારણ પણ બ્રહ્મજ હોય. માયા વિગેરે કારણ હોય નહિં. (५—६)

બ્રહ્મ, જગતનું કારણ છે તેમાં પ્રમાણ કહે છે.

मूलम् । "जन्माद्यस्ये"त्यादिसूत्रैर्व्यासपादैर्निरूपितम् ।
"यतोवे"त्यादिवाक्येषु वेदे स्पष्टं प्रतीयते ॥ ७ ॥

શબ્દાર્થ—जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् ઇત્યાદિક સૂત્રોવડે વ્યાસચરણેં નિરૂપણ કરેલું છે અને यतो वाइमानि भूतानि जायंते ઇત્યાદિક વાક્યોમાં વેદમાં સ્પષ્ટ દેખાય છે.

ટીકા—વ્યાસસૂત્રમાં जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् (મનવડે પણ જેનું રચન, જાણી શકાતું નથી એવા, આ (પુરોવર્ત્તિ) પ્રપંચના જન્માદિક જે બ્રહ્મથી થાય છે; કેમકે શાસ્ત્રમાં જગદ્રૂપકાર્યનું કારણપણું બ્રહ્મને કહેલ છે.) એસૂત્રથી આરંભ કરીને ચારઅધિકરણવડે બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ સિદ્ધ કરેલ છે; તેમાં

जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् એસૂત્રમાં બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ શાસ્ત્રમાં કહેલ છે, એવી રીતેં કહેલ છે. તે તૈત્તરીયઉપનિષદ્માં કહેલ છે કે:—

यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्मेति विजिज्ञासस्व ॥

અર્થ—વરુણ પોતાના પુત્ર ભૃગુને કહે છે કે જેનાથી આ ભૂત (પ્રાણિમાત્ર) ઉત્પન્ન થાય છે, ઉત્પન્ન થયેલાં જેનાથી જીવે છે અને જેનામાં અંતે પ્રવેશ કરે છે તે બ્રહ્મ છે એમ તું જાણ. એવી રીતે વેદમાં જગતને કરનાર બ્રહ્મ છે એમ લખેલું છે; ત્યાં અણુભાષ્યમાં લખ્યું છે કે જગતને કરનાર બ્રહ્મ છે કે નહિં? એવો સંદેહ કરીને ब्रह्मविदाप्नोति परम् (બ્રહ્મને જાણનાર તેનાથી પર એવા પુરુષોત્તમને પામે છે) એશ્રુતિવડે બ્રહ્મને જાણનાર હોય તેને પરની પ્રાપ્તિ થાય છે એમ પ્રતિજ્ઞા કરીને सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म એશ્રુતિવડે બ્રહ્મનાં સ્વરૂપનું લક્ષણ કહ્યું છે કે બ્રહ્મ સત્ય, જ્ઞાન અને અંતવગરનું છે. એમ કહીને બ્રહ્મને જાણનાર પરને પામે છે તે પર સર્વની ભીતર રહેલ છે એમ બતાવવામાટે આકાશથી વાયુ થાય છે અને વાયુથી અગ્નિ થાય છે ઇત્યાદિક ક્રમથી સૃષ્ટિ કહેલી છે; તેમાં માયા જગતને કરે છે તેનો આરોપ બ્રહ્મમાં થાય છે. (જેમ રાજ્યનું કામકરનાર માણસ જે કરે તેનો આરોપ રાજા ઉપર થાય છે એટલે રાજાએ કરેલું કહેવાય છે) એવી રીતેં વરુણે ભૃગુને કહેલ છે કે જગતને કરનાર બ્રહ્મ છે ત્યાં પણ ગૌણજ કર્ત્તાપણાનો અનુવાદ કરાય છે એમ પૂર્વપક્ષ કરીને સમાધાન કરેલ છે કે પ્રત્યક્ષ રહેલ આ સર્વ જગતના જન્મ, સ્થિતિ અને પ્રલય જેનાથી થાય છે તે જગતને કરનાર છે; કેમકે શાસ્ત્રમાં તેનું કારણપણું કહેલ છે. વેદના પૂર્વ તથા ઉત્તરકાંડનાં સૃષ્ટિસંબંધિ વાક્યો, તેમ જ સ્મૃતિ તથા પુરાણાદિકમાં કહેલ સૃષ્ટિસંબંધ વાક્યોનો સંગ્રહ કરવામાટે શાસ્ત્રમાં કહેલ કારણપણું બ્રહ્મને છે એમ સામાન્યરીતેં કહેલ છે. તેમ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म (સત્ય, જ્ઞાનસ્વરૂપ અને અંતવગરનું બ્રહ્મ છે) એમ બ્રહ્મનાં સ્વરૂપનાં લક્ષણને કહેનાર શ્રુતિ છે તેમાં જગતના કર્ત્તાપણાંનો નિષેધ કરેલો નથી; એટલેં જગતને કરનાર બ્રહ્મ નથી એમ કહેલું નથી. પણ ઉલટું શ્રુતિમાંજ જગતનું કારણ બ્રહ્મ છે એમ કહેલ છે. બીજા ઉપનિષદ્માં अस्थूलं अनणु (સ્થૂલ નથી તેમ અણુ નથી) એમ ધર્મનો નિષેધ કરેલો છે તેમાં પણ પરસ્પરવિરુદ્ધધર્મોના આશ્રયપણું બ્રહ્મને છે તેથી પ્રાકૃતધર્મોના નિષેધપર તે વાક્ય છે; માટે બ્રહ્મમાં કર્ત્તાપણાંનો આરોપ છે એમ માનવું તે યોગ્ય નથી; કેમકે માયા જગતનું કારણ નથી એમ તો વ્યાસસૂત્રમાં જ કહેલ છે અને જીવને સ્વતંત્રપણું નહિં હોવાથી જીવ જગતનો કર્ત્તા છે એમ કહેવું તો સંભવતું જ નથી. તેમ બ્રહ્મમાં કર્ત્તાપણાંનો આરોપ કોણે કેવી રીતેં કર્યો? ઇત્યાદિક વિચારનું વિવેચન આગળ આવશે તેપ્રમાણે વિચાર કરતાં બ્રહ્મમાં આરોપ સંભવતો જ નથી; માટે બ્રહ્મજ જગતનું કારણ છે. અહિં जन्माद्यस्य यतः જૂદું સૂત્ર છે અને शास्त्रयोनित्वात् એ સૂત્ર ભિન્ન છે એમ માનવું

યોગ્ય નથી; કેમકે આગળનાં સૂત્રોમાં *સાધ્ય તથા હેતુ બન્ને સાથે લખેલ જોવામાં આવે છે તેવી રીતેં અહિં પણ સાધ્ય તથા હેતુ સાથેજ હોવા જોઇએ; કેમકે શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતાના ૧૩ મા અધ્યાયમાં શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને અર્જુનપ્રત્યે કહેલ છે કેઃ—

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।

અર્થ—નિશ્ચય કરેલ હેતુયુક્ત વ્યાસસૂત્રનાં પદોવડે ગીત છે. એમ ભગવાનનું વાક્ય હોવાથી વ્યાસસૂત્રોમાં હેતુ અવશ્ય હોવો જોઇએ તે બન્ને સૂત્રો ભિન્ન ભિન્ન-માનવાથી સાધ્ય તથા હેતુ બન્ને સાથે આવતાં નથી તેથી ભગવાનના વાક્યથી વિરોધ આવે છે. जन्माद्यस्य यतः એસૂત્રનું અધિકરણ જૂદું અને शास्त्रयोनित्वात् એસૂત્રનું અધિકરણ જૂદું છે એમ કેટલાએક સ્વીકારે છે તેમાં जन्माद्यस्य यतः એ સૂત્રમાં (એટલે તેટલુંજ સૂત્ર જૂદું માની અધિકરણ ભિન્ન માનવાથી, તેટલા સૂત્રમાં) બ્રહ્મથી જગતનું જન્માદિક સિદ્ધ કરવું તે સાધ્ય છે પણ તે સિદ્ધકરવાનું કારણ शास्त्रयोनित्वात् એમ કહિયેં ત્યારે શાસ્ત્રોક્તકારણપણું છે એમ કહેવાય. તે તો તેટલું જૂદું સૂત્ર છે એમ માનવાથી રહેતું નથી માટે પ્રથમનો ભાગ જૂદો માનવાથી હેતુવગર સાધ્ય સિદ્ધ થતું નથી અને બીજો ભાગ જૂદો માનવાથી સાધ્યવગરનો હેતુનકામો થઈપડે છે તેથી વાક્યાર્થ સિદ્ધ થતો નથી. એવી રીતે जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् (જે બ્રહ્મથી આ જગતનાં જન્માદિક થાય છે; કેમકે શાસ્ત્રમાં કારણપણું કહેલ છે.) એ એક સૂત્રના બે વિભાગ કરવામાં અનેક દોષો આવે છે તેનો વિસ્તાર ભાષ્યપ્રકાશમાં શ્રીપુરુષોત્તમજીયેં કરેલ છે. બીજાં અધિકરણમાં तत्तु समन्वयात् (બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે; કેમકે સારી રીતેં જગતમાં અનુવૃતપણું (ઘટમાં મૃત્તિકાની પેંઠે) બ્રહ્મનું છે. એસૂત્રમાં બ્રહ્મ જગતનું સમવાયિકારણ (ઘટનું મૃત્તિકા ઉપાદાન કારણ છે તેમ) છે કે નહિં એવો સંશય થાય ત્યાં બ્રહ્મ સમવાયિ કારણ છે એમ માનીયેં તો બ્રહ્મને વિકારિપણું થાય માટે બ્રહ્મ સમવાયિ કારણ નથી એમ પૂર્વપક્ષ થાય તેની નિવૃત્તિ-માટે આ સૂત્ર છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે બ્રહ્મ જગતનું સમવાયિ કારણ છે; કેમકે આરોપ કર્યાવગર અને આગંતુકરૂપવગર જગતમાં બ્રહ્મ સારી રીતેં અનુસ્યૂત રહેલ છે. ઘટમાં જેમ મૃત્તિકા અનુસ્યૂત રહેલ છે તેમ જગતમાં अस्ति, (છે) भाति (પ્રકાશે છે) અને प्रिय (આનંદરૂપ છે) એવી રીતેં બ્રહ્મના સત્, ચિત્ તથા આનંદરૂપ અંશો જગતમાં સારી રીતેં અનુસ્યૂત રહેલા છે. તેમજ નામ તથા રૂપ

---

* पर्वतो वह्निमान् (પર્વત અગ્નિવાળો છે.) એમ કહેવું તેમાં અગ્નિ સાધ્ય કહેવાય છે અને धूमवत्वात् (ધૂમાડાવાળો છે માટે) એમ કહેવું તેમાં ધૂમાડો એ હેતુ છે એટલેં ધૂમાડારૂપ હેતુથી અગ્નિ પર્વતમાં છે એમ સિદ્ધ કરી શકાય છે તેથી અગ્નિ સાધ્ય કહેવાય છે. તેવી રીતેં जन्माद्यस्य यतः એસૂત્રમાં બ્રહ્મથી જગતના જન્માદિક થાય છે એમ કહેવામાં બ્રહ્મથી જગતનાં જન્માદિક થવાનું સિદ્ધ કરવાનું હોવાથી બ્રહ્મથી જગતનું જન્માદિક થવું તે સાધ્ય છે. બીજું ધૂમરૂપ હેતુથી પર્વતમાં અગ્નિ સિદ્ધ થાય છે માટે ધૂમ હેતુ કહેવાય છે તેવી રીતેં અહિં शास्त्रयोनित्वात् એસૂત્રમાં બ્રહ્મ જગતના જન્માદિકનું કારણ છે એમ શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે તેમાં જગતમાં જન્માદિકનું કારણ બ્રહ્મ છે એમ સિદ્ધ કરવામાં શાસ્ત્રમાં કહેલ કારણપણું છે એમ કહેવું એ હેતુ છે

પણ બ્રહ્મે કરેલાં હોવાથી બ્રહ્મરૂપજ છે તેબાબત છાન્દોગ્યઉપનિષદની શ્રુતિનું પ્રમાણ આપી ઉપર સિદ્ધ કરેલજ છે તેમ કાર્યનું સ્વરૂપ નામ તથા રૂપજ છે તેને મિથ્યા માનીયેં તો કાર્ય મિથ્યા થયું ત્યારેં બ્રહ્મ કારણ કોનું થાય? મિથ્યાનું કારણ સત્ય સંભવેજ નહિં. તો બ્રહ્મસ્વરૂપ સત્ય છે તે મિથ્યાનું કારણ થાય નહિં. અને બ્રહ્મ જગતનું કારણ નથી એમ સ્વીકારીયેં તો ઉપનિષદમાં ઘણી શ્રુતિયોમાં બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ કહેલે છે તે સર્વ શ્રુતિયો વ્યર્થ જાય. આબાબત વધારે વિવેચન આગળ આવશે. તાદાત્મ્યસંબંધવડે જેનો આશ્રય રાખીને કાર્ય થાય તે સમવાયિકારણ કહેવાય. જેમ મૃત્તિકાનો તાદાત્મ્યસંબંધવડે આશ્રય રાખીને ઘટરૂપ કાર્ય થાય છે તેથી મૃત્તિકા ઘટનું સમવાયિ કારણ છે તેવી રીતેં બ્રહ્મ જગતનું સમવાયિ કારણ છે. તેવીજ એક અવસ્થાનું નામ ઉપાદાન કારણ છે. તેનું સ્વરૂપ એવું છે કે પોતામાં જેવી સત્તા હોય તેવી સત્તાવાળું જે કાર્યના આકારથી પ્રકટ થાય છે તે ઉપાદાન કારણ કહેવાય છે. જેમ સુવર્ણમાંથી કડાં અને કુંડળવિગેરે આભરણ થાય છે તેમાં સુવર્ણમાં જેટલી સત્તા (કીંમત) હોય તેટલીજ સત્તા (બલ્કે તેથી વધારે સત્તા) કડાં અથવા કુંડલવિગેરેમાં પેદા કરીને કડાં તથા કુંડલાત્મક કાર્યના આકારથી સુવર્ણ પ્રકટ થાય છે તેથી સુવર્ણ, કડાં તથા કુંડલવિગેરેનું ઉપાદાન કારણ છે. તેવી રીતેં ભક્તની સૃષ્ટિનું ઉપાદાન કારણ પરબ્રહ્મ છે; કેમકે પોતાના કરતાં પણ ભક્તમાં કોય સમયે વધારે સત્તા જોવામાં આવે છે, તેથીજ ભક્તો ભગવાનને વશ કરી શકે છે. એવી રીતેં બીજા અધિકરણમાં સદ્રૂપથી કારણપણાનું પ્રતિપાદન કરીને ત્રીજા અધિકરણમાં ચિદ્રૂપવડે અને ચોથા આનંદમયાધિકરણમાં આનંદરૂપવડે બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ વ્યાસસૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે. વેદમાં તૈતરીયઉપનિષદમાં ભૃગુપ્રપાઠકમાં કહેલ છે કેઃ—

> भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरं उपससार
> अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच ।

વરુણના પુત્ર ભૃગુ, પોતાના પિતાવરુણપાસે ગયા કે હે ભગવન્ મને બ્રહ્મસ્વરૂપનો બોધ કરાવો; ત્યારે તેને વરુણે સ્પષ્ટ કહ્યું છે કેઃ—

> यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवंति
> यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्मेति तद्विजिज्ञासस्व ।

અર્થ—જેનાથી આ ભૂતપ્રાણિમાત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, ઉત્પન્ન થયેલાં જેનાથી જીવે છે અને છેવટ જેનામાં લીન થાય છે તે બ્રહ્મ છે માટે તેને તું જાણ. એમ નિરૂપણ કર્યું છે ત્યાં બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ સ્પષ્ટ દેખાય છે. (૭)

એવી રીતેં બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ પ્રતિપાદન કરીને બ્રહ્મસ્વરૂપનું લક્ષણ કહે છે.

> मूलम् । साकारं सर्वशक्त्येकं सर्वज्ञं सर्वकर्तृ च ।
> सच्चिदानंदरूपं हि ब्रह्म तस्मादिदं जगत् ॥ ८ ॥

શબ્દાર્થ—સાકાર, સર્વશક્તિવાળું, એક, સર્વજાણનાર, સર્વકરનાર અને સત્, ચિત્ તથા આનંદરૂપ બ્રહ્મ છે તેનાથી આ જગત્ થાય છે.

ટીકા—બ્રહ્મ સાકાર છે એટલેં આનંદાત્મક તેનો આકાર છે. તેબાબત શ્વેતાશ્વતરઉપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोवाहुरुत विश्वतस्पात्
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ।

અર્થ—ચોતરફ નેત્રવાળા, ચોતરફ મુખવાળા, ચોતરફ હાથવાળા અને ચોતરફ પગવાળા એક દેવ ધાવાભૂમીને ઉત્પન્ન કરતાં કરતાં બેહાથવડે પાંખોથી ધમે છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં મુખારવિંદ વિગેરે અવયવો સર્વત્ર વિદ્યમાન છે એમ કહેલ છે તેમાં નેત્ર મુખ, હસ્ત અને પાદ સર્વત્ર વિદ્યમાન છે એમ કહ્યું છે તે સર્વ ઈંદ્રિયો સર્વત્ર વિદ્યમાન છે એમ બતાવનાર છે. અને સાકાર જ સર્વત્ર વ્યાપક છે એમ બતાવનાર છે; એટલેં જીવ જેમ નેત્રથી જ જોઇ શકે છે, કાનથી જ સાંભળી શકે છે, નાસિકાથી જ સુગંધ લઇ શકે છે અને મુખથી જ ખાઇ શકે છે તેમ બ્રહ્મને નથી. બ્રહ્મ સર્વઈંદ્રિયથી સર્વ કાર્ય કરી શકે છે; તેથી જ જે જે દેવાદિકના ઉપાસકો બ્રહ્મપણાંથી તેની તેની ઉપાસનાકરનાર હોય છે તે, તે તે દેવાદિકનાં ચરણચિહ્નાદિક અથવા વસ્ત્ર કે સ્થળાદિકને ભોગાદિક સામગ્રીયો અર્પણ કરે છે. તે હસ્ત, પાદ તથા મુખારવિંદ સર્વત્ર વિદ્યમાન હોય ત્યારેં જ અર્પણ કરેલ ભોગાદિક સામગ્રી આરોગે,પરંતુ કેટલાએક લોકો તે અભિપ્રાય સમજ્યાવગરજ ચરણચિહ્નાદિક અથવા વસ્ત્ર કે સ્થળાદિકને ભોગાદિક સામગ્રીયો અર્પણ કરે છે તે સર્વત્ર સર્વ ઈંદ્રિયો બ્રહ્મને હોવાથીજ તે રીવાજ ચાલેલો છે એમ સમજવું. ઉપર લખેલી શ્રુતિમાં बाहुभ्याम् (બે હાથવડે) એમ લખેલ છે તે બ્રહ્મનું દ્વિભુજપણું શ્રુતિસિદ્ધ છે અને ચતુર્ભુજપણું સ્મૃતિપ્રસિદ્ધ છે એમ બતાવે છે. દિવ્ધાતુ ક્રીડાના અર્થમાં છે તેમાંથી સિદ્ધ થયેલ દેવ શબ્દ શ્રુતિમાં લખેલ છે તે પુરુષોત્તમને બોધ કરે છે; એટલે જેમનું ક્રીડાભાંડ આ જગત્ છે અને જેમણે ક્રીડામાટે આ જગત્ કરેલ છે તેથીજ તે બેભુજવાળા શ્રીપુરુત્તમ જ સર્વત્ર હસ્તપાદિકવાળા સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે એમ બતાવે છે; છાંદોગ્યઉપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः ।

અર્થ—સર્વકામનાવાળા સર્વગંધરૂપ અને સર્વરસરૂપ છે. એમ કહેલ છે. તેમ તૈત્તરીયઉપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

रसो वै सः रसँह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।

અર્થ—પરમાત્મા નિશ્ચય રસરૂપ છે. અને આ જીવ તેમના રસને પ્રાપ્ત થઇને આનંદવાળો થાય છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં પણ આનંદાકાર સ્વરૂપ વર્ણવેલું છે. તેમ પુરુષસૂક્તમાં પણ કહેલ છે કેઃ—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

અર્થ—સહસ્રમસ્તકવાળા, સહસ્રનેત્રવાળા અને સહસ્રચરણવાળા પુરુષ છે ત્યાં પણ સાકારસ્વરૂપ વર્ણવેલું છે. આ વર્ણન વિરાટપુરુષનું નથી; કેમકે ત્યારપછી આગળ ततो विराडजायत (તેનાથી વિરાટ્ ઉત્પન્ન થયેલ છે.) એમ કહેલ છે. તેમ શ્રી-મદ્ભગવદ્ગીતામાં કહેલ છે કેઃ—

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

અર્થ—સર્વત્ર હસ્ત, પાદ તથા મધ્ય છે, સર્વત્ર નેત્ર મસ્તક તથા મુખ છે અને સર્વત્ર કર્ણવાળું છે તે લોકમાં સર્વને વિંટાઇને રહેલ છે. એમ કહેલ છે. તેનો અભિ-પ્રાય પણ સાકારસ્વરૂપ જ સર્વત્ર હસ્તપાદાદિયુક્ત વ્યાપ્ત છે એવો છે. તેમ નારદપંચરાત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः।
आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ॥

અર્થ—દોષરહિત પૂર્ણગુણવાળું તેમનું સ્વરૂપ છે, પોતે સ્વતંત્ર છે, લૌકિક શરીરના ચેતનરહિત એવા જડધર્મથી હીન છે, આનંદરૂપ જ હસ્ત, પાદ, મુખ અને ઉદરાદિક છે તેમજ સર્વસ્થળે વિજાતીય સજાતીય અને સ્વગતભેદથી વિશેષે કરીને વર્જિત તેમનું સ્વરૂપ છે. એમ કહ્યું છે. ત્યાં પણ લૌકિક (જડ) ધર્મનો નિષેધ કરી આનંદાકારનું જ નિરૂપણ કરેલું છે. તેમ યાજ્ઞવલ્ક્યસ્મૃતિમાં કહેલ છે કેઃ—

अथवा परमात्मानं परमानन्दविग्रहम्।

અર્થ—પરમઆનંદરૂપ જેમનું સ્વરૂપ છે એવા પરમાત્માને નમન કરીને સ્મૃતિનો પ્રારંભ કરેલ છે. એમ કહ્યું છે ત્યાંપણ આનંદાત્મક આકારનું નિરૂપણ કરેલું છે.

શંકા—જેમ ઉપર આનંદાત્મક આકારવાળું બ્રહ્મસ્વરૂપ નિરૂપણ કર્યું છે તેમ બીજી શ્રુતિમાં ધર્મનો નિષેધ પણ લખેલ છે. જેમ બૃહદારણ્યકઉપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

અર્થ—હાથ પગ નથી છતાં વેગવાળા અને ગ્રહણકર્તા છે, (અર્થાત્ હાથ પગનું કામ કરે છે) નેત્રવગરના છે છતાં જુવે છે અને કાનવગરના છે છતાં સાંભળે છે. તેમ બીજી શ્રુતિમાં अस्थूलमनणु (સ્થૂલ નથી તેમ સૂક્ષ્મ નથી) એમ કહેલ છે ત્યાં ધર્મનો નિષેધ કરેલ છે માટે બ્રહ્મ સાકાર છે એમ કહેવું તે યોગ્ય નથી.

ઉત્તર—अपाणिपादः (હાથ કે પગ નથી) એમ કહિને પછી जवनः (વેગવાળા છે) અને गृहीता (ગ્રહણકરનાર છે) એમ કહેલ છે ત્યાં હાથપગનું કાર્ય કરે છે એમ કહેલ છે તેથી લૌકિક પાણિપાદ નથી એટલે લોકમાં હાથનું ગ્રહણકરવાનું કાર્ય છે અને પગનું ચાલવાનું કાર્ય છે તે શિવાય બીજું કાર્ય તે કરી શકે નહિ તેવો

રીતે બ્રહ્મના હાથપગ નથી. બ્રહ્મના હાથપગ તો સર્વઇંદ્રિયોનું કાર્ય કરી શકે છે અર્થાત્ અલૌકિક હાથ તથા પગવાળું બ્રહ્મ છે તેમ નેત્ર નથી અને જુવે છે તથા કાન નથી અને સાંભળે છે એમ કહ્યું છે તે પણ અલૌકિક નેત્ર તથા કાન છે એમ સિદ્ધ કરે છે. અને अस्थूलमनणु (સ્થૂલ નથી અને સૂક્ષ્મ નથી) એમ કહ્યું છે ત્યાં પણ પાછું एतस्य वाअक्षरस्य प्रशासने गार्गि! द्यावाभूमीं विधृते तिष्ठतः (હે ગાર્ગિ :એ બ્રહ્મના હુકમને તાબે રહી આકાશ પૃથ્વી પોતાની સ્થિતિમાં રહેલ છે.) એમ કહેલ છે; તેથી પણ પૃથ્વીવિગેરેને પોતાની સ્થિતિમાં રાખવારૂપ ધર્મ બ્રહ્મમાં છે એમ સિદ્ધ થાય છે. તેમ વળી આગળ લખેલ છે કેઃ—

स यथा सैंधवो वाह्योंतरः कृत्स्नो रसघन
एवं वाऽरेऽयमात्मा कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ॥

અર્થ—સર્વના દેખવામાં આવતો એવો સિંધાલુણનો કટકો જેમ સમગ્ર ભીત તથા બહાર રસથી ઘાટો છે તેમ આ આત્મા સમગ્ર પ્રજ્ઞાનઘનજ છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં આ જ્ઞાનથી ઘાટો છે એમ કહ્યું છે તે સાકારપણાંનેજ સિદ્ધ કરે છે. તેમ શ્વેતાશ્વતરઉપનિષદમાં કહેલ કેઃ—

पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।

અર્થ—આ પરમાત્માની ઉત્તમ એવી સ્વાભાવિક શક્તિ નાના પ્રકારની શ્રુતિમાં કહેલી છે, તેમજ જ્ઞાનશક્તિ અને ક્રિયાશક્તિ પણ નાના પ્રકારની વેદમાં કહેલી છે એમ કહ્યું છે ત્યાં પણ અનેકશક્તિવાળું બ્રહ્મસ્વરૂપ વર્ણવેલું છે. તેમજ यः सर्वज्ञः सर्ववित् (જે સર્વને જાણનાર અને સર્વજ્ઞાનવાળા છે.) सर्वकर्त्ता सर्वभोक्ता च, સર્વકરનાર અને સર્વભોગવનાર) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (સત્ય, જ્ઞાનરૂપ અને અંતવગરનું બ્રહ્મ છે) विज्ञानमानन्दं ब्रह्म, (વિજ્ઞાનરૂપ અને આનંદરૂપ બ્રહ્મ છે) ઈત્યાદિક શ્રુતિયોમાં પણ જ્ઞાનરૂપ, આનંદરૂપ, સર્વકરનાર અને સર્વભોગવનાર સ્વરૂપ લખેલું છે તે ધર્મસહિતસ્વરૂપનેજ સિદ્ધ કરે છે. મૂલમાં चकार છે તે આ દેખાતું સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે એમ બતાવનાર છે; માટે વેદમાં, સ્મૃતિમાં અને પુરાણાદિકમાં કોય સ્થલમાં સગુણ લખેલ છે, અને કોય સ્થલમાં નિર્ગુણ લખેલ છે તે બન્ને સ્વરૂપમાં ભેદ નથી. સર્વ વિરૂદ્ધ ધર્મ બ્રહ્મમાં રહેલા છે એટલે પરસ્પર જે ધર્મો વિરૂદ્ધ છે તેના આશ્રયરૂપ બ્રહ્મ છે. જેમ નૈયાયિક લોકો રૂપમાં રસનો, ગંધનો, સ્પર્શનો શબ્દનો અભાવ છે તથા રસમાં રૂપ. ગંધ, સ્પર્શ અને શબ્દનો અભાવ છે તેવીજ રીતેં ગંધમાં, સ્પર્શમાં અને શબ્દમાં બીજાનો અભાવ છે તે અન્યોન્યાભાવ કહેવાય છે તે એક રસાદિકમાં બીજા રૂપાદિક ઘણાનો અન્યોન્યાભાવ રહ્યો છે એમ માને છે અને એક ભૂતલમાં ઘટ, પટ વગેરે ઘણાનો અત્યંતાભાવ રહ્યો છે એમ માને છે તેમાં પરસ્પર વિરુદ્ધ અભાવરૂપ ધર્મ જેમ એકમાં રહેલા માનવામાં આવે છે અને આકાશાદિકમાં જેમ પરસ્પર વિરુદ્ધ પ્રાણિઓ રહે છે તેથી આકાશાદિક જેમ વિરુદ્ધ ધર્મના આશ્રયરૂપ છે તેવી રીતે બ્રહ્મ પણ વિરુદ્ધ ધર્મના આશ્રયરૂપ છે.

જેનામાં જગત્કર્તૃત્વાદિક ધર્મો રહેલા છે એમ વેદાદિકમાં કહેલ છે તે બ્રહ્મસ્વરૂપ અને જે વેદાદિકમાં નિર્ગુણ વર્ણવેલું છે તે બ્રહ્મસ્વરૂપનો ભેદ છે એમ માનવામાં વેદ તથા વ્યાસ સૂત્રાદિકનો ઘણે સ્થલે વિરોધ આવે છે. જેમકે તૈત્તરીય ઉપનિષદમાં यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते (જેનાથી આ ભૂતપ્રાણિમાત્ર ઉત્પન્ન થાય છે) એમ બ્રહ્મનું લક્ષણ કહિને તેનામાં ચિત્તધારણકરનાર અભયને પામે છે. એમ કહ્યું છે તે નિર્ગુણ બ્રહ્મસ્વરૂપ કરતાં જગતને કરનાર બ્રહ્મસ્વરૂપ જૂદું હોય તો તેમાં ચિત્ત-ધારણકરનારને અભય થવાનું લખ્યું છે તેનો વિરોધ આવે; કેમકે અહિં અભય થવાનું કહ્યું છે તે મોક્ષ થવાના અભિપ્રાયથીજ કહેલ છે તે સગુણબ્રહ્મથીજ મોક્ષ સિદ્ધ થાય ત્યારેં નિર્ગુણ બ્રહ્મ જૂદું માનવાથી મોક્ષ કરતાં બીજું કયું ફળ સિદ્ધ થવાનું હતું ? એ વિચારવું જોઇએ. તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાં सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् (વેદાદિક સર્વસ્થલોમાં જગત્કર્તૃત્વાદિકધર્મવિશિષ્ટ જે બ્રહ્મ પ્રસિદ્ધ છે તેનોજ ઉપાસ્યપણાંથી સર્વત્ર ઉપદેશ છે તેથી નિર્ગુણ તથા સગુણ બન્ને સ્વરૂપ એક જ છે.) એમ કહેલ છે. તેમજ तदेजति तन्नेजति (તે બ્રહ્મ સર્વત્ર ચાલે છે અને તે ચાલતું નથી) ઇત્યાદિક શ્રુતિઓમાં પણ વિરુદ્ધ ધર્મના આશ્રયરૂપ એકજ સ્વરૂપ લખેલું છે; તેથી આપણા સાધનથી તે અગ્રાહ્ય છે માટે નિર્ગુણ કહેલ છે અને ગ્રાહ્ય થવાની પોતાની ઇચ્છા થાય ત્યારે તે સ્વરૂપ પ્રકટ કરે એટલે ગ્રાહ્ય થાય માટે સગુણ કહેલ છે એમ એકજ સ્વરૂપનું સગુણ તથા નિર્ગુણપણાંથી વર્ણન છે એમ સમ-જવું. સગુણ સ્વરૂપ માયાવિશિષ્ટ છે તેમાં ચિત્ત ધારણ થયા પછી નિર્ગુણ સ્વ-રૂપ જણાય એટલેં (આકાશમાં ચંદ્ર હોય ત્યાં જેની દૃષ્ટિ પહોચતી ન હોય તેને ચંદ્રજોનાર બતાવે કે વૃક્ષની શાખા ઉપર ચંદ્ર છે તે ઉપરથી તે શાખા ઉપર જુવે ત્યાં ચંદ્ર દેખાય એટલે પછી ચંદ્રને અને શાખાને કાંઇ પણ સંબંધ નથી એમ સમજીને આકાશમાં રહેલ ચંદ્રમાં તેની દૃષ્ટિ સ્થિર રહે તેવી રીતે) જગત્કર્તૃત્વાદિ-કધર્મને અને બ્રહ્મને કાંઇ પણ સંબંધ નથી એમ સમજીને સગુણબ્રહ્મને છોડીને નિર્ગુણમાં દૃષ્ટ થાય તે સારૂ પ્રથમ સગુણ સ્વરૂપ બતાવેલું છે એમ શંકરમતવાળા માને છે તેનું વિશેષ વિવેચનસહિત ઉત્તર આગળ આવશે પણ અહિં સંક્ષેપમાં એટલું જ સમજવું જોઈએ કે આકાશ, તેમાં રહેનાર ચંદ્ર, વૃક્ષની શાખા, ચંદ્રસ્વરૂપ-જોનાર માણસ અને તેણે શાખા ઉપર ચંદ્રનું સ્વરૂપ જેને બતાવ્યું તે તમામ ભિન્ન ભિન્ન છે તેવી રીતે અહિં નથી. અહિં તો सर्वं खल्विदं ब्रह्म (આ દેખાતું સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે) એમ છાંદોગ્યના ત્રીજા પ્રપાઠકમાં કહેલ છે તેથી બ્રહ્મશિવાય બીજું કાંઇ છે જ નહિં ત્યાં બતાવનાર, જોનાર, ત્યાગકરવારૂપ સ્વરૂપ અને ગ્રહણકરવાયોગ્ય સ્વરૂપ એટલા ભેદ ક્યાંથી કલ્પાય? તેમ જગત્કરવારૂપ ધર્મવિશિષ્ટ બ્રહ્મ જૂદું અને નિર્ગુણ બ્રહ્મ જૂદું એમ બ્રહ્મમાં પણ ભેદ માનવો ત્યારેં જીવ અને બ્રહ્મમાં તો ભેદ અર્થાત્ સિદ્ધ થાય છે અને તેમ માનવાથી અભેદવાદીને બદલે ભેદવાદી થવાય છે એટલું જ નહિં પણ तत्त्वमसि (તે બ્રહ્મ તું છો,) एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म (સજાતીય, વિજાતીય અને સ્વગતભેદવગરનું બ્રહ્મ છે,) ઇત્યાદિક શ્રુતિયોમાં અદ્વૈત અને

જીવ તથા બ્રહ્મનો અભેદ લખેલ છે તેનો વિરોધ આવે; તેથી જ વેદાદિકમાં ક્યાંય પણ શાખાચંદ્રની માફક બ્રહ્મમાં જગત્કર્તૃત્વાદિક ધર્મો આરોપિત છે એમ કહેલું નથી; માટે સગુણ અને નિર્ગુણ બન્ને એકજ સ્વરૂપ છે એમ સમજવું. (૮)

બ્રહ્મથી જગત્ ઉત્પન્ન થયું તેમાં બ્રહ્મમાં સત્, ચિત્ અને આનંદ એ ત્રણ ધર્મો છે તેમાંથી સત્વિગેરે ધર્મોથી જડ, જીવ અને અંતર્યામિની ઉત્પત્તિ થઇ છે તે કહે છે.

मूलम् । जडजीवान्तःस्थितानां यथाक्रमश उद्गमः ।
अग्नेर्यथा विस्फुलिङ्गास्तथा जीवोद्गमः स्फुटः ॥ ९ ॥

શબ્દાર્થ—બ્રહ્મના સત્, ચિત્ અને આનંદ એત્રણધર્મોથી ક્રમપ્રમાણે જડ, જીવ અને અંતર્યામિનો ઉદ્ગમ છે. અગ્નિમાંથી જેમ ચિનગારીયો નીકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી જીવો નીકળ્યા છે તે વેદમાં સ્ફુટ છે.

ટીકા—બ્રહ્મમાંથી જીવો નીકળ્યા છે તેબાબત મુંડક ઉપનિષદમાં લખેલ છે કે:—

यथा सुदीप्तात्पावकात् क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति एवमेवैतस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे जीवाः कपूयचरणा रमणीयचरणाः ॥

અર્થ—અત્યંત પ્રજ્વલિત થયેલ અગ્નિમાંથી જેમ સૂક્ષ્મ ચિનગારીઓ નીકળે છે તેમ એઆત્મામાંથી સર્વે પ્રાણ, સર્વે લોક અને ખરાબઆચરણવાળા તથા સારાઆચરણવાળા જીવો નીકળે છે. ખરાબઆચરણવાળા તે કૂતરાંની યોનિ, ભૂંડણાંની યોનિ અને ચાંડાલવિગેરેની યોનિ સમજવી. તેમ સારાઆચરણવાળા તે બ્રાહ્મણયોનિ, ક્ષત્રિયયોનિ કે વૈશ્યયોનિ વિગેરે સમજવી. એવી રીતે જીવો બ્રહ્મમાંથી નીકળેલા છે કાંઇ નવીન ઉત્પન્ન થયા નથી. તેથી જીવ ઉત્પન્ન થયા છે એમ માનશું તો અનિત્યતા આવશે એમ કોઇને શંકા થાય તો તેનો નિરાસ થયો એમ સમજવું. આસ્થળની હકીકત સ્મરણમાં રાખવી કે જગત્ ખોટું અને કલ્પિત છે એમ શંકરાચાર્યના મતવાળા માને છે તેનું વિવેચન આગળ આવશે પણ ખોટું અને કલ્પિત જગત્ હોય ત્યારે જીવ પણ જગતની અંદરનાજ હોવાથી ખોટા તથા કલ્પિત માનવા જોઇએ અને તેજપ્રમાણે તેઓ માને છે તેઓના વિચારમાં ઉપરની શ્રુતિનો વિરોધ સ્પષ્ટ છે. (૯)

અગ્નિમાંથી જેમ ચિનગારીઓ નીકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી જીવો નીકળે છે એમ માનશું તો જીવને અંશપણું થશે એટલે અંશ સૂક્ષ્મ હોવાથી શરીરમાં એકસ્થળેજ રહી શકે ત્યારે સર્વશરીરમાં તેનું ચૈતન્ય પ્રાપ્ત થશે નહીં એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે.

मूलम् । विसर्पिगुणचैतन्योऽणुर्जीवांशो हरेः स्मृतः ।
जडे चिदानन्दयोस्तु चिसानन्दस्य सर्वशः ॥ १० ॥

तिरोधानं हरीच्छातो निबन्धादिषु वर्णितम् ।
आविर्भावे तु सर्वं हि ब्रह्मैवेति न संशयः ॥ ११ ॥

શબ્દાર્થ—પસરી જાય તેવું ચૈતન્ય જેનો ગુણ છે એવો જીવ અણુ છે અને તે હરિનો અંશ છે એમ ગીતાજીમાં કહેલ છે. ભગવાનની ઇચ્છાથી જડમાં ચિત્ તથા આનંદ એ બેધર્મોનો તિરોભાવ છે અને જીવમાં એકઆનંદનો તિરોભાવ છે તે નિબંધાદિકમાં વર્ણવેલ છે અને જીવમાં આનંદાંશનો તથા જડમાં ચિદંશ અને આનંદાંશનો આવિર્ભાવ થાય ત્યારે સર્વત્ર સત્, ચિત્ અને આનંદરૂપ ધર્મ પ્રકટ થાય છે કેમકે સર્વ બ્રહ્મજ છે તેમાં સંશય નથી.

ટીકા—જીવમાં ચૈતન્યરૂપ ગુણ છે તે પસરીજાય તેવો છે તેથી શરીરમાં જીવ એકસ્થલે રહેલ હોય તોપણ તેનામાં ચૈતન્યરૂપ ગુણ છે તે આખા શરીરમાં પસરીજાય તેવો છે. તેથી એકસ્થળે જીવ રહેલ હોય તોપણ આખા શરીરમાં તેનું ચૈતન્ય પ્રાપ્ત થાય છે. મણિ એકસ્થળમાં રહ્યો હોય તેની કાંતિ જેમ ઘણાસ્થળમાં પસરીને રહે છે તેવી રીતે જીવ એકસ્થળમાં રહ્યો હોય છે તોપણ તેનું ચૈતન્ય આખા શરીરમાં પસરીને રહે છે તેબાબત વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કે:—

गुणाद्वाऽऽलोकवत् ।

અર્થ—સૂર્યાદિક એકસ્થલમાં રહેલ હોય છે તો પણ તેનો પ્રકાશ સર્વત્ર પસરીજાય છે અને દીવો ઘરના એકભાગમાં રહેલો હોય છે છતાં તેનો પ્રકાશ આખાઘરમાં પસરીજાય છે તેવી રીતેં જીવ એકસ્થલમાં રહ્યો છે છતાં તેમાં ચૈતન્યરૂપ ગુણ રહેલો છે તે આખાશરીરમાં પસરી (ફેલાઈ) જાય છે; તેમ વળી બીજા સૂત્રમાં કહેલ છે કે:—

व्यतिरेको गन्धवत् ।

અર્થ—પોતાથી અધિકદેશમાં રહેનાર ચૈતન્ય ગુણ જીવમાં રહ્યો છે. જેમ ચંપક, કસ્તુરીવિગેરેમાં ગંધગુણ રહેલો છે તે જેમ ચંપકાદિક રહેલ હોય તેના કરતાં અધિકદેશમાં રહેલ પ્રાપ્ત થાય છે. તેવી રીતેં જીવમાં રહેલ ચૈતન્યગુણ સર્વશરીરમાં પ્રાપ્ત થાય છે. એ ચંપકાદિકમાંથી તેનાં સૂક્ષ્મ અવયવો નીકળે છે (જે આપણા જોવામાં આવતાં નથી) તે આપણી નાસિકાસુધી પ્રાપ્ત થાય છે તેથી ચંપકાદિક દૂર હોય છે છતાં આપણને તેનો ગંધ પ્રાપ્ત થાય છે એમ માનશું તો તે ચંપકપુષ્પાદિક ન્યૂન થતાં જશે તેમ થતાં ક્રમે કરીને તેનો નાશ થશે. તેગંધ-લેનારનાં અદૃષ્ટ હજી ગંધ ભોગવવાનાં છે તેના બળથી ચંપકપુષ્પવિગેરેમાં બીજાં અવયવો પૂરાય છે એમ માનશું તો બહુ ગૌરવ થશે. તેમ જેની ઉગ્ર ગંધ છે એવાં લશુન કે હિંગ વિગેરેનો સ્પર્શ આપણા હાથને થયો હોય તે હાથ વારંવાર ધોયા છતાં તેમાંથી ગંધ જતો નથી તે તેવાં સૂક્ષ્મ અવયવ હોય તો તે તો એક વખત ધોવામાત્રથી નષ્ટ થવાં જોઇએં તેમ એકડાબલાની અંદર અનેક ચામડામાં

બાંધીને કસ્તુરી રાખીયે છીયેં તેનો ગંધ પણ પ્રાપ્ત થાય છે ત્યાં તેમાંથી અવયવો નીકળીને આપણી નાસિકાસુધી આવવાનો સંભવજ કયાં છે? માટે તેનાં અવયવો નીકળીને આપણી પાસે આવે છે તેથી સુગંધ આવે છે એમ કહેવું સંભવતું નથી.

શંકા—ગંધ ગુણ છે તેનો આશ્રય ચંપકાદિક છે તેને છોડીને ગંધ રહેતોજ નથી; ગુણ અને ગુણી સાથે જ રહે છે માટે ચંપકાદિકને છોડીને કેવળ ગંધ રહેતો જ નથી કેમકે ગંધ, રસ વિગેરે ગુણો છે તે ગુણિને છોડીને રહી શકતાજ નથી.

ઉત્તર—સંબંધ બેની અપેક્ષા રાખે છે. એકનો સંબંધ થતો નથી બે હોય ત્યારેંજ સંબંધ થાય છે છતાં ન્યાયશાસ્ત્રમાં સંબંધિવગર સમવાયસંબંધ રહે છે એમ સ્વીકાર્યું છે; કેમકે સમવાય એકજ છે. રૂપ, રસ, ગંધ, સ્પર્શ અને શબ્દ વિગેરેનો સમવાય એકજ છે; તેથી વાયુમાં પણ રૂપનો સમવાય રહ્યો છે એમ ન્યાયમુક્તાવલીમાં સ્વીકાર્યું છે ત્યાં જેમ પોતાના આશ્રયરૂપ રૂપાદિકને છોડીને તેનો સમવાય રહે છે તેમ અહિં પણ પોતાના આશ્રયરૂપચંપકાદિકને છોડીને તેનો ગંધ દૂરદેશમાં આવે છે એમ સ્વીકારવામાં કાંઈ બાધ નથી.

શંકા—પોતાના આશ્રયને છોડીને ગંધ રહે છે એમ માનશો ત્યારેં રૂપ અને રસ વિગેરે પણ પોતાના આશ્રયને છોડીને રહે છે એમ માનવું જોશે. અને જ્યારેં તેમ માન્યું ત્યારેં જેમ ગંધ પ્રાપ્ત થાય છે તેમ રૂપ, રસ અને સ્પર્શ પણ પ્રાપ્ત થવા જોઇએં તે તો પ્રાપ્ત થતા નથી. આશ્રયને છોડીને રૂપ, રસ કે સ્પર્શ રહેતા નથી તેથી તે દૂરમાં પ્રાપ્ત થતા નથી એમ કહેશો તો ગુણના આશ્રયરૂપ તમ મ દ્રવ્ય છે તે ગુણવગર રહેતાંજ નથી અને ગુણ દ્રવ્યવગર રેહેતો નથી કેમકે તે બન્નેને નિત્ય સંબંધ છે (ફક્ત દ્રવ્યની ઉત્પત્તિના ક્ષણમાં ગુણવગર દ્રવ્ય રહે છે તેશિવાય રહેતું નથી) છતાં દ્રવ્યને છોડીને ગંધ રહે છે એમ તમે માનશો ત્યારેં રસાદિક પણ દ્રવ્યને છોડીને રહે એમ માનવું જોશે; કેમકે ગંધ તથા રસાદિકમાં ગુણપણું સમાન છે અને ચંપકાદિક તથા શર્કરાદિકમાં દ્રવ્યપણું સમાન છે; તેથી ચંપકાદિકનાં અવયવોવગર ગંધ પ્રાપ્ત થાય છે એમ માનશો તો શર્કરાદિકવગર રસાદિકની પ્રાપ્તિ પણ સ્વીકારવી પડશે; માટે ચંપકાદિકનો ગંધ આવે છે ત્યાં તેના સૂક્ષ્મ અવયવો આવે છે એમ માનવુંજ જોઇએં.

ઉત્તર—ત્યારેં સમવાયસંબંધ એક છે અને તે નિત્ય છે એમ ન્યાયશાસ્ત્રમાં માનેલું છે તે સમવાય પણ પોતાના સંબંધવાળાને છોડીને રહેતો નથી એમ માનવામાટે સંયોગાદિક સંબંધનો દાખલો લઇને જેમ બે પદાર્થ હોય ત્યારેંજ સંયોગસંબંધ થાય તેમ બે પદાર્થ હોય ત્યારેંજ સમવાયસંબંધ થાય કેમકે સંબંધવાળાં દ્રવ્યાદિકમાં દ્રવ્યાદિકપણું સમાન છે અને સંયોગ અને સમવાયાદિકમાં સંબંધપણું સમાન છે એ તર્ક આવશે; તેમાં સમવાયસંબંધ નિત્ય છે એમ માનેલું છે તેથી ઘટ નષ્ટ થઇ ગયો હોય તોપણ (સમવાયની નિત્યતા જાળવવા માટે) સૂક્ષ્મ ઘટ રહ્યો છે એમ માનવું જોશે. સંયોગસંબંધ ઉત્પન્ન થાય છે તેવી

રીતે ઉત્પન્નથનાર સંબંધ હોય ત્યાંજ સંબંધવાળા બન્ને પદાર્થની અપેક્ષા રહે પણ સમવાયસંબંધ ઉત્પન્નથનાર નથીકેમકે તે નિત્ય છે માટે તે પોતાના સંબંધીને છોડીને રહે ખરો એમ કહેશો. તો ગંધશિવાય બીજા ગુણો પોતાના આશ્રયરૂપદ્રવ્યને છોડીને રહેતા નથી પણ ગંધ તો પોતાના આશ્રયને છોડીને પણ રહે ખરો એમ માનવામાં શું હરકત છે? માટે ગંધ પોતાના આશ્રયરૂપપુષ્પાદિકને છોડીને દૂરદેશમાં જાય છે એમ માનવુંજ જોઇએ. તેમ ચંપકાદિક કે લશુનાદિકના સૂક્ષ્મ અવયવો આવે છે તેથી ગંધ આવે છે એમ કહેશો તો તે ગંધ આવતી વખતે ઉઘાડું મુખ રાખે તો તેના મુખમાં તે અવયવો આવવાથી તેના રસની પણ પ્રાપ્તિ થવી જોઇએ તેમ અપવિત્ર-લશુનાદિકનો ગંધ આવે તો તેના ભક્ષણમાં જે પ્રાયશ્ચિત્ત હોય તે જ પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાનું કોઇ પણ ધર્મશાસ્ત્રના ગ્રંથમાં લખવું જોઇએ પણ તેના રસાદિકની પ્રાપ્તિ થતી નથી કેવળ ગંધની જ પ્રાપ્તિ થાય છે અને તેવાંનો ગંધ આવવાથી ભક્ષણ-કરવાબરાબર પ્રાયશ્ચિત્ત લખેલું નથી તેથી પુષ્પ રહેલ છે તેદેશકરતાં તેનાથી દૂર અધિકદેશમાં તેનો ગંધ આવે છે એમ સ્વીકારવું જ જોઇએ તેથી જ શ્રુતિમાં પણ લખેલ છે કે:—

यथा संपुष्पितस्य वृक्षस्य दूराद्गन्धो
वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति ॥

અર્થ—સારીરીતે જેની અંદર ઉત્તમ પુષ્પ થએલાં છે એવાં વૃક્ષનો જેમ દૂરથી ગંધ આવે છે તેમ પુણ્યરૂપ કર્મનો દૂરથી ગંધ આવે છે. એશ્રુતિમાં દૂરથી ગંધ આવવાનું લખ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે પુણ્યકર્મકરનારપુરૂપની કીર્ત્તિ, પોતે રહેતો હોય તેદેશને છોડીને તેથી દૂર દેશ જાય છે તેમાં દૃષ્ટાંત પુષ્પ-વાળા વૃક્ષનું આપ્યું છે ત્યાં પણ દૂર પદ મૂકેલું છે તેથી પુષ્પ કે તેનાં અવયવો કાંઇપણ ન હોય તેટલા દૂરદેશમાં તેનો ગંધ જાય છે એવો આશ્રુતિનો અભિપ્રાય છે. તેમ વળી ત્રીજું વ્યાસસૂત્ર છે કે:—

अविरोधश्चन्दनवत् ।

અર્થ—જેમ ચંદન કપાલાદિકએકભાગમાં રહ્યું હોય છતાં સર્વશરીરમાં શીતળતા કરે છે તેવી રીતે જીવ હૃદયદેશમાં રહ્યાછતાં આખાશરીરમાં ચૈતન્ય પ્રાપ્તકરે છે તેમાં વિરોધ નથી; માટે જીવ અણુ છે અને હૃદયદેશમાં રહ્યો છે તેનું ચૈતન્ય આખાશરીરમાં *વ્યાપ્ત રહે છે. તેબાબત શ્રુતિમાં કહેલ છે કે:—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः ।

અર્થ—આ આત્મા અણુ છે તે ચિત્તવડે જાણવાયોગ્ય છે. તેમ શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતામાં પણ કહેલ છે કે:—

* નેત્રાદિક મુખ્ય જ્ઞાનઇંદ્રિયોનો સમૂહ મુખપર છે અને તેમાં જ્ઞાનતંતુઓ વધારે રહેલા છે તેથી જ તે ઉત્તમાંગ કહેવાય છે તેને અને જીવને નિકટ સંબંધ હોવાથી તેદ્વારા જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે.

नित्यः सर्वगतस्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।

અર્થ—આ જીવ નિત્ય છે, સર્વમાં રહેલબ્રહ્મની સાથે રહેનાર અણુ છે, અચલ છે અને સનાતન છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં સર્વગત એવાં બ્રહ્મની સાથે રહેનાર છે એમ કહ્યું છે તેવિષે શ્રુતિ છે કેઃ—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिपस्वजाते ।

અર્થ—જીવ અને ઇશ્વર બે પક્ષિયો સાથેરહેનાર સખા છે અને સમાનવૃક્ષમાં મળીને રહેલ છે એમ કહ્યું છે, તેથી સર્વગતસ્થ કહેતાં ઇશ્વરની સાથે રહેનાર અને અણુ છે એમ કહ્યું છે, ત્યાંપણ અણુ જ લખેલ છે. જો સ્થાણુ છે એમ કહીએં તો સ્થાણુ કહેતાં સ્થિર એવો અર્થ થાય ત્યારે પછી अचल લખેલ છે તેનો અર્થ પણ સ્થિર થાય છે તેથી પુનરુક્તિ રૂપ દોષ આવે છે. તેમ हृदि ह्येष आत्मा (એ આત્મા હૃદયમાં છે) એમ શ્રુતિમાં લખેલ છે. તેમ બીજી શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

स वाएष आत्मा हृदि योऽयं विज्ञानमयः ।

અર્થ—જે આ વિજ્ઞાનમય છે તે આત્મા નિશ્ચય હૃદયમાં રહેલ છે. ઈત્યાદિકશ્રુતિયોવડે જીવ હૃદયભાગમાં રહેલ છે એમ સિદ્ધ થાય છે તે જીવ અણુ હોય ત્યારેં જ ઘટે છે. જો જીવ વિભુ (વ્યાપક) હોય તો આખા શરીરમાં રહેલ છે એમ શ્રુતિઓમાં કહેત પણ આખા શરીરમાં રહેલ છે એમ નહિં કહેતાં હૃદયદેશમાં રહેલ છે એમ કહેલ છે તેપણ જીવ અણુ છે એમ જ સિદ્ધ કરે છે, અને હૃદયદેશમાં જીવ રહેલ છે એમ કહ્યા પછી તેનું ચૈતન્ય આખા શરીરમાં વ્યાપ્ત છે એમ બતાવવામાટે आलोमभ्य आनखाग्रेभ्यः (રોમસુધી અને નખોના આગળના ભાગસુધી તેનું ચૈતન્ય રહેલું છે) એમ કહેલ છે. જીવનું સ્વરૂપ ચૈતન્યાત્મક જ છે. અને આખા શરીરમાં ચૈતન્ય વ્યાપ્ત છે ત્યારે જીવ અણુ છે એમ કહેવાય નહિં. જેમ ઉષ્ણતા અને પ્રકાશથી અગ્નિ જૂદો નથી તેમ ચૈતન્યથી જીવ જૂદો નથી એમ જે કહે છે તે વિદ્વાનોએં આદરકરવાયોગ્ય નથી; કેમકે प्रज्ञया शरीरं समारुह्य (બુદ્ધિવડે શરીરનું આરોહણ કરીને જીવ રહેલ છે) એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે ત્યાં શરીરમાં આવવામાં બુદ્ધિ કારણરૂપ છે એમ કહ્યું છે તે જીવ શરીરમાં વ્યાપ્ત નહિં પણ જૂદો હોય તે બુદ્ધિવડે તેમાં પેસે ત્યારેં જ ઘટે. તે જ હકિકત શ્રીભાગવત ચતુર્થસ્કંધમાં પુરંજનના આખ્યાનમાં પ્રસિદ્ધ છે કે પુરંજને (જીવે) સ્ત્રી (બુદ્ધિ) સાથે ઠરાવ કરીને નવદરવાજાવાળા પુર (શરીર) માં પ્રવેશ કર્યો છે. અને તે દરબારગઢ (હૃદય) માં રહેલ છે. તે જીવ અણુ હોય ત્યારે જ સંભવે છે, તેમ અગ્નિનું દૃષ્ટાંત આપ્યું તેમાં ઉષ્ણતા અને પ્રકાશથી અગ્નિ જૂદો નથી એમ પણ કહી શકાતું નથી; કેમકે મણિ, મંત્ર અથવા ઔષધિવડે અગ્નિમાં રહેલી ઉષ્ણતાનો પ્રતિબંધ થાય છે તોપણ અગ્નિ તો જોવામાં આવે છે. તેમ ઉષ્ણતા કે શીતતા એ સ્પર્શનો ધર્મ છે અને સ્પર્શ ગુણ છે તેને અગ્નિ કહેશો તો નવદ્રવ્યમાં અગ્નિ ગણેલ છે તેને બાધ આવશે. તેમ પ્રકાશ છે તે અગ્નિ છે એમ કહેશો તો

તપાવેલજલમાં પ્રકાશ બીલકુલ નથી અને અગ્નિ છે; માટે ઉષ્ણતા તથા પ્રકાશથી અગ્નિ જૂદો છે અને ઉષ્ણતા તથા પ્રકાશ અગ્નિનો ધર્મ છે એમ માનવું જ જોઇએ. તેવી રીતે ચૈતન્યથી જીવ જૂદો છે અને ચૈતન્ય તેનો ગુણ (ધર્મ) છે એમ સમજવું. વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

अंशो नानाव्यपदेशात् ।

અર્થ—જીવ બ્રહ્મનો અંશ છે કેમકે નાનાપ્રકારે વ્યપદેશ છે એટલે ક્યાંય બ્રહ્મપણાંથી ક્યાંય અજ્ઞપણાંથી, ક્યાંય ઈશ્વરના હુકમને તાબે રહેવાપણાંથી, ક્યાંય અણુપણાથી અને ક્યાંય વ્યાપકપણાંથી જીવનું નિરૂપણ છે તે એકનું જ વિરૂદ્ધ ધર્મના આશ્રયપણું બ્રહ્મશિવાય સંભવે નહિં; માટે જીવ બ્રહ્મનો અંશ છે. તે શ્રીમદ્‌ભગવદ્‌ગીતામાં પણ કહેલ છે કેઃ—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

અર્થ—જીવલોકમાં મ્હારો જ અંશ જીવ થઇને સનાતન રહેલો છે. એવું વાક્ય છે તેથી જીવ ભગવાનનો અંશ છે. સર્વ બ્રહ્માત્મક છે ત્યારે જડ, જીવ અને અંતર્યામી એમ ત્રણ પ્રકાર કેમ થયા? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે કે જડમાં ચિત્ તથા આનંદનો તિરોભાવ છે અને જીવમાં કેવલ આનંદનો તિરોભાવ છે તેથી જડ તથા જીવનો ભેદ જણાય છે અને અંતર્યામિમાં સત્, ચિત્ અને આનંદ એ ત્રણે ધર્મો રહેલા છે તેથી જડ તથા જીવના કરતાં તેનો ભેદ જણાય છે બાકી સર્વ બ્રહ્માત્મક છે તેબાબત નિબંધમાં શ્રીઆચાર્યજીમહાપ્રભુજીએ આજ્ઞા કરી છે કે:—

सच्चिदानन्दरूपेषु पूर्वयोरन्यलीनता ।
अतएव निराकारौ पूर्वावानन्दलोपतः ॥

અર્થ—સત્, ચિત્ અને આનંદ એ ત્રણ બ્રહ્મના ધર્મો છે તેમાં સત્‌માં ચિત્ તથા આનંદ લીન છે તેથી તે જડ એવી રીતે વ્યવહારમાં આવે છે અને ચિત્‌માં આનંદ લીન છે તેથી તે જીવ એવી રીતે વ્યવહારમાં આવે છે. જડ તથા જીવમાં આનંદનો લોપ થવાથી તે નિરાકાર છે કેમકે બ્રહ્મવાદમાં આકારનો સમર્પક આનંદજ છે તે જડતથા જીવમાં નહિં હોવાથી તે નિરાકાર છે. એમ નિબંધમાં કહેલ છે. (૧૦) તેવી રીતે જડમાં ચિત્ તથા આનંદનો તિરોભાવ અને ચિત્‌માં આનંદકેવળનો તિરોભાવ થયો છે તે एकोऽहं बहु स्यां (હું એક છું તે ઘણા રૂપે થાઉં) એમ શ્રુતિમાં લખેલ છે તે ભગવાનની ઇચ્છાથી થયેલ છે. એવી રીતે ભગવાનની ઇચ્છાથી જડ, જીવ અને અંતર્યામી જૂદા જૂદા થયા ત્યારેં ભેદ થયો એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે કે જડમાં ચિત્ તથા આનંદનો આવિર્ભાવ થાય અને જીવમાં આનંદનો આવિર્ભાવ થાય ત્યારેં સત્, ચિત્ અને આનંદ એમ ત્રણે ધર્મવાળું સર્વ થવાથી સર્વ બ્રહ્મજ છે તેમાં સંશય નથી. (૧૧)

જડ, જીવ અને અંતર્યામી એમ ત્રણભેદવાળું બ્રહ્મ થવામાં શું પ્રયોજન હશે? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે.

मूलम् । रमणार्थमिदं सर्वं ब्रह्मैव स्वेच्छयाऽभवत् ।
यथा सर्पः स्वेच्छया हि कुण्डलाकारतां गतः ॥ १२ ॥
न विकारी तथा ब्रह्म व्यासैः सूत्रे निरूपितम् ।
सुवर्णस्याविकारित्वं कामधेनोर्मणेरपि ॥ १३ ॥

શબ્દાર્થ—બ્રહ્મજ પોતાની ઇચ્છાવડે રમણમાટે આ સર્વ જગત્ થયેલ છે. જેમ સર્પ, પોતાની ઇચ્છાવડે કુંડલના આકારે ગૂંચળું વળીને રહેલ છે તે વિકારવાળો થતો નથી તેમ બ્રહ્મ પણ જગદ્રૂપ થાય છે છતાં વિકારવાળું થતું નથી એમ વ્યાસજીયેં સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે. સુવર્ણમાંથી કડાં, કુંડળ વિગેરે થાય છે છતાં સુવર્ણને જેમ અવિકારિપણું છે અને કામધેનુ તથા ચિંતામણિમાંથી સર્વ પદાર્થ થાય છે છતાં કામધેનુ તથા ચિંતામણિવિગેરેને જેમ અવિકારિપણું છે તેમ બ્રહ્મને પણ અવિકારિપણું છે.

ટીકા—બૃહદારણ્યક ઉપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

एकाकी न रमते सद्वितीयमैच्छन् स हैतावानास ।

અર્થ—ભગવાનને રમણ કરવાની ઈચ્છા થઈ ત્યારેં તે એકલા રમતા નથી તેસારુ બીજાસહિત રહેવાની ઈચ્છા કરી ત્યારે આટલા જગદ્રૂપ તે થયા છે. તેમ બીજી શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

तदात्मानं स्वयमकुरुत ।

અર્થ—પોતેં પોતાના આત્માને આ જગદ્રૂપ કરેલ છે. ઇત્યાદક શ્રુતિયોથી બ્રહ્મજ આ જગદ્રૂપ થયેલ છે એમ સિદ્ધ છે. બ્રહ્મજ જગદ્રૂપ થાય ત્યારેં તેને વિકારિપણું પ્રાપ્ત થાય એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે કે જેમ સર્પ પોતાની ઇચ્છાવડે ગૂંચળું વળી કુંડલને આકારે થાય છે તેમાં તેને વિકારિપણું નથી; કેમકે પાછો સરલ પોતાના સ્વરૂપમાં થઇ શકે છે તેવી રીતેં બ્રહ્મ જગદ્રૂપ થાય છે તેમાં તેને વિકારિપણું નથી કેમકે પાછું બ્રહ્મરૂપ થઇશકે છે. વિકૃત પરિણામ અને અવિકૃત પરિણામ એમ બેપ્રકારના વાદ છે તેમાં દૂધમાંથી દહિં થાય છે તે વિકૃત પરિણામ કહેવાય છે કેમકે દૂધનો વિકાર થઇને દહિં થયું તેમાંથી પાછું દૂધ થઇશકતું નથી; માટે દૂધનો વિકાર થઇને દહિં થયું છે એમ કહેવાય છે અને સુવર્ણમાંથી કડાં તથા કુંડલવિગેરે થાય છે તે અવિકૃત પરિણામ કહેવાય છે કેમકે સુવર્ણનો વિકાર થયાવગરજ કડાં તથા કુંડલવિગેરેના રૂપથી સુવર્ણ પરિણામને પામે છે તેમાંથી પાછું સુવર્ણ થઈશકે છે. તેવી રીતે બ્રહ્મમાંથી જગત્ થાય છે એટલે જગતના રૂપથી બ્રહ્મ પરિણામને પામે છે તે અવિકૃત પરિણામ છે કેમકે જગત્ પાછું બ્રહ્મરૂપ થઇશકે છે. તેસારુ વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् ।

અર્થ—પરસ્પર વિરુદ્ધ એવા બન્ને ધર્મ શ્રુતિમાં કહેલ છે, જેમ સરલઆકારવાળો અને કુંડલના આકારવાળો સર્પ કહેવાય છે તેમાં કુંડલના આકારથી સરલ આકાર વિરુદ્ધ છે અને સરલ આકારથી કુંડલાકાર વિરુદ્ધ છે તે બન્ને આકારવાળો એકજ સર્પ છે તેવી રીતેં ક્યાંય નિર્ગુણપણાથી વર્ણન છે, ક્યાંય અનંત ગુણપણાંથી વર્ણન છે, ક્યાંય પરિણામપણાંથી વર્ણન છે અને ક્યાંય અવિકારિપણાંથી વર્ણન છે. એમ પરસ્પર વિરુદ્ધ ધર્મોથી જેનું વર્ણન થાય છે તે બ્રહ્મ એકજ છે; અર્થાત્ સર્વઆકારવાળું બ્રહ્મ એકજ છે તે અવિકારિ છે. તેમજ કૃષ્ણયજુર્વેદના શ્વેતાશ્વતરઉપનિષદમાં કહેલ છે કે:—

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

અર્થ—તે ભગવાન્ સર્વના સાક્ષી, સર્વને ચેતનઆપનાર, પોતેં ચેતનરૂપ, કેવળ અને નિર્ગુણ છે. એમ કહ્યું છે તેમાં નિર્ગુણપણું અને સાક્ષિપણું બન્ને વિરુદ્ધધર્મ એકમાં જ કહેલ છે. તેમ તે પછી કહેલ છે કે:—

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।

અર્થ—પોતેં એક, ક્રિયાવગરનાઘણાઓને વશમાં રાખનાર જે, ક્રિયાવગરના ઘણાઓના એક બીજને ઘણેપ્રકારે કરે છે. એમ કહેલ છે તેમાં પણ ઘણાઓને પોતાના વશમાં રાખવારૂપ અને બીજકરવારૂપ ધર્મો તેનાજ વર્ણવેલા છે. ત્યારપછી अरूपमनामयं (રૂપવગરનું અને દોષરહિત) એવું સ્વરૂપ છે એમ કહિને सर्वाननशिरोग्रीवः (સર્વ મુખ, મસ્તક અને ગ્રીવાવાળા છે) એમ કહ્યું છે તેમાં પણ સાકાર અને નિરાકાર બન્ને એકજ છે એમ વર્ણવેલ છે. તેમ यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम् (જે એક જણાય નહિં તેવું અનંતરૂપવાળું છે) એમ કહિને કહેલ છે કે:—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

અર્થ—ચોતરફ નેત્રવાળા, ચોતરફ મુખવાળા, ચોતરફ હસ્તવાળા અને ચોતરફ પગવાળા છે. એમ કહ્યું છે. ત્યાં પણ ધર્મનું જ નિરૂપણ કરેલું છે. તેમ બૃહદારણ્યકઉપનિષદમાં तदात्मानं स्वयमकुरुत यद्वैतत्सुकृतम् (પોતેં પોતાના આત્માને આ જગદ્રૂપ કરેલ છે એટલું તેમનું સુકૃત છે. અર્થાત્ પોતેં રમણ કરી જીવોને પોતાના આનંદનો અનુભવ કરાવે છે એ કાર્ય સુકૃતરૂપ છે.) એમ કહેલું છે. તેમ આગળ પણ કહેલ છે કે:—

अविनाशी वाअरे अयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ।

અર્થ—અરે! આ આત્મા અવિનાશી અને જેના ધર્મોનો ઉચ્છેદ થતો નથી એવા છે. એમ કહેલ છે. એવી રીતેં વિરૂદ્ધધર્મોના આશ્રયપણાથી ત્રણેપ્રકારે નિરૂપણ કરેલ છે. ત્યારેં એક અનેકપ્રકારે કેમ થાય? એવી શંકાની નિવૃત્તિમાટે अहिकुंडलનું દૃષ્ટાંત આપેલ છે; એટલેં જેમ સર્પ સરલ અને કુંડલાકાર થાય

છે. તેવી રીતેં બ્રહ્મ સર્વાકાર થાય છે. સર્પ સરલ હોય છે તેમાંથી ગૂંચળુંવળી કુંડલાકાર થાય છે તેમાં કોઇ જાતનો સર્પમાં વિકાર થતો નથી તેવી રીતેં બ્રહ્મ સર્વાકાર થાય છે તેમાં કોઈ જાતનો બ્રહ્મમાં વિકાર થતો નથી; તેથી જ છાંદોગ્ય ઉપનિષદ્ના છઠ્ઠા પ્રપાઠકના પ્રથમખંડમાં જ ઉદ્દાલકે પોતાનાપુત્ર શ્વેતકેતુને કહેલ છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं
स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ।

અર્થ–હે સોમ્ય! એકસુવર્ણપિંડવડે જેમ સર્વ સુવર્ણમય જણાય છે; તેમાં કડાં અને કુંડલવિગેરે વિકાર અને નામ છે તે વાણીથી કહેવામાત્ર છે બાકી તેવા પ્રકારનું સુવર્ણ જ છે માટે તે સત્ય છે. એમ કહેલ છે ત્યાં વિકાર વાણીથી જ કહેવાય છે અર્થાત્ વિકાર નથી પણ સુવર્ણ જ છે એમ કહેલ છે તેથી સુવર્ણમાંથી કડાં, કુંડલ અને મુકુટ વિગેરે પદાર્થો થાય છે તે સુવર્ણ જ છે તેવી રીતેં બ્રહ્મમાંથી આ જગત્ થયું છે તે બ્રહ્મ છે. જેમ ધાતુમાંથી થયેલ પદાર્થો વિકારવગરના છે તેવી રીતેં બ્રહ્મમાંથી થયેલ આ જગત્ વિકારવગરનું છે એમ ભાષ્યમાં સિદ્ધ કરેલું છે. સુવર્ણને અનેક આકારપણું છે છતાં સુવર્ણનો અન્યથાભાવ થતો નથી તેવી રીતેં બ્રહ્મમાંથી આ જગદ્રૂપ અનેકઆકાર થયા છે છતાં બ્રહ્મનો અન્યથાભાવ થયો નથી. શ્રીસુબોધિનીજીમાં जन्माद्यस्य यतः એશ્લોકના વ્યાખ્યાનમાં કહેલું છે કે કામધેનુ, કલ્પવૃક્ષ અને ચિંતામણિથી પદાર્થો થયેલા જોવામાં આવે છે છતાં કામધેનુ, કલ્પવૃક્ષ કે ચિંતામણિને વિકૃતપણું નથી તેવી રીતેં બ્રહ્મમાંથી જગત્ થાય છે છતાં બ્રહ્મને વિકૃતપણું નથી. (૧૩)

જગતમાં ઘટ તથા પટ વિગેરેની ઉત્પત્તિ તથા નાશ થાય છે એમ જોવામાં આવે છે તેથી અનિત્યપણું છે માટે કાર્યને ભગવદ્રૂપપણું કેમ? એવી શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે કહે છે.

मूलम् । आविर्भावतिरोभावौ पदार्थानां यतस्ततः ।
नानित्यता तु विज्ञेया शास्त्रविद्भिर्विचक्षणैः ॥ १४ ॥

શબ્દાર્થ–જેકારણમાટે પદાર્થોનો અવિર્ભાવ અને તિરોભાવ થાય છે તેકારણથી શાસ્ત્રને જાણનારા વિચક્ષણોએં પદાર્થોની અનિત્યતા તો નહીં જાણવી.

ટીકા–ઘટ અને પટવગેરે સર્વાકાર સ્વરૂપવડે અવિર્ભાવ થવાની જે ભગવાનની ઈચ્છા તેવડે આવિર્ભૂત પદાર્થ થાય છે તેબાબત નિબંધમાં શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુજીયેં આજ્ઞા કરી છે કેઃ—

मृदादि भगवद्रूपं घटाद्याकारसंयुतम् ।
मूलेच्छातस्तथा तस्मिन्प्रादुर्भावो हरेस्तदा ॥

અર્થ–મૃત્તિકામાં ઘટાદિક જેટલા પદાર્થો થવાના છે તેટલા સર્વ પદાર્થો કારણપણાથી મૃત્તિકામાં રહેલાજ છે એમ સ્વીકારવું જોઇએં. જો મૃત્તિકામાં તે

પદાર્થો રહેલા ન હોય તો તેમાંથી તેપદાર્થોનો પ્રાદુર્ભાવ થવો ઘટે નહિં; માટે મૃત્તિકાવિગેરેમાંથી તે તે પદાર્થો થાય છે તેનામાં પ્રાદુર્ભાવ થવાનું સામર્થ્ય ભગવાન-પણાંથી ઘટે છે. માટે મૃત્તિકાવિગેરે ભગવદ્રૂપ છે તે ઘટાદિક આકારવડે સંયુક્ત છે તેમાં ભગવાનની મૂલેચ્છાથી તેવી રીતેં ભગવાનનો પ્રાદુર્ભાવ ત્યારેં થાય છે; એટલે મૃત્તિકાવિગેરે કારણ છે તે ભગવદ્રૂપ છે તેમાં ઘટ વિગેરે કાર્ય ભગવદ્રૂપ છે તે રહે છે. તે एकोऽहं बहुस्याम् (હું એક છું તે અનેકરૂપ થાઊં) એમ શ્રુતિમાં અનેકરૂપેં થવાની જે ઇચ્છા થઈ છે તેઇચ્છાવડે મૃત્તિકાવિગેરેમાંથી ઘટાદિરૂપ થાય છે; તેબાબત વિષ્ણુપુરાણના પ્રથમ અંશમાં કહેલ છે કેઃ-

तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम् ।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ॥

અર્થ-હે મુનિવર ! આ સમગ્ર જગત્ અક્ષય અને નિત્ય છે. તે આ-વિર્ભાવ અને તિરોભાવરૂપી જે જન્મ અને નાશના વિકલ્પ તે વાળું છે. ખરી રીતેં તો જગત્ નિત્ય છે પણ આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ તેજ જન્મનાશના વિકલ્પ છે તે-વાલું છે; એટલેં જગતનો આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ થાય છે તેજ જન્મનાશના વિકલ્પ છે તેવાળું આ જગત્ છે. તેબાબત વળી કહેલ છે કેઃ—

आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः ।

અર્થ-આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ એ ભગવાનની શક્તિ છે-ભગવાનની શક્તિપણું હોવાથીજ દેહાદિભાવ થયેલ છે. વળી કહેલ છે કેઃ—

पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

અર્થ-જ્ઞાનશક્તિ અને ક્રિયાશક્તિરૂપ નાના પ્રકારની સ્વાભાવિક શક્તિ છે. એ રીતેં કહેલ છે તેથી ભગવાનની અનંત શક્તિ છે; તેમાં આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ પણ ભગવાનની શક્તિ છે. (૧૪)

मूलम् । तिरोभावे तु कार्यं हि वर्त्तते कारणात्मना ।
आविर्भावे तु कार्यं हि यथा मृदि घटादयः ॥ १५ ॥

શબ્દાર્થ-તિરોભાવમાં કાર્ય કારણરૂપેં રહે છે. અને આવિર્ભાવમાં કાર્યરૂપે રહે છે. જેમ ઘટાદિકનો તિરોભાવ હોય ત્યારેં મૃત્તિકામાં ઘટાદિક રહે છે અને આવિર્ભાવમાં ઘટાદિક કાર્ય જેમ દેખાય છે તેવી રીતેં સૃષ્ટિની આદિમાં તથા અંતમાં (પ્રલય હોય ત્યારેં) આ જગદ્રૂપ કાર્ય બ્રહ્મરૂપ થઇને રહે છે એ કાર્યનો તિરોભાવ સમજવો. અને સૃષ્ટિ થયા પછી આ જગત્ દેખાય છે તે કાર્યનો આવિર્ભાવ સમજવો. એટલેં કારણની અંદર રહેલ કાર્યને બહાર પ્રકટકરનાર એવી નિમિત્ત-કારણ તથા ઉપાદાનકારણમાં જે શક્તિ રહેલ છે, તે આવિર્ભાવશક્તિ કહેવાય છે અને કાર્યને કારણમાં લીનકરનાર જે શક્તિ છે તે તિરોભાવશક્તિ કહેવાય છે. અહિં એવી રીતેં સમજવું કે તંતુ, (સૂત્ર) તુરી (સૂત્રની કોકડી જેની અંદર રાખી

વસ્ત્ર વણતી વખત આડી અવળી ચલાવવામાં આવે છે તે) વેમા (વસ્ત્રને સરખું કરવામાટે રુંછડાંવાળું ઉપર ફેરવાય છે તે) ઇત્યાદિકથી વસ્ત્રની ઉત્પત્તિ થાય છે અને મૃત્તિકા, દંડ તથા ચાકડા વિગેરેથી ઘડાની ઉત્પત્તિ થાય છે તેથી તંતુ, તુરી અને વેમાદિકમાં વસ્ત્ર ઉત્પન્નકરવાની શક્તિ અને મૃત્તિકા, દંડ તથા ચાકડા વિગેરેમાં ઘડો ઉત્પન્નકરવાની શક્તિ છે એમ નિશ્ચય થાય છે. તે શક્તિ નથી પણ સ્વભાવ છે અથવા તેનું સ્વરૂપ છે એમ કહી શકાતું નથી; કેમકે સ્વભાવ અથવા સ્વરૂપ હોય તો સડી જીર્ણ થઇગયેલા તંતુવિગેરેથી વસ્ત્રની ઉત્પત્તિ અને શેકેલા બીજથી અંકુરની ઉત્પત્તિ થવી જોઇએ કારણ કે સ્વભાવ મટતો નથી તેમ સ્વરૂપ હોય તો જતું રહેતું નથી. તેમ દાહ કરવો તે અગ્નિનો સ્વભાવ કે સ્વરૂપ હોય તો પ્રતિબંધકરનાર મણિ હોય તો પણ અગ્નિથી ખડવિગેરે દગ્ધ થવું જોઇએ. તે થતું નથી માટે જીર્ણથયેલ તંતુવિગેરેમાં કાલેંકરીને, શેકેલા બીજમાં શેકવાથી અને અગ્નિમાં પ્રતિબંધકમણિથી જેનો પ્રતિબંધ થાય છે એવી શક્તિ, સ્વભાવ અને સ્વરૂપથી જૂદીજ છે એમ સ્વીકારવું જોઇએ. અહિં શંકા થાય કે જીર્ણ ન હોય તેવાં તંતુઓથી વસ્ત્ર થાય છે અને બીજ શેકેલું ન હોય તેનાથી અંકુર થાય છે માટે વસ્ત્રનું કારણપણું નવાં તંતુઓને છે અને અંકુરનું કારણપણું વગરશેકેલાં બીજને છે તેથી જૂદી શક્તિ માનવામાં ગૌરવ થાય છે માટે શક્તિ નહિં માનતાં નવાં તંતુઓ પટનું કારણ છે અને વગરશેકેલ બીજ અંકુરનું કારણ છે એમજ માનવું તે યોગ્ય છે. તેમજ દાહનો પ્રતિબંધકરનાર મણિ ન હોય ત્યારેંજ અગ્નિદાહ કરે છે એમ માનવું જોઇએ એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે કે દાવાનલથી બળેલ નેતરના બીજમાંથી કેળનાં કુડસવાં ઉત્પન્ન થાય છે એમ વ્યાસસૂત્રના શ્રી શંકરાચાર્યજીકૃતભાષ્યની ભામતી નામની ટીકામાં લખેલું છે; માટે શેકાવાથી કોઇ શક્તિ નષ્ટ થાય છે તો બીજી શક્તિ તેની અંદર આવે છે એમ માનવું જોઇએ. તેમજ અગ્નિપાસે પ્રતિબંધક મણિ હોય છતાં ઉત્તેજક મણિ આવે તો દાહ થાય છે માટે પ્રતિબંધક મણિ આવે ત્યારેં જતી રહે અને ઉત્તેજક મણિ આવે ત્યારે પાછી આવે એવી દાહકશક્તિ અગ્નિમાં રહી છે એમ માનવુંજ જોઇએ. ઉત્તેજક મણિ ન હોય ત્યારેં પ્રતિબંધક મણિ પણ ન હોય અને પ્રતિબંધક મણિ હોય ત્યારેં પાસે ઉત્તેજક મણિ પણ હોય એવો અગ્નિ દાહનું કારણ છે એમ માનવામાં ગૌરવ થાય છે; કેમકે મંત્ર તથા ઔષધાદિકથી પણ દાહનો પ્રતિબંધ થાય છે તેમજ દાહનું ઉત્તેજનકરનાર પણ મણિ, મંત્ર અને ઔષધિ વગેરે અનેક હોય છે તેમાં કોનો અભાવ અને કોનો સદ્ભાવ માનવો. જો તમામ પ્રતિબંધકનો સદ્ભાવ હોય તો તમામ ઉત્તેજકનો સદ્ભાવ જોઇએ. અને તમામ ઉત્તેજકનો અભાવ હોય તો તમામ પ્રતિબંધકનો પણ અભાવ જોઈએ. એવા અભાવવાળો કે સદ્ભાવવાળો અગ્નિજ દાહ કરી શકે છે એમ માનશો તો એક પ્રતિબંધક અને એક ઉત્તેજક પાસે હશે તોપણ દાહ નહિં થાય અને એક પ્રતિબંધક તથા એક ઉત્તેજક પાસે હોય તો અગ્નિદાહ કરી શકે છે એમ માનશો તો તમામ પ્રતિબંધક અને તમામ ઉત્તેજક પાસે હશે તો પણ દાહ નહિં થાય, તેમજ

થોડાં ઘણાં પ્રતિબંધક અને થોડાં ઘણાં ઉત્તેજક હોય ત્યારે અગ્નિદાહ કરી શકે છે એમ માનશો તો તેથી વધુ ઘટુ હશે તો દાહ નહિં થાય. અહિં સમજવાનું એટલુંજ છે કે જે કાર્ય થવાનાં જેટલાં કારણ માનીયેં તેટલાંજ કારણથી તે કાર્ય થઇ શકે પણ વધુ ઘટુથી થઇ શકે નહિં એવો નિયમ છે. તેવી રીતેં અગ્નિથી દાહ થવામાં જેટલાં કારણ માનશો તેટલાંજ કારણથી દાહ થઇ શકશે પણ વધારે ઘટાડેથી થઈ શકશે નહિં; એટલે એક શક્તિ નહિં માનતાં જૂદાં જૂદાં કારણ માનવામાં ઘણુંજ ગૌરવ થશે એટલુંજ નહિં પણ કારણપણાંનું સ્વરૂપજ જાણી શકાશે નહિં. તેના કરતાં અગ્નિમાં દાહ કરે તેવી શક્તિ છે એમ માનવું તેજ યોગ્ય છે. આ બાબત સર્વનિર્ણયનિબંધના આવરણભંગમાં શ્રીપુરુષોત્તમજીયેં વિસ્તારથી નિરૂપણ કરેલું છે માટે વિશેષ જાણવાની જેને ઇચ્છા હોય તેણે આવરણભંગમાં તેસ્થળે જોવું; માટે અવિર્ભાવ અને તિરોભાવ એ બન્નેને ભગવાનની શક્તિપણું છે તે શક્તિવાળો એવો ભગવદ્રૂપ જે ઘડો છે તેમાં રહે છે; તેથીજ घटो भवति (ઘડો થાય છે) એવો પ્રયોગ વપરાય છે. વ્યાકરણનો એવો નિયમ છે કે જે સ્વતંત્ર હોય તે કર્ત્તા થાય છે તો ઘડો થાય છે એવા પ્રયોગમાં ઘડો કર્ત્તા છે તે જડ છતાં સ્વતંત્ર થઇને પ્રયોગમાં કર્ત્તા થાય છે તે ભગવદ્રૂપ છે તેથીજ થાય છે. નહિંતો જડ હોઇને કુંભારને આધીન થઈને થાય છે તે પ્રયોગયાં સ્વતંત્ર વપરાય નહિં છતાં સ્વતંત્ર વપરાય છે તે ભગવદ્રૂપપણાંથીજ વપરાય છે એમ સમજવું. આપણા સિદ્ધાંતમાં સર્વપદાર્થોને ભગવદ્રૂપપણું હોવાથી તેવી રીતેં પ્રયોગમાં સ્વતંત્ર વાપરવામાં પણ બાધ નથી આવતો. અને જે ઘડાવિગેરેને અનિત્ય માને છે તેના મતમાં તેવી રીતેં સ્વતંત્ર પ્રયોગમાં કેમ વપરાય છે? એ શંકાના સમાધાનમાટે ખોટી સત્તા માનવાની કલ્પના કરવારૂપ દોષ આવે છે. આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ નિત્ય છે છતાં ભગવાનની ઇચ્છાને આધીન હોવાથી સર્વદા તે બન્નેય રહેતા નથી. અહિં શંકા થાય કે તમે આવિર્ભાવ અને તિરોભાવને માનો છો તે બન્ને નિત્ય છે કે અનિત્ય છે? જો નિત્ય છે એમ કહેશો તો આવિર્ભાવ નિત્ય હોવાથી ઘડો હમેશાં પ્રાપ્ત થવો જોઇએ અને તિરોભાવ નિત્ય હોવાથી હમેશાં ઘડાની પ્રાપ્તિ નહિં થવી જોઇએ. એમ સર્વદા ઘડાની પ્રાપ્તિ અને અપ્રાપ્તિ બન્નેનો પ્રસંગ આવવાથી ઘડો છે કે ઘડો નથી એમ કાંઇપણ કહી શકાશે નહિં. તેમ આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ બન્ને ઘડાવિગેરે પદાર્થોના ધર્મ છે પણ ઉપર બતાવ્યાપ્રમાણે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ બન્ને નિત્ય હોવાથી તે બન્ને જેના ધર્મ છે એવો ઘડાવગેરે ધર્મી (પદાર્થ) સિદ્ધ થઇ શકતો નથી તેથી તેના ધર્મ આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ છે એમ પણ કહિ શકાશે નહિં એટલે શૂન્યવાદ આવી જશે. તેવી રીતેં થવાથી સાધન કરવામાં પ્રવૃત્તિ ઘટશે નહિં કેમકે જગતમાં રહેલ પદાર્થમાત્રનો આવિર્ભાવ સર્વદા અને તિરોભાવ પણ સર્વદા છે ત્યારે બન્ને નિત્ય હોવાથી સર્વદા રહે છે એમ માન્યું એટલે કોઇ પ્રાપ્ત થઇ શકે નહિં ત્યાં સાધનમાં પ્રવૃત્તિ શી રીતેં થઇ શકે? વળી જે વસ્તુ વિદ્યમાન છે તે જોવાની યોગ્યતા તે આવિર્ભાવ અને જોવાની અયોગ્યતા તે તિરોભાવ છે તેમાં

ભગવાની શક્તિપણું કયાં આવ્યું ? એવી રીતેં થયું ત્યારે કયારેંક ઘટની પ્રાપ્તિ થાય છે અને કયારેંક પ્રાપ્તિ થતી નથી તેનું કારણ શોધશું તો તેના કારણના સમૂહની પરંપરા પણ આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ બન્નેની કહેવી જોઇએં તો તે પણ કયારેંક હોય અને કયારેંક ન હોય એમ થઈ શકતું નથી. એવી રીતેં છેવટ ઈશ્વરની ઇચ્છા કારણ માનશો કે ઘડા વિગેરે પ્રાપ્ત થવાની ઇશ્વરની ઇચ્છા હોય ત્યારેં પ્રાપ્ત થાય અને પ્રાપ્ત થવાની ઇચ્છા ન હોય ત્યારેં પ્રાપ્ત થાય નહિં એમ કહેશો તો પણ તે ઇચ્છા નિત્ય છે માટે સર્વદા પ્રાપ્તિ અને અપ્રાપ્તિ બન્નેનો પ્રસંગ આવવાથી અનિર્વાચ્યતારૂપ દૂષણનો ઉદ્ધાર થતો નથી અને વેદમાં ભૂત અને ભવિષ્ય સર્વ પુરુષ છે એમ પુરુષસૂક્તમાં લખેલું છે તે સર્વદા આવિર્ભાવ માન-વાથી ભૂત તથા ભવિષ્ય એવો વ્યવહાર બંધ પડશે એટલેં સિદ્ધાંતથી વિરુદ્ધ થશે. આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ નિત્ય માનતાં છતાં પણ કાલાદિકની સહાયતાથી વિદ્યમાનતા અને અવિદ્યમાનતા રહેવામાં બાધ આવે તેમ નથી એટલેં ભૂતકાલની સહાયતા હોય ત્યારેં ભૂતકાલ, વર્ત્તમાનકાલની સહાયતા હોય ત્યારેં વર્ત્તમાનકાલ અને ભવિષ્યકાલની સહાયતા હોય ત્યારેં ભવિષ્યકાલ એવો વ્યવહાર થવામાં બાધ નહિં આવે એમ પણ નહિં કહેવું; કેમકે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવની સહાયતારૂપ કાલાદિકને માનશો તો તેકાલાદિકને પણ નિત્ય માનશો એટલેં આવિર્ભાવની સહાયતા-રૂપ કાલાદક તથા તિરોભાવની સહાયતારૂપ કાલાદિક પણ નિત્ય હોવાથી તે બન્ને કાલાદિક સર્વદા રહેવા જોઈએં એમ પ્રથમ કહેલીરીતેં વિચાર કરતાં તેનું પણ નિરૂપણ થઇ શકતું નથી. જોવાને યોગ્ય હોય તે આવિર્ભાવ એમ પણ કહિ શકાતું નથી; કેમકે વાયુ, કાલ, દિશા વિગેરે જોઇ શકાતાં નથી. તેથી તેનો સર્વદા તિરોભાવજ માનવો પડશે એટલેં તેની પ્રત્યક્ષતા થાય છે તેમાં બાધ આવશે. જોવું એટલેં અનુભવમાં આવવું: અર્થાત્ અનુભવમાં આવવાને યોગ્ય હોય તેનો આવિર્ભાવ કહેવાય એવો અર્થ કરશો તો જે આગલ અનુભવમાં આવી ગયેલ હશે અને જે હવે પછી અ-નુભવમાંઆવનાર હશે તે પણઅનુભવમાં આવવાને યોગ્ય હોવાથી તેનો આવિર્ભાવ માનવો પડશે અને જેનો આવિર્ભાવ હોય તે દેખાવું જોઈએ; તેથી જે આગળ અનુભવમાં આવી ગયેલ હશે અને જે હવે પછી અનુભવમાં આવનાર હશે તેને પણ જોવાયોગ્યપણાંનો પ્રસંગ આવશે. તેમજ સર્વનો આવિર્ભાવ સર્વદા માનશો ત્યારેં તિરોભાવ રહ્યોજ નહિં. તેમ આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ પદાર્થેપદાર્થના જૂદા છે કે તમામપદાર્થોનો આવિર્ભાવ એક છે તથા તિરોભાવ પણ એક છે ? જો તમામપદાર્થોનો એકજ છે એમ કહેશો તો એકસમયમાં તમામપદાર્થોની પ્રાપ્તિ થવી જોઈએં તે થતી નથી. આવિર્ભાવના સ્વરૂપને બતાવનાર પદાર્થો જૂદા જૂદા હોવાથી તમામપદાર્થોની પ્રાપ્તિ થવાનો પ્રસંગ નહિં આવે એમ કહેશો તો તે વાત વિચારથી સિદ્ધ થઇ શકે તેમ નથી; કેમકે આવિર્ભાવના સ્વરૂપને બતા-વનાર ઘડાવિગેરે પદાર્થ કહેવો જોઇએં તે આવિર્ભાવનો અવચ્છેદક કહેવાય ત્યારે ઘટાવચ્છિન્ન આવિર્ભાવ તથા પટાવચ્છિન્ન આવિર્ભાવ એમ થયું. તો તેવી રીતેં

વિચાર કરતાં પણ આવિર્ભાવનો અવચ્છેદક (બીજાથી તેનું સ્વરૂપ જૂદું પાડનાર) ઘડો વિગેરે નિત્ય છે તેથી સર્વદા તેની પ્રાપ્તિ થવી જોઇએ તેમજ તિરોભાવનો અવછેદક ઘડા વિગેરેનો અભાવ પણ નિત્ય હોવાથી સર્વદા તેની અપ્રાપ્તિ થશે. તેનું તેનું જૂદું સ્વરૂપબતાવનાર તે તે કાલરૂપ ઉપાધિ જૂદી જૂદી હોવાથી ઘડા વિગેરેની સર્વદા પ્રાપ્તિ કે અપ્રાપ્તિ થવાનો પ્રસંગ નહિં આવે એમ નહિં કહેવું; કેમકે તમારા મતમાં સર્વ નિત્ય હોવાથી જેમ ઘડો વિગેરે નિત્ય છે તેમ કાલ અને કાલની ઉપાધિ પણ નિત્ય છે તેથી આવિર્ભાવને લઇને ઘડા વિગેરેની સર્વદા પ્રાપ્તિ અને તિરોભાવને લઇને સર્વદા અપ્રાપ્તિ થવાનો પ્રસંગ મટે તેમ નથી. તેમ એક વખત જે જે પદાર્થો પ્રાપ્ત થાય તે તે નિત્ય છે એમ કહેવું ઘટતું નથી; કેમકે એક વખત પ્રાપ્ત થવાથી નિત્ય માનિયે તો અનિત્ય કોને કહેવું? એ વિચારવું જોઈએ. આવિર્ભાવ નિત્ય છે તેના સ્વરૂપને બનાવનાર ઘડા વિગેરેથી તેનો અવિર્ભાવ થાય છે એમ કહેશો તો આવિર્ભાવનો આવિર્ભાવ તમે માન્યો, હવે બીજો આવિર્ભાવ તમે માનો છો તે નિત્ય છે કે અનિત્ય છે? તેમ પદાર્થદીઠ તે એક છે કે જૂદો જૂદો છે? એ વિકલ્પ પ્રથમ કહેલ છે તેપ્રમાણે વિચાર કરતાં વળી તેનો આવિર્ભાવ માનવો પડશે તેનેમાટે પણ ઉપરપ્રમાણે વિચાર કરતાં વળી તેનો પણ આવિર્ભાવ માનવો પડશે એમ ક્યાંય સ્થિતિ નહિં રહેવાથી અનવસ્થા રૂપ દોષ આવે છે. એવીજ રીતે તિરોભાવને માટે પણ સમજવું. આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ, ઘડા વિગેરે પદા દીઠ જૂદા જૂદા છે એમ કહેશો તો નીચે લખ્યા વાક્યથી વિરોધ આવે છે.

आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः ।

અર્થ—આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ બન્ને ભગવાનની શક્તિ છે. એમ કહેલ છે ત્યાં બે શક્તિ લખેલ છે અને પદાર્થદીઠ જૂદા જૂદા માનવામાં ઘણા આવિર્ભાવ અને ઘણા તિરોભાવ માનવા પડે તે વિરોધ આવે છે. ભગવાન્ અનંતશક્તિવાળા હોવાથી ઘણા આવિર્ભાવ અને ઘણા તિરોભાવ માનવામાં પણ હરકત નથી. એમ નહિં કહેવું; કેમકે એકજાતના કાર્યકારણને એકજ શક્તિવડે સિદ્ધકરવાનું સંભવતું હોય ત્યાં અનેકશક્તિની કલ્પના કરવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી તેમ ગૌરવ થાય છે. તેમાં વળી ઉપર કહેલી રીતિપ્રમાણે ક્યારેંક ઘડાવિગેરેની પ્રાપ્તિ થાય છે અને ક્યારેંક પ્રાપ્તિ થતી નથી તેમાં કારણ શું છે? એ પણ નિરૂપણ થઇશકે તેમ નથી. આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ અનિત્ય છે એમ પણ કહીશકાય તેમ નથી; કેમકે ઉપર કહેલા વાક્યમાં તે બન્ને ભગવાનની શક્તિ છે એમ કહેલ છે. અને ભગવાનની શક્તિ નિત્ય હોવી જોઇએ તે જો આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવને અનિત્ય માનો તો તેનો વિરોધ આવે છે. તેમ તેબન્નેને અનિત્ય માનો ત્યારે તે ઉત્પન્ન થાય છે એમ કહેવું જોઇએ. તો આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ ઉત્પન્ન થાય છે એમ તમારે માનવું પડે છે ત્યારે ઘડો વિગેરે પદાર્થોજ ઉત્પન્ન થાય છે. એમ

કબૂલ કરો,; કેમકે ઘડા વિગેરે પદાર્થોને નિત્ય માનીને તેની નિત્યતા સિદ્ધ કરવા-માટે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ માનીને તેની ઉત્પત્તિ તથા નાશ માનવો તેના કરતાં ઘડાવિગેરે પદાર્થોનો ઉત્પત્તિ તથા નાશ માનવો એજ ઉત્તમ પક્ષ છે. તેમ આવિર્ભાવ અને તિરોભાવને ઉત્પન્ન કરનાર દંડ તથા મુદ્ગર વિગેરે છે એમ તમારે કહેવું જોશે તેજ ઘડો તથા તેના ધ્વંસ (નાશ) ને ઉત્પન્ન કરનાર છે. તેમ ઘડાવિ-ગેરેનો તિરોભાવ થાય છે એમ કહી શકાતું નથી; કેમકે તે પદાર્થ નિત્ય છે પણ તિરોભાવ હોવાને લીધે તેની પ્રાપ્તિ થતી નથી એમ કહેશો ત્યારે તેઓનો ધ્વંસ થાય ત્યારે આપણને પ્રત્યક્ષ થાય નહિં તો પણ તેની વિદ્યમાનતા છે માટે યોગીઓને પ્રત્યક્ષ થવોજ જોઈએ; કેમકે રૂપવાળો પદાર્થ ગમે ત્યાં પણ વિદ્યમાન હોય તો તે યોગિયોને પ્રત્યક્ષ થાયજ એવો નિયમ છે, તેવી રીતે જે ઘડા વિગેરેનો ધ્વંસ (નાશ) થાય છે તેયોગિયોને પણ પ્રત્યક્ષ થતોજ નથી; કેમકે શ્રીભાગવતદશમસ્કંધમાં મુચુકુંદરાજાની કથા છે તેમાં કહેલ છે કે તે રાજા પોતાનું રાજ્ય છોડીને સ્વર્ગમાં દેવતાઓની.રક્ષાકરવા ગયા હતા. ત્યાં ઘણાકાળસુધી રક્ષાકર્યાપછી (તેઓની રક્ષાકરનાર કાર્ત્તિકસ્વામી મળ્યા ત્યારે) દેવતાઓએ મુચુકુંદરાજાને વરદાન આ-પવાના પ્રસંગમાં કહેલ છે કે :—

सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ।
प्रजाश्च तुल्यकालीया नाधुना सन्ति कालिताः ॥

અર્થ—પુત્રો, સ્ત્રિયો, તમારા જ્ઞાતિઓ, કારભારિયો, ખાનગીસલાહકારો અને તમે રાજ્યકરતા હતા તેસમયની પ્રજા તે સર્વે કાલેંકરિને નષ્ટથયેલ છે તે હમણાં નથી. એમ દેવતાઓએં કહેલ છે. તે જો નષ્ટથયેલ પદાર્થ પણ વિદ્યમાન રહેતો હોય તો દેવતાઓને તેની પ્રત્યક્ષતા હોવીજ જોઇએં. તો પછી તમારા પુત્ર કે સ્ત્રીવિગેરે કોય હાલ નથી એમ તેઓ કહેજ નહિં; માટે સર્વે પદાર્થો નિત્ય છે પણ તેનો આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ થાય છે એમ માનવું તે કોય રીતેં ઘટતું નથી. એવો પૂર્વ પક્ષ થાય ત્યાં કહિયેં છીયેં કે અનુભવના વિષયમાં જે આવવાને યોગ્ય હોય તેનો આવિર્ભાવ કહેવાય છે અને અનુભવના અવિષયમાં જે આવ-વાને યોગ્ય હોય તેનો તિરોભાવ કહેવાય છે; અર્થાત્ અનુભવના વિષયપણાંની યોગ્યતા તે આવિર્ભાવ અને અનુભવના અવિષયપણાંની યોગ્યતા તે તિરોભાવ કહેવાય છે. તે પદાર્થોની સત્તા (વિદ્યમાનતા) વડેજ સ્વરૂપથી જૂદી જણાય છે. તે અનુભવના વિષયપણાંની યોગ્યતા અને અવિષયપણાની યોગ્યતા ખોટી છે એમ કહેવું સંભવતું નથી; કેમકે તે બન્ને યોગ્યતા, પદાર્થોના ધર્મરૂપ છે તે ધર્મિરૂપ પદાર્થના આશ્રયવગર રહિશકતીજ નથી. તેમ અમુક પદાર્થ થવાનો અને અમુક પદાર્થ થઇગયો છે એમ વર્ત્તમાનકાલમાં બોલાય છે તેસમયમાં ભાવિપ-ણાંથી અને ભૂતપણાંથી જેપદાર્થનો વ્યવહાર થાય છે તેની વર્ત્તમાનકાલમાં પણ સત્તા (વિદ્યમાનતા) છે એમ પૂર્વપક્ષકરનારેં પણ સ્વીકારવું જોઇએ; કેમકે ઘડો

થનાર છે અને ઘડો થઇ ગયો છે એમ વર્ત્તમાનકાલમાં (ઘડો ન હોય ત્યારે) બોલાય છે તે વખત થનાર તથા થઇગયેલ ઘડો વ્યવહારમાં આવે છે તે તેની સત્તા (વિદ્યમાનતા) ન હોય તો વ્યવહારમાં આવેજ નહિં; માટે તેની સત્તા સ્વીકારવી જોઇએ. અને તે સત્તા ઘડાવિગેરે પદાર્થના ધર્મરૂપ છે તેથી તે પદાર્થ ન હોય તો આશ્રયરૂપધર્મિવગર તે સત્તા રહિશકતી નથી; માટે થનાર ઘડો અને થઇગયેલ ઘડો એવો જે વ્યવહાર થાય છે તે તેઘડાની સત્તાથી થાય છે અને ઘડાવગર ઘડાની સત્તા રહેતીજ નથી; તેથી વર્ત્તમાનકાલમાં (ઘડો ન હોય તેસમયમાં) પણ થનાર તથા થઇગયેલઘડાની વિદ્યમાનતા સ્વીકારવીજ જોઇએ. આવી રીતે ભાવી તથા ભૂત એવા પદાર્થની વર્ત્તમાનકાલમાં પણ વિદ્યમાનતા સિદ્ધ થઇ એટલે ઘડો થયાપહેલાં બે જૂદાં જૂદાં કપાલ થાય છે ત્યારે આકપાલમાં ઘડો થશે એમ કહેવાય છે ત્યાં નૈયાયિક લોકો ઘડાનો પ્રાગભાવ માને છે તે પ્રાગભાવ થનારઘડાનો હોવાથી પ્રાગભાવનો પ્રતિયોગી તે ભવિષ્યકાલ માને છે અને વર્ત્તમાનકાલમાં જેનો ધ્વંસ (નાશ) થયો છે તેનો પ્રતિયોગી નષ્ટથયેલ ઘડો હોવાથી તે ધ્વંસનો પ્રતિયોગી તે ભૂતકાલ એમ માને છે તેનો નિરાસ થયો; કેમકે ભાવી તથા ભૂત (અર્થાત્ થનાર તથા થઇગયેલ) એવા પદાર્થની પણ વર્ત્તમાનકાલમાં વિદ્યમાનતા સિદ્ધ થઇ એટલે પ્રાગભાવ કે ધ્વંસાભાવ સિદ્ધ થઈશકે નહિં ત્યાં તેના પ્રતિયોગી* કયાંથી સિદ્ધ થાય? થનારઘડાની સત્તાનો તથા થઇગયેલ ઘડાની સત્તાનો આશ્રય કાલની ઉપાધિ છે એમ કહેશો તો પણ (તેતેકાલની ઉપાધિ માનવામાં પણ) થનારઘડાવાળી કાલની ઉપાધિની તથા થઇગયેલઘડાવાળી કાલની ઉપાધિની પ્રતીતિ થયા વગર તો રહેશેજ નહિં. તંતુમાંથી પટ થાય છે ત્યારે તંતુઓમાં પટનો સમવાયસંબંધ રહેલ છે તે સર્વપદાર્થનો આધાર કાલ હોવાથી પટનો સમવાય કાલમાં પણ રહેલ છે છતાં પણ તંતુસમવેત પટ છે એમ પ્રતીતિ થાય છે કાલસમવેત પટ છે એમ પ્રતીતિ થતી નથી; કેમકે કાલ કાલિકસંબંધથી સર્વપદાર્થનો આધાર છે તેથી કાલિકસંબંધવડે પટમાં કાલ રહેલ છે સમવાય સંબંધથી રહેલ નથી; તેથી કાલસમવેત પટ છે એવી પ્રતીતિ થતી નથી; તેવી રીતે અહિં ઘડાના પ્રાગભાવનું તથા ધ્વંસાભાવનું પ્રતિયોગિપણું થનારઘડાને તથા થઈગયેલઘડાને છે પણ કાલને નથી; તેથી થનારઘડાવાળી કાલની ઉપાધિ છે કે થઈગયેલઘડાવાળી કાલોપાધિ છે એવી પ્રતીતિ થશે નહિં એમ શંકા નહિં કરવી; કેમકે પ્રતિયોગિપણું સ્વરૂપ સંબંધનો ભેદ છે એમ સ્વીકારેલું છે અને સ્વરૂપસંબંધ બેયસ્વરૂપાત્મક છે તેથી ઘડાને જેમ પ્રતિયોગિપણું છે તેમ કાલને પણ છે; માટે થનારઘડાવાળો કાલ તથા થઈગયેલ ઘડાવાળો કાલ એવી પ્રતીતિ તો મટતીજ નથી. થનાર તથા થઈગયેલઘડાવાળો કાલ છે તોપણ તેની પ્રતીતિ થાય તેવો તેના સ્વરૂપને બતાવનાર તે

---

* ઘડાના અભાવનો પ્રતિયોગી ઘડો કહેવાય છે. તેવી રીતે ઘડો થયા પહેલાં વર્ત્તમાનકાલમાં કપાલમાં થનારઘડાનો પ્રાગભાવ છે તેનો પ્રતિયોગી થનાર ઘડો છે અને ઘડો ફૂટ્યા પછી ધ્વંસાભાવ છે તેનો પ્રતિયોગી થઇગયેલ ઘડો છે એમ ન્યાયશાસ્ત્રમાં માન્યું છે.

વિશેષ નથી તેથી પ્રતીતિ થતી નથી એમ કહેશો તો વાદિને પૂછીએ છીએ કે તે વિશેષ કયો? જેમાં તમને આવી શ્રદ્ધા રહી છે. દેખવામાં આવે તેવો તે વિશેષ તો નથી; કેમકે તે વિશેષ છે એવું કાંઈ પ્રમાણ નથી. થનાર તથા થઈ ગયેલા ઘડાના અભાવનું પ્રતિયોગિપણું ઘડાને તથા કાલને છે તોપણ આ થનારઘડાવાળો કાલ છે અને આ થઇગયેલ ઘડાવાળો કાલ છે એવી પ્રતીતિ થાય છે તે તેવો વિશેષ ન હોય તો થાય નહિં તેસારૂ બીજાસંબંધવગરજ તેવી પ્રતીતિને ઉત્પન્નકરનાર તેવો વિશેષ છે એમ અમે કલ્પના કરિયેં છીયેં એમ કહેશો તો પણ તેવા વિશેષની સત્તા પણ કાલમાંજ છે એમ તમારે કહેવું જોશે. ત્યારેં તેના સમવાયસંબંધવગર તે વિશેષ રહીશકે નહિં તેસારૂ તેવા સમવાયને કારણપણું કહેવું જોશે ત્યારેં તેવા સમવાયસંબંધવાળો કોઇ નહિં હોવાથી થનાર તથા થઇગયેલ ઘડાની પ્રતીતિ કરે તેવો સમવાય ક્યાંય પણ કહિશકાતો નથી માટે કાલાશ્રયપણું પણ સિદ્ધ થઇશકશે નહિં; કેમકે ઉત્પન્નથનાર જે પદાર્થ બીજામાં સમવાયસંબંધથી રહેલ હોય તેનેજ કાલાધારપણું હોય એવો નિયમ* છે તેમ નહોય તો નિત્યને પણ કાલનો આશ્રય છે એમ કબૂલ કરવું પડશે. બીજાનો ધર્મ હોય અને તેને કાલનોજ આશ્રય છે એમ કહેવું એ સિદ્ધ થાય નહિં અને જો ધર્મ બીજાનો હોય તે જેનો ધર્મ છે તેનો આશ્રય કરીને નહિં રહેતાં કાલાશ્રિતજ રહે છે એમ કહેશો તો પછી બીજાનો ધર્મ છે એમ કહીશકાશેજ નહિં; માટે ભાવિપણાંના અને ભૂતપણાંના વ્યવહારમાં પણ ઘટાદિકની સત્તા સ્વીકારવી જોઇએં અર્થાત્ ઘડો થનાર છે એમ કહેવાતું હોય તેસમયમાં થનારઘડાની સત્તા છે અને ઘડો થઇગયેલ છે એમ કહેવાતુ હોય તેસમયમાં થઇગયેલ ઘડાની સત્તા છે એમ સ્વીકારવું જોઇએં. તેમ થનારઘડાની તથા થઇગયેલઘડાની પ્રતીતિ થાય તેવી યોગ્યતા બીજા તમામથી જૂદી શાથી જણાય છે? એમ અમે પૂછીયેં છીયેં. જો ગમે ત્યારેં પણ વસ્તુની સત્તા છે તેથી જણાય છે એમ કહેશો તો પછી ગમે ત્યારેં એટલું છોડિ દઇ વસ્તુની સત્તાથીજ જણાય છે એમજ કહો; કેમકે ગમે ત્યારેં એમ કહેવાનું કાંઇ કારણ નથી અને ગૌરવ થાય છે. તેમજ બીજાસંબંધવગરજ તેવી પ્રતીતિ થવાનું ઉપર લખ્યું છે તેમાં બીજાસંબંધવગર એમ કહ્યું છે તે પણ વાદિને છોડીદેવું જોઇએંછીએં; કેમકે એવી રીતેં પ્રતીતિ જેની થાય છે તેના સ્વરૂપને સંબંધપણું જ્યારેં સિદ્ધ થાય ત્યારેં બીજો સંબંધ કહેવાનું સાર્થક થાય; એટલે સંબંધપણું સિદ્ધ થયા પછી સંબંધ કહેવો તેમાં આત્માશ્રયરૂપ દોષ આવે છે. સંયોગાદિકછપ્રકારના સંબંધમાંથી એક પણ સંબંધ નથી તોપણ સંબંધપણું છે એમ બીજો સંબંધ કહેવાનો અભિપ્રાય છે એમ કહેશો તો યોગજધર્મમાં અતિવ્યાપ્તિ આવશે. યોગજ ધર્મ અલૌકિક છે અને આ તો લૌકિક-

---

* ઉત્પન્નથનાર પદાર્થ હોય તે અમુકકાલમાં ઉત્પન્ન થયો છે અથવા થશે એમ કહીશકાય છે તેથી તેને કાલાધારપણું હોય. તેમજ તંતુ સમવાયસંબંધથી પટમાં રહેલ છે તેથી તંતુસમવેત પટ કહેવાય છે તે પટમાં તંતુ સમવાયસંબંધથી રહેલ છે તેમ કાલમાં કાલિકસંબંધથી રહેલ છે એમ કહેવાય છે. તેવી રીતે નિત્યદ્રવ્યને કાલાધારપણું નથી.

પ્રતીતિને ઉત્પન્ન કરે તેવો સંબંધ કહેવાનો અભિપ્રાય છે એમ કહેશો તો વ્યાપ્તિસહિત વિશિષ્ટપણાંનાં જ્ઞાનને ઉત્પન્નકરનાર જે સામાન્યપ્રત્યાસત્તિ છે તેમાં અતિવ્યાપ્તિ થાય. ઉત્પન્નથનાર એવી લૌકિકપ્રત્યાસત્તિવિના પણ સંબંધપણું એ બીજો સંબંધ કહેવાનો અભિપ્રાય છે એમ કહેશો તો તેવો યોગજ ધર્મ હોવાથી તેમાં અતિવ્યાપ્તિ થશે. સામાન્યપ્રત્યાસત્તિ, યોગજ ધર્મ, જ્ઞાનલક્ષણપ્રત્યાસત્તિ અને છપ્રકારના સંબંધવગર પણ સંબંધપણું એ બીજો સંબંધ કહેવાનો અભિપ્રાય છે એમ કહેશો તો તેવો સંબંધ પ્રસિદ્ધ નથી. એટલેં કહેલા સંબંધવગરનું સંબંધપણું ક્યાંય સિદ્ધ નથી. ભાવી અને ભૂતની બાબતમાં જે તકરાર ચાલે છે તેના નિરાશ્રયપણાંનો પ્રસંગ તો ઉપર કહેલી યુક્તિથી મટે તેમ નથી તેથી તેવા સમયમાં પણ ધર્મિરૂપઘડાવિગેરેની સિદ્ધિ થવામાં અનુમાનાદિકથી તેનું જ્ઞાન થાય તેના સમવેતમાં પ્રતિયોગિપણું પણ કયાં પ્રત્યક્ષવિષય થાય છે? માટે થનારઘટની તથા થઇગયેલ ઘટની પ્રતીતિનો અભાવ થતો નથી; માટે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ માનવામાં કોયજાતનો દોષ નથી. ત્યાં વાદી શંકા કરે છે કે તમારા મતમાં ઘડાવિગેરે પદાર્થ નિત્ય હોવાથી સર્વદા રહે છે માટે થનાર ઘડો કે થઇગયેલ ઘડો એમ કહિશકાશે નહિં. અને ભાવી તથા ભૂતપણાંનો વ્યવહાર શ્રુતિ, સ્મૃતિ તથા લૌકિકવ્યવહારથી સિદ્ધ હોવાથી ભાવિપણું તથા ભૂતપણું નથી એમ માની શકાતું નથી. લૌકિકપ્રત્યક્ષતામાં ભાવિપણું તથા ભૂતપણું રહેલ છે તેને લઇને ઘડાવિગેરેમાં તે મનાય છે બાકી ઘડો ભાવી કે ભૂત નથી એમ નહિં કહેવું; કેમકે લૌકિકપ્રત્યક્ષતાના વિષયમાં જેટલા પદાર્થો છે તે અને લૌકિકપ્રત્યક્ષતા એ સર્વ ઘડાની માફક નિત્યજ છે. ભાવી અને ભૂત એવી રીતેં જેનો વ્યવહાર થાય છે તે આ પ્રપંચ (જગત્)થી જૂદું છે એમ કહેતા હો તો પછી ઘડાનો શું અપરાધ છે તે અમે જાણતા નથી; કેમકે પ્રપંચથી જૂદો પદાર્થ, ભાવિપણાંના તથા ભૂતપણાંના વ્યવહારમાં આવે છે એમ માનવું અને થનાર ઘડો તથા થઈગયેલ ઘડો એવો વ્યવહાર થાય છે તેમાં ભાવી ઘડો તથા ભૂત ઘડો એવો અનુભવ થાય છે તે છતાં માનવું નહિં ત્યારેં તો ઘડાનો કોય જાતનો અપરાધજ માનવો જોઇએં એમ વાદી મશકરી કરે ત્યારેં તેને સિદ્ધાંતીતરફથી ઉત્તર આપવો જોઇએં કે स हैतावानास (તે પરમાત્મા આ જગત્‌જેટલા સ્ફુટ થયા છે.) ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् तत्सत्यम् (આ દેખાતું સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપજ છે તે સત્ય છે.) ઇત્યાદિકશ્રુતિયોમાં સર્વજગતને બ્રહ્મરૂપ કહેલું છે. તેમ પુરુષસૂક્તમાં કહેલ છે કેઃ—

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

અર્થ—આ દેખાય છે તે સર્વ જગત્, જે થઈગયેલું છે અને જે થવાનું છે તે સર્વ પુરુષરૂપજ છે. એમ કહેલ છે ત્યાં ભાવિ, ભૂતસહિત વર્તમાનકાલમાં વિદ્યમાન છે તેને બ્રહ્મપણું કહેલું છે. અહિં સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે એમ કહેવાથીજ ભાવિ તથા ભૂતને બ્રહ્મપણું આવીજ જાય છે છતાં ભાવિ તથા ભૂત એ બ્રહ્મરૂપ છે એમ કહેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે એટલુંજ કહેત તો બ્રહ્મને

નિત્યપણું હોવાથી સર્વપદાર્થોની વર્ત્તમાનદશા રહેવાનો સંભવ થાય એટલેં ભાવિપણાંનો તથા ભૂતપણાંનો વ્યવહાર છે તે અપ્રામાણિક છે એમ કોયને શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે શ્રુતિમાં भूतं (થઈગયેલ) અને भाव्यम् (થનાર) એ શબ્દો મૂકેલા છે; એટલે ભાવિ અને ભૂત એ ધર્મો પણ બ્રહ્મરૂપ છે અને ઘડાવિગેરે પદાર્થ પણ બ્રહ્મરૂપ છે માટે ઘટાદિકમાં ભાવિ તથા ભૂતપણું અને તેસમયમાં તેની વિદ્યમાનતા છે તે વિરૂદ્ધ નથી; કેમકે વેદ પોતાથી પ્રમાણ છે એમ સિદ્ધ છે. બીજાની પ્રમાણતા સિદ્ધકરવામાટે પ્રત્યક્ષાદિકપ્રમાણોની આવશ્યકતા રહે છે તેવી રીતેં વેદની પ્રમાણતા સિદ્ધકરવામાટે બીજાં પ્રમાણ જોતાં નથી. વેદ પોતાથીજ પ્રમાણરૂપ છે તેવેદના વાક્યમાં સર્વને બ્રહ્મપણું અને ભૂત તથા ભાવિ એવો વ્યવહાર છતાં બ્રહ્મપણું સિદ્ધ કરેલું છે. જ્યારેં એવી રીતેં ભાવિ તથા ભૂતને પણ નિત્યપણું અને બ્રહ્મપણું માનશો ત્યારેં ઘડો જોવામાં આવતો હોય તેસમયનો ઘડો, થઇગયેલ ઘડો અને થનાર ઘડો તમામ નિત્ય તથા બ્રહ્મરૂપ મનાયા એટલેં ઘડો જોતી વખત પણ ભાવી ઘડો તથા ભૂત ઘડો એવો વ્યવહાર થશે અને ભૂતમાં ભાવિનો તથા ભાવિમાં ભૂતનો વ્યવહાર થશે તેમ ભાવી તથા ભૂતને વિરોધ છે તે મટી જશે એમ કહેશો તો જેમ પૃથ્વીરૂપ બ્રહ્મમાંજ ગંધાત્મક બ્રહ્મ છે બીજામાં નથી તેવી રીતેંજ જ્યારે જેનામાં જેવા વ્યવહારના અભાવનો નિયમ છે ત્યારે તેનામાંજ તેવી રીતના વિરોધવાળા બ્રહ્મની વિદ્યમાનતા હોવાથી વિરોધ દેખાય છે માટે કોય જાતના દૂષણનો ગંધ પણ નથી એમ સમજવું, અને જ્યાં તેવી રીતેં વ્યવહારના અભાવનો નિયમ નથી ત્યાં વિરોધ પણ નથી. તેબાબત મહાભારતના આશ્રમવાસિકપર્વમાં ગાંધારીપ્રત્યેં વ્યાસજીએં કહેલ છે કેઃ—

देवाश्च दानवाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
तएव निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्ररणाजिरे ॥

અર્થ—દેવતાઓ, દાનવો અને શુદ્ધ એવા બ્રહ્મર્ષિઓ હતા તેજ કુરૂક્ષેત્રના સંગ્રામના આંગણામાં નિધન (મરણ)ને પ્રાપ્ત થયા છે એમ કહેલ છે ત્યાંથી પ્રારંભ કરિને ધૃતરાષ્ટ્રથી આરંભિને ભીષ્મસુધીનાં સ્વરૂપ કહીને ગાંધારીના દુઃખને મટાડવામાટે કહેલ છે કેઃ—

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति ।
ततो द्रक्ष्यथ सर्वांस्तान् ये हतास्तु रणाजिरे ॥

અર્થ—તમે સર્વે ભાગીરથીનદી (ગંગાજી) પ્રત્યેં જાઓ તો તે પછી રણના આંગણામાં જે હણાયા છે તેસર્વને તમે દેખશો. એમ વ્યાસજીએં કહ્યા પછી ધૃતરાષ્ટ્ર અને પાંડવો સ્ત્રીઓસહિત ગંગાજીના તટઉપર ગયા ત્યાં સ્નાન કરીને રાત્રિ થઇ ત્યારેં વ્યાસજીના સમીપમાં ગયા ત્યારેં કહેલ છે કેઃ—

ततो व्यासो महातेजाः पुण्यं भागीरथीजलम् ।
अवगाह्याजुहावाथ सर्वान् लोकान् महामुनिः ॥

पाण्डवानां च ये योधाः कौरवाणां च सर्वशः ।
राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः ॥
ततस्तु तुमुलः शब्दो जलान्तर्जनमेजय ! ।
प्रादुरासीद्यथापूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
ससैन्याः सलिलात्तस्मात् समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥

અર્થ—ત્યાર પછી મ્હોટાતેજવાળા મહામુનિવ્યાસજીએ પવિત્ર એવા ગંગા-જળમાં સ્નાન કરીને સર્વલોકનું આહ્વાન કર્યું. ત્યારે પાંડવોના જે યોદ્ધાઓ હતા, કૌરવોના જે યોદ્ધાઓ હતા અને જૂદા જૂદા દેશોના નિવાસિઓ મ્હોટા ભાગ્યવાળા જેઓ ચોતરફથી રાજાઓ રણમાં મરેલા હતા તેસર્વનું આહ્વાન કરતાં, વૈશંપાયન જનમેજયને કહે છે કે જેમ પ્રથમ કૌરવ તથા પાંડવોની સેનાનો મિશ્રિત શબ્દ થતો હતો તેવી રીતે જળની ભીતર શબ્દ થયો ત્યારપછી ભીષ્મ અને દ્રોણ જેની આગળ ચાલનારા છે એવા હજારો રાજાઓ સૈન્યસહિત તેજળમાંથી બહાર નિકળ્યા. એવી રીતે નામ લઇને સર્વનું નિરૂપણ કરીને કહેલ છે કેઃ—

एकां रात्रिं विहृत्यैव ते वीरास्ताश्च योषितः ।
आमंत्र्यान्योन्यमाश्लिष्य ततो जग्मुर्यथागतम् ॥

અર્થ—જળમાંથી નિકળેલા તે વીરપુરૂષો અને ત્યાં હતી તે સર્વ સ્ત્રીઓએ એક રાત વિહાર કર્યો. ત્યારપછી બધાની રજા લઇ પરસ્પર આલિંગન કરીને જેમ આવ્યા હતા તેમ પાછા ગયા. ઇત્યાદિક નિરૂપણ કરેલ છે ત્યાં સંગ્રામમાં જે મરણપામેલા હતા તે સર્વ પાછા આવ્યા છે અને તેઓએ પોતપોતાની સ્ત્રીઓસાથે એક રાત્રિ વિહાર કર્યો છે એમ વૈશંપાયને જનમેજયને કહ્યું ત્યારે જનમેજયે પૂછેલું છે કેઃ—

कथं च त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ।

અર્થ—જેઓએ દેહનો ત્યાગ કરેલો છે તેઓનું ફરીને તેનું તે રૂપ દેખાવું એ કેમ સંભવે? ત્યારે વૈશંપાયને કહેલ છે કેઃ—

अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः ।
कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप ! ॥
महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात् ।

અર્થ—સર્વકર્મનો નાશ થતો નથી એવો નિશ્ચય છે. શરીર તથા આકૃતિયો કર્મથી થાય છે. (એટલે કર્મનો નાશ નહિં હોવાથી કર્મથી થનાર શરીર તથા આકૃતિઓનો પણ નાશ થતો નથી.) ભગવાનનો સારી રીતે આશ્રય હોવાથી પંચમહાભૂતો નિત્ય છે. એમ કહ્યા પછી આગળ કહેલ છે કેઃ—

अविनाशी तथा नित्यः क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः ।
भूतानामात्मभावो यो ध्रुवोऽसौ सम्प्रजानताम् ॥

અર્થ--ક્ષેત્રજ્ઞ અવિનાશી તથા નિત્ય છે એવો નિશ્ચય છે. ભૂતપ્રાણિમાત્ર ભગવદ્રૂપ છે એવો જે આત્મભાવ છે તેજાણનારાઓને નિશ્ચલ છે. એમ કહીને વૈશંપાયને કહેલ છે કેઃ--

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।
नाहं तं वेद्मि नासौ मां न च मेऽस्ति विरागता ॥

અર્થ--મરીગયેલા યોદ્ધાઓનો સમૂહ પ્રથમ અદર્શન પ્રાપ્ત થઇને પાછો આવેલ છે અને ફરીને અદર્શનને પ્રાપ્ત થયેલ છે. હું તેને જાણતો નથી અને તે મને જાણતા નથી. તેમ મને વૈરાગ્ય નથી. એમ કહેલ છે ત્યાં વૈરાગ્ય નથી એમ કહેવાનો અભિપ્રાય એવો છે કે અનિત્ય હોય તો વૈરાગ્ય થાય પણ નિત્ય છે તેથી વૈરાગ્ય નથી. વ્યાસજીએં આ બધું માયાવડે દેખાડેલ છે એમ નહિં કહેવું કેમકે માયાવડે દેખાડેલ છે એમ વૈશંપાયને જનમેજયને કહેલ નથી. ઉલટું વ્યાસજીના પ્રસાદથી જોયેલ છે એમ કહેલ છે. તેમ સર્વ સ્ત્રીઓ પતિવ્રતાઓ હતી તેઓએ એક રાત્રિ પોતપોતાના પતિસાથે વિહાર કરેલ છે તે માયિક પુરૂષો હોય તો તેની સાથે પતિવ્રતાઓનો વિહાર સંભવે નહિં. તેમ સર્વે ગંગાતટ ઉપર જઇ ગંગાસ્નાન કરો એટલે રણમાં મરી ગયા છે તેને દેખશો એમ ઉપદેશ કર્યો તેપ્રમાણે સર્વ ગંગાતટ ઉપર જઇ સ્નાન કરી શુદ્ધ થયા ત્યાર પછી વ્યાસજીએં સર્વનું આહ્વાન કર્યું એમ કહેલ છે તે માયિક પુરૂષો દેખાડવા હોય તો ગંગાસ્નાન કરી શુદ્ધ થવાનો વ્યાસજી ઉપદેશ કરે નહિં. તેમ અદર્શનને પ્રાપ્ત થઇને પાછા આવેલ છે. એમ વૈશંપાયને કહેલ છે ત્યાં પણ તે દેખાતા નહોતા ત્યારે પણ તે વિદ્યમાન હતા એમજ બતાવ્યું છે; માટે જે દેશ અને જેકાલમાં જેની પ્રતીતિ થવાની ભગવાનની ઈચ્છા થાય છે તે દેશ અને તેકાલમાં તેની પ્રતીતિ થાય છે એમ સિદ્ધ થયું; તેથી પ્રથમ પૂર્વપક્ષમાં એમ કહેલ છે કે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ નિત્ય હોય તો ઘડોવિગેરે પદાર્થ સર્વદા દેખાવા જોઇએં અથવા સર્વદા નહિં દેખાવા જોઇએં પણ કોય વખત દેખાય છે અને કોય વખત દેખાતા નથી તેનું કારણ કહિ શકાતું નથી એમ વાદીયેં શંકા કરેલ છે તેનો નિરાસ થયો. તેમ લૌકિક પ્રત્યક્ષ ન હોય તોપણ પદાર્થ વિદ્યમાન હોય તો યોગિયોને પ્રત્યક્ષ થવો જોઇએં એવી શંકા કરી છે તેની પણ નિવૃત્તિ થઈ; કેમકે યોગિયોને પ્રત્યક્ષ થવાની ભગવાનની ઈચ્છા હોય તોજ યોગિયોને પણ પ્રત્યક્ષ થાય. તેશિવાય યોગિયોને પણ પ્રત્યક્ષ થાય નહિં. ભગવાનની ઈચ્છા પ્રથમ જાણવામાં આવતી નથી, ફલ થાય ત્યારે જાણીશકાય છે. એવી રીતેં ઇશ્વરની ઇચ્છાને આધીન સર્વ છે એમ સિદ્ધ થયું ત્યારે આકાલમાં આદેશમાં અમુક કાર્ય આવી રીતેં થાઓ એમ ભગવાનની ઈચ્છામાં આવે તે આવિર્ભાવ અને તેકાલમાં તેદેશમાં તેવી રીતેં તેનાથી તે કાર્ય ન થાઓ એમ

ભગવાનની ઇચ્છામાં આવે તે તિરોભાવ એમ કહેવું તે પણ યોગ્ય છે; કારણ કે એ ઇચ્છાનેજ આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવને યોગ્ય એવાં રૂપપણું છે. જે જે દેશકાલમાં ભગવાનની આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવની ઇચ્છા થાય છે તેતેદેશ-કાલને પણ નિત્યપણું હોવાથી એકજસમયમાં સર્વપદાર્થની પ્રાપ્તિ તથા અપ્રા-પ્તિનો પ્રસંગ આવશે; કેમકે જેજેદેશકાલમાં જેજેકાર્ય થવાની ભગવાનની ઇચ્છા થાય તેતેદેશકાલને તથા તેતેદેશકાલમાં તેતેકાર્ય નહિં થવાની ભગ-વાનની ઇચ્છા થાય તેતેદેશકાલને પણ નિત્યપણું છે માટે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ બન્ને સર્વદા રહેવા જોઇએ એમ નહિં કહેવું; કેમકે આ સૃષ્ટિકાલાત્મક સ્થૂલ કાલોપાધિ છે તેમાં ક્રમે કરિને તેના અવયવરૂપ સૂક્ષ્મ તે તે કાલોપાધિ આવે છે તે તે સૂક્ષ્મ કાલોપાધિમાં તેતેપુરુષને તેતેપદાર્થની પ્રાપ્તિ થાઓ એવી ભગવા-નની ઇચ્છા જેબાબતમાં હોય તે આવિર્ભાવનું સ્વરૂપ છે. અહિં એવી રીતની ભગ-વાનની ઇચ્છા જેનામાં થયેલ છે એવા તેતેદેશકાલાદિક આવિર્ભાવાત્મક ભગવાનની ઇચ્છામાં આ[illegible]લા હોવાથી તેતેપદાર્થના આવિર્ભાવનું સ્વરૂપ તેજ છે એમ સમજવું. અને સર્વપદાર્થને ભગવદ્રૂપપણું હોવાથી ભગવાનના આવિર્ભાવને ભગ-વાનની શક્તિપણું છે તેથી ન ઘટે તેમ કાંઈ નથી. એવી રીતે થયું ત્યારે જેકાલમાં સર્વને પરસ્પર એકબીજાનો અનુભવ નહિં થવાની ભગવાનની ઇચ્છા થાય તે પ્રલયકાલ કહેવાય છે અને જેકાલમાં સર્વને પરસ્પર એકબીજાનો અનુભવ થવાની ભગવાનની ઇચ્છા થાય તે સૃષ્ટિકાલ કહેવાય છે. એક સામાન્યેચ્છા અને એક વિશેષેચ્છા એમ બેપ્રકારની ભગવાનની ઈચ્છા છે તેમાં સૃષ્ટિકાલની ઇચ્છા છે એ સામાન્યેચ્છા છે અને સૃષ્ટિની અંદર જૂદા જૂદા પદાર્થોને તેતેપુરુષના અનુ-ભવમાં આવવાની ઇચ્છા થાય છે તે વિશેષેચ્છા છે તે તેતેદેશકાલમાં તેતેપુરુષને તેતે કાર્ય અનુભવમાં આવવાની હોવાથી તે વિશેષેચ્છા પણ કહેવાય છે તેવીજ ઇચ્છા આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ થવામાં નિયામક છે; માટે દેશ, કાલ, પુરુષ અને પદાર્થોને નિત્યપણું છતાં પણ એકજસમયમાં સર્વપદાર્થોની પ્રાપ્તિ કે અપ્રાપ્તિનો પ્રસંગ આવે તેમ નથી; કેમકે તેતેદેશકાલમાં રહેલા તેતેપુરુષોના તેતેપદાર્થબાબત વ્યવહાર અને અવ્યવહાર પણ રહેવાજ જોઇએ; તેમાં જેપદાર્થની અપ્રાપ્તિ થવાના કાલમાં જે પુરુષ રહેલ હોય તેપુરુષને તેકાલમાં તેપદાર્થની અપ્રાપ્તિ થાય છે; કેમકે તેતે સૂક્ષ્મકાલ ભિન્નભિન્ન છે અને તેમાં રહેલા તેતે પુરુષો તથા પદાર્થો પણ ભિન્નભિન્ન છે માટે એકજસમયમાં તેની પ્રાપ્તિ તથા અપ્રાપ્તિ થવી તે વિરુદ્ધ નથી. અનુભવકરનાર પુરુષ ભિન્નભિન્ન છે એમ માનશો તો જે હું જે-ઘડાનો પ્રથમ અનુભવ કરતો હતો તેજ હું તેઘડાનો હમણાં અનુભવ કરતો નથી એવું જ્ઞાન થાય છે તે નહિંથવું જોઈએ કારણ કે અનુભવકરનારા પુરૂષો તથા જેનો અનુભવ કરે છે તે ઘડો વિગેરે પદાર્થો પણ ભિન્નભિન્ન છે. એમ નહિં કહેવું. કેમકે સર્વને બ્રહ્માત્મકપણું હોવાથી અનુભવકરનારા પુરુષો અને જેનો અનુભવ કરે છે તે ઘડો વિગેરે પદાર્થોને પણ બ્રહ્માત્મકપણું છે અને તે બ્રહ્મ એક

છે તેથી બ્રહ્મપણાને લઇને તેવો અનુભવ થવામાં બાધ આવતો નથી. તેવીજ રીતે પદાર્થની પ્રાપ્તિ અને અપ્રાપ્તિને પણ બ્રહ્માત્મકપણું હોવાથી પોતાની ઈચ્છાવડે જ્યાં જેની પ્રાપ્તિરૂપે બ્રહ્મ પ્રકટ થાય છે ત્યાં તેની પ્રાપ્તિ થાય છે અને જ્યાં જેની અપ્રાપ્તિરૂપે બ્રહ્મ પ્રકટ થાય છે ત્યાં તેની અપ્રાપ્ત થાય છે. એવો નિયમ છે જેમ સમગ્ર-જગતને બ્રહ્મપણું હોવાથી તેની અંદર રહેલ પૃથ્વી તથા જલવિગેરે સર્વપદાર્થોને બ્રહ્મપણુંછે છતાં પૃથ્વીમાંજ ગંધરૂપથી બ્રહ્મનો આવિર્ભાવ છે પણ જલાદિકમાં નથી. જેમ મૃત્તિકારૂપ બ્રહ્મમાંથી ઘડો, તાવડી, શરાવ અને કુંડાં વિગેરે કાર્યરૂપબ્રહ્મ થાય છે તે સર્વ બ્રહ્મપણાંથી તથા મૃત્તિકાપણાથી એક છતાં એકબીજાનું કાર્ય એકબીજા-થી થતું નથી અને એકબીજાના વ્યવહારને સમયે એકબીજાં ઉપયોગમાં આવતાં નથી તો પણ બ્રહ્મપણું તથા મૃત્તિકાપણું નિર્બાધ તેનું રહે છે તેમાં પરસ્પરનો વિરોધ બાધક થતો નથી, જેમ અવતારાદિકમાં એકબીજાનું કાર્ય એકબીજા કરતા નથી તેમાં કાંઇ બાધ આવતો નથી, તેવીજ રીતે અહિં પ્રાપ્તિરૂપે જ્યાં બ્રહ્મ પ્રકટ થાય ત્યાં તેપદાર્થની પ્રાપ્તિ થાય અને અપ્રાપ્તિરૂપે જ્યાં બ્રહ્મ પ્રકટ થાય ત્યાં તેપદાર્થની અપ્રાપ્તિ થાય છે એમ સમજવું. ૧૫

આવી રીતે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવની નિત્યતાબાબતમાં વાદિતરફથી આવતીશંકાઓનું સંક્ષેપમાં સમાધાન કરીને મૂલમાં આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવનું લક્ષણ કહે છે.

મૂલમ્ । यदाऽनुभवयोग्यत्वं वर्त्तमानस्य वस्तुनः ।
आविर्भावः स विज्ञेयस्तिरोभावस्ततोऽन्यथा ॥१६॥

શબ્દાર્થ—વર્ત્તમાનવસ્તુની જ્યારે અનુભવની યોગ્યતા હોય તે આવિર્ભાવ જાણવો અને અનુભવની અયોગ્યતા હોય તે તિરોભાવ જાણવો.

ટીકા—અનુભવની યોગ્યતા કહેવાથી પર્વતની ગુફાવિગેરેમાં અંકુર ઉગેલ હોય તે આપણને અનુભવમાં આવે તેમ નથી પણ અનુભવની યોગ્યતા છે તેથી તેનો આવિર્ભાવ કહેવામાં બાધ આવે તેમ નથી. અને સસલાને શીંગડાં નહિં હોવાથી તેને અનુભવની યોગ્યતા નથી માટે તેનો આવિર્ભાવ કહેવાય તેમ નથી. વૃક્ષ તથા શરીરાદિકની વૃદ્ધિ થાય છે તેમાં પ્રથમનાં રૂપનો તિરોભાવ થઇ બીજાં રૂપનો આવિર્ભાવ થાય છે અને દૂધમાંથી દહિં થાય છે તેમાં દૂધનાં રૂપનો તિરો-ભાવ થઇ દહિંનાં રૂપનો આવિર્ભાવ થાય છે; અર્થાત્ પ્રથમનાં રૂપનો તિરોભાવ થઈ રૂપાંતરનો આવિર્ભાવ થાય છે. અનુભવને યોગ્ય ન હોય ત્યારે તિરોભાવ કહેવાય છે. ૧૬

આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવને સ્વીકારશું અને પ્રાગભાવ, પ્રધ્વંસાભાવ, અ-ત્યંતાભાવ અને અન્યોન્યાભાવ છે ત્યારે બહુ ગૌરવ થશે એમ શંકા થાય ત્યાં કહે છે.

મૂલમ્ । प्रागभावादयो नाङ्गीकार्या आभ्यां यतोऽखिलम् ।
तद्विस्तरभियानात्र लिख्यतेऽन्यत्र दृश्यताम् ॥ १७ ॥

શબ્દાર્થ—પ્રાગભાવાદિક સ્વીકારવા નહિં કેમકે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવથીજ સર્વ સિદ્ધ થાય છે. તે વિસ્તારના ભયથી અહિં લખેલ નથી. બીજા ગ્રંથમાં જુઓ.

ટીકા—પ્રાગભાવ, પ્રધ્વંસાભાવ, અત્યંતાભાવ અને અન્યોન્યાભાવ સ્વીકારવા નહિં; કેમકે આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવથીજ સર્વ સિદ્ધ થાય છે તે પ્રાગભાવનું ખંડન, સર્વનિર્ણયનિબંધ અને તેના આવરણભંગાદિકમાં જોવું; ત્યાં લખ્યું છે કે કારણાવસ્થાથી પ્રાગભાવ જૂદો પડતો નથી; માટે પ્રાગભાવ, કાર્યનું જૂદું કારણ છે એમ કલ્પવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી. આગળ કાર્ય થવાનું હોય તેનાં જ્ઞાનવડેજ પ્રાગભાવનો અનુભવ થાય છે; તેસ્થલે નૈયાયિકલોકોનું કહેવું એમ છે કે ઘટપણાથી અને કપાલપણાથી કાર્યકારણભાવ છે; એટલે ઘટ કાર્ય છે અને કપાલ કારણ છે એમ સામાન્યરીતે કાર્યકારણભાવ છે તોપણ અમુકકપાલથી અમુક ઘડો ઉત્પન્ન થાય એવો નિયમ સાધારણકાર્યકારણભાવમાં સંભવતો નથી તેમ આકપાલથી આ ઘડો થાય એવું કાંઈ પ્રમાણ નથી અને એકઘડાનું કારણ ઘણાં કપાલ માનવામાં ગૌરવ થાય માટે જેકપાલમાં જેઘડાનો પ્રાગભાવ હોય તેકપાલમાંથી તેજ ઘડો થાય એમ માનવું જોઇએં એટલેં પ્રાગભાવની સિદ્ધિ થાય છે. એમ તાર્કિકલોકો કહે છે, તેનો ખુલાસો એવી રીતેં છે કે જ્યાં સર્વ કપાલ સિદ્ધ છે, અને ઘડો આગલે દિવસ થવાનો છે ત્યાં (કપાલમાં) કારણપણું સિદ્ધછે, પ્રાગભાવ પણ રહ્યો છે અને બીજાં (કુલાલ, દંડ તથા ચક્રાદિક) કારણો પણ છે છતાં ઘડો ઉત્પન્ન થયો નથી; માટે ઘડો ઉત્પન્ન થવાનો કાલ હજી નથી એમ અવશ્ય કહેવું જોઇએં. તે કાલ સર્વસાધારણ છે તોપણ જેવખત પોતેં ઉત્પન્ન થાય છે તેવખત કાર્યને ઉત્પન્નકરવામાટે સમગ્રસમવાયિકારણમાં રહેલ એવો તેની અવસ્થાનો ભેદ સંપાદન કરે છે, જેની અંદર કાર્યને અનુકૂલપણાનું રૂપ રહેલું છે. એમ અવશ્ય સ્વીકારવું જોઇએં. એમ ન હોય તો આગલે દિવસ થનાર ઘડો આજેજ થાય અને આગલે દિવસ થનાર છે એવો વ્યવહાર થાય છે તેને બાધ આવે; માટે ઉત્પત્તિનો સમય થયાવગર પ્રાગભાવ હોય તોપણ ઘડો ઉત્પન્ન થતો નથી; તેથી સર્વકારણમાં રહેલ એવી એકઅવસ્થાથીજ કાર્યનો નિર્વાહ થતો હોય ત્યારેં તેઅવસ્થાશિવાય વળી સર્વકપાલમાં તેકારણાવસ્થાથી જૂદો પ્રાગભાવ કલ્પવો એમાં કાંઈ પ્રમાણ નથી, અને તે અવસ્થા કારણનાં સ્વરૂપથી જૂદી અનુભવમાં આવતી નથી માટે તેવી અવસ્થાવાળાં કારણનેજ તે લોકો પ્રાગભાવ કહે છે; કારણાવસ્થાથી જૂદો પ્રાગભાવ નથી.

શંકા—પ્રાગભાવને સ્વીકારશું નહિં તો એક વખત ઘડો ઉત્પન્ન થયા પછી વળી પાછો ઘડો ઉત્પન્ન થવાનો પ્રસંગ આવશે અને પ્રાગભાવને કારણ માનશું તો ઘડો ઉત્પન્ન થયા પછી તેપ્રાગભાવનો નાશ થાય છે એટલેં પ્રાગભાવરૂપકારણ નહિંહોવાથી ફરી ઘડો થવાનો પ્રસંગ નહિં આવે.

ઉત્તર—કારણાવસ્થાનો તિરોભાવ માનવાથીજ તેનો નિર્વાહ થાય છે; કેમકે ઘડો ઉત્પન્ન થયો એટલેં કપાલવિગેરેમાં જે કારણાવસ્થા હતી તેનો તિરોભાવ

થાય છે. પછી કારણાવસ્થા નહિં હોવાથી ઘટરૂપ કાર્ય ફરીને કેમ થાય? માટે કારણાવસ્થાથી જૂદો પ્રાગભાવ માનવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી.

શંકા—ઘડો થયાપહેલાં આકપાલમાં ઘડો નથી એમ ઘડાના અભાવની પ્રતીતિ થાય છે એજ પ્રાગભાવમાં પ્રમાણ છે.*

ઉત્તર—ઘડો ઉત્પન્ન થયા પહેલાં આકપાલમાં ઘડો નથી એવી પ્રતીતિ થાય છે તે તમામઘડાના અભાવની પ્રતીતિ થાય છે. તે પ્રતીતિ તો જેમ આભૂતલમાં ઘડો નથી એવી પ્રતીતિ થાય છે તેને તમે અત્યંતાભાવ માનો છો તેવીજરીતની છે તેથી સામાન્યઘટાભાવની પ્રતીતિ છે તે પ્રાગભાવની પ્રતીતિ છે એમ પ્રાગભાવરૂપવિશેષપણું તેપ્રતીતિમાં આવતું નથી.

શંકા—જે સામાન્યઘટાભાવ તમે કહો છો તે પ્રાગભાવજ છે. એમ માનો.

ઉત્તર—પ્રાગભાવને સામાન્ય અભાવ માનશો તો પ્રાગભાવ તો વિનાશી છે તેથી એકાદ ઘડો ઉત્પન્ન થયો કે પ્રાગભાવનો નાશ થવાનો સંભવ થાય ત્યારે હમણાં આકપાલમાં ઘડો નથી એવી પ્રતીતિ થાય છે તેને બાધ આવે.

શંકા—સર્વઘડાનો નાશ થાય ત્યારેંજ પ્રાગભાવનો નાશ થાય એમ માનવું.

ઉત્તર—સર્વઘડાનો નાશ થાય ત્યારેં પ્રાગભાવનો નાશ થાય એમ માનશો તો એક ઘડો ઉત્પન્ન થયો હોય તો પણ પ્રાગભાવનો નાશ થાય નહિં એટલેં અવયવી એવા કાર્યરૂપઘડામાં તેના અવયવપણાથી કપાલાદિક જે પ્રતીયમાન છે તેમાં પણ ઘડો નથી એવી પ્રતીતિ થવી જોઈએ. અને પ્રાગભાવ તથા તેનો પ્રતિયોગી જે ઘડો તે બન્ને એકસમયેં એકજસ્થલમાં રહેતા હોય એમ માનવું જોશે ત્યારેં અત્યંતાભાવની પેંઠે પ્રાગભાવને પણ નિત્યપણું પ્રાપ્ત થશે એ તમારા મતથી વિરુદ્ધ થશે.

શંકા—ઘડો પાંકે છે ત્યારેં જે પક્વઘડામાં સ્પર્શ, રૂપ, રસઅને ગંધ પાકથી ઉત્પન્ન થાય છે, તેઘડામાં પ્રથમ તે સ્પર્શાદિક નહિં હતા તેની ઉત્પત્તિ થઇ ત્યાં તેનો પ્રાગભાવ માન્યાવગર કેમ ચાલશે?

ઉત્તર—એકકારણાવસ્થાથી સ્પર્શાદિક ચારે ઉત્પન્ન થવામાં કાંઈ બાધક નથી; કેમકે તેના સ્વભાવથી તેવો પરિણામ થાય છે અને તે કાર્ય થયાથીજ જાણીશકાય છે. કાર્ય સત્ય છે એવો સિદ્ધાંત છે, તેમાં કારણમાંજ સત્યપદાર્થોનો આવિર્ભાવ થાય છે એવો સ્વીકાર છે; માટે તેવી રીતેં પણ પ્રાગભાવની સિદ્ધિ થાય તેમ નથી.

શંકા—કપાલાદિક જેટલાં કારણો છે તે ઘડારૂપકાર્યની પહેલાં રહેવાં જોઇએં; કેમકે જેકારણવગર કાર્ય સિદ્ધ થાય નહિં અને કાર્યની પહેલેં નિયમથી રહેતું હોય તે કારણ કહેવાય છે. તેકારણમાં કાર્યની પહેલાં રહેવાપણાંરૂપ જે અંશ છે તે, પ્રાગભાવ માનશો નહિં તો કેમ જાણી શકાશે? કપાલમાં ઘડાનો પ્રાગભાવ છે

* ઘડાનાં કપાલ તયાર થયાં હોય અને ઘડો હજી તયાર થવાનો હોય ત્યારેં આકપાલમાં ઘડો નથી એવો અનુભવ થાય છે તે ઘડાના અભાવનો અનુભવ થાય છે અને ઘડો થયાપહેલાં અભાવનો અનુભવ થાય છે તેથી પ્રાગભાવ કહેવાય છે.

૬

એમ માનશું ત્યારેં ઘડાની પહેલાં કપાલ છે એમ જણાશે; કેમકે પ્રાગભાવનો જે સમય છે તેસમયમાંજ તે કારણો રહે છે; માટે પ્રાગભાવનું ગ્રહણ થાય ત્યારેંજ તેકારણોનું ગ્રહણ થાય તેમ છે.

ઉત્તર—આકપાલમાંથી ઘડો થવાનો છે એવું જ્ઞાન થાય છે તેનાથીજ આ-કપાલાદિક ઘડારૂપ કાર્યની પહેલેં રહેલાં છે એમ જાણીશકાય છે. જો તેમ ન હોય તો પ્રાગભાવને પણ તમે કારણ માનો છો ત્યારેં તેમાં કાર્યની પહેલેં રહેવારૂપ અંશ રહેલો છે તેઅંશનું ગ્રહણકરવામાટે પણ પ્રાગભાવ માનશો તો આત્માશ્રયરૂપ દોષ આવશે એટલેં પ્રાગભાવની કારણતાનુંજ ગ્રહણ થશે નહિં, તેમ કારણાવસ્થાથી પ્રાગભાવ જણાય છે તેકારણાવસ્થાને તમે સ્વીકારશો નહિં તો કારણાવસ્થાનું ગ્રહણ થશે નહિં એટલેં પ્રાગભાવનું પણ ગ્રહણ નહિં થાય. ઘડાને ઉત્પન્નકરવાને અનુકૂલ એવી જે કારણાવસ્થા તેને જે જોતો નથી તેને આકપાલમાં ઘડો થવાનો છે તથા હાલ આકપાલમાં ઘડાનો પ્રાગભાવ છે એવી બુદ્ધિ ક્યારેં પણ થાયજ નહિં.

શંકા—વિશેષ અભ્યાસ હોય તેને તેવી બુદ્ધિ થાય.

ઉત્તર—કેવળ અભ્યાસથીજ તેવી બુદ્ધિ થતી હોય તો કપાલાદિકકારણોને જોયાવગર પણ તેવી બુદ્ધિ થવી જોઇએ. તેમ પ્રાગભાવના જ્ઞાનવગર પણ આ-કપાલાદિકકારણોમાં ઘટરૂપકાર્યની પેહેલેં રહેવાપણાંરૂપ અંશ છે એવી બુદ્ધિ પણ થશેજ; કેમકે કાર્ય થવાનો સમય જેને પછી હોય તેનેજ કાર્યની પહેલેં રહેવાપણુ છે. તેમ આગળ કાર્ય થવાનું છે એમ જેસમયમાં જાણવામાં આવે છે તેકાલનો ધર્મજ કાર્યથવાની પહેલાંનો કહેવાય છે; માટે કપાલવિગેરે કારણો હોય ત્યારેં આમાંથી આગળ ઘડો થવાનો છે એવું જે જ્ઞાન થાય છે તેશિવાય જૂદો પ્રાગભાવ માનવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી; તેથી આકપાલમાં ઘડો નથી એવી જે પ્રતીતિ થાય છે તે સાધારણરીતેં ઘડાના અભાવની પ્રતીતિ થાય છે તેમાં પ્રાગભાવ માની પ્રાક્શબ્દ આગળ ઉમેરવો તે પ્રમાણસિદ્ધ નથી; તે તો આભૂ-તલમાં ઘડો નથી એવી પ્રતીતિને તમે અત્યંતા ભાવ માનો છો તેવીજ આ પ્રતીતિ છે; તેથી કપાલાદિકમાં ઘડાની કારણાવસ્થા છે તેને જે જાણતો નથી તેને કપાલમાં ઘડાનો અભાવ દેખાય છે તે ઘડાનાં કારણરૂપ થતો નથી.

શંકા—કાર્યની કારણાવસ્થાથી પ્રાગભાવ જણાય છે માટે અત્યંતાભાવથી જૂદો છે, કાર્યની ઉત્પત્તિ થયા પછી પ્રાગભાવનો નાશ થાય છે તેથી ધ્વંસાભાવથી જૂદો છે અને *સંસર્ગાભાવરૂપ હોવાથી અન્યોન્યાભાવથી જૂદો છે એમ ત્રણે અ-ભાવથી જૂદો થયો અને અભાવ છે એમ તો અનુભવમાં આવે છે એટલેં ચોથો અભાવ પ્રાગભાવજ અવશિષ્ટ રહ્યો. એવી રીતેં પ્રાગભાવ સિદ્ધ થશે ત્યારેં કારણ-લક્ષણમાં તેનો સમન્વય હોવાથી કારણપણું તેને કેમ નહિં?

* નૈયાયિક લોકો સંસર્ગાભાવ અને અન્યોન્યાભાવ એમ બેપ્રકારના અભાવને માની પ્રાગભાવ, પ્રધ્વંસાભાવ અને અત્યંતાભાવ એમ ત્રણપ્રકારનો સંસર્ગાભાવ માને છે. એટલેં અન્યોન્યાભાવથી સંસર્ગાભાવ જૂદો છે.

ઉત્તર—કેવલ અભાવના અનુભવમાત્રથી પ્રાગભાવની સિદ્ધિ થઇશક્તી નથી; કેમકે બીજા અભાવથી જૂદો છે એમ સિદ્ધ થયું તોપણ કારણાવસ્થાની સાથે તે રહે છે તેનાથી પ્રાગભાવ જૂદો છે એમ સિદ્ધ થતું નથી. કદાચિત્ કારણાવસ્થાની સાથે પ્રાગભાવ થાયછે એમ સિદ્ધ થાય તોપણ કારણ થવાના સમયની સાથે પ્રાગભાવ પણ ઉત્પન્ન થાય છે એમ સિદ્ધ થવાથી તમે પ્રાગભાવને અનાદિ માનો છો તે અનાદિપણું તેનું સિદ્ધ થતું નથી; એટલે તમે (નૈયાયિક લોકો) જે અનાદિ, સાંત પ્રાગભાવ છે એવું પ્રાગભાવનું સ્વરૂપ માનો છો તે સિદ્ધ થતું નથી. તેમ તમે પ્રાગભાવને કારણ માનો છો પણ તેમાં કોયજાતની ક્રિયા નથી અને ક્રિયા (વ્યાપાર) વાળાં અસાધારણકારણનેજ કારણ માનો છો; માટે વ્યાપારવાળું હોય તેજ કારણ થાય એવો નિયમ છે. જેમ કપાળ વ્યાપારવાળું હોવાથી ઘડાનું કારણ છે તેવી રીતે પ્રાગભાવમાં કોઇજાતનો વ્યાપાર* નહિંહોવાથી પ્રાગભાવ છે એમ પણ સિદ્ધ થઇશકતું નથી ત્યાં તેને કારણપણું તો ક્યાંથીજ થઇશકે; માટે કારણવસ્થાથી જૂદો પ્રાગભાવ નથી. એવી રીતે ધ્વંસાભાવ પણ દંડાદિકનાં સ્વરૂપથી જૂદો નથી; કેમકે તિરોભાવનો અર્થ એવો થાય છે કે तिरः (અપ્રકટ) भावयति (કરે છે) તે તિરોભાવ અથવા તિરોભવન કહેવાય છે. બન્નેપ્રકારે નિમિત્ત તથા ઉપાદાનકારણ એબેમાંથી એકનાં સ્વરૂપથી જૂદો ધ્વંસાભાવ છે એમ નિરૂપણ થઇશકતું નથી; માટે કાર્યને પ્રતિકૂલ એવી કારણાવસ્થા એજ ધ્વંસ છે.

શંકા—પ્રથમ જે, ઘડાનો આકાર હોય છે તેનો ધ્વંસ (નાશ) થયા પછી તે આકાર દેખાતો નથી બીજો આકાર દેખાય છે; માટે ધ્વંસ માનવોજ જોઇએ.

ઉત્તર—બીજો આકાર દેખાય છે તે પણ ઘડાનોજ ધર્મ છે એમ સમજવું. જો બીજો આકાર દેખાય છે તે ઘડાનો ધર્મ ન હોય તો घटो ध्वस्तः (ઘડો ધ્વસ્ત થયો) એમ કહેવાય છે ત્યાં ઘટનું વિશેષણ ધ્વંસ થાયજ નહિ પણ ઘડાનાં વિશેષણરૂપે ધ્વંસ વ્યવહારમાં આવે છે તેથી પાકેલા ઘડામાં રક્તિમા આવે છે ત્યારે જેમ રાતો ઘડો કહેવાય છે તેમાં ઘડાનાં વિશેષણરૂપે રક્તિમા વ્યવહારમાં આવે છે તેમ ધ્વંસ થાય છે ત્યારે ઘડો ધ્વસ્ત થયો એમ કહેવાય છે તેમાં ધ્વંસજ વિશેપણરૂપે વ્યવહારમાં આવે છે માટે ઘડાનોજ ધ્વંસનામનો આકાર છે એમ નિશ્ચય થાય છે.

શંકા—પાકેલાઘડામાં રક્તિમા છે તે ઘડાના અભાવરૂપ નથી તેથી રાતો

---

* વ્યાપારનું લક્ષણ એવું છે કે तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः (જેનાથી ઉત્પન્ન થાય તેનાથી ઉત્પન્નથનારને ઉત્પન્ન કરે) જેમ અનુમાનમાં અગ્નિની વ્યાપ્તિવાળોધૂમવાળો આ પર્વત છે એવો પરામર્શ થાય છે તે વ્યાપ્તિજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થાય છે અને વ્યાપ્તિજ્ઞાનથી ઉત્પન્નથનારી-અનુમિતિને ઉત્પન્ન કરે છે માટે પરામર્શ વ્યાપાર કહેવાય છે. તેવી રીતે કપાલ મૃત્તિકાથી ઉત્પન્ન થાય છે અને મૃત્તિકાથી ઉત્પન્નથનારઘડાને ઉત્પન્ન કરે છે તેથી તેમાં વ્યાપારપણું છે એમ કાહશકાય છે પણ પ્રાગભાવ ઉત્પન્ન થતોજ નથી એમ નૈયાયિક લોકો માને છે માટે વ્યાપારપણું તેમાં ઘટતુંજ નથી. અને વ્યાપારવગરનું કારણ હોયજ નહિં, તેથી પ્રાગભાવ ઘટનું કારણ નથી.

ઘડો છે એમ કહેવામાં શક્તિમાને લઇને ઘડાની પ્રતીતિ થાય છે પણ ધ્વંસ તો ઘડાના અભાવરૂપ છે માટે અભાવને લઇને ઘડાની પ્રતીતિ થઇશકે નહિં.

ઉત્તર—(નૈયાયિક લોકો પ્રાગભાવાદિક માનનારા હોવાથી તેના તરફની શંકા છે માટે તેને કહેવું જોઇએ કે) તમારા મતમાં તેજના અભાવરૂપ અંધકાર માનેલું છે ત્યાં તમ (અંધકાર)ને લઇને જેમ તેજની પ્રતીતિ માનો છો તેવી રીતે અહિં પણ ધ્વંસને લઇને ઘડાની પ્રતીતિ થવામાં બાધ નથી; માટે જેમ, ઘડો, જેકારણોવગર થઇશકતો નથી તેકારણોની પાછલ થનાર છે અને કપાલ, દંડ, ચક્રાદિકકારણો-વગર ઘડો થતો નથી તેથી તે કારણો ઘડાની પૂર્વે નિયમથી રહેનાર છે તેથી જેમ ઘડાનું પછીથવાપણું અને કપાલાદિકકારણોનું પૂર્વે રહેવાપણું એબેને લઇને ઘડો કાર્ય અને કપાલાદિક કારણ કહેવાય છે તેમ ઘડોવિગેરે આગળથનાર છે એવું જ્ઞાન અને ઘડાનો આકાર બીજો થઇજાય છે તેબેને લઇને પ્રાગભાવ તથા ધ્વંસ કહેવાય છે; એટલે કપાલાદિકને જોઇને આમાંથી આગળ ઘડો થનાર છે એમ જાણે છે ત્યાં તમે પ્રાગભાવ કહો છો અને ઘડાનો આકાર પ્રથમ હોય તે મટી બીજો થઇજાય છે તેને તમે ધ્વંસ કહો છો બાકી પ્રાગભાવ કે ધ્વંસ કાંઇ પદાર્થજ નથી. તેમ ઘટ પટ નથી અને પટ ઘટ નથી એમ કહેવાય છે ત્યાં ઘટનો અભાવ પટમાં અને પટનો અભાવ ઘટમાં માનવામાં આવે છે તેને અન્યોન્યા-ભાવ કહે છે, ત્યાં પણ ભગવાનની મૂલેચ્છાથી પટમાં ઘટાદિકનો તિરોભાવ છે અને ઘટમાં પટાદિકનો તિરોભાવ છે, જો કે સર્વપદાર્થોને બ્રહ્મરૂપપણું હોવાથી સર્વધર્મ-વાળા સર્વ પદાર્થો છે તો પણ જેમ મત્સ્યાદિક અવતારો તેતેકાર્યમાટે થયેલા છે તેમ જલાહરણકાર્યમાટે ઘટરૂપબ્રહ્મનો આવિર્ભાવ છે અને આવરણરૂપકાર્ય-માટે પટરૂપબ્રહ્મનો આવિર્ભાવ છે; માટે અન્યોન્યાભાવ નહિંમાનિયે તો ઘટ વડે પટનું કાર્ય અને પટવડે ઘટનુંકાર્ય થશે એમ નૈયાયિક લોકો કહે છે તેનો નિરાસ થયો; કેમકે જેમ મત્સ્યાદિક અવતારો ભગવાનના છે તેમાં જેઅવતારવડે જેલીલા-કરવાની પોતાની ઇચ્છા છે તેઅવતારવડે તેજ લીલા અને તેને ઉપયુક્ત કાર્ય કરે છે, તેમ જગતમાં ઘટ, પટવિગેરે સર્વેપદાર્થો બ્રહ્મરૂપજ છે પણ તેની અંદર-જેનાથી જે કાર્ય કરવાની પોતાની ઇચ્છા છે તેનાથી તેજ કાર્ય થઇશકે છે બીજું કાર્ય થઇશકતું નથી. જેમ લોકમાં પણ કટક, કુંડળ, નૂપુર અને હારવિગેરે સર્વ પદાર્થો સુવર્ણમાંથી બનેલા હોવાથી સુવર્ણરૂપજ છે તથાપિ તેમાં કટકમાં કુંડળનો, કુંડળમાં કટકનો, નૂપુરમાં કડાંનો અને કડામાં નૂપુરનો એમ તમામનો પરસ્પર અન્યોન્યાભાવ માન્યાવગરજ કુંડળનું કાર્ય કટકથી, કટકનું કુંડળથી, નૂપુરનું કટકથી કે કટકનું નૂપુરથી કાંઇ થઇશકતું નથી; તેમાં તેવ્યવહારબાંધનારની ઇચ્છાજ નિયામક જોવામાં આવે છે તેવી રીતે સર્વ કાર્ય ભગવાનની ઇચ્છાના નિયમપ્રમાણેજ થાય છે; તેથી અન્યોન્યાભાવ માનવાનું કાંઇ કારણ નથી. તેવીજ રીતે અત્યંતાભાવ માનવાનું પણ કાંઇ કારણ નથી તિરોભાવથીજ તમામ નિર્વાહ થઇશકે છે. ભૂતલમાં ઘડાનો અત્યંતાભાવ માનવો તેના કરતાં તિરોભાવ માનવો

એજ વધારે સારું છે. (૧૭)

એવી રીતેં સર્વપ્રપંચનું સત્યપણુ સિદ્ધકરીને તેના પ્રસંગમાં આવેલા આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવનું નિરૂપણ કરિને કાર્યકારણની સત્યતાનો પ્રસંગ ચાલે છે તેનું અધિકરણ, અપાદાન, સંબંધ, સંપ્રદાન, કર્મ, કર્ત્તા અને પ્રકાર એસર્વને બ્રહ્મરૂપપણુંજ છે એમ શ્રીભાગવતના શ્લોકથી સિદ્ધકરે છે.

मूलम्। यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १८ ॥
इति भागवते पद्ये सर्वस्य ब्रह्मता श्रुता।
श्रुतिसूत्रैः स्मृतिगणैः दृष्टिः स्वर्णार्थिनो यथा ॥ १९ ॥
सुवर्णस्य च ये खण्डाः कटका मुद्रिकादयः।
सुवर्णत्वेन गृह्णाति तथा ब्रह्मविदो मतिः ॥ २० ॥

શબ્દાર્થ—આ જગત્ જ્યાં, જણેકરિને, જેનાથી, જેનું, જેનેમાટે, જે, જે, જેવી રીતેં, જ્યારેં થાય છે તે સાક્ષાત્ પ્રધાનપુરુષેશ્વર 'ભગવાનજ' છે. એશ્રીભાગવતના દશમસ્કંધના શ્લોકમાં સર્વની બ્રહ્મતા સાંભળી છે, તેવીજ રીતેં શ્રુતિ, સૂત્રો અને સ્મૃતિના સમૂહોવડે પણ, સર્વનું બ્રહ્મપણું સિદ્ધ છે; તેથી સર્વ બ્રહ્મ છે એવી દૃષ્ટિ (શુદ્ધાદ્વૈતજ્ઞાનવાળાની રહે) છે. ત્યાં દૃષ્ટાંત આપે છે કે કડાં અને વીંટી-વિગેરે જે સુવર્ણના ભાગો છે તેને (આ સુવર્ણજ છે એવી રીતેં) સુવર્ણપણાથી સુવર્ણની ઇચ્છાવાળાની દૃષ્ટિ જેમ ગ્રહણ કરે છે તેમ બ્રહ્મને જાણનારની મતિ થાય છે.

ટીકા—શ્રીભાગવતના શ્લોકમાં વિભક્તિના અર્થ પણ બ્રહ્મજ છે એમ નિરૂપણ કર્યું છે તેવીજ રીતેં શ્રુતિ, સૂત્રો અને સ્મૃતિના સમૂહોવડે પણ સર્વબ્રહ્મરૂપજ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. મૂળમાં યદા (જ્યારેં) એ અવ્યય લખેલ છે તે કાલને કહેનાર છે તેથી કાલને પણ બ્રહ્મપણું છે એમ બતાવે છે, તેથીજ શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતાના ૧૧ મા અધ્યાયમાં कालोऽस्मि (હું કાલ છું) એમ ભગવાને અર્જુનપ્રત્યે કહેલ છે; તેથી આપણા સિદ્ધાંતમાં દ્વૈતનો લેશ પણ નથી; આવી રીતેં નિરૂપણ કરવાથી બ્રહ્મને ઉપાદાનકારણપણું હોય તો નિમિત્તકારણપણું ઘટે નહિં અને નિમિત-કારણપણું હોય તો ઉપાદાનકારણપણું ઘટે નહિં એવી શંકાનો નિરાસ થયો; કેમકે વિરૂદ્ધધર્માશ્રયપણું બ્રહ્મનું લક્ષણ હોવાથી બ્રહ્મ સર્વરૂપ થવાને સમર્થ છે. તે પ્રથમજ નિરૂપણ કર્યું છે. (૧૮) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (આ સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે.) ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં, आत्मा कार्त्स्न्यम् (બધું આત્મા છે) ઇત્યાદિકસૂત્રોમાં, भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णुः (સર્વભૂત વિષ્ણુરૂપ છે અને સર્વ ભુવનો વિષ્ણુરૂપ છે.) ઇત્યાદિકવિષ્ણુપુરાણમાં અને શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતામાં પણ કહેલ છે કેઃ—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

અર્થ—આ સર્વ વાસુદેવ (ભગવદ્રૂપ) છે એમ જાણનાર ઘણાજન્મોની અન્તે મ્હારી શરણે આવે છે તે મહાત્મા અત્યંત દુર્લભ છે. ઈત્યાદિકસ્થળોમાં સર્વ બ્રહ્મ છે એમ નિરૂપણ કર્યું છે (૧૯) સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે એવું સિદ્ધકરવામાં દૃષ્ટાંત આપે છે કે કડાં અને કુંડલવિગેરે જે સુવર્ણના ખંડો છે તેને સુવર્ણની ઇચ્છા-વાળાની દૃષ્ટિ સુવર્ણરૂપેંજ જાણે છે તેવી રીતેં બ્રહ્મને જાણનારની મતિ સર્વને બ્રહ્મરૂપેંજ જાણે છે તેવિષે શ્રીભાગવતદ્વાદશસ્કંધના ૪ થા અધ્યાયમાં કહેલ છે કેઃ—

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ।
एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३० ॥

અર્થ—જેમ માણસો વ્યવહારના માર્ગોમાં જૂદી જૂદી ક્રિયાઓવડે એકજ સુવર્ણને ઘણેપ્રકારે જૂદા જૂદા (કડાં કુંડલ, નૂપુરવિગેરે) નામોથી ઉપયોગમાં લેછે તેમજ લૌકિક તથા વૈદિક માણસો, અધોક્ષજ—ભગવાનને જૂદાં જૂદાં વચનો (નામો) વડે બોલે છે. તેમજ એકાદશસ્કંધના ૨૮ મા અધ્યાયમાં પણ કહેલ છે કેઃ—

यथा हिरण्यं सुकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥

અર્થ—સુવર્ણનો જેમ સારો ઘાટ કરેલો હોય તે પ્રથમ સુવર્ણજ છે, ઘાટ મટીગયાપછી પણ સુવર્ણમયઘાટનું સુવર્ણજ રહે છે અને ઘાટ હોય ત્યારેં મધ્યદશામાં જૂદાં જૂદાં નામોવડે વ્યવહારમાં આવનારું પણ સુવર્ણજ છે તેવીજ રીતેં આજગતની પહેલેં હુંજ હતો, જગતનો લય થયા પછી પણ હું છું અને મધ્યમાં (જગત્ છે ત્યારેં) જૂદાં જૂદાં (ઘટપટાદિક) નામોવડે વ્યવહારમાં આવનાર હુંજ છું. એમ શ્રીકૃષ્ણ—ભગવાને ઉદ્ધવજીપ્રત્યેં કહેલ છે તેમજ ૧૩ મા અધ્યાયમાં હંસ—ભગવાને બ્રહ્માજી તથા સનકાદિકને કહેલ છે કેઃ—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुद्ध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥

અર્થ—મનવડે વચનવડે, દૃષ્ટિવડે અને બીજીઈંદ્રિયોવડે પણ જેટલું ગ્રહણ-કરવામાં આવે છે તે સર્વ હુંજ છું, મ્હારાથી જૂદું નથી એમ તમે વગરમહેનતેં (સહેજમાં) જાણીલ્યો. એમ કહ્યું છે તેથી સર્વઈંદ્રિયોથી જેનું ગ્રહણ થાય છે તે (નામરૂપાત્મક) સર્વ બ્રહ્મજ છે એમ સમજવું. (૨૦)

એવી રીતેં સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે એમ નિરૂપણ કર્યુંતેમાં શ્રુતિનું પ્રમાણ આપેછે.

मूलम् । यथा सोम्येत्यादिश्रुतौ स्पष्टमेव निरूपितम् ।
तथा तत्त्वमसीत्यत्राभेदोंऽशांशिविचारतः ॥ २१ ॥

શબ્દાર્થ—જેમ છાંદોગ્યઉપનિષદના છઠ્ઠા પ્રપાઠકના પ્રથમખંડમાં યથા સોમ્ય ઇત્યાદિકશ્રુતિમાં સ્પષ્ટ નિરૂપણ કરેલું છે, (કે સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે.) તેમ તેજપ્રપાઠકના

૮ મા ખંડથી તે ૧૬ મા ખંડસુધી નવવાર ઉપદેશ કર્યો છે તેમાં तत्त्वमसि એમ નવવખત કહેલ છે ત્યાં જીવ અંશ છે અને બ્રહ્મ અંશિ છે એવા વિચારથી અભેદ છે એમ નિરૂપણ કર્યું છે.

ટીકા—છાંદોગ્યઉપનિષદના છઠ્ઠા પ્રપાઠકના પ્રથમખંડમાં અરુણિના પુત્ર ઉદ્દાલકે પોતાના પુત્ર—શ્વેતકેતુને કહેલ છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं भवति ।

અર્થ—હે સોમ્ય ! જેમ એકમાટીનો પિંડો જાણવાથી મૃત્તિકામય (ઘટશરાવાદિક) સર્વપદાર્થો જણાઇજાય છે તેવી રીતે એક બ્રહ્મ જાણવાથી સર્વ (જગત્) જણાય છે. ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં મૃત્તિકા અને તેમાંથી થયેલઘડાવિગેરેમાં કાંઇ ભેદ નથી તેમ બ્રહ્મ અને તેમાંથી થયેલ જગતમાં ભેદ નથી. તેમ तत्त्वमसि (તે બ્રહ્મ તું છો.) ઇત્યાદિકશ્રુતિયોમાં જીવ અંશ છે અને બ્રહ્મ અંશિ હોવાથી તેમાં ભેદ નથી. એમ સિધ્ધ કર્યું છે. અહિં સર્વમતના સંગ્રહનો શ્લોક છે કેઃ—

केचित्तत्त्वमसीति वाक्यविषये तत्त्वम्पदे लक्षणां केचित्तत्र ङसो लुकं
विदधते भाष्यं तु केचिज्जगुः । केचिच्चिद्विपयादभेदमपरे छिन्दन्त्य-
तत्त्वं पदं सिद्धान्ते तु सुवर्णवज्जगदिदं ब्रह्मैव जीवस्तथा ॥

અર્થ—तत्त्वमसि એવાકયના અર્થમાં કેટલાક (શંકરાચાર્યના મતવાળા) तत् પદ અને त्वं પદમાં લક્ષણા કરે છે. એટલે तत् શબ્દથી સર્વજ્ઞત્વાદિક ધર્મોવાળું બ્રહ્મ (માયોપહિત ઇશ્વર*) અને त्वं શબ્દથી અલ્પજ્ઞત્વાદિકધર્મોવાળો જીવ એબેનો અભેદ સંભવે નહિં માટે ભાગત્યાગલક્ષણા માને છે તેમાં સર્વજ્ઞત્વાદિક તથા અલ્પજ્ઞત્વાદિકધર્મોનો ત્યાગ કરી કેવળ ચૈતન્યાંશનું ગ્રહણ કરીને જીવ તથા બ્રહ્મનો અભેદ કરે છે, જેમ सोऽयं देवदत्तः (તે આ દેવદત્ત) એમ બોલાય છે તેમાં તે અને આ એબેભાગનો ત્યાગ કરી દેવદત્તનુંજ ગ્રહણ થાય છે તેવી રીતે ભાગત્યાગલક્ષણા કરે છે, કેટલાક (રામાનુજ, માધ્વ અને શૈવ) तत्त्वं એવું વાકય છે ત્યાં तस्य (તેનો) त्वं (તું) એવો અર્થ કરી तस्य એ ષષ્ઠી વિભક્તિનો લોપ થયો એમ માને છે; એટલે તેબ્રહ્મના સંબંધવાળો તું છો એવો અર્થ કરી સેવ્યસેવકભાવરૂપ સંબંધ માને છે, કેટલાક (રામાનુજાદિકમતનું વ્યાખ્યાનકરનારા) ભાષ્ય માને છે; એટલે तत् શબ્દ કહ્યો છે ત્યાં "શબ્દમાં જે જે વિભક્તિનો અર્થ કરવાનું બુદ્ધિમાં આવે તે તે વિભક્તિનો આશ્રય કરવો" એમ ભાષ્યમાં લખેલું છે તેને આધારે ષષ્ટી વિભક્તિનો આશ્રય કરિને તેનો તું છો એવો અર્થ (પ્રથમની પેઠે) કરે છે, કેટલાક (નિંબાર્કમતવાળા) બ્રહ્મમાં તથા જીવમાં ચૈતન્યરૂપ ધર્મ સરખો હોવાથી જીવ તથા બ્રહ્મમાં અભેદ છે એમ માને છે, કેટલાક (માધ્વમતના એકદેશિઓ)

* નિર્ગુણબ્રહ્મનો માયામાં પ્રતિબિંબ પડયો તે ઇશ્વર (સર્વજ્ઞત્વ, જગત્કર્તૃત્વાદિક, ધર્મવાળા) થયા અને અવિદ્યામાં પ્રતિબિંબ પડયો તે જીવ (અલ્પજ્ઞત્વાદિકધર્મવાળો) થયો છે. એમ શ્રીશંકરાચાર્યના મતવાળા માને છે.

आत्मातत्त्वमसि એમ तत्त्वमसिની પહેલાંનો ભાગ લઇને अतत्त्वमसि એવું પદ કાઢીને તે બ્રહ્મ તું નથી; અર્થાત્ તું જીવ છો. એવો અર્થ કરે છે અને બ્રહ્મવાદ (શુદ્ધાદ્વૈત)ના સિદ્ધાંતમાં તો, ઉદ્દાલક પોતાના પુત્ર–શ્વેતકેતુને જે વાક્ય નવવાર બોલી ઉપદેશ કર્યો છે તે વાક્ય આખાંની એકવાક્યતા કરી સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે એવો અર્થ કરે છે. શ્વેતકેતુને ઉપદેશ આપ્યો છે ત્યાં तत्त्वमसि એટલુંજ વાક્ય નથી પણ નવવાર નીચેપ્રમાણે ઉપદેશ કર્યો છે.

स य एषोऽणिमा ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो !।

અર્થ– જે આ અત્યંત સૂક્ષ્મરૂપ આત્મા જગતનાં કારણરૂપ છે તેરૂપજ આ દેખાતુ સર્વ જગત્ છે, તે સત્ય છે, તે આત્મા છે અને હે શ્વેતકેતુ! તે તું છો. એમ જૂદાં જૂદાં દૃષ્ટાંત આપી નવવાર ઉપદેશ કર્યો છે તેમાં સર્વ બ્રહ્મરૂપ છે એમ સિદ્ધકર્યું છે માટે જેમ સુવર્ણના અંશ સુવર્ણરૂપજ છે તેમ બ્રહ્મના અંશરૂપ આ જગત્ બ્રહ્મજ છે તેમ ચિદંશરૂપ જીવ પણ બ્રહ્મ છે. એવો બોધ આવાક્યમાં કરેલો છે. કેવળ જીવ તથા બ્રહ્મનોજ અભેદ બતાવેલ નથી પણ જગત્ તથા જીવ સર્વનો બ્રહ્મની સાથે અભેદ છે એમ આશ્રુતિનો અર્થ છે; માટે तत्त्वमसि એટલુંજ મહાવાક્ય નથી પણ स य एषोऽणिमा ત્યાંથી આરંભીને નવવાર ઉપદેશ કરેલ છે તે સંપૂર્ણ મહાવાક્ય છે; માટે સંપૂર્ણમહાવાક્યનો એક અર્થ શુદ્ધાદ્વૈત-સિદ્ધાંતમાં કરાય છે. બીજા સિદ્ધાંતમાં સંપૂર્ણમહાવાક્યની એકાર્થતા થતી નથી તે નીચેના શ્લોકથી જણાશે.

तत्रोपक्रमसङ्गतिर्बहुविधा भग्ना प्रतिज्ञाश्रुतिर्भक्तिः स्याद्यदि न त्वमेव
कथयेव भेदे च वैषम्यता। साधर्म्येऽपि च भेद एव रसितश्छेदो न
सम्यक् यतः सिद्धान्तः श्रुतिसंमतो विलसति प्राज्ञैर्विचार्यं मुहुः ॥

અર્થ–શ્રીશંકરાચાર્યાદિકના વ્યાખ્યાનોમાં ઉપક્રમની સંગતિ ઘણેપ્રકારે ભગ્નથાય છે. જેમ કે तत्त्वमसि એ વાક્ય છાંદોગ્યઉપનિષદમાં શ્વેતકેતુના ઉપાખ્યાનમાં છે; તેમાં શ્વેતકેતુ ચારે વેદ અર્થસહિત જાણીને મહાઅભિમાની કોઇને નમે નહિં તેવો થઇને પોતાના પિતા (ઉદ્દલાક) પાસે આવ્યો ત્યારે તેનું અભિમાન મટાડવા અને તેને નમ્ર કરવામાટે તેના પિતાએ પૂછ્યું છે કેઃ–

यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः
येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति ।

અર્થ–હે સોમ્ય! જે આવું અભિમાન થયું છે કે હું મહોટો છું એવાં મનવાળો, મ્હારા જેવો બીજો કોય (ભણેલ) નથી એમ માનનાર તું કોઇને નમતો નથી એવો અક્કડ બનેલો છે તે તારા ગુરુપાસે તેં શું એવો ઉપદેશ પૂછેલો છે? કે જેનાથી નહિં સાંભળેલું સાંભળેલું થાય, નહિંમાનેલું માનેલું અને નહિંજાણેલું જાણેલું થાય. એમ એકજાણવાથી સર્વ જણાય એવું તું કાંઇ ભણેલો છે? એમ ઉદ્દાલક પોતાના પુત્ર–શ્વેતકેતુને પૂછ્યું ત્યારે તેણે કહ્યું કે એવું મને કાંઇ ગુરુયે ભણાવેલ નથી માટે

તમેજ ભણાવો, એમ શ્વેતકેતુના કહેવાથી તેના પિતા—ઉદ્દાલકે ઉપદેશ કર્યો છે; તેમાં પ્રારંભમાંજ એકજાણવાથી સર્વ જણાઇજવાની પ્રતિજ્ઞા છે તે સર્વ એક હોય ત્યારેંજ તેમ બને, જેમ સુવર્ણમાંથી થયેલ કડાં, કુંડલ અને મુદ્રિકાવિગેરે પદાર્થો તથા સુવર્ણની લગડીયો એ સર્વ સુવર્ણ હોવાથી એક સુવર્ણના જ્ઞાનથી તમામનું જ્ઞાન થાય છે. તેસારુ પ્રથમજ सदेव सोम्येदमग्रआसीत् (હે સૌમ્ય! આ જગત્ આગળ સદ્રૂપજ (બ્રહ્મજ) હતું એમ નિરૂપણ કર્યું છે; માટે ઉપદેશવાક્યમાં પણ પ્રથમ સર્વ જડ સદ્રૂપ છે એમ બતાવવામાટે ऐतदात्म्यमिदं सर्वं (આ દેખાતું સર્વ સદ્રૂપજ છે) એમ કહ્યું છે. બ્રહ્મ તો સત્ય છે અને જડપદાર્થનો તો નાશ દેખાય છે તેથી તે અસત્ય હશે એમ કોઇને શંકા થાય તેની નિવૃત્તિસારુ વળી કહ્યું છે કે तत्सत्यम् (તે સત્ય છે) માટે નાશ નથી પણ પદાર્થમાત્રનો આવિર્ભાવ તથા તિરોભાવ થાય છે. (તેનો વિસ્તાર પ્રથમ આવીગયો છે.) ઉપદેશવાક્યમાં પ્રથમ જડનું નિરૂપણ કર્યું છે અને પછી જીવનું નિરૂપણ છે તે બન્ને સત્ય છે એમ બતાવવામાટે (દેહલી *દીપના ન્યાયથી) વચમાં કહ્યું છે કે स आत्मा (તે આત્મા છે). એવી રીતે જડ બ્રહ્મરૂપ છે એમ કહિને જીવ બ્રહ્મરૂપ છે એમ બતાવવામાટે કહે છે કે तत्त्वमसि (તે તું છો.) આ ઉપદેશ છે; કેમકે વ્યાસસૂત્રના ચતુર્થાધ્યાયના પ્રથમપાદના પ્રારંભના સૂત્રમાં आवृत्तिरसकृदुपदेशात् (ઉદ્દાલકે શ્વેતકેતુને ઉપદેશ કર્યો છે તેસારુ નવવાર આવૃત્તિ કરી છે.) એમ કહ્યું છે; માટે નવવાર જેટલા વાક્યનો ઉપદેશ કર્યો છે તેટલું સંપૂર્ણ મહાવાક્ય છે, તેમાં ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् (આ દેખાતું સર્વ જગત્ સદ્રૂપ છે) એમ કહ્યું છે ત્યાં સદંશમાં જેમ ભાગત્યાગલક્ષણા કરતા નથી તેમ तत्त्वमसि (તે તું છો) એમ જીવને બ્રહ્મરૂપ કહેલ છે ત્યાં ચિદંશમાં પણ ભાગત્યાગલક્ષણા નથી. તેમ શ્વેતકેતુ અવતાર નથી કે તેનેજ બ્રહ્મરૂપ કહે; કેમકે તે અભિમાનાદિકદોષવાળો હતો એમ શ્રુતિમાંજ કહેલ છે; માટે જડ, જીવ, સમગ્ર બ્રહ્મરૂપ છે એમ આ વાક્યોપદેશમાં કહેલ છે તેમાંથી तत्त्वमसि એટલોજ ભાગ લઇને કેવળ જીવ તથા બ્રહ્મનોજ અભેદ બતાવે છે એમ કહેવું સંભવતું નથી; કેમકે વાક્ય તુટીજાય છે એ વાક્યભેદનો પ્રસંગ આવે છે, અને પ્રથમ એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજાય એવી પ્રતિજ્ઞા કરી છે તેનો વિરોધ આવે છે. તેવિષે પ્રાચીન વિદ્વાનો કહે છે કેઃ—

उपक्रमोपसंहारे योऽर्थस्तु प्रतिपाद्यते ।
स एवोत्तरपक्षः स्यात्पूर्वपक्षस्ततोऽन्यथा ॥

અર્થ—ઉપક્રમ (પ્રારંભ)માં અને ઉપસંહાર (સમાપ્તિ)માં જેઅર્થનું પ્રતિપાદન થાય છે તેજ ઉત્તર (સિદ્ધાંત) પક્ષ હોય અને તેથી ઉલટા હોય તે પૂર્વપક્ષ કહેવાય; એટલે પ્રારંભ તથા સમાપ્તિમાં લખેલી બાબતને છોડીદઇને વચમાં લખેલી બાબતને

* ઘરના ઉબરા ઉપર દીવો રાખવામાં આવે તેનો પ્રકાશ ઘરની અંદર તથા બહાર બન્ને તરફ પડે તેવી રીતે બન્ને તરફ જ્યાં સંબંધ હોય ત્યાં દેહલીદીપ ન્યાય કહેવાય છે.

વળગી રહે તે પૂર્વપક્ષી (વાદી) કહેવાય છે સિદ્ધાંતી કહેવાતો નથી; તેથી પ્રારંભમાં એકજાણવાથી સર્વ જણાઇજાય એવી પ્રતિજ્ઞા કરી છે તેને અને ઉપદેશવાક્યમાં પ્રથમ જડને સદ્રૂપપણું કહેલ છે તેને છોડીદઇને કેવળ तत्त्वमसि એટલુંજ વાક્ય માની ભાગત્યાગલક્ષણા સ્વીકારાયજ નહિં. ભેદવાદિયોના મતમાં પણ શ્રુતિમાં એકજાણવાથી સર્વ જણાઇજાય એવી પ્રતિજ્ઞા કરી છે તેપ્રતિજ્ઞાનો ભંગ થાય છે; કેમકે ભેદવાદિયોના મતમાં બ્રહ્મથી જગત્ જૂદું હોવાથી, જેમ સુવર્ણ જાણવાથી, મૃત્તિકાના વિકારો જણાતા નથી, સુવર્ણના વિકારોજ જણાય છે તેમ બ્રહ્મ જાણવાથી જગત્ જણાય નહિં, એટલે એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજાય એવી પ્રતિજ્ઞા કરી છે તેનો ભંગ થાય છે, વાસ્તવિક ભેદાભેદવાદિયોના મતમાં ભેદજ્ઞાનવાસ્તવિક હોવાથી ભેદવાદિયોની પેઠેજ ઉપક્રમનો વિરોધ અને શ્રુતિમાંકહેલી (એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજવાની) પ્રતિજ્ઞાની હાનિ થાય છે. તેમ જો લક્ષણા થાય તો तत्त्वमसि (તે તું છો) એવાક્યમાં त्वं શબ્દ પ્રત્યક્ષદેખાતા એવા દેહને કહેનારો હોવાથી દેહનુંજ બ્રહ્મપણું થાય તે તો ઇચ્છિત ન હોય, માટે न त्त्वमसि (અલ્પગુણોપાધિવાળો તું બ્રહ્મ નથી) એમજ શ્રુતિમાં કહેત, પણ तत्त्वमसि (તે બ્રહ્મ તું છો) એમ કહ્યું છે તેથી શ્રુતિમાં લક્ષણા કરવાનો અભિપ્રાય નથી. तस्य (તેનો) त्वं (તું) असि (છો) એવો અર્થ કરવામાં ભેદજ રહે છે, ત્યારેં તમામ જીવો બ્રહ્મથી જૂદા છે એમ થયું; તેમાં કોઇને સુખ અને કોઇને દુઃખ આપવામાં બ્રહ્મમાં વિષમતારૂપ દોષ આવે છે અને જીવોને (પોતાનાં) કર્મોને આધારે સુખદુઃખ મળે છે એમ કહીશું તો સર્વકરવાની સત્તા કર્મમાં સ્વીકારી ત્યારેં ઇશ્વરની કાંઇ જરૂર નહિં રહેવાથી નિરીશ્વરવાદ માનવો પડશે, તેમ કર્મપ્રમાણે ફલ આપવું એ ઇશ્વરના આધીનમાં હોવાથી નિરીશ્વરવાદ નહિં આવે એમ કહેશો તોપણ ઇશ્વર કર્માધીન થયા ત્યારેં ઇશ્વરપણું રહેતું નથી. તે આગળ કહેવાશે, જીવ અને બ્રહ્મના ચૈતન્યની એકતાથી અભેદ બાકી ભેદ એવા ભેદાભેદવાદિયોના મતમાં પર્યવસાનમાં ભેદજ રહે છે; તેથી ભેદવાદિયોના મતમાં જે દોષો આવે છે તેજ ભેદાભેદવાદિયોના મતમાં આવે છે, अतत्त्वमसि (તે બ્રહ્મ તું નથી અર્થાત્ તું જીવ છો) એમ અનો પદચ્છેદ કરવો તે વેદને માનનારાઓને સંમત નથી એમ શ્રીઆચાર્યજીયેં આજ્ઞા કરી છે; માટે તેવો અર્થ સારો નથી; કેમકે તેવો અર્થ કરવામાં (તે બ્રહ્મ તું નથી તું જીવ છો એવો અર્થ થયો તેમાં) જીવપણું સ્વતઃ સિદ્ધ છે એમ થયું અને બ્રહ્મપણું તો પ્રાપ્ત થતુંજ નથી ત્યારેં સ્વતઃસિદ્ધજીવને તું જીવ છો એવો ઉપદેશ કરવો તે યોગ્ય નથી તેમ એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજવાની પ્રતિજ્ઞાનો તો ભંગ થાયજ છે માટે તેવો પદચ્છેદ કરવો તેયોગ્ય નથી; તેથીજ સર્વમતસંગ્રહના શ્લોકમાં छिन्दन्त्यतत्त्वं पदम् (અતત્ત્વપદ કાઢે છે.) એમ કહેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે અતત્ત્વ કહેતાં વૈદિકને સંમત નહિં એવું પદ કાઢે છે, અને શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંત તો ઉપક્રમ અને ઉપસંહારની શ્રુતિયોથી સંમત શોભે છે તે પંડિતોયેં વિચારવું જોઇએ. (૨૧)

એવી રીતેં અદ્વૈતપદાર્થનું નિરૂપણ કરીને શુદ્ધાદ્વૈત કહેવામાં શુદ્ધપદ જુદું શું ઠરાવો છો ? એમ આકાંક્ષા થાય ત્યાં કહે છે.

मूलम् । अत्रैव शाङ्कराः प्राहुर्मायिकं नश्वरं जगत् ।
मायासम्बन्धतो ब्रह्म कारणं नान्यथैव हि ॥ २२ ॥

શબ્દાર્થ—આ કાર્યકારણના વિચારમાંજ શ્રીશંકરાચાર્યમતના અનુયાયિઓ જગત્ માયિક અને નશ્વર છે તથા માયાના સંબંધથી બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે માયાના સંબંધવગર બ્રહ્મ જગતનું કારણ નથીજ એમ કહે છે.

ટીકા—*આ કાર્યકારણના વિચારમાં શ્રીશંકરાચાર્યના અનુયાયિઓ કહે છે કે આવું ઘટપટરૂપ જગત્ દેખાય છે તે માયિક છે માટે નશ્વર છે. કાર્યરૂપ જગત્ માયિક છે માટે તેનું કારણ પણ તેવીજજાતનુંજ હોવું જોઇએ; કેમકે જેવી જાતનું કારણ હોય તેવીજ જાતનું કાર્ય થાય; માટે જગતનું કારણ અજ્ઞાન છે. (અજ્ઞાનવડે છીપમાં રૂપાંની પેઠે બ્રહ્મમાં જગત્ દેખાય છે.) બ્રહ્મનું સ્વરૂપ તો શ્રુતિમાં વર્ણવેલ છે કે:—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।

અર્થ—કલાવગરનું, ક્રિયાવગરનું શાંત, દોષવગરનું, અને અનિન્દ્ય છે. એમ કહેલું છે. તેમ अथात आदेशो नेतिनेति (આ નહિં આ નહિં એમ વસ્તુમાત્રનો નિષેધ કરતાં કરતાં બાકી રહે તે બ્રહ્મ) એમ કહેલ છે, વળી इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते (ઇંદ્ર માયાઓવડે ઘણારૂપે વ્યવહારમાં આવે છે) એમ કહેલ છે, તેમ કેનોપનિષદમાં કહેલ છે કે:—

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।

અર્થ—જે વાણીવડે ઉત્પન્ન થતું નથી અને જેવડે વાણી ઉત્પન્ન થાય છે. તેજ બ્રહ્મ તું જાણ્ય, જે આ ઉપાસના કરે છે તે આ નહિં. એમ કહ્યું છે; તેથી બ્રહ્મ નિરાકાર છે અને કાંઇ કરતું નથી એમ સિદ્ધ થાય છે અને જેની ઉપાસના થાય છે તે બ્રહ્મ નથી. તેમ જે જે કર્ત્તા હોય તે તે ધર્મવાળો હોય અને જે જે આકારવાળું હોય તેતે નાશાત્મક હોય એવો નિયમ હોવાથી આકારને નશ્વરપણું છે માટે બ્રહ્મ નિરાકાર છે એમ સિદ્ધ થાય છે. હું જાણતો નથી એમ જે અનુભવ થાય છે તે અજ્ઞાન કહેવાય છે, તેનુંજ માયા અને અવિદ્યા એવું નામ છે. તે માયા વિચિત્રરૂપે પરિણામપામવાના સ્વભાવવાળી છે તેનાથી આ જગત્ વિચિત્ર દેખાય છે. શુદ્ધસત્ત્વગુણવાળી માયા છે અને મલીનસત્ત્વગુણવાળી અવિદ્યા છે. એમ માયા અને અવિદ્યાનો ભેદ છે; તેમાં જલ તથા દર્પણાદિકમાં જેમ સૂર્યાદિકનો

---

* આશ્લોક પૂર્વપક્ષનો છે, તેથી ટીકામાં પ્રથમ માયાવાદિના મતપ્રમાણે નિરૂપણ કરીને પછી સિદ્ધાંતપ્રમાણે નિરૂપણ [illegible].

પ્રતિબિંબ પડે છે તેમ બ્રહ્મનો માયામાં પ્રતિબિંબ પડયો તે ઇશ્વર કહેવાણા અને અવિદ્યામાં પ્રતિબિંબ પડયો તે જીવ કહેવાણે. નિર્મલદર્પણમાં સૂર્યનો પ્રતિબિંબ પડે તેનો પ્રકાશ બહાર પણ જાય છે તેમ શુદ્ધસત્ત્વપ્રધાન એવી માયામાં બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડયો તે ઇશ્વર સર્વજ્ઞ થયા અને મલીનદર્પણમાં સૂર્યનો પ્રતિબિંબ પડે તેનો પ્રકાશ બહાર જતો નથી દર્પણની અંદરજ થોડો પ્રકાશિત દેખાય છે તેમ મલીનસત્ત્વપ્રધાન એવી અવિદ્યામાં બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડયો તે જીવ અલ્પજ્ઞ થયો, અથવા જેમ આકાશ એક છતાં વૃક્ષ અને વનની ઉપાધિને લઇને તેનો પરિચ્છેદ થાય છે એટલે વૃક્ષમાં આકાશ દેખાય છે તે વૃક્ષાકાશ અને વનમાં આકાશ દેખાય છે તે વનાકાશ કહેવાય છે તેમ બ્રહ્મ એક છે છતાં અવિદ્યાનો સંબંધ થયો તે જીવ કહેવાયો અને માયાનો સંબંધ થયો તે ઇશ્વર કહેવાયા, અથવા ચંદ્રમા એક છે છતાં આંગળીવડે નેત્રના ખુણાને દબાવીને જોઇએ ત્યારે બે ચંદ્રમા છે એવી પ્રતીતિ થાય છે તેવી રીતે બ્રહ્મ એક છે છતાં માયાના સંબંધથી જીવ અને ઈશ્વર એવી પ્રતીતિ થાય છે, તેથીજ आभास एव च (આભાસજ છે) એસૂત્રમાં વ્યાસજીયે જીવનું આભાસપણું કહ્યું છે; માટે જેમ દોરડાંમાં સર્પનો આભાસ થાય છે તેમ બ્રહ્મમાં જીવનો આભાસ થયો છે; તેથીજ वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् (વિકાર અને નામ વાણીથી કહેવામાત્ર છે બાકી મૃત્તિકાજ સત્ય છે) એશ્રુતિમાં વાણીથીજ કહેવાય છે બાકી ઘટાદિક વિકાર વસ્તુથી સાચો નથી; તેથીજ એકાદશસ્કંધના ૭ મા અધ્યાયમાં શ્રીકૃષ્ણ–ભગવાને ઉદ્ધવજીપ્રત્યે કહેલ છે કે:—

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥

અર્થ–જે આ મનવડે, વચનવડે, બેનેત્રોવડે અને શ્રવણાદિકવડે ગ્રહણમાં આવે છે તે નશ્વર અને માયામનોમય જાણ્ય. એમ કહ્યું છે તેથી પણ માયિકપણાથી નશ્વરપણાંની સિદ્ધિ થાય છે; માટે ભ્રાંતિવડેજ જગતની પ્રતીતિ થાય છે એટલે બ્રહ્મમાં પણ જગત્કર્તૃત્વાદિકધર્મની પ્રતીતિ પણ ભ્રાંતિરૂપજ છે.

સિદ્ધાન્તીતરફથી વાદીની શંકા–विश्वतश्चक्षुः (ચોતરફ નેત્રવાળા) सहस्रशीर्षा, (હજારમસ્તકવાળા) संबाहुभ्यां धमति, (બેહાથવડે ધમે છે) प्रज्ञानघनः, (જ્ઞાનવડે ઘાટા છે) विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता, (જગતના કર્ત્તા અને ભુવનના રક્ષાકરનાર) जन्माद्यस्य यतः, (જેનાથી આજગતના જન્માદિક થાય છે) कर्त्ता कारयिता हरिः, (કરનાર અને કરાવનાર હરિ છે) अहं सर्वस्य प्रभवः, (હું સર્વનું ઉત્પત્તિસ્થાન છું) ઇત્યાદિક શ્રુતિ, સૂત્ર અને સ્મૃતિયોવડે બ્રહ્મનું સાકારપણું અને કર્ત્તાપણું સિદ્ધ-થાય છે છતાં તમે કેમ નિષેધ કરો છો ?

પોતા તરફથી વાદીનું ઉત્તર–જેમ આકાશમાં ચંદ્ર હોય તે જાણીશકાય નહિં ત્યારે ચંદ્રને જાણનાર હોય તે વૃક્ષની શાખા બતાવે છે કે અમુકશાખા

ઉપર ચંદ્ર છે, તેવી રીતેં શુદ્ધ બ્રહ્મ જાણીશકાય તેવું નહિં હોવાથી તેની ઉપાસના કરવામાટે બ્રહ્મમાં જગત્કર્તૃત્વાદિકધર્મોનો આરોપ કરિને બ્રહ્મનું સ્વરૂપ સગુણ અને સાકર છે એમ બતાવે છે, પછી જેમ આકાશમાં ચંદ્ર હોય તેને વૃક્ષની શાખાને આધારે જાણી લે ત્યારપછી વૃક્ષની શાખા ઉપર ચંદ્ર નથી પણ આકાશમાં છે એમ જાણે છે તેમ બ્રહ્મમાં જગત્કર્તૃત્વાદિકધર્મો કે આકાર નથી એમ ધર્મનો નિષેધકરનારી શ્રુતિયોવડે શુદ્ધ–બ્રહ્મનું સ્વરૂપ બતાવાય છે; એટલેં ઉપાસનાવડે ચિત્તની શુદ્ધિ થઇ હોય ત્યારેં અદ્વૈતની સ્ફૂર્તિ થવાથી અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થાય એટલેં ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (બ્રહ્મને જાણે તે બ્રહ્મજ થાય છે) એશ્રુતિમાં કહ્યા-પ્રમાણે જીવ બ્રહ્મરૂપ થાય છે એમ શ્રીશંકરાચાર્યજીનું મત છે.

ઉપરપ્રમાણે માનવામાં દૂષણ આવે છે તે બતાવિયેં છીએં કે यदिदं किञ्च-सत्यमित्याचक्षते (જે આ કાંઇ છે તે સત્ય છે એમ ઋષિયો કહે છે) तत्सत्यम् (તે સત્ય છે) सर्वं खल्विदं ब्रह्म, (આ સર્વ નિશ્ચય બ્રહ્મ છે) ઇત્યાદિક શ્રુતિ-યોથી અને तदेतदक्षयं नित्यंजगन्मुनिवराखिलम् (હે મુનિવર! તે આ સમગ્ર જગત્ અક્ષય અને નિત્ય છે.) ઇત્યાદિકવાકયોથી જગતનું સત્યપણું અને બ્રહ્મપણું કહેલ છે; તેથી જગત્ માયિક છે એમ કહેવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી. વેદની અગીઆર શાખાઓ હાલ પ્રસિદ્ધ છે તેમાં કયાંય પણ જગત્ મિથ્યા છે એમ કહેલું નથી. यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते (જેનાથી નિશ્ચય આ ભૂતો થાય છે) ઇત્યાદિકશ્રુતિમાં અને जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् (બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે તેથી જેબ્રહ્મથી આજગતના જન્માદિક થાય છે) ઇત્યાદિકસૂત્રોમાં બ્રહ્મ જ-ગતનું કારણ છે એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે અને કાર્ય તથા કારણને સાજાત્ય હોય છે એમ તો ઉપર વાદીએં પણ સ્વીકાર્યું છે માટે કારણરૂપ બ્રહ્મ નિત્ય હોવાથી તેનાથી થએલ કાર્યરૂપ જગત્ પણ નિત્ય છે, અસત્ એવું અજ્ઞાન તે જગતનું કારણ હોય નહિં તેમ જગતમાંથીજ જ્ઞાન પામીને મુક્ત થવાય છે તે જગતમાં થનાર જ્ઞાનનું કારણ અસત્ (અજ્ઞાન અથવા જગત્) હોય નહિં.

શંકા–સ્વપ્ન ખોટું હોય છે છતાં તેમાં ભોજનાદિક કરવાથી રોકાદિકની પ્રાપ્તિ થાય છે અને સર્પાદિક કરડવાથી ધનાદિકની પ્રાપ્તિ થાય છે; તેથી સ્વપ્ન અસત્ છે તે જેમ શુભાશુભફળનું કારણ થાય છે તેમ સત્યરૂપ–જ્ઞાનાદિકનું કારણ પણ અસદ્રૂપ જગત્ થાય છે.

ઉત્તર–જાગતા હોઇએં ત્યારેં જે યોગ્ય બાબત જોવામાં કે સાંભળવામાં આવે છે તેનું ચિંતન મનમાં થયાકરે છે તેથી જે તેવી બાબત અથવા તેને મળતો યો-ગ્યજ બાબત સ્વપ્નમાં દેખાય છે અને તે સમયપર શુભાશુભફલનું માત્ર સૂચન કરે છે; તેમાં પણ કારણપણું જાગરિતસમયમાં અનુભવમાં આવેલા સત્ય-પદાર્થને છે, કાંઇ સ્વપ્નમાં જોએલા અસત્ય–પદાર્થને કારણપણું નથી. જો સ્વ-પ્નમાં જોએલા પદાર્થથી સત્ય ફ્લ થતું હોય તો સ્વપ્નમાં ભોજન કરવાથી સાચી

તૃપ્તિ થવી જોઇએ. તે થતી નથી; માટે સ્વપ્ન, સત્યનું કારણ નથી. અસત્ય હોય તે સત્યનું કારણ હોયજ નહિં. અને निष्कलं निष्क्रियं शान्तम् (નિષ્કલ, ક્રિયાવગરનું અને શાંત) ઇત્યાદિકશ્રુતિમાં જે કલાદિકનો નિષેધ કરેલો છે, તે લૌકિક ક્રિયા, કલા અને સત્ત્વાદિકગુણોથી થએલ શરીરની વિકારવાળી ઇંદ્રિયો તથા જડના ધર્મો બ્રહ્મમાં નથી એવા અભિપ્રાયથી નિષેધ કરેલો છે. કોઇપ્રકારના ધર્મો કે ક્રિયાવગેરે બ્રહ્મમાં નથી એમ કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોય તો નીચે લખી શ્રુતિઓનો વિરોધ આવે. જેમ एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति (પરબ્રહ્મના એજ આનંદની એકકલામાં સર્વ ભૂત–પ્રાણિમાત્ર જીવે છે, અર્થાત્ બ્રહ્માંડમાં જેટલો આનંદ છે તે આનંદરૂપ પરબ્રહ્મની એક કલા છે.) એશ્રુતિમાં કલાનું નિરૂપણ કર્યું છે, आसीनो दूरं व्रजति (બેઠા છે અને દૂર જાય છે) ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં ક્રિયાનું નિરૂપણ કર્યું છે. एको देवः सर्वभूतेषु गूढः (સર્વભૂતમાં ગુપ્ત રહેલા દેવ એક છે.) ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં ગુણોનું નિરૂપણ કર્યું છે, अपाणिपादो जवनो गृहीता, (હાથ, પગ નથી છતાં વેગવાળા છે અને ગ્રહણ કરે છે) उतामृतत्वस्येशानः (અમૃતપણાના હુકમદાર છે) सर्वतः पाणिपादान्तम् (ચોતરફ હાથ, પગ અને મધ્યભાગ છે.) सहस्रशीर्षा पुरुषः (હજારમસ્તકવાળા પુરૂષ છે.) सर्वं पश्यति (બધું જુએ છે) ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં અવિકારિ શરીર તથા ઇંદ્રિયોનું નિરૂપણ કર્યું છે, अणोरणीयान्महतो महीयान् (સૂક્ષ્મથી અત્યંત સૂક્ષ્મ છે અને મ્હોટાથી અત્યંત મ્હોટા છે.) ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં અણુત્વાદિકધર્મનું નિરૂપણ કર્યું છે. એપ્રમાણે સર્વ ધર્મો બ્રહ્મમાં છે એમ નિરૂપણ કર્યું છે તે જો બ્રહ્મમાં કોઇપણપ્રકારનો ધર્મ હોયજ નહિં તો ઉપર લખેલી શ્રુતિઓમાં ધર્મોનું નિરૂપણ કર્યું છે તેનો વિરોધ આવે; માટે બ્રહ્મમાં ધર્મો રહેલા છે એમ સ્વીકારવુંજ જોઇએ, અને अथात आदेशो नेति नेति (આપ્રકારનું નહિં આપ્રકારનું નહિં એમ બ્રહ્મનો આદેશ થાય છે) એશ્રુતિમાં इति શબ્દ પ્રકારને કહેનાર હોવાથી લૌકિકપ્રકારવાળું બ્રહ્મ નથી એવો એશ્રુતિનો અભિપ્રાય છે; તેથીજ વ્યાસસૂત્રના તૃતીયાધ્યાયના દ્વિતીયપાદમાં કહેલ છે કેઃ–

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ॥ २२ ॥

અર્થ–ચાલતા પ્રસંગમાં લૌકિક ધર્મો જે દેખાય છે તેવા ધર્મવાળું બ્રહ્મ નથી એમ अस्थूलादिक વાક્યથી શ્રુતિ નિષેધ કરે છે અને ત્યાર પછી ફરીને બ્રહ્મમાં ધર્મો છે એમ કહે છે; એટલે જે પદાર્થ દેખાતો હોય તેનોજ નિષેધ થાય છે, જે દેખાતો નહોય તેનો નિષેધ થતો નથી; માટે અસ્થૂલાદિક વાક્યોવડે, બ્રહ્મમાં જગતથી વિલક્ષણપણાંનુંજ પ્રતિપાદન કરાય છે, પણ વેદમાં જગત્કર્તૃત્વાદિક જે ધર્મો બ્રહ્મમાં કહેલા છે તેનો નિષેધ કરીશકાતો નથી; કેમકે જેવાક્યમાં ધર્મનો નિષેધ છે તેજવાક્યમાં પાછું ધર્મનું પ્રતિપાદન છે. જેમકે अस्थूलम् (સ્થૂલ નથી) अनणु (સૂક્ષ્મ નથી) એમ ધર્મનો નિષેધ કરિને પછી તેજવાક્યમાં एतस्य वा-अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ! सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्टतः (बृहदारण्यकः ३–८–९) એ અક્ષ-

રના હુકમમાં હે ગાર્ગિ! સૂર્ય અને ચંદ્રમા આકાશમાં પ્રકાશકરતા રહ્યા છે). એમ સૂર્ય, ચંદ્ર, પૃથ્વીવિગેરે સર્વને હુકમમાં રાખવારૂપ ધર્મ અક્ષરબ્રહ્મમાં છે એમ નિરૂપણ કર્યું છે. તેમ તૈત્તરીયઉપનિષદમાં યતો વાચો નિવર્ત્તન્તે (મનસહિત વાણી નહિંપામાને જેનાથી નિવૃત્તિ પામે છે.) એમ કહીને તેના ઉતરાર્દ્ધમાં કહ્યું છે કેઃ-

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ।

અર્થ—બ્રહ્મનો આનંદ જાણતો હોય તે કોઇનાથી બીતો નથી; એમ બ્રહ્મના આનંદને જાણનાર છે એમ બતાવ્યું છે, તેમ શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદના તૃતીયાધ્યાયમાં अपाणिपादः (હાથવગરના છે) એમ કહીને તેજશ્રુતિમાં પાછું તરતજ जवनो गृहीता (વેગવાળા છે અને ગ્રહણકરનાર છે) એમ હાથ તથા પગનું કાર્યકરનાર છે એમ લખ્યું છે, તેમજ તેજશ્રુતિમાં નેત્રવગરના છે અને દેખે છે તથા કાનવગરના છે અને સાંભળે છે. એમ કહ્યું છે ઇત્યાદિકશ્રુતિયોમાં જેમ ઈંદ્રિયોનો નિષેધ કર્યો છે તેમ ઇંદ્રિયોનું કાર્ય કરે છે એમ પણ લખ્યું છે તેથી લૌકિક ઈંદ્રિયોનો નિષેધ છે અને અલૌકિક ઈંદ્રિયો છે એમ કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય છે. જો ઉપરનું સૂત્ર મૂર્ત્ત તથા અમૂર્ત્ત બન્નેનો નિષેધકરનાર હોય તો प्रकृत (ચાલતા પ્રસંગમાં) અને एतावत्त्व (એટલા ધર્મવાળાપણું) એ બેપદમાંથી એકની વ્યર્થતા થાય; કેમકે ચાલતા પ્રસંગમાં ધર્મનો નિષેધ કરે છે એમ કહેવાથી અથવા એટલા ધર્મવાળાપણાંનો નિષેધ કરે છે એ બેમાંથી એક કહેવાથી પણ ધર્મનો નિષેધ કરવાનું સમજાઇ જાત. છતાં તે બે પદ કહેલાં છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે ચાલતા પ્રસંગમાં આટલા ધર્મવાળાપણાંનો નિષેધ કરે છે, તેમાં બીજા ધર્મો છે એમ સિદ્ધ કરવાસારુજ ततो ब्रवीति च भूयः (તે નિષેધ કર્યા પછી પાછું ફ્રીને બ્રહ્મમાં ધર્મ છે એમ કહે છે) એમ સૂત્રમાં કહ્યું છે. અથવા જો બ્રહ્મમાં કોઇ ધર્મ નથી એમ કહેવાનો અભિપ્રાય હોત તો ततो ब्रवीति च भूयः (નિષેધ કર્યા પછી ફ્રીને બ્રહ્મમાં ધર્મ છે એમ શ્રુતિ કહે છે.) આટલું વાક્ય કહેત નહિં; માટે બ્રહ્મમાં લૌકિક ધર્મો નથી પણ અલૌકિક ધર્મો છે એમ શ્રુતિમાં કહેલું છે, એવો આસૂત્રનો અર્થ છે. इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते (ઇંદ્ર, માયાવડે ઘણારૂપવાળા જણાય છે.) એશ્રુતિમાં પણ આપણે બ્રહ્મને ઘણારૂપ જાણીયેં છીયેં તે માયાવડે જાણીયેં છીયેં એમ કહેલું છે, કાંઇ બ્રહ્મ માયાવડે ઘણાંરૂપવાળું થયું છે એમ કહ્યું નથી; માયા આપણાં જ્ઞાનમાં ભૂલ કરાવે છે કાંઇ બ્રહ્મસ્વરૂપમાં ફેરફાર કરીશકતી નથી. જો માયાવડે ઇશ્વર અનેકરૂપવાળા થયા છે એમ કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોત તો इंद्रो मायाभिः पुरुरूपो बभूव (ઇંદ્રિ માયાવડે ઘણાંરૂપવાળા થયા) એમ કહેત, પણ ઘણારૂપવાળા જણાય છે તે માયાવડે જણાય છે એમ કહ્યું છે તેથી માયાવડે આપણા જ્ઞાનમાં આવરણ થાય છે એમ કહેવાનો એશ્રુતિનો અભિપ્રાય છે એમ સમજવું. ઉપરની શ્રુતિનું પૂર્વાર્દ્ધ એવું છે કેઃ-

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव यत्तस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।

અર્થ—જેકારણમાટે દરેકરૂપોપ્રત્યે તેતેરૂપના સ્વરૂપાત્મક થયેલ છે તેના રૂપનેજાણવા માટે ઇંદ્ર* માયાઓવડે ઘણારૂપ જણાય છે. એમ કહેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે દરેક પદાર્થોના સ્વરૂપાત્મક બ્રહ્મ થયેલ છે તેથી તેનું સ્વરૂપ (શુદ્ધ અદ્વૈત) જાણવામાં જીવોને માયાનું આવરણ થયેલું હોવાથી, તમામ-પદાર્થોરૂપ બ્રહ્મ છે એમ જીવો જાણીશકતા નથી. તેમ પ્રથમ પૂર્વપક્ષમાં કેનોપનિષદની શ્રુતિ, ઉપાસ્યરૂપમાં બ્રહ્મપણું નથી એમ સિદ્ધ કરવામાટે લખી છે તેમાં પણ અબ્રહ્મપણું સિદ્ધ થઈશકતું નથી તે બતાવવાસારૂ પાછી તેજશ્રુતિ લખી તેનો ખરો અર્થ બતાવીએં છીએં કે:—

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

અર્થ—જેવાણીવિગેરેથી ઉદિત થતું નથી અને જેવડે વાણી ઉદિત થાય છે તેજ બ્રહ્મ તું જાણ્ય, વાણીવિગેરે બ્રહ્મ નથી, ત્યારેં બ્રહ્મ કયું? એમ જાણવાની ઈચ્છા થાય ત્યાં કહે છે કે વૈદિકલોકો જેની ઉપાસના કરે છે તે બ્રહ્મ છે એમ જાણ્ય, એટલેં જેવાણીવિગેરેથી અગમ્ય છે અને વાણીવિગેરેને પ્રેરણાકરનાર છે તેને તું બ્રહ્મ જાણ્ય, વાણીવિગેરેને બ્રહ્મ નહિં જાણ્ય;† ત્યારેં તેબ્રહ્મનું જ્ઞાન કેમ થાય? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે કે શ્રુતિપ્રસિદ્ધ એવાં જે આ બ્રહ્મની ઉપાસના વૈદિક કરે છે તે બ્રહ્મ છે એમ જાણ્ય. એમ કહ્યું છે ત્યાં જેની ઉપાસના થાય છે તેનું બ્રહ્મપણુંજ સિદ્ધ કરેલું છે. જેની ઉપાસના કરે છે તે બ્રહ્મ નથી એમ કહેવાનો જો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોય તો इदम् (આ) શબ્દ બે વાર કહેલ છે તેમાં એકની વ્યર્થતા થાય છે; કેમકે नेदं यदुपासते (જેની ઉપાસના કરે છે તે આ બ્રહ્મ નથી.) એટલું કહેવાથીજ ઉપાસ્ય બ્રહ્મ નથી એમ સિદ્ધ થઇજાત પણ અહિં नेदं (આ બ્રહ્મ નહિં) એમ કહિને પાછું यदिदमुपासते (જેની ઉપાસના કરે છે એ બ્રહ્મ છે.) એમ यत् શબ્દ પછી इदम् શબ્દ બીજીવાર કહ્યો છે તે ઉપાસ્ય છે તે બ્રહ્મ છે એમજ સિદ્ધ કરે છે. ઇશ્વરમાં આકાર માનીએં તો यत् यत् साकृति तत् तत् नश्वरम् (જે જે આકારસહિત છે તે તે નશ્વર છે) એવી વ્યાપ્તિ કરી અનુમાન વડે, નશ્વરપણું આવવારૂપ દોષ ઇશ્વરમાં આવે છે એમ વાદી કહે છે પણ તે અનુમાનમાં જન્યપણું અથવા પ્રાકૃતપણું અવશ્ય કહેવું જોઇએં; એટલેં જન્ય હોય અથવા

---

* ઉપનિષદમાં ઈંદ્ર, અગ્નિ, રુદ્ર સૂર્ય વિગેરે અનેક નામોથી બ્રહ્મનુંજ વર્ણન છે એમ સમજવું; તેથી અહિં ઈંદ્રનામથી પણ બ્રહ્મજ સમજવું.

† નામરૂપસહિત સર્વ બ્રહ્મ છે છતાં અહિં વાણીવિગેરે બ્રહ્મ નથી એમ કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે ઉપાસનાની બાબતમાં જો વાણીવિગેરે ઇંદ્રિયોને બ્રહ્મરૂપ કહે તો તેમાં સ્વાભાવિક પ્રીતિ હોવાથી ઇંદ્રિયોમાંજ જીવ આસક્ત થઇજાય. તેસારુ વાણીવિગેરે ઇંદ્રિયો બ્રહ્મ નથી એમ કહેલ છે. તેમ સેવ્ય (સેવવાયોગ્ય) અને જ્ઞેય (જાણવાયોગ્ય) એમ બ્રહ્મનાં બે સ્વરૂપ છે; તેમાં વાણીવિગેરે ઇંદ્રિયો જ્ઞેય સ્વરૂપ છે સેવ્ય સ્વરૂપ નથી તેથી પણ અહિં નિષેધ કર્યો છે એમ સમજવું.

પ્રાકૃત હોય અને આકારસહિત હોય તો તે નશ્વર હોય એમ વ્યાપ્તિ કરી અનુમાન કરવું જોઇએ એટલે બ્રહ્મને જન્યપણું કે પ્રાકૃતપણું નહિ હોવાથી આકારસહિત કહેવાથી પણ નશ્વરપણાંરૂપ દોષ આવશે નહિ અને ઉપર બતાવ્યાપ્રમાણે વેદમાં સાકારપણું લખ્યું છે તેને પણ બાધ નહિં આવે. અવિદ્યા અથવા અજ્ઞાનથી જીવભાવ થયો એમ તેઓ કહે છે તેને અમે પૂછીએં છીએં કે તે અજ્ઞાન બ્રહ્મમાં થયું કે જીવમાં થયું? જો બ્રહ્મમાં થયું એમ કહેશો તો અજ્ઞાનના આધારરૂપ બ્રહ્મ થવાથી સધર્મકપણું (સાકારપણું) બ્રહ્મનું તમેજ સિદ્ધ કર્યું તેમ અજ્ઞાનિપણું પણ બ્રહ્મનું તમે સિદ્ધ કર્યું, અને જીવમાં અજ્ઞાન થયું એમ તો તમારાથી કહેવાશે નહિં કેમકે જીવને તો તમે અજ્ઞાનરૂપજ માનો છો તે અજ્ઞાનનો આધાર થઇશકે નહિં; માટે અજ્ઞાન માનવાનો પક્ષ તો સારો દેખાતો નથી. બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ માયામાં પડયો તે ઇશ્વર થયા અને અવિદ્યામાં પડયો તે જીવ થયો એમ જે તેઓ માને છે તેઉપર કહિએં છીએં કે સૂર્ય અને દર્પણ બન્ને આકારસહિત હોવાથી દર્પણમાં સૂર્યનો પ્રતિબિંબ પડે છે પણ બ્રહ્મ તો નિર્ગુણ અને નિરાકાર છે એમ તમે માનો છો તેનો પ્રતિબિંબ પડવો સંભવેજ નહિં, તેમ માયાને અસત્ય માનો છો. તેથી જે કાંઇ પદાર્થ નથી તેમાં પ્રતિબિંબ પડે છે એમ કેમ કહિશકાય? તેમ અવિદ્યા સ્વચ્છ નથી અને મિથ્યા છે એમ તમે માનો છો તેમાં પ્રતિબિંબ પડવો કેમ સંભવે? જો રૂપવગરના પદાર્થનો અસ્વચ્છ–પદાર્થમાં પ્રતિબિંબ પડતો હોય તો વાયુનો કાષ્ટમાં પણ પ્રતિબિંબ પડવો જોઇએ.

શંકા–આપણે શબ્દ બોલીએં છીએં તેનો પડછંદો કોઠામાં કે તેવી ઇમારતવિગેરેમાં પડે છે ત્યાં શબ્દ રૂપવગરનો છે અને જેમાં પડછંદો પડે છે તે ઇમારતવિગેરે અસ્વચ્છ છે છતાં શબ્દનો પ્રતિબિંબ તેમાં કેમ પડે છે? તેવી રીતે બ્રહ્મ રૂપવગરનું છે તોપણ તેનો પ્રતિબિંબ અસ્વચ્છ એવી અવિદ્યામાં પડવામાં બાધ નથી, અને માયા તથા અવિદ્યા કાંઇ પદાર્થજ નથી એમ અમે કહેતા નથી પણ સત્ય અને અસત્ય બન્નેથી વિલક્ષણ છે તેથી અનિર્વચનીય છે એમ કહિએં છીએં.

ઉત્તર–શબ્દનો પડછંદો બોલે છે તે પ્રતિબિંબ નથી પણ પ્રતિધ્વનિ છે; એટલે શબ્દની એવી રીતિ છે કે જેસ્થલમાં શબ્દ બોલાય તેસ્થલથી કોઇ દૂરમાં હોય તેને તે શબ્દ બોલતીવખતજ સાંભળવામાં આવતો નથી પણ ક્ષણવાર પછી સાંભળવામાં આવે છે તેથી તર્કશાસ્ત્રમાં એમ માનેલું છે કે સમુદ્રની લેહેર જેમ એકમાંથી બીજી અને બીજીમાંથી ત્રીજી એમ ઉત્પન્ન થતી જાય છે તેવીજ રીતે એકશબ્દમાંથી બીજો શબ્દ અને બીજામાંથી ત્રીજો એમ ઉત્પન્ન થતોજાય છે તેથી દૂર રહેલા માણસસુધી તેશબ્દની પરંપરા પહોંચવામાં વિલંબ થવાથી શબ્દ ઉત્પન્ન થતીવખતજ દૂર પહોંચી શકતો નથી પણ કાંઇ વિલંબથી પહોંચે છે તેવીજ રીતે કાંઇ ઇમારતવિગેરે વ્યવધાન આવે તો તેમાં અટકીને પાછો ફરી આપણસુધી આવે છે; કેમકે શબ્દ આકાશનો ગુણ છે અને જેઇમારતવિગેરેમાં અટકે છે ત્યાંથી તે આપણસુધી આકાશ એક છે તેથી પરંપરાથી આપણસુધી શબ્દજ આવે છે પણ

તેવી રીતે પાછો ફરીને આવવાથી તેને આપણે પ્રતિધ્વનિ માનીએં છીએં; માટે બિંબપ્રતિબિંબભાવની બાબત તેને લાગુ પડે તેમ નથી અને માયા કે અવિદ્યાને સત્ય કે અસત્ય માનો નહિં ત્યારે તે કાંઇ પદાર્થ નથી એમ અર્થાત્ સિદ્ધ થાય છે. જો પદાર્થ હોય તો તેનું નિર્વચન (સ્વરૂપબતાવનાર લક્ષણ) કેમ ન થઇશકે? પણ અનિર્વચનીય કહો છો તેનો અર્થ, માયા કે અવિદ્યા કાંઇ પદાર્થજ નથી એમ માનવાનો થાય છે; માટે કાંઇ પદાર્થ ન હોય ત્યાં તેમાં પ્રતિબિંબ પડે છે એમ કહેવું તે સંભવતુંજ નથી. બ્રહ્મ રૂપવગરનું છે એમ તમે માનો છો તો રૂપવગરના પદાર્થનો પ્રતિબિંબ પડેજ નહિં.

શંકા—આકાશ રૂપવગરનું છે તેનો પ્રતિબિંબ જેમ દર્પણાદિકમાં પડે છે તેમ રૂપવગરનાં બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડવામાં કાંઇ બાધ નથી.

ઉત્તર—સૂર્ય, ચંદ્ર અને તારાવિગેરેની પ્રભા (કાંતિ) આકાશમાં વ્યાપ્ત થઇને રહેલ છે તેનોજ પ્રતિબિંબ દર્પણમાં કે જલાદિકમાં દેખાય છે કાંઇ આકાશનો પ્રતિબિંબ દેખાતો નથી, જો આકાશનો પ્રતિબિંબ દેખાય છે એમ કહેશો તો જેવો જલમાં પ્રતિબિંબ દેખાય છે તેવુંજ રૂપવાળું આકાશ પણ આપણા જોવામાં આવે છે માટે આકાશ રૂપવાળું છે એમ તમારે સ્વીકારવું પડશે, અને રૂપવગરનું હોય તે પણ દેખાય ખરૂં એમ માનવું પડશે ત્યારે બ્રહ્મ રૂપવગરનું છે તે પણ દેખાય ખરૂં એમ પણ તમારે કબૂલ કરવું પડશે.

શંકા—જગતના કારણરૂપ કલ્પિતરૂપવાળા ઇશ્વર (જે, માયામાં બ્રહ્મના પ્રતિબિંબરૂપે પડેલ છે તે) નેત્રથી દેખાયજ છે.

સમાધાન—એ ઇશ્વર આકાશને સ્થાને નથી પણ જલમાં પડેલ એવા આકાશના પ્રતિબિંબને સ્થાને છે અને અમે તો આકાશને સ્થાને તમે બિંબરૂપ માનેલ નિરાકારબ્રહ્મને માટે અમેં કહિયેં છીયેં કે આકાશ રૂપવગરનું છે તે દેખાય છે તેવી રીતે રૂપવગરનું બ્રહ્મ પણ દેખાવું જોઇએં; કેમકે જે દેખાય તેવું હોય તેનોજ પ્રતિબિંબ પડે એમ અનુભવમાં આવે છે. તેમ દર્પણમાં રેખા હોય તેનો જેમ પ્રતિબિંબ પડતો નથી તેમ બ્રહ્મ સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે અને માયા તથા અવિદ્યા પણ સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે એમ તમે માનો છો ત્યારે અવિદ્યા તથા માયા અને બ્રહ્મ સર્વ સાથે રહ્યાં તો જેમ દર્પણ અને દર્પણની રેખા સાથે હોવાથી રેખાનો પ્રતિબિંબ દર્પણમાં પડતો નથી તેમ બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ માયા કે અવિદ્યામાં પડીશકે નહિં.

શંકા—દર્પણમાં રેખા સંયોગસંબંધથી રહેલ છે તેથી તેનો પ્રતિબિંબ દર્પણમાં પડતો નથી અને બ્રહ્મ તથા માયા બન્ને વ્યાપક હોવાથી તેનો સંયોગ થતો નથી માટે તેનો પ્રતિબિંબ થવામાં બાધ આવે તેમ નથી.

સમાધાન—દર્પણની સાથે પ્રભામંડલનો સંયોગ છે છતાં દર્પણથી સૂત્રજેટલા અંતરાયથી આંગળી રાખીયેં તો તેટલામાં રહેલા પ્રભામંડલનો પ્રતિબિંબ દર્પણમાં પડે છે તેથી સંયોગ સંબંધ, પ્રતિબિંબ પડવામાં આડો આવતો નથી. વળી

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे (બે પક્ષિઓ (જીવ તથા ઈશ્વર) સાથે રહેનારા સખાઓ છે તે ઘણાં વર્ષ થયાં એકગુહા (હૃદયાકાશ)માં પેસેલા છે) એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે અને गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् (જીવ તથા ઈશ્વર બન્ને આત્મા છે તેગુહા (હૃદયાકાશ) માં પેસેલા છે; કેમકે શ્રુતિમાં તેમ દેખાયેલ છે.) એમ વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે ત્યાં જીવ તથા ઇશ્વર બન્ને એકગુફામાં રહેલા છે એમ કહેલું છે તે, ઇશ્વર બિંબ હોય અને જીવ પ્રતિબિંબ હોય તો બન્નેનું રહેવું એકમાં સંભવે નહિં, જેમ સૂર્ય બિંબ છે તે આકાશમાં રહેલ હોય છે અને તેનો પ્રતિબિંબ દર્પણ કે જલની અંદર હોય છે તેમ ઇશ્વર અને જીવ બિંબ તથા પ્રતિબિંબ હોય તો એકગુફામાં તેનું રહેવું સંભવે નહિં. તેમ નિર્ગુણબ્રહ્મને બિંબ માનો અને ઇશ્વર તથા જીવને પ્રતિબિંબ માનો તો પણ એકજબિંબના એકજસ્થળમાં બે પ્રતિબિંબ પડે એમ પણ સંભવે નહિં, જેમ એક સૂર્ય આકાશમાં રહેલ હોય તો, તેનો, એક-દર્પણમાં કે એકજલના પાત્રમાં એકજ પ્રતિબિંબ પડે છે બે પ્રાતબિંબ પડતા નથી તેમ એકબ્રહ્મનો એકગુફામાં એકજ પ્રતિબિંબ પડવો જોઇએ બે પડવા નાહંજોઇએ, તેમ શ્રુતિમાં તથા સૂત્રમાં એકજગુફામાં પેસેલા છે એમ સ્પષ્ટ લખેલું છે એટલે પ્રતિબિંબના આશ્રયરૂપ માયા અને અવિદ્યા એમ બે માનીશકાય તેમ નથી. તેમ અવિદ્યામાં નિર્ગુણબ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડયો તે જીવ થયો એમ તમે કહો છો અને અવિદ્યાનો નાશ થાય તેને મોક્ષ કહો છો ત્યારે જેમ સૂર્યનો પ્રતિબિંબ દર્પણમાં પડયો હોય તેદર્પણનો નાશ થયા પછી પ્રતિબિંબ રહેતો નથી તેમ બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ જેઆવિદ્યામાં પડીને જીવ થયો છે તેઅવિદ્યાનો નાશ થયા પછી જીવ રહે નહિં; એટલે જીવનો નાશ થાય તેનું નામજ મોક્ષ એમ તમારા મતમાં થયું ત્યારે आत्महानमपुरुषार्थः (સ્વરૂપનો નાશ થાય તે પુરુષાર્થ કહેવાય નહિં.) એવું વાક્ય છે તેપ્રમાણે ચારપુરુષાર્થોમાં પણ મોક્ષને ઉત્તમ પુરુષાર્થ લખેલ છે તેને બાધ આવે એટલુંજ નહિં પણ મોક્ષને અપુરુષાર્થપણું થાય છે અને જીવને મિથ્યા-પણું થાય છે ત્યારે ખોટાજીવમાટે પરલોકસંબંધી પ્રયત્ન કોઇ પણ કરશે નહિં; કેમકે જે મુમુક્ષુ (સંસારમાંથી મુક્ત થવાની ઇચ્છારાખનાર) હોય તે મોક્ષનું સ્વ-રૂપ અને બંધમાં આવેલું પોતાનું સ્વરૂપ જાણે ત્યારપછી બંધમાંથી છુટવાનાં સાધનો કરવાને યત્ન કરશે તે યત્ન કરવાપહેલાંજ તમારા કહેવાપ્રમાણે અવિદ્યામાં પ્રતિ-બિંબ પડયો છે તે જીવ થયો છે એમ પોતાનું (જીવનું) સ્વરૂપ જાણે અને અવિદ્યાનો નાશ થાય ત્યારે જીવસ્વરૂપનો નાશ થાય એટલે મોક્ષ થયો એમ પોતાનું સ્વરૂપ અને મોક્ષનું સ્વરૂપ જાણે ત્યારે આ જગત્ સર્વ મિથ્યા છે તેથી આલોકસંબંધી તથા પરલોકસંબંધી જેટલી પ્રવૃત્તિ છે તેટલી સર્વ પ્રવૃત્તિ અવિદ્યાના અધ્યાસથી કરેલી છે એમ તમારા મતપ્રમાણે જાણે ત્યારે તેમુમુક્ષુના મનમાં એવો વિચાર આવે કે મોક્ષ પ્રાપ્ત થવામાટે પરલોકસંબંધી પ્રવૃત્તિ કરશું તો સ્વરૂપનો નાશ થશે તેનાકરતાં આલોકસંબંધી પ્રવૃત્તિજ સારી છે એમ સમજી કોઇ પણ મોક્ષ થવાની પ્રવૃત્તિ કરશે નહિં; એટલે નિવૃત્તિમાર્ગજ ઉચ્છિન્ન થઇજશે, અથવા અવિદ્યાના અધ્યાસથી

જ આલોકસંબંધી તથા પરલોકસંબંધી પ્રવૃત્તિ છે એમ તમે કહો છો તેપ્રમાણે મુમુક્ષુ સમજશે ત્યારે નિષિદ્ધકાર્ય તથા વિહિતકાર્ય બન્ને સરખાં છે એમ જાણવાથી નિષિદ્ધકાર્યમાંથી કોઇ પણ નિવૃત્ત નહિં થાય અને વિહિતકર્મમાં કોઈ પ્રવૃત્ત નહિં થાય એટલે સન્માર્ગજ ઉચ્છિન્ન થઇજશે. તેમ સમગ્ર પ્રપંચ અજ્ઞાનથી કલ્પિત છે એમ તમે માનો છો, ત્યારે વેદ તથા બોધઆપનાર ગુરુ પણ જગતના અંદર રહેલા હોવાથી તેને પણ અજ્ઞાનકલ્પિતપણું આવશે એ મ્હોટો અનર્થ થશે.

શંકા—આખા જગતનેઅજ્ઞાનકલ્પિતપણું છે ત્યારે તેજગતની અંદર રહેલા વેદ તથા ગુરુને અજ્ઞાનકલ્પિતપણુંજ કહેવું જોઇએ તેમાં અનર્થ શું છે?

ઉત્તર—નદી કે તલાવના કિનારા ઉપર આંબાના વૃક્ષો હોય તેમાં જે ફળો થયાંહોય તેનો પ્રતિબિંબ જલમાં પડતો હોય તેને કોઇ દેખે ત્યારે જાણે કે જલમાં દેખાય છે તે ખરાં ફળો નથી પણ કિનારા ઉપર વૃક્ષો છે તેમાં ફળો થયેલાં છે તેનો આ પ્રતિબિંબ દેખાય છે એમ જાણતો હોય તે માણસ, જલમાં પ્રતિબિંબિત જે ફળો છે તેને લેવામાટે લાંબા હાથ કરે એમ કોઇ દિવસ જોયેલું નથી તેવીજ રીતે વેદ અજ્ઞાનકલ્પિત છે એમ જે જાણતો હોય તેના મનમાં એવો વિચાર થાય કે વેદમાં યજ્ઞકરવાથી સ્વર્ગ પ્રાપ્ત થાય અને સંન્યાસકરવાથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય એમ કહેલું છે પણ વેદ તો અજ્ઞાનકલ્પિત છે માટે તેમાં કહેલ યજ્ઞ કે સંન્યાસ કરીને તેમાં ઘણો શ્રમ કરવો, સર્વ સગાં—સંબંધીઓનો ત્યાગકરવો અને સર્વસુખથી વિમુખ થવું એટલું બધું અજ્ઞાનકલ્પિત એવા વેદમાં કહેલા કાર્યમાટે અજ્ઞાનકલ્પિત એવા ગુરુના વચનથી શામાટે કરવુંજોઇએ? એમ જાણીને કોઈ પણ વેદમાં કહેલા કાર્યોમાટે પ્રવૃત્ત થશે નહિં અને અજ્ઞાનકલ્પિત એવા ગુરુનાં વચનોને સત્ય માનશે નહિં એ કાંઇ થોડો અનર્થ ગણાય નહિં.

શંકા—સ્વપ્નસંબંધિ ફલોમાટે જેમ સ્વપ્નમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે તેમજ વેદમાં કહેલાં કાર્ય કરવાથી વેદમાં કહેલું ફળ મલશે એમ જાણીને પ્રવૃત્તિ થશેજ. અને સ્વપ્નમાં જેમ પ્રવૃત્તિ થાય છે તેનું સત્ય ફળ થતું નથી તેમજ વેદમાં કહેલા યજ્ઞાદિક કરવાથી સત્ય ફળ (સ્વર્ગપ્રાપ્તિ) નહિં થાય તેમાં પ્રવૃત્તિ નહિંથવા જેવું શું છે?

ઉત્તર—સ્વપ્નસંબંધી ફળોમાટે સ્વપ્નમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે તેસમયમાં સત્ય સમજીનેજ પ્રવૃત્તિ થાય છે, કાંઇ અસત્ય સમજીને પ્રવૃત્તિ થતી નથી, તેસમયમાં તો તે એમજ જાણે છે કે આ સત્ય છે, આ સ્વપ્ન છે માટે અસત્ય છે એમ તે જાણતો નથી તેથી પ્રવૃત્તિ કરે છે પણ અહિં તો ગુરુ પણ અસત્ય અને વેદપણ અસત્ય (કેવળ અજ્ઞાનથીજ કલ્પેલ) એમ જાણતો હોય તે ગુરુના વચનોથી વેદમાં કહેલાં કાર્યો કરવામાટે પ્રવૃત્તિ કેમ કરે?

શંકા—વિશેષ જ્ઞાન છે તે સજાતીયભ્રમની નિવૃત્તિ કરે છે, જેમ છીપમાં ચકચકાટ પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવવાથી તેમાં રૂપાંનો ભ્રમ થાય છે તે પ્રત્યક્ષથી બરોબર છીપનું જ્ઞાન થાય ત્યારે નિવૃત્ત થાય છે; માટે પ્રત્યક્ષજ્ઞાનથી જે ભ્રમ થયો

હોય તેની નિવૃત્તિ વિશેષ પ્રત્યક્ષજ્ઞાન થવાથી થાય છે અને અહિં તો બ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ થયો છે તે પ્રત્યક્ષરૂપ છે અને જગત્ મિથ્યા છે, કેવળ અજ્ઞાનથીજ કલ્પિત છે એવું જે જ્ઞાન થાય છે તે વેદાદિક—શબ્દથી થાય છે; માટે પ્રત્યક્ષજ્ઞાનથી થયેલા ભ્રમની નિવૃત્તિ શબ્દજ્ઞાનથી થાય નહિં; કેમકે પ્રત્યક્ષ અને શાબ્દ સજાતીય (એકજજાતનું) જ્ઞાન નથી પણ વિજાતીય (જૂદી જૂદી જાતનું) જ્ઞાન છે; માટે શાબ્દજ્ઞાનથી પ્રત્યક્ષમાં થયેલા ભ્રમની નિવૃત્તિ નહિં થવાથી વેદોક્તકર્માદિકમાં પ્રવૃત્તિ થવામાં બાધ નહિં આવે.

ઉત્તર—નિર્ગુણબ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ થયો છે તે છીપમાં રૂપાના ભ્રમની પેઠે પ્રત્યક્ષ છે એમ તમે કહો છો ત્યારે છીપની પેઠે નિર્ગુણ બ્રહ્મ પણ પ્રત્યક્ષ છે એમ તમારે કહેવું જોઇએ; કેમકે જો નિર્ગુણબ્રહ્મ પ્રત્યક્ષ થતું નજ હોય તો પછી તેમાં પ્રત્યક્ષ—દેખાતા આ જગતનો ભ્રમ થયો છે એમ કેમ કહિશકાય? તેમ છીપમાં રૂપાંનો ભ્રમ થાય તેમાં છીપ પ્રત્યક્ષ દેખાય તેમ છે, ખરૂં રૂપું હાટવિગેરેમાં આપણે જોયેલું છે, રૂપામાં તથા છીપમાં ચકચકાટથવારૂપ ધર્મ સમાન છે અને તેને જોનાર આપણે જૂદા છીયેં ત્યારેં છીપમાં રૂપાંનો ભ્રમ થાય છે, તેવી રીતેં નિર્ગુણબ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ થયો છે એમ ક્યારેં કહિશકાય? કે નિર્ગુણબ્રહ્મ પ્રત્યક્ષ દેખાય છે એમ માનવું જોઇએં, ખરૂં જગત્ બીજે સ્થળે આપણે જોયેલું છે એમ માનવું જોઇએં, જગતમાં તથા નિર્ગુણબ્રહ્મમાં પ્રત્યક્ષ દેખાય તેવા (ભ્રમના કારણરૂપ) અમુક ધર્મો સમાન છે એમ માનવું જોઇએં અને તેને જોનાર આપણે બ્રહ્મ તથા જગતથી જૂદા છીયેં એમ માનવું જોઇએં, ત્યારેં છીપમાં રૂપાંનો ભ્રમ થાય છે તેવી રીતેં નિર્ગુણબ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ થયો છે એમ માનીશકાય. પણ નિર્ગુણ બ્રહ્મ તો મન તથા વાણીથી અગોચર છે, તે છીપની માફક ભ્રમના આશ્રયરૂપ થઇશકે નહિં, ભ્રમશિવાયનું બીજું ખરૂં જગત્ છે એમ માનવા કરતાં આ દેખાતા જગતનેજ સત્ય માનવું એ ઉત્તમ પક્ષ છે; કેમકે બીજા જગતને તમે માનતા નથી તેમ બીજા કોઇ પ્રમાણથી પણ સિદ્ધ થઇશકતું નથી, નિર્ગુણબ્રહ્મમાં કોઇ ધર્મ નથી એમ તમે માનો છો તેથી જગતનો બ્રહ્મમાં ભ્રમથવામાં કારણરૂપ સમાન ધર્મ જોઇયેં તે સિદ્ધ થઇશકતો નથી અને તેભ્રમ આપણનેજ (જીવનેજ) થયો છે એમ તમે માનો છો તો આપણે (જીવો) પણ જગતની અંદરનાજ હોવાથી (છીપમાં રૂપાંનો ભ્રમ થાય છે ત્યાં જેમ રૂપું છે તેમ) ભ્રમરૂપજ છીયેં પણ બ્રહ્મમાં જગતનો જેને ભ્રમ થયો છે એવા કોઇ (બ્રહ્મ તથા જગતથી) જૂદા નથી; માટે છીપમાં રૂપાના ભ્રમની પેઠે બ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ થયો છે એમ કહિશકાતું નથી. તેમ સજાતીયભ્રમની નિવૃત્તિ વિશેષજ્ઞાનથી થાય છે એમ કહ્યું ત્યાં પણ કહિયેં છીયેં કે નદી કે તલાવના કિનારા ઉપર આંબાનાં વૃક્ષો હોય તેનો પ્રતિબિંબ જલમાં પડતો હોય તેને જોઇને, જલમાં દેખાતાં આ વૃક્ષો પ્રતિબિંબિત છે સત્ય નથી એમ જે જાણતો હોય તેને જેમ તે વૃક્ષો દેખાય છે તેવી રીતેં શાબ્દજ્ઞાનથી જગતની અસત્યતા જાણ્યા પછી પણ જગતની પ્રતીતિ થાય ખરી; કેમકે તમારું માનવું એમ છે કે

જગતનું જ્ઞાન પ્રત્યક્ષથી થાય છે અને જગત્ ખોટું છે એવું જ્ઞાન શબ્દથી થાય છે તે બન્ને જ્ઞાન વિજાતીય છે માટે શાબ્દજ્ઞાનથી પ્રત્યક્ષજ્ઞાનનો બાધ થાય નહિં માટે જલમાં વૃક્ષો દેખાય છે તે ખોટાં છે એમ જાણીયેં છીયેં તો પણ જેમ તે વૃક્ષો દેખાય છે તેમ જગત્ ખોટું છે એમ જાણ્યા પછી પણ જગત્ દેખાય ખરૂં એમ કહેતા હો તો ભલેં જગત્ દેખાઓ પણ જેમ જલમાં દેખાતાં આંબાના વૃક્ષોનાં ફલો લેવામાટે પ્રવૃત્તિ થતી નથી તેમ જગતમાં પ્રવૃત્તિ નહિં થવી જોઈએં. તેમ વેદાદિક–શાબ્દજ્ઞાનથીજ પ્રથમ એવું જ્ઞાન થયું છે કે યજ્ઞકરવાથી સ્વર્ગની પ્રાપ્તિ થાય તથા બ્રહ્મજ્ઞાનથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે અને પછી વેદાદિક–શાબ્દજ્ઞાનથીજ તેના મિથ્યાપણાંનું જ્ઞાન થયું કે યજ્ઞ તથા બ્રહ્મજ્ઞાન અને તેના ફલરૂપ સ્વર્ગ તથા મોક્ષ મિથ્યા છે એવું જે જ્ઞાન થયું એ પણ શાબ્દજ્ઞાનથી થયું છે તે બન્ને જ્ઞાન શાબ્દ હોવાથી સજાતીય છે; માટે પછી થયેલા મિથ્યાપણાંના જ્ઞાનથી પ્રથમ થયેલા જ્ઞાનનો બાધ થવામાં હરકત નહિં આવે; તેથી વેદાદિકમાં કહેલ એવા યજ્ઞાદિક–ધર્માચરણોમાં કે બ્રહ્મ જ્ઞાનાદિકમાં કોઇની પણ પ્રવૃત્તિ થશે નહિં એટલેં સન્માર્ગ ઉચ્છિન્નજ થઇજશે.

શંકા–દ્વૈતપ્રતીતિજ અનર્થરૂપ છે તેથી જગતની અંદરના વેદોને સત્ય માનીયેં તો જગતના ભાગનેજ સત્ય માનવા જેવું થાય, ત્યારેં બ્રહ્મ અને જગત્ બન્ને સત્ય છે એમ માનવું તે દ્વૈતની પ્રતીતિ છે તેની નિવૃત્તિ બ્રહ્મજ્ઞાનવગર થતી નથી; માટે દ્વૈતની પ્રતીતિની નિવૃત્તિ કરવામાટે પ્રવૃત્તિ થવી સંભવે છે તેમ નિર્ગુણબ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ કોને થયો? એમ જે પૂછનાર છે તેનેજ ભ્રમ થયો છે એમ સમજવું.

ઉત્તર–નિર્ગુણબ્રહ્મમાં કોને જગતનો ભ્રમ થયો છે? એમ પૂછનાર છે તે પણ જગતની અંદરનો હોવાથી (છીપમાં રજતનો ભ્રમ જોનારને થાય છે કાંઇ રજતને થતો નથી તેવી રીતેં બ્રહ્મમાં જગતનો ભ્રમ થયાનું પૂછનાર ભ્રમરૂપ થયો તેથી તે) ભ્રમનો જોનાર છે એમ કહિશકાતું નથી અને વેદો नारायणः साक्षात् (વેદ સાક્ષાત્ નારાયણ છે) ઇત્યાદિકવાક્યોથી વેદને બ્રહ્મરૂપપણુંજ હોવાથી વેદને સત્ય માનવામાં દ્વૈતપ્રતીતિ થતીજ નથી તેમ જગતને પણ तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः (આરંભણશબ્દાદિકથી જગતને બ્રહ્મથી અનન્યપણું સિદ્ધ કરેલું છે. એટલેં છાંદોગ્ય–ઉપનિષદમાં वाचारंभणम् (ઇત્યાદિક–શ્રુતિયોથી જગત્ બ્રહ્મથી જૂદું નથી એમ સિદ્ધ કર્યું છે.) તેમ तदात्मानं स्वयमकुरुत (તેબ્રહ્મેં પોતાના આત્માને જગદ્રૂપ કરેલ છે.) ઇત્યાદિક અનેક શ્રુતિયોવડે જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે એમ આગલ સિદ્ધ કર્યું છે માટે જગતને સત્ય કહેવામાં પણ દ્વૈતની પ્રતીતિ થતી નથી તેમ પ્રતિબિંબનો વિચાર કરિયેં છીયેં ત્યાં પ્રતિબિંબને જોનાર હોય છે તેને દર્પણવગેરે કોપનો સંબંધ થાય છે ત્યારેં પ્રતિબિંબ દેખાય છે એમ લોકમાં જોવામાં આવે છે, તેવી રીતેં પરમાત્માને અવિદ્યાનો સંબંધ હોય તો અવિદ્યામાં પડેલા પ્રતિબિંબરૂપજીવને પરમાત્મા જોઇશકે પણ પરમાત્મા (નિર્ગુણ બ્રહ્મ) ને અવિદ્યાનો સંબંધ છે એમ તો માનતા નથી તેથી

જીવના દ્રષ્ટા પરમાત્મા થાય નહિં એટલે વેદમાં કહેલ છે કે પરમાત્મા દ્રષ્ટા છે તેને બાધ આવે છે, અને વેદમાં દ્રષ્ટાપણું કહેલું છે તેને સિદ્ધ કરવામાટે જો પરમાત્માને અવિદ્યાનો સંબંધ છે એમ માનશો તો જીવની બરોબર પરમાત્મા પણ થયા; એટલે જીવ જેમ અવિદ્યાના સંબંધવાળો છે તેમ પરમાત્મા પણ અવિદ્યાના સંબંધવાળા થયા.

શંકા—જીવના દ્રષ્ટા પરમાત્મા છે એમ વેદમાં કહેલ છે તે નિર્ગુણ બ્રહ્મ નહિં પણ માયામાં નિર્ગુણબ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડીને જે ઇશ્વર થયા છે તે દ્રષ્ટા છે એમ સ્વીકારશું એટલે નિર્ગુણબ્રહ્મને અવિદ્યાનો સંબંધ માનવાની જરૂર પડશે નહિં.

ઉત્તર—જીવ તથા ઇશ્વર બન્ને નિર્ગુણબ્રહ્મના પ્રતિબિંબ છે એમ તમે માનો છો ત્યારે જેમ એકસૂર્યના બેદર્પણમાં જૂદા જૂદા પ્રતિબિંબ પડયા હોય તે એક બીજાને જોઇશકતા નથી, તેમ માયામાં પ્રતિબિંબિતથયેલા ઇશ્વર, અવિદ્યામાં પ્રતિબિંબિતથયેલા—જીવને જોઇશકે નહિં, તેમ ગાર્ગીબ્રાહ્મણમાં अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम् (સ્થૂલ નથી, સૂક્ષ્મ નથી, ટુંકું નથી અને લાંબું નથી.) ઇત્યાદિકધર્મવાળું નિર્ગુણ અક્ષરબ્રહ્મ છે, એમ અક્ષરબ્રહ્મનું નિરૂપણ કરીને नान्योतोऽस्तिद्रष्टा (એઅક્ષરબ્રહ્મથી બીજું કોઈ દ્રષ્ટૃ નથી. અથવા એ પરમાત્માથી બીજો કોઇ દ્રષ્ટા નથી.) એમ લખ્યું છે ત્યાં નિર્ગુણબ્રહ્મનેજ દ્રષ્ટાપણું કહેલું છે તેને બાધ આવે છે; નિર્ગુણ બ્રહ્મ કહો અથવા પરમાત્મા કહો, તેનેજ દ્રષ્ટાપણું છે. તેમ गुहां प्रविष्टौ (જીવ તથા ઇશ્વર એકગુહામાં પેસેલા છે.) એમ શ્રુતિમાં તથા વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે ત્યાં તમે ગુહાને જીવના અજ્ઞાનથી કલ્પેલી માનો છો ત્યારે ઇશ્વરની દૃષ્ટિમાં તો ગુહા છેજ નહિં ત્યાં તેમાં પ્રવેશ કરવાની હકીકત તો ક્યાંથીજ સંભવે? માટે તમારા માનવાપ્રમાણે એકગુહામાં જીવ તથા ઇશ્વરનો સાથેપ્રવેશ સંભવતોજ નથી. તેમ શાસ્ત્રમાં જીવન્મુક્તિનું નિરૂપણ કર્યું છે તે જીવન્મુક્તિ, તમારા માનવાપ્રમાણે સિદ્ધ થઇશકતી નથી; કેમકે અંતઃકરણમાં અથવા અવિદ્યામાં બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડયો તે જીવ થયો એમ તમારે કહેવું જોઇએ તેમાં અંતઃકરણમાં પ્રતિબિંબ પડયો તે જીવ થયો એમ કહેશું તો જીવન્મુક્તને અંતઃકરણ રહે છે કે નહિં? એ વિચારઉપર આવતાં જીવન્મુક્તને અંતઃકરણ રહે છે એમ માનવામાં સંસારિપણુંજ તેને પ્રાપ્ત થાય છે અને અંતઃકરણ જીવન્મુક્તને રહેતું નથી એમ માનવામાં અંતઃકરણ જતું રહેવાથી તેમાં પડે તે પ્રતિબિંબરૂપ જીવપણ જતો રહે ત્યારે તો પરમમુક્તિજ થાવી જોઇએ ત્યાં જીવન્મુક્ત કેમ કહિ શકાય? પોતે જીવતો હોય અને મુક્ત થયો હોય તેને જીવન્મુક્તિ થઈ કહેવાય પણ અંતઃકરણ જતું રહેવાથી તેમાં પ્રતિબિંબિત જીવ હતો તે પણ જતો રહે ત્યારે જીવન્મુક્ત કેમ કહિ શકાય?

શંકા—અવિદ્યામાં પ્રતિબિંબિત માનો તો શું હરકત છે?

ઉત્તર—અવિદ્યાનું નામ અજ્ઞાન છે તે બ્રહ્મજ્ઞાન થવાથી નિવૃત્ત થાય ત્યારે તેમાં પ્રતિબિંબ પડી જીવ થયેલો છે તેની પણ નિવૃત્તિ થાય; તેથી જીવન્મુક્તનો દેહ ચાલવાને પણ સમર્થ નહિં થાય.

શંકા—આપણે હાથવડે પત્થરનો ઘા કરીયેં છીયેં તે આપણા હાથમાંથી પત્થર જૂદો પડે છે, તેજ સ્થલે પૃથ્વી ઉપર પડતો નથી પણ હાથનો વેગ પત્થરમાં જેટલો આવ્યો હોય તેટલે દૂર ગયા પછી તે પત્થર પૃથ્વી ઉપર પડે છે અને જેમ કોઇ ચક્ર હાથવડે ફેરવીયેં તેને પછી હાથથી છોડીદઇએં તોપણ જેટલો વેગ તેની અંદર ભરાયો હોય તેટલો વખત તે ચક્ર ફર્યા કરે છે તેવી રીતેં જ્ઞાન થયા પછી અવિદ્યાનો નાશ થાય છે તોપણ પ્રારબ્ધમાત્ર અવિદ્યા બાકી રહે છે તેથી જીવન્મુક્તનો દેહ પણ સર્વે કાર્ય કરીશકે છે.

ઉત્તર—હાથવડે પત્થર જેદિશાતરફ ફેંકયો હોય તેદિશાતરફ તે પત્થર જઇશકે છે. બીજીતરફ જઇશકતો નથી અને ચક્ર પણ જેતરફના વેગમાં ફેરવ્યું હોય છે તેતરફજ ફરીશકે છે તેવી રીતેં અવિદ્યાનો નાશથયા પછી પ્રારબ્ધમાત્ર અવિદ્યા બાકી રહેલ હોય તો દેહ વિદ્યમાન રહે એટલુંજ તે કરીશકે તેથી વધારે (એટલેં સર્વ) જીવની ક્રિયા કરીશકે નહિં; કેમકે જીવ પણ જતો રહેલ છે, ત્યારેં જનકાદિક જીવન્મુક્ત થઇગયા છે તેમણે રાજ્યાદિક કરેલ છે તેમાં બાધ આવશે. અને કાંઇક અવિદ્યાનો અંશ રહે છે તેથી જીવ પણ રહે છે એમ માનતા હો તો બ્રહ્મનો સાક્ષાત્કાર થયા છતાં પણ અવિદ્યાનો અંશ રહ્યો અને તેથી જીવભાવ પણ રહ્યો ત્યારેં કોઇ દિવસ પણ તેનો નિવૃત્તિ થશેજ નહિં; અર્થાત્ અવિદ્યાના જેટલા અંશનો જ્ઞાનથી નાશ થયો નથી તેટલો અવિદ્યાનો અંશ સર્વદા રહેશે એટલેં જીવભાવ પણ સર્વદા રહેશે એ તમારા મતથી વિરુદ્ધ છે.

શંકા—પ્રારબ્ધમાત્ર જે અવિદ્યાનો અંશ રહે છે તેનો નાશ તો કેવળ ભોગ ભોગવવાથીજ થાય છે; માટે જેટલો ભોગ ભોગવવાનું પ્રારબ્ધ હશે તેટલો ભોગ ભોગવાઇ રહેશે ત્યારેં તે અવિદ્યાનો અંશ પણ નિવૃત્ત થઇજશે એટલેં કોઇજાતનો બાધ આવશે નહિં.

ઉત્તર—ઠીક! ત્યારેં તો અવિદ્યા અને અવિદ્યાનાં કાર્યથી પણ પ્રારબ્ધમાત્ર બાકી રહેલો અવિદ્યાનો તે અંશ જૂદો છે એમ તમારા કહેવાનો અભિપ્રાય જણાય છે, પણ દોરડાંમાં સર્પની ભ્રાંતિ થઇ હોય ત્યારેં તેદોરડામાં સર્પનું જ્ઞાન અને તેનાથી જે ભય થતો હોય તે, દોરડાનું જ્ઞાન થયા પછી કોઇ પણ અંશે રહેતો નથી તેવી રીતેં બ્રહ્મજ્ઞાન થયા પછી અવિદ્યાનો કાંઇ પણ અંશ રહે નહિં.

શંકા—દોરડાનું જ્ઞાન થયા પહેલાં આ સર્પ છે એવા જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થયેલા ભયને લીધે જે કંપાદિક થયો હોય તે દોરડાનું જ્ઞાન થયા પછી પણ થોડો વખત રહે છે તેમ અવિદ્યાનો પ્રારબ્ધમાત્ર અંશ પણ રહે તેમાં અડચણ નહિં.

ઉત્તર—દોરડામાં સર્પની ભ્રાંતિ થઇ હોય તે પ્રથમ ખરો સર્પ જોયેલો હોવાથી ભ્રાંતિના સમયમાં પણ જે ભય થાય છે તે ખરા સર્પના કારણથીજ થાય છે જેણે ખરો સર્પ જોયેલો ન હોય તેને ભય પણ થતો નથી તેથી તે ભય થવામાં કારણ સત્યસર્પજ છે તોપણ તેનાથી થયેલા કંપથી બીજું કાંઇ કાર્ય થઇશકતું નથી તેવી રીતેં અહિં બીજું સત્ય જગત્ છે એમ તો તમે માનતા નથી કે અવિદ્યાથી જેનો

ભ્રમ નિર્ગુણબ્રહ્મમાં થયો હોય તે જ્ઞાનવડે નિવૃત્ત થાય તોપણુ (દોરડામાં સત્યસર્પની ભ્રાંતિ થવાથી થયેલા ભયને લીધે કંપાદિક થયેલ હોય તે દોરડાનું જ્ઞાન થયા પછી પણ રહે છે તેવી રીતે) પ્રારબ્ધમાત્ર અવિદ્યાનો અંશ રહે છે એમકહિ શકાય? તેમ તેનાથીકેવળદેહની વિદ્યમાનતાજ કદાચિત્ રાખી શકાય પણ ભોગાદિક બીજું કાંઇપણ કાર્ય થઇશકે નહિં તેમ દોરડામાંસર્પની ભ્રાંતિ થાય છે ત્યારે પ્રથમ સત્ય-સર્પથી થતો ભય અનુભવમાં હોવાથી તેભયનો વેગ અંતઃકરણમાં આવવાથી કંપા-દિક થાય છે તે વેગનામના સંસ્કારથીજ થાય છે અને અહિં તો અવિદ્યાથી પ્રા-રબ્ધ બંધાય છે એમ તમે માનો છો માટે તેનાથી કોઇજાતનો સંસ્કાર થઇશકતો નથી તેથી જ્ઞાનવડે તેનો અવશ્ય નાશ થવોજ જોઇએ તે છતાં જ્ઞાન થયા પછી અજ્ઞાનનો અંશ કેમ રહે? માટે તમારા માનવાપ્રમાણે અવિદ્યામાં બ્રહ્મનો પ્રતિ-બિંબ પડી જીવ થયો હોય તો જીવન્મુક્તપણું સિદ્ધ થઇશકતું નથી અને જનક-વિદેહાદિક જીવન્મુક્ત હતા છતાં રાજ્ય કરતા હતા તથા શુકસનકાદિક જીવન્મુક્ત હતા છતાં સર્વત્ર અપ્રતિહતગતિવાળા હોઇને તેવા અધિકારિઓને બોધ આપતા હતા એમ સર્વશાસ્ત્રથી સિદ્ધ હોવાથી જીવન્મુક્તિ નથી એમ તો કહીશકાય તેમ નથી; માટે નિર્ગુણબ્રહ્મનો અવિદ્યામાં પ્રતિબિંબ પડી જીવ થયો એમ સિદ્ધ થઇશકતું નથી. કેમકે બ્રહ્મ, રૂપવગરનું છે એમ તમે માનો છો તથા પ્રથમ નિરૂપણ કર્યું છે તે-પ્રમાણે રૂપવગરના પદાર્થનો પ્રતિબિંબ પડતોજ નથી.

શંકા—આકાશ રૂપવગરનું છે છતાં તેનો પ્રતિબિંબ જલાદિકમાં કેમ પડે છે? તેવી રીતે બ્રહ્મ રૂપવગરનું છે તો પણ તેનો પ્રતિબિંબ પડે છે.

ઉત્તર—જલાદિકમાં આકાશનો પ્રતિબિંબ પડતો નથી પણ આકાશમાં રહેલ પ્રભામંડલ જે આપણા જેવામાં આવે છે તેનોજ પ્રતિબિંબ પડે છે તે પણ ઉપર નિરૂપણ કર્યું છે એટલે આ આકાશ શ્યામ છે, રક્ત છે ઇત્યાદિ પ્રતીતિ થાય છે તે આકાશમાં શ્યામતા કે રક્તતા નથી છતાં તેવી ઉપાધિને લઇને તેવી પ્રતીતિ થાય છે તે ઉપાધિનાં રૂપનોજ જલાદિકમાં પ્રતિબિંબ પડે છે તેથી શ્યામતાના પ્રતિબિં-બને લીધે અગાધપણું અને રક્તતાના પ્રતિબિંબને લીધે રક્તિમા જલમાં દેખાય છે બાકી તેઔપાધિકરૂપને અને આકાશને કોઇજાતનો સંબંધ નથી તેથી આકા-શનો પ્રતિબિંબ પડે છે એમ કહિશકાતું નથી. અને જો આકાશનો પ્રતિબિંબ પડે છે એમ કહેશો તો આ આકાશ શ્યામ છે એવી પ્રતીતિ થાય છે તેથી નેત્રવડે આ-કાશ જોઇશકાય છે એમ કબૂલ કરવું પડશે. અને તેમ કબૂલ કર્યું ત્યારે આકાશના દાખલાથી રૂપવગરનું બ્રહ્મ પણ નેત્રવડે જોઇશકાય છે એમ કબૂલ કરવું પડશે.

શંકા—જગતના જન્માદિક જેનાથી થાય છે તે ઇશ્વર કલ્પિતરૂપવાળા છે તે નેત્રવડે જોઇશકાય છે.

તમારા મતમાં નિર્ગુણ—બ્રહ્મનો માયામાં પ્રતિબિંબ પડયો તે ઇશ્વર થયા છે એમ સ્વીકાર્યું છે તેથી તે ઇશ્વર નેત્રવડે જોઇશકાય છે એમ તમે કહો તો પણ જે બાબત અહિં સિદ્ધ કરવાની છે તે સિદ્ધ થઇશકતી નથી; કેમકે અહિં તો આકાશ

રૂપવગરનું છે છતાં તેનો પ્રતિબિંબ પડે છે તેવી રીતે બ્રહ્મ રૂપવગરનું છે તો પણ તેનો પ્રતિબિંબ પડી શકે એમ તમે કહો છો તેના પ્રસંગમાં અમે એમ કહિયે છીયે કે આકાશ રૂપવગરનું છે તેમાં શ્યામતાવિગેરેની પ્રતીતિ થાય છે તેથી આકાશ નેત્રવડે દેખાય છે એમ કબૂલ કરવું પડશે તેદાખલાથી બ્રહ્મ પણ રૂપવગરનું છે તો પણ જોઇ શકાય છે એમ તમારે સ્વીકારવું પડશે. એવી રીતે બિંબને સ્થાને તમે માનેલ નિર્ગુણ બ્રહ્મ નેત્રવડે દેખાવાનો પ્રસંગ આવવાની આ બાબત છે ત્યાંીતમે પ્રતિબિંબને સ્થાને માનેલ ઈશ્વર નેત્રવડે દેખાય છે એમ કહો છો તે ઉપયોગ નથી.

શંકા—નૈયાયિક લોકો ગુણમાં ગુણનો સ્વીકાર કરતા નથી તેથી રૂપવગરનું રૂપ છે તેનો પ્રતિબિંબ દેખાય છે તેવી રીતે બ્રહ્મ રૂપરહિત છે તો પણ તેનો પ્રતિબિંબ પડવામાં બાધ નથી.

ઉત્તર—રૂપવાળો જે ઘટાદિક પદાર્થ છે તેનો પ્રતિબિંબ જલાદિકમાં પડે છે તેને લઈને રૂપની પ્રતીતિ થાય છે બાકી રૂપનો જૂદો પ્રતિબિંબ પડવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી; કેમકે જેપદાર્થનો આશ્રય કરીને રૂપ રહે છે તેપદાર્થશિવાય રૂપની જૂદી પ્રતીતિ થવાનું સર્વશાસ્ત્ર તથા અનુભવથી વિરુદ્ધ છે તેમ દર્પણાદિકમાં ઘડા વિગેરેનો પ્રતિબિંબ પડેલો જોઇને તેઘડામાં રહેલાં રૂપને દેખે છે ત્યારે ઘડામાં રહેલું આ રૂપ રૂપરહિત છે છતાં તેનો પ્રતિબિંબ પડે છે એમ દેખે છે તેવી રીતે બ્રહ્મ રૂપરહિત છે તો પણ તેનો પ્રતિબિંબ પડે એમ તમે માનો છો ત્યારે ઘડામાં રહેલું રૂપ રૂપરહિત છે છતાં નેત્રવડે દેખાય છે તેવી રીતે બ્રહ્મ રૂપરહિત છે તો પણ નેત્રવડે દેખાય ખરૂં એમ તમારે માનવું પડશે. તેમ અવયવમાં બીજાં અવયવ નથી તેથી ચરણવગરના ચરણ છે તો પણ ચાલે છે એમ જોવાથી ચરણરહિત માણસ હોય તે પણ ચાલે ખરો. તેવીજ રીતે તમામઅવયવોમાટે તર્ક આવશે; માટે તેતે અવયવવાળા માણસમાંજ તેતેકાર્યકરવાની શક્તિ હોય છે પણ જૂદા અવયવોમાં તેવી કલ્પના કરવાની નથી, તેવીજ રીતે રૂપાદિકગુણોવાળા પદાર્થનોજ પ્રતિબિંબ પડે છે, રૂપાદિકગુણોનો પ્રતિબિંબ પડતો નથી. તેમ તેતે પદાર્થોસાથે રૂપાદિકગુણોનો પ્રતિબિંબ પડે છે અને ગુણોમાં ગુણો નહિં હોવાથી તે નિર્ગુણ છે તેનો પ્રતિબિંબ પડે છે તે દાખલો લઇને બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડે છે એમ કદાચિત્ માનશો તો પણ રૂપાદિક ગુણો જેમ ઘડાવિગેરેનો આશ્રય કરીનેજ રહે છે અને ઘડાવિગેરે પદાર્થોની સાથેજ રૂપાદિકગુણોનો પ્રતિબિંબ પડે છે તેવી રીતે બ્રહ્મ પણ બીજાનોજ આશ્રય કરીનેજ રહે છે અને બીજાની સાથેજ બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડે છે, સ્વતંત્ર બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડતો નથી એમ તમારે માનવું પડશે. તેમ ગુણમાં ગુણ રહેતો નથી એન્યાયથી રૂપ નિર્ગુણ છે છતાં નેત્રવડે દેખાય છે તેમ બ્રહ્મ નિર્ગુણ છે છતાં નેત્રવડે દેખાય એમ પણ માનવું પડશે; માટે તમારા માનવાપ્રમાણે રૂપનો પ્રતિબિંબ પડવાના દાખલાથી બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ પડે એમ સિદ્ધ થઇશકતું નથી.

શંકા—શ્રુતિમાં एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् (ચંદ્રમા જેમ એક છે છતાં જૂદા જૂદા પાત્રમાં જલ ભરેલું હોય તેમાં પ્રતિબિંબ પડવાથી ઘણાંરૂપેં દેખાય છે તેમ બ્રહ્મ એક છે છતાં અવિદ્યામાં પ્રતિબિંબ પડી ઘણાં (જીવ) રૂપે દેખાય છે) એમ લખ્યું છે તેથી બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ જીવ છે એમ માનવુંજ જોઇએં.

ઉત્તર—જલચંદ્રનું દૃષ્ટાંત છે તે એક જૂદાજૂદાપ્રકારેં થાય છે એમ બતાવવામાટે છે કાંઇ બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ જીવ છે એમ બતાવવામાટે નથી; તેથીજ શ્રુતિમાં ઘણારૂપેં દેખાય છે એમ લખ્યું છે કાંઈ પ્રતિબિંબ પડી ઘણારૂપેં થાય છે એમ લખ્યું નથી; તેમ પ્રતિબિંબનો પક્ષ શ્રુતિનો અભિપ્રાય છે એમ કહેશો તો બ્રહ્મ બિંબ છે એમ પણ શ્રુતિનો અભિપ્રાય છે એવી રીતેં તમારે સ્વીકારવું પડશે; એટલેં બ્રહ્મને સગુણપણું આવશે તે તમારા મતથી વિરૂદ્ધ છે.

શંકા—બ્રહ્મનો પ્રતિબિંબ જીવ છે એમ કહેવામાં તમેં ઉપરબતાવ્યાપ્રમાણે ઘણાં દૂષણો આવે છે તો પ્રતિબિંબનો પક્ષ છોડીદઈએં છીએં પણ વ્યાસસૂત્રમાં आभास एव च (બ્રહ્મનો આભાસજ જીવ છે.) એમ બ્રહ્મનો આભાસ જીવ કહેલો છે તેથી નેત્રને આંગળીથી દબાવીએં એટલેં એક ચંદ્ર છે તેને બદલે બે ચંદ્ર દેખાય છે તેવી રીતેં બ્રહ્મને અવિદ્યાનો સંબંધ થવાથી તેના આભાસરૂપ જીવ થયેલ છે એમ સ્વીકારશું એટલેં વ્યાસસૂત્રનો અભિપ્રાય સિદ્ધ રહેશે અને जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति (જીવ તથા ઇશ્વરને આભાસવડે કરે છે અને માયા તથા અવિદ્યા પોતેં (માયા)જ થાય છે) એ નૃસિંહતાપિનીની શ્રુતિમાં લખેલું આભાસપણું પણ સિદ્ધ રહેશે.

ઉત્તર—વ્યાસસૂત્રમાં જીવ આભાસ છે એમ લખ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે જેમ આચારાદિક-ધર્મવગરનો બ્રાહ્મણ હોય તે બ્રાહ્મણનો આભાસ કહેવાય છે તેમ બ્રહ્મમાં આનંદાદિક ધર્મો છે તે જીવમાં તિરોહિત થઇગયા છે તેથી બ્રહ્મનો આભાસમાત્ર જીવ છે એમ કહ્યું છે. જો અવિદ્યાના સંબંધથી આભાસ થવાનો વ્યાસજીનો અભિપ્રાય હોત તો તેવી રીતેં સૂત્રમાં લખત, પણ કેવળ આભાસમાત્રજ લખેલ છે તેથી અમારા કહેવાપ્રમાણેજ વ્યાસજીનો અભિપ્રાય છે એમ જણાય છે. તેમ નેત્રને અંગુલીનો સંબંધ થવાથી જેમ બે ચંદ્ર દેખાય છે તે જોનારને ભ્રમ થાય છે તેમ અહિં અવિદ્યાના સંબંધથી બ્રહ્મને અનેકની પેઠેં દેખાય છે કે જીવને અનેકની પેઠેં દેખાય છે? તે વિચારવું જોઈએં. બ્રહ્મને અનેકની પેઠેં દેખાવાનો ભ્રમ થાય છે એમ તો કહિશકાય તેમ નથી; કેમકે બ્રહ્મને ભ્રમ થવો સંભવતો નથી તેમ બ્રહ્મને અવિદ્યાનો સંબંધ થયો છે એમ માનવું એ પણ સંભવતું નથી; કેમકે બ્રહ્મને અવિદ્યાનો સંબંધ બ્રહ્મેં પોતેં કર્યો કે અવિદ્યાયેં કર્યો? એ વિચાર કરીયેં તો બ્રહ્મ તો ક્રિયાવગરનું અને ગુણવગરનું છે એમ તમે માનો છો તેમાં વળી અવિદ્યાનો સંબંધકરવારૂપ ક્રિયા ક્યાંથી આવે? અને અવિદ્યા તો અચેતન છે એમ તમે માનો છો તે સંબંધ શી રીતે કરીશકે? તેથી અવિદ્યા બ્રહ્મનો સંબંધ કરી તેને ભ્રમ કરે ત્યારેં જીવમાં તથા બ્રહ્મમાં તારતમ્ય શું? તેમ જીવને

અવિદ્યાના સંબંધથી અનેકની પેઠે દેખાવાનો ભ્રમ થાય છે એમ પણ કહિશકાતું નથી કેમકે જીવ કાંઇ બ્રહ્મને જોનાર નથી, આંગળીવડે નેત્રને દબાવીને ચંદ્રમાને જોનાર પુરુષ જૂદો છે તેને ચંદ્રમા બે દેખાય છે, તેવી રીતેં જીવ જૂદો જોનાર નથી પણ બીજો ચંદ્રમા દેખાય છે તેઠેકાણે તમે જીવને માનો છો તેથી ભ્રમરૂપ જીવ થયો. કાંઇ ભ્રમ જેને થાય છે તે જીવ છે એમ સિદ્ધ થતું નથી; કેમકે જે ખરો ચંદ્ર છે તેને કે આંગળીનો નેત્રને સંબંધ થવાથી બીજો ચંદ્ર દેખાય છે તેને બેચંદ્રનો ભ્રમ થતો નથી, બેચંદ્રનો ભ્રમ તો ત્રીજો જોનાર છે તેને થાય છે તેવી રીતેં અહિં બ્રહ્મ અને જીવશિવાય ત્રીજો જોનાર કોણ? એ પણ સમજવું જોઇએ. તેમ બીજો ચંદ્ર દેખાય છે તે કાંઈ ખરો નથી તેવી રીતેં જીવ ખરા ન હોય તો તેને ભ્રમ થવો ઘટતો નથી અને બ્રહ્મને તો દોષનો સંબંધજ હોય નહિં ત્યાં ભ્રમ શાનો થાય? તેમ જીવ ખોટા હોય તો બૃહદારણ્યક–ઉપનિષદમાં જીવના અંતર્યામી ઇશ્વર છે એમ લખ્યું છે તેનો બાધ આવે; કેમકે ખોટા જીવના અંતર્યામી ઇશ્વર સંભવેજ નહિં, તેમજ ખોટા જીવના દ્રષ્ટા, સાક્ષી કે તેને નિયમમાં રાખનાર ઈશ્વર છે એમ કહિશકાય નહિં, ત્યારેં ઘણી શ્રુતિયોનો બાધ આવે; માટે આંગળીનો નેત્રને સંબંધ થવાથી ચંદ્રમા બે દેખાય છે તેમ બ્રહ્મને કે જીવને અવિદ્યાનો સંબંધ થવાથી જીવ થયા છે એમ સિદ્ધ થઇશકતુંજ નથી. અને નૃસિંહતાપિનીમાં માયા, આભાસવડે જીવને તથા ઇશ્વરને કરે છે એમ લખ્યું છે તેતો ઇશ્વર અને જીવ સત્ય છે તેના આભાસવડે ઇંદ્રજાલની માફક માયિકસૃષ્ટિ કરવાનું લખ્યું છે. કેમકે ઇશ્વર તથા જીવ બન્ને માયાયેં કરેલા છે એમ કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોય તો પછી ઇશ્વરની ઉપાસના કરવાનું શ્રુતિમાં કેમ લખે? તેમ ઇશ્વર તથા જીવ માયાયેં કરેલા છે એમ કહેવાથી બન્ને ખોટા થઇજાય છે ત્યારેં જીવનાં સાધન અને ઇશ્વરનાં યજનાદિકને બતાવનાર ઘણી શ્રુતિયો છે તે ખોટી પડી જાય; માટે નૃસિંહતાપિનીની શ્રુતિમાં તો કેવળ માયિકસૃષ્ટિજ બતાવી છે તે અસત્ય છે તેનું નિરૂપણ શાસ્ત્રમાં આવે છે તેઉપરથી મોહ પામીનેજ કેટલાએકને સત્યસૃષ્ટિમાં પણ અસત્યતાનો ભ્રમ થાય છે; માટે આ આચારદિક–ધર્મવગરનો બ્રાહ્મણ હોય તે બ્રાહ્મણનો આભાસ માત્ર કહેવાય તેમ આનંદ તથા ઐશ્વર્યાદિકનો જીવમાં તિરોભાવ થવાથી જીવ બ્રહ્માભાસ છે એમ કહેવાનો વ્યાસજીનો અભિપ્રાય છે.

શંકા–દોરડામાં સર્પની ભ્રાંતિ થાય છે તેવી રીતેં બ્રહ્મમાં જગતની ભ્રાંતિ થઇ છે એમ માનવામાં શું હરકત છે? માટે દોરડામાં સર્પનો આભાસ થાય છે તેવી રીતેં બ્રહ્મમાં જગતનો આભાસ થાય છે; માટે જીવ આભાસ છે એમ વ્યાસસૂત્રમાં લખ્યું છે.

ઉત્તર–બીજે સ્થલેં સાચો સર્પ જોયેલો છે તેથી દોરડામાં સર્પની ભ્રાંતિ થાય છે પણ અહિં તો બીજું સત્ય જગત છે એમ તમે માનતા નથી ત્યારેં તેનો ભ્રમ શી રીતેં થાય? તેમ દોરડું દેખાય છે તે અંધકાર વિગેરે દોષમાં પડેલું હોય છે અને જોનાર જૂદો હોય છે ત્યારેં તેને દોરડામાં સર્પનો ભ્રમ થાય છે, તેવી

રીતેં બ્રહ્મ દેખાતું નથી, તેને દોષનો સંબંધ નથી અને બ્રહ્મને જોનાર જૂદો હોય નથી ત્યારેં ભ્રમ શી રીતેં થાય? તેમ દોરડામાં સર્પનોજ ભ્રમ થાય છે પણ ઘોડા કે હાથીવિગેરેનો ભ્રમ થતો નથી તે કેવળ દોરડાંનો તથા સર્પનો આકાર સરખો હોવાથીજ સર્પનો તેમાં ભ્રમ થાય છે અને અહિં જગતમાં તો ઘટ, પટવિગેરે અનેક પદાર્થો જૂદાજૂદા આકારવાળા દેખાય છે તેતમામપદાર્થોના આકારજેવો બ્રહ્મનો આકાર છે એમ માનો ત્યારેં આખા જગતનો બ્રહ્મમાં ભ્રમ થયો છે એમ કહિશકાય અને તેમ માનવામાં બ્રહ્મને તમે નિરાકાર કહો છો તેને બદલે સાકારપણું બ્રહ્મનું સિદ્ધ થાય છે.

શંકા—ગંધર્વનગર દેખાય છે તે બીજે ક્યાંય નહિં છતાં દેખાય છે તેવી રીતેં આ જગત્ બ્રહ્મમાં દેખાય છે એમ માનવામાં શું હરકત છે?

ઉત્તર—જંગલમાં મેદાન હોય ત્યાં સૂર્યનાં કિરણો પડતાં હોય અને વૃક્ષોનો અંતરાય સરખી રીતનો હોય ને તેની અંદરથી આકાશ દેખાતું હોય ત્યાં વાયુના સંબંધથી કિલ્લાજેવું દેખાય છે તે ગંધર્વનગર કહેવાય છે, તેવી રીતેં બ્રહ્મમાં જગત્ દેખાય છે એમ કહેશો તો બ્રહ્મને બીજાનો સંબંધ છે એમ માનવું પડશે તે બીજો તો કોઇ પણ બ્રહ્મશિવાય છે નહિં ત્યાં તેનો સંબંધ શી રીતેં માનીશકાય? તેમ આપણે બીજે સ્થલે સત્ય કિલ્લો જોયો છે ત્યારેં અહિં વૃક્ષોની વચમાં સરખું આકાશ લંબાઇમાં દેખાય છે ત્યાં રાંગનો ભ્રમ થાય છે અને વૃક્ષને ફરતું ગોલાઇમાં આકાશ દેખાય છે ત્યાં કોઠાનો ભ્રમ થાય છે તેવી રીતેં બીજે સ્થલે જગત્ જોયાનું સિદ્ધ કરવું જોશે, આકાશની માફક બ્રહ્મ દેખાય છે એમ માનવું જોશે અને ગંધર્વનગરને જોનાર જૂદા માણસ છે તેમ બ્રહ્મમાં જગતને જોનાર આપણે (જગતથી) જૂદા છીએં એમ સિદ્ધ કરવું જોશે ત્યારે ગંધર્વનગરની માફક જગત્ (મિથ્યા છે છતાં) દેખાય છે એમ કહિ શકાશે; માટે તેવીરીતેં માનવામાં પણ તમારા સિદ્ધાંતને બાધ આવશે.

શંકા—છાંદોગ્યની શ્રુતિમાં वाचारंभणम् એમ કહેલ છે ત્યાં જગતની અસત્યતા લખી છે માટે જગત્ અસત્ય છે એમ માનવુંજ જોઇએ.

ઉત્તર—એશ્રુતિમાં જગતની અસત્યતા કહી નથી પણ બ્રહ્મથી જૂદું જગત્ નથી એમ કહેલ છે તે तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः (वाचारंभणम् ઇત્યાદિકશ્રુતિયોથી જગતનું બ્રહ્મથી અનન્યપણું સિદ્ધ કર્યું છે) એ વ્યાસસૂત્ર અને ઉપરની શ્રુતિ લખીને પ્રથમ સિદ્ધ કર્યું છે ને આગલ પણ પાછું સિદ્ધ થશે; માટે તેશ્રુતિથી જગતની અસત્યતા સિદ્ધ થતી નથી;

શંકા—શ્રીભાગવતના એકાદશસ્કંધમાં શ્રીકૃષ્ણ—ભગવાને ઉધ્ધવજીપ્રત્યેં કહ્યું છે કે "મનવડે, વચનવડે, બેનેત્રવડે અને શ્રવણાદિકથી જેનું ગ્રહણ થાય છે તે નાશાત્મક અને માયામનોમય છે" તેથી જગતને માયિકપણું અને નાશાત્મકપણું અમે કહિયેં છીયેં.

ઉત્તર—એકાદશસ્કંધમાં પ્રથમ પરીક્ષિત્રાજાયેં પૂછ્યું છે કે શ્રીકૃષ્ણમાંજ જેઓનું ચિત્ત છે એવા યાદવોને વિપ્રશાપ કેમ થયો? કે યદુકુલનો નાશ થયો. તેના ઉત્તરના પ્રસંગમાં શ્રીકૃષ્ણ તથા ઉદ્ધવજીનો સંવાદ આવ્યો છે ત્યાં શ્રીકૃષ્ણે ઉદ્ધવજીપ્રત્યેં કહ્યું છે કે:—

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्यमाणं तद्विद्धि मायामनोमयम् ॥

અર્થ—જે આ યાદવકુલ, મનવડે, વચનવડે, બેનેત્રવડે અને શ્રવણાદિવડે ગૃહ્યમાણ છે તે માયામનોમય નશ્વર છે એમ જાણ્ય. અર્થાત્ ખરેખરૂં નશ્વર નથી પણ માયાથીજ નશ્વરજેવું દેખાડેલું છે. એવો અભિપ્રાય છે; તેથીજ છેવટના અધ્યાયમાં શ્રીકૃષ્ણે દારુકસારથિને કહ્યું છે કે:—

मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज।

અર્થ—(યાદવકુલનો નાશ જોઇને દારુક બહુ ખેદ કરવા લાગ્યો ત્યારેં કહ્યું છે કે) આ મ્હારી માયાની રચના છે એમ જાણીને શાંતિને પ્રાપ્ત થા. એમ કહ્યું છે ત્યાં પણ માયાવડેજ યાદવકુલનો નાશ દેખાડવાનું કહ્યું છે. બાકી વાસ્તવિક તેનો નાશ થયોજ નથી; માટે તેને અનુસરિને અહિં પણ અર્થ કરવો જોઇએં. અહિં જગત્ નાશાત્મક છે એમ કહેવાનો પ્રસંગ નથી; તો પણ કદાચિત્ જગતને નાશાત્મક કહેવાનો અભિપ્રાય છે એમ માનિયેં તો પણ એવો અર્થ થાય છે કે મનવડે, વચનવડે, બેનેત્રવડે શ્રવણાદિકવડે જે નાશાત્મક છે એમ ગૃહ્યમાણ થાય છે તે માયામનોમય જાણ્ય. એટલેં નાશાત્મક જાણવું તે માયામનોમય કહેલ છે. કાંઇ જગતને માયામનોમય કહેલ નથી; માટે પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદામાં પ્રાવાહિકસૃષ્ટિને માયામનોમય કહેલ છે તે સૃષ્ટિજ અહિં પણ માયામનોમય કહેલી છે. તેથી સ્વાપ્નિક સૃષ્ટિનેજ માયિકપણું વ્યાસસૂત્રમાં मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् (સ્વાપ્નિક, પ્રપંચ માયામાત્ર છે કેમકે સમગ્રપ્રપંચનું સ્વરૂપ સરખી રીતેં સ્વપ્નમાં પ્રકટ થતું નથી; એટલેં જગતમાં જે પદાર્થ જેવખતેં જ્યાં જોયેલો હોય તેપદાર્થ તે વખતેં ત્યાં તેવોજ હોય છે તેમ સ્વપ્નમાં જોયેલો પદાર્થ તેવી રીતેં સરખો દેખાતો નથી પણ બીજા સ્થલનો બીજા સ્થલમાં અને બીજા સમયનો બીજા સમયમાં દેખાય છે. તેમ તેની સાથેની બાબતો પણ સરખી રીતેંજ સ્વપ્નમાં દેખાતી નથી. એમ) સ્વાપ્નિકપ્રપંચનેજ માયિકપણું કહેલું છે; તેથીજ જગતને માટે वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् (સ્વપ્નની સૃષ્ટિના અને જગતના ધર્મો સમાન નથી તેથી સ્વપ્નાદિકની પેઠે જગત નથી.) એમ વ્યાસસૂત્રમાંજ સ્વપ્નાદિકથી જગતનું વિલક્ષણપણું કહ્યું છે; માટે જગતને માયિકપણું નથી; તેથીજ શ્રીઆચાર્યજી—મહાપ્રભુજીયેં નિબંધમાં કહેલ છે કે:—

मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते।

અર્થ—પુરાણોમાં જગતનું માયિકપણું કહેવાય છે તે જગતમાં વૈરાગ્ય થવાસારૂ કહેવાય છે. બાકી જગત માયિક નથી. શાખાચંદ્રના ન્યાયથી કે શાખાઅ-

રુંધતીના ન્યાયથી બ્રહ્મમાં ઉપાસનાદિકધર્મને આરોપ કરાય છે એમ કહેવું પણ સંભવતું નથી; કેમકે શાખાની પેઠે બ્રહ્મ પ્રત્યક્ષ નથી કે તેમાં ચંદ્ર કે અરુંધતીની પેઠે ધર્મનો આરોપ કરીશકાય. તેમ માયોપહિત પણ ઈશ્વર છે એમ કહિશકાતું નથી; કેમકે માયોપહિતનો તો ત્યાગ કરવો જોઇએ, માટે પુત્રાદિકમાંથી આસક્તિ છોડવાનો જેમ શાસ્ત્રમાં ઉપદેશ કરેલો છે તેમ ઇશ્વરમાંથી પણ આસક્તિ છોડવાનો ઉપદેશ શાસ્ત્રમાં હોવો જોઇએ. પણ તેની ઉપાસના કે યજનાદિકકરીને તેમાં આસક્તિ કરવાનો ઉપદેશ નહિં હોવો જોઇએ. અને શાસ્ત્રમાં તો સર્વત્ર ઇશ્વરની ઉપાસના કરવાનો અને તેનું યજન કરવાનો ઉપદેશ કરેલો છે માટે ઇશ્વર માયોપહિત છે એમ કહેવું સંભવતુ નથી, તેમ જગત્ મિથ્યા, ઇશ્વર મિથ્યા, જગતમાં ઉપદેશ આપનાર ગુરુ છે તે મિથ્યા અને તેણે આપેલ જ્ઞાનોપદેશ પણ મિથ્યા એમ સર્વને મિથ્યા માનવાથી મિથ્યાજ્ઞાનવડે ચિત્તશુદ્ધિ થાય એમ કહેવું ત્યારે પ્રપંચના જ્ઞાનવડે પણ ચિત્તશુદ્ધિ થવી જોઇએ. ઈત્યાદિક અનેક દૂષણો માયાવાદ માનવામાં આવે છે. (૨૨)

માયાવાદનું મૂલ માયા હોવાથી માયા જન્ય છે કે અજન્ય છે? એમ પૂછી બન્નેપક્ષમાં દૂષણ બતાવે છે.

मूलम् । किञ्च जन्यात्त्वजन्या वा मायाऽऽद्ये जनको हि कः ।
अन्या भावात्तु ब्रह्मैव सविशेपत्वमागतम् ॥ २३ ॥
द्वितीये त्वद्वैतभङ्गः कादाचित्कं त्वसङ्गतम् ।
आत्मैवेदमग्रआसीदित्यादिश्रुतिबाधतः ॥ २४ ॥
अनादित्वे तु सान्तत्वमिति पक्षोऽप्यसङ्गतः ।
अनादित्वे त्वनन्तत्वं मायाया इति निश्चयात् ॥ २५ ॥

શબ્દાર્થ—માયા જન્ય છે કે અજન્ય છે? જો જન્ય છે એમ કહેતા હો તો તેને ઉત્પન્નકરનાર કોણ? સૃષ્ટિના આદિકાલમાં બીજો કોઇ નહિંહોવાથી બ્રહ્મજ ઉત્પન્નકરનાર છે એમ કહેશો તો બ્રહ્મને તમે નિર્વિશેપ (સર્વધર્મરહિત) માનો છો તેને બદલે સવિશેપપણું (માયાને ઉત્પન્નકરવારૂપ–ધર્મસહિતપણું) બ્રહ્મને આવ્યું. અને માયા અજન્ય છે એમ કહેતા હો તો બ્રહ્મ અને માયા બન્ને અજન્મા થયાં ત્યારેં અદ્વૈત માનો છો તેનો ભંગ થાય છે. માયાને કદાચિત્કપણું છે એટલેં ક્યારેંક હોય અને ક્યારેંક ન હોય એમ માનવું તો સંભવતુ નથી; કેમકે તેમ કદાચિત્કપણું થવામાં કાંઇક કારણ હોવું જોઇએ તે બ્રહ્મમાં કહિશકાતું નથી—आत्मैवेदमग्रआसीत् (આ જગત્, આગળ આત્મારૂપજ હતું)ઇત્યાદિક શ્રુતિનો બાધ આવવાથી માયા અનાદિ અને અંતસહિત છે એ પક્ષ પણ સંભવતો નથી. તેમ જે અનાદિ હોય તે અનંત હોય એવો નિયમ છે માટે માયાને અનાદિ માનશો તો અનંતપણું તેને આવશે.

ટીકા—માયા ઉત્પન્ન થાય છે કે ઉત્પન્ન થતી નથી? જો ઉત્પન્ન થાય છે એમ કહેશો તો તેને ઉત્પન્નકરનાર કોણ? એ વિચારપર આવિયેં ત્યારેં સૃષ્ટિના આદિ-

કાલમાં બ્રહ્મશિવાય બીજું કોઇ નહિં હોવાથી બ્રહ્મજ ઉત્પન્નકરનાર છે એમ કહેવું પડશે ત્યારે બ્રહ્મ કાંઇ પણ કાર્ય કરતું નથી, નિષ્ક્રિય છે એમ તમે માનો છો તેને બદલે કર્તૃત્વરૂપ ધર્મ બ્રહ્મમાં આવે છે એથી તમારા સિદ્ધાંતનો બાધ થાય છે. (૨૩) માયા ઉત્પન્ન થતી નથી એમ કહેશો તો બ્રહ્મ અને માયા બન્ને અજન્મા થવાથી નિત્ય થયાં ત્યારે તમારો અદ્વૈત સિદ્ધાંત છે તેનો ભગ થાય છે. કોઇ વખતે માયા થાય છે એમ ત્રીજો પક્ષ માનશો તો તે પણ ઘટતો નથી; કેમકે માયા કોઇવખતે હોય અને કોઇવખતે ન હોય એમ થવામાં કાંઇક કારણ હોવું જોઇએ તે બ્રહ્મમાં સંભવતું નથી માટે માયાનું કોઇ વખત હોવાપણું ઘટતું નથી. તેમ आत्मैवेदमग्र-आसीत् (આ જગત્, આગળ આત્માજ હતું.) ઇત્યાદિકશ્રુતિયોનો બાધ આવે છે. માટે માયા અનાદિસાન્ત છે એ પક્ષ પણ ઘટતો નથી; કેમકે શ્રુતિમાં आत्मैव (આત્માજ) એમ एव કાર લખવાથી આત્માશિવાય બીજું કોઇ નહોતું એમ સિદ્ધ થાય છે. મૂલમાં आदि શબ્દ લખેલો છે તેથી सदेव सौम्येदमग्रआसीत् (હે સૌમ્ય આ જગત્ આગલ સદ્રૂપજ હતું.) ઇત્યાદિકશ્રુતિયોનો બાધ આવવાનું સૂચવ્યું છે. (૨૪) બ્રહ્મ અનાદિ છે તો અનંત છે તેવી રીતે જે અનાદિ હોય તે અનંત હોય એવો નિશ્ચય છે; માટે માયા અનાદિ–સાંત છે એ પક્ષ પણ ઘટતો નથી. જો અનાદિ માયા છે એમ કહેશો તો માયા અનંત છે એમ માનવું પડશે એટલે કોઇ દિવસ માયાનો નાશ નહિં થવાથી જગત્ સર્વદા રહેવાથી મોક્ષ કે પ્રલય થવાનો વખતજ નહિં આવે ત્યારે મોક્ષ તથા ઉત્પત્તિપ્રલયાદિકને કહેનાર શ્રુતિ, સ્મૃતિ, અને પુરાણાદિકના વાક્યોને બાધ આવશે.

શંકા—નૈયાયિકલોકો પ્રાગભાવને અનાદિ તથા સાંત માને છે તેવી રીતે માયાને અનાદિ તથા સાંત માનવામાં બાધ નહિં આવે.

ઉત્તર—નૈયાયિકલોકોના મતમાં દ્રવ્ય, ગુણ, કર્મ, સામાન્ય, વિશેષ અને સમવાય એ છ ભાવપદાર્થ કહેવાય છે અને સાતમો અભાવપદાર્થ કહેવાય છે; તેમાં જે જે ભાવપદાર્થ અનાદિ હોય તે તે અનંત હોય એવી વ્યાપ્તિ તેના મતપ્રમાણે કરતાં, આકાશ, કાલ, દિશા અને આત્માને તેઓ અનાદિ તથા અનંત માને છે તેવી રીતે ભાવ પદાર્થ હોય તે અનાદિ હોય તો અનંતજ હોવો જોઇએ. અને અભાવના બે ભેદ સંસર્ગાભાવ તથા અન્યોન્યાભાવ માને છે તેમાં સંસર્ગાભાવના ભેદમાં પ્રાગભાવને માને છે તેથી પ્રાગભાવ અભાવનો ભેદ છે અને તમે માયા તથા અવિદ્યાને ભાવરૂપ પદાર્થ માનો છો તેથી પ્રાગભાવનો દાખલો અહિં લાગુ પડતો નથી. તેમ પ્રાગભાવ કાંઇ પદાર્થજ નથી તે આગળ સિદ્ધ કરેલું છે; માટે માયાને અનાદિ માનશો તો અનંત માનવીજ પડશે.

શંકા—ઇશ્વર, જીવ, શુદ્ધબ્રહ્મ, બ્રહ્મ તથા જીવનો વિભાગ, અવિદ્યા અને અવિદ્યાયે કરેલો બંધ એ છએ અમારા મતમાં અનાદિ છે; તેથી માયા સાન્ત હોવાથી નિવૃત્ત થાય છે ત્યારે અદ્વૈત થાય છે.

ઉત્તર—એવી રીતેં છને અનાદિ માનો છો ત્યારેં અવિદ્યાયેં કરેલો બંધ અનાદિ છે એમ કહેવું સંભવતું નથી; કેમકે બંધ અનાદિ હોય તો અવિદ્યાયેં કરેલો કહેવાય નહિં અને અવિદ્યાયેં કરેલો હોય તો અનાદિ કહેવાય નહિં, કોઇનું કરેલું હોય તે સાદિ કહેવાય અનાદ કહેવાયજ નહિં; બંધ અવિદ્યાયેં કરેલો હોય તો તે અનાદિ કહેવાયજ નાહં. તેમ બંધ થયાપહેલાં જીવનું સ્વરૂપ કેવું હતું? તે પણ વિચારવું જોઇએ. બંધ આગલ થવાનો છે તેથી બદ્ધ કે મુક્ત હતું એમ તો કહિશકાતું નથી અને બદ્ધ કે મુક્ત એ બેઅવસ્થાશિવાય ત્રીજી જીવની અવસ્થા ક્યાંય લખેલી નથી. તેમ પ્રથમ છને અનાદિ માની પછી અદ્વૈત થાય એમ માનો છો ત્યારેં એકજાતનો દ્વૈતાદ્વૈત પક્ષજ તમારો ઠરે છે અદ્વૈત પક્ષ ઠરતો નથી. એવી રીતેં માયાવાદિના મતનું ખણ્ડન કરિને ચાલતી બાબતનું નિરૂપણ કરે છે.

मूलम् । एतन्मते सुनिष्पन्नं साङ्कर्यं कार्यकारणे ।
तन्निवृत्त्यर्थमाचार्यैः पदं शुद्धं विशेषितम् ॥ २६ ॥

શબ્દાર્થ—માયાવાદિના મતમાં કાર્યકારણમાં સાંકર્ય સિદ્ધ થાય છે, તેની નિવૃત્તિમાટે શ્રીઆચાર્યજીયેં અદ્વૈતને શુદ્ધપદ વિશેષણરૂપેં યોજેલુંછે; એટલેં શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધ કરેલુંછે. તેશુદ્ધાદ્વૈતપદમાં કર્મધારય સમાસ જાણવો અને બન્ને શુદ્ધનું અદ્વૈત એવો અર્થ કરવામાં ષષ્ઠીતત્પુરૂષ સમાસ થાય એમ વિદ્વાનો કહેછે.

ટીકા—માયાવાદિના મતમાં અવિદ્યામાં પડેલ પ્રતિબિંબ જીવ છે તે કાર્ય છે અને માયામાં પડેલ પ્રતિબિંબ ઇશ્વરછે તે કારણછે એમ અવિદ્યાવચ્છિન્ન ચૈતન્ય કાર્ય અને માયાવચ્છિન્ન ચૈતન્ય કારણ માનેલું છે એ સાંકર્ય આવેછે; એટલેં પરસ્પર જેનો ધર્મ અત્યન્તાભાવની સાથે રહેતો હોય તેવા બન્ને ધર્મ એક ઠેકાણે રહે તે સંકર કહેવાયછે. જેમ બ્રાહ્મણપણાંનો અત્યન્તાભાવ શૂદ્રમાં રહેછે, શૂદ્રપણાંનો અત્યન્તાભાવ બ્રાહ્મણમાં રહેછે, અને બ્રાહ્મણપણું તથા શૂદ્રપણું એ બન્ને ધર્મ એકસ્થલેં હોય તો બ્રાહ્મણ તથા શૂદ્ર એ બન્ને વર્ણનું સાંકર્ય કહેવાય. તેવી રીતેં અવિદ્યાવચ્છિન્ન ચૈતન્યનો અત્યંતાભાવ માયાવચ્છિન્ન ચૈતન્યમાં છે, માયાવચ્છિન્નચૈતન્યનો અત્યંતાભાવ અવિદ્યાવચ્છિન્ન ચૈતન્યમાંછે અને બન્ને ચૈતન્યરૂપ ધર્મોનો અદ્વૈત થતી વખત એકત્ર સમાવેશ થાય છે તેથી ચૈતન્યનું સાંકર્ય તેના મતમાં આવેછે. તેની નિવૃત્તિમાટે અદ્વૈતપદમાં શુદ્ધપદ વશેષણપણાંથી જોડેલું છે એટલેં શુદ્ધાદ્વૈત સ્વીકારેલું છે. (૨૬)

એવી રીતેં શુદ્ધપદનું પ્રયોજન કહિને શુદ્ધાદ્વૈતપદનો સમાસ કહેછે.

मूलम् । शुद्धाद्वैतपदे ज्ञेयः समासः कर्मधारयः ।
अद्वैतं शुद्धयोः प्राहुः षष्ठीतत्पुरुषं बुधाः ॥ २७ ॥

શબ્દાર્થ—શુદ્ધાદ્વૈતપદમાં કર્મધારય—સમાસ જાણવો અને शुद्धयोः अद्वैतं (બન્ને શુદ્ધનું અદ્વૈત) એવી રીતેં ષષ્ઠીતત્પુરૂષ સમાસ પંડિતો કહેછે.

ટીકા—શુદ્ધાદ્વૈતપદમાં शुद्धं च तत् अद्वैतम् [શુદ્ધ એવું અદ્વૈત] એમ કર્મધારય

સમાસ થાય છે. ત્યાં શંકા થાય કે અદ્વૈત થયું ત્યારે સાંકર્યનો અભાવ સ્પષ્ટજછે તેથી શુદ્ધપદ વ્યર્થછે ત્યાં કહેછે કે માયાવાદિના મતમાં પ્રથમ સાંકર્ય અને પછી અદ્વૈતછે અને આપણા સિદ્ધાંતમાં તો સદા શુદ્ધપણુંછે. એમ જાણવું; તેથીજ સ્પષ્ટ રીતેં જાણવામાટે ષષ્ઠીતત્પુરુષ કહેછે. શુદ્ધ એવું જે કારણ તેમાં કાર્યનું અદ્વૈત એમ સપ્તમીતત્પુરૂષ સમાસ કરે તો કાર્યમાં અશુદ્ધપણાનો દોષ આવે, શુદ્ધ એવું જેબ્રહ્મ તેના સાથે અદ્વૈત એમ તૃતીયાતત્પુરૂષ કરે તો તેમાં કોનું અદ્વૈત? એમ જાણવાની અપેક્ષા રહે, શુદ્ધ એવાં નામરૂપની સાથે કારણનું અદ્વૈત એમ અર્થ કરે તો કારણમાં અશુદ્ધપણું આવે, શુદ્ધ એવું કાર્ય તેનું અદ્વૈત એવો અર્થ કરે તેમાં કારણમાં અશુદ્ધપણું આવે છે એવીજ રીતેં શુદ્ધપદાર્થોનું અદ્વૈત એવો અર્થ કરવામાં પણ દોષ આવે છે તેથી ઉપરપ્રમાણે કર્મધારય અને ષષ્ઠીતત્પુરૂષ સમાસ કહેછે. [૨૭]

શુદ્ધપદનો અભિપ્રાય કહેછે.

मूलम् । मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥ २८ ॥

इति ब्रह्मविदां हार्दं शुद्धाद्वैतं श्रुतेर्मतम् ।
तत्रोत्तमा मध्यमाश्च कनिष्ठा ह्यधिकारिणः ॥ २९ ॥

શબ્દાર્થ—માયાના સમ્બન્ધથી રહિત તે પંડિતોએ શુદ્ધ કહેવાયછે એટલેં કાર્ય તથા કારણરૂપ શુદ્ધ બ્રહ્મછે માયિક નથી. એવી રીતેં બ્રહ્મને જાણનારાઓના હૃદયનો અભિપ્રાય શુદ્ધાદ્વૈત શ્રુતિનો મતછે; તેમાં ઉત્તમ, મધ્યમ, અને કનિષ્ઠ અધિકારિઓછે.

ટીકા—જેને માયાનો સમ્બન્ધ નથી તે શુદ્ધ કહેવાયછે તેવી રીતેં કાર્ય અને કારણરૂપ બ્રહ્મ માયાના સમ્બન્ધવગરનુંછે.

શંકા—તમારા મતમાં પણ અહંતાઃમમતારૂપ અધ્યાસ માયાયેં કરેલોછે એમ માનેલુંછે; તેથી માયાનો સમ્બન્ધ તમારા મતમાં પણ છે માટે શુદ્ધાદ્વૈતમત તમારૂં પણ સિદ્ધ થતું નથી.

ઉત્તર—અમારા મતમાં બ્રહ્મને માયાનો સમ્બધ નથી પણ શ્રીગીતાજીમાં કહ્યાપ્રમાણે અને શ્રીભાગવત—દશમસ્કંધમાં અક્રૂરજીની સ્તુતિમાં કહ્યાપ્રમાણે માયાને ભગવાનની શક્તિપણુંછે તેથી માયાવાદીના મતની પેઠે માયોપહિત બ્રહ્મ જગતનું કારણ માનતા હોઇએ તો માયાનો સમ્બન્ધ ગણાય પણ જગદ્રૂપ તો બ્રહ્મજ થએલ છે એમ અમે માનિએં છીએં માટે જગત્ થવામાં માયાનો સમ્બન્ધ અમારા સિદ્ધાંતમાં નથી. તેમ અહંતામમતારૂપ અધ્યાસજ માયિક છે એમ અમે માનિએં છીએ કંઇ જીવને માયિક માનતા નથી; કેમકે જીવનું માયિકપણું તો પ્રથમજ નિવૃત્ત કરેલું છે. (૨૮) શ્રુતિનો મત શુદ્ધાદ્વૈત છે તેથી બ્રહ્મને જાણનારનો અભિપ્રાય શુદ્ધાદ્વૈતજ છે એમ સમજવું. તેવિષે નૃસિંહતાપિની—ઉપનિષદમાં જગતનું કારણ બ્રહ્મ છે એમ સિદ્ધ કરિને કહેલ છે કેઃ—

सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवाः सर्वावस्थासु नित्यास्तथाऽप्यल्पाः ।

અર્થ—સર્વ સર્વમય છે, સર્વે જીવો સર્વઅવસ્થામાં નિત્ય છે તો પણ અલ્પ છે. એમ કહેલ છે; ત્યાં જીવો સર્વરૂપ છે તોપણ અલ્પ છે એટલે અણુપરિમાણ-વાળા છે. વળી આગળ કહેલ છે કે :—

सर्वभूतादीनि सृष्ट्वा प्रविश्यास्ते ।

અર્થ—સર્વભૂતાદિકને સૃજીને તેની અંદર પ્રવેશ કરિને પરમાત્મા રહેલ છે. એમ નિરૂપણ કરિને આગલ કહેલ છે કે:—

सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो
विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः प्रमाणैरेतैरवगतः ॥

અર્થ— સન્માત્ર, નિત્ય, શુદ્ધ, જ્ઞાનવાન્, સત્ય, મુક્ત, દોષરહિત, વ્યાપક, દ્વૈતભાવરહિત. આનંદરૂપ, પર, સાક્ષી, અને એકરસ એવા પરમાત્મા એ પ્રમાણો થી જણાયેલા છે. એ વાક્ય કહેલ છે તેથી પરમાત્માનું શુદ્ધપણું કહેલું છે. તેની આગળ જગત્ અને અવિદ્યાનું સદ્રૂપપણું કહિને તેવડે બ્રહ્મની સાથે અભેદ અને બ્રહ્મમાં અવિદ્યાના અભાવનું નિરૂપણ કરેલું છે. ત્યારપછી ઉપસંહારમાં કહેલ છે કે :—

विष्णुरीशानो ब्रह्मान्यदपि सर्वं सर्वगम् ।

અર્થ—સર્વને હુકમમાં રાખનાર વિષ્ણુ બ્રહ્મ છે અને બીજું પણ સર્વ સર્વમાં રહેનાર બ્રહ્મ છે. એમ કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે સર્વમાં રહેનાર કારણ-ભૂત જે બ્રહ્મ છે તેજ વિષ્ણુવગેરે રૂપ અને ઘટાદિરૂપ ચેતન તથા અચેતનાત્મક છે. તેની આગળ સર્વજગતને શુદ્ધ આત્માપણું છે એમ બતાવવામાટે કહેલ છે કે:—

सर्वमतएव शुद्धोऽबाध्यस्वरूपो बुद्धः सुखरूप आत्मा ।

અર્થ—સર્વ પરમાત્માથીજ થાય છે તે પરમાત્મા શુદ્ધ છે, તેના સ્વરૂપનો બાધ થતો નથી, જ્ઞાનાત્મક છે અને સુખરૂપ આત્મા છે, એમ કહ્યું છે. એવી રીતે સર્વને શુદ્ધ અદ્વૈતપણું સ્પષ્ટ કહેલું છે, તેથી શુદ્ધાદ્વૈતજ શ્રુતિનો મત છે એમ સિદ્ધ થાય છે. (૨૯) તેના જ્ઞાનમાં ત્રણપ્રકારના અધિકારિઓને ત્રણપ્રકારની જૂદી જૂદી પ્રતીતિ થાય છે તે બતાવે છે.

मूलम्—तेषां प्रतीतिः प्रथमे स्कन्धे तु श्रीहुताशनैः ।
इदं हि विश्वमित्यत्र सुबोधिन्यां निरूपिता ॥ ३० ॥

શબ્દાર્થ—તેત્રણપ્રકારના અધિકારિઓની પ્રતીતિ શ્રીઆચાર્યજી—મહાપ્રભુ-જીએ પ્રથમ સ્કંધમાં इदं हि विश्वम् એશ્લોકઉપર શ્રીસુબોધિનીજીમાં નિરૂપણ કરી છે.

ટીકાઃ—ઉત્તમ, મધ્યમ અને કનિષ્ટ એવા ત્રણપ્રકારના અધિકારિઓની પ્રતીતિ શ્રીઆચાર્યજીએ પ્રથમસ્કંધના પાંચમા અધ્યાયના इदं हि विश्वम् એશ્લોક ઉપરનાં શ્રીસુબોધિનીજીમાં નિરૂપણકરી છે કે:—

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवान् तथाऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥

અર્થ—જગતમાં ભગવાનની સ્થિતિ છે, તેથી આ જગત્ નિશ્ચય ભગવાન્ છે, એમ ઉત્તમઅધિકારિને પ્રતીતિ થાય છે, ભગવાનથી જગતની ઉત્પત્તિ થાય છે તેથી કારણરૂપે એકતા છે, અને કાર્યરૂપે ભેદ છે માટે આ જગત્ ભગવાન્ હોય તેવું છે; એમ મધ્યમાધિકારિને પ્રતીતિ થાય છે, અને આજગતનો નાશ ભગવાન્ કરે છે, તેથી જગત્ ખોટું છે, અને ભગવાન્ હમેશ છે માટે આ દેખાય છે, તે તમામ જગત્ છે, અને ભગવાન્ જૂદા છે, એમ કનિષ્ટ અધમાધિકારિને પ્રતીતિ થાય છે. જેભગવાનથી જગતની સ્થિતિ, લય અને ઉત્પત્તિ થાય છે તે તમે જાણો છો અથવા તમે જગદ્રૂપ છો તેથી જાણો છે; તો પણ પ્રાદેશમાત્ર તમને બતાવ્યું છે; એટલે આ જગત્ ભગવાન્ છે. અર્થાત્ જગતનો અનુવાદ કરિને તેમાં ભગવાનપણું સિદ્ધ કરે છે, તેમ કરવાથી જગતમાં સર્વઠેકાણે ભગવદૃષ્ટિ થાય તે કૃતાર્થ થાય છે. તેસારૂ કાર્યરૂપ—જગતને ભગવાન્પણાથી નિરૂપણ કર્યું છે. મૂળમાં હિ શબ્દ છે, તેથી આ દેખાતું સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે, કેમકે "બ્રહ્મથી ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને લય છે." એમ વેદમાં કહેલા અર્થનું સૂચન થાય છે, અહિં ઉત્તમ, મધ્યમ અને અધમ એમ ત્રણપ્રકારના અધિકારના ભેદવડે નિરૂપણ કરવાનું છે; તેમાં ઉત્તમઅધિકારિને તો આ સર્વ જગત્ ભગવાન્ છે, એવો બોધ થાય છે; એમ નિરૂપણ કર્યું, મધ્યધિકારિને એવો બોધ થાય છે કે, ભગવાનની પેઠે આ જગત્ છે, પણ ભગવાન્ નથી, તેથી જગતમાં સર્વનું સન્માન વિગરે કરવું, પણ આસક્તિ રાખવી નહિં; અને અધમાધિકારિને એવો બોધ થાય છે કે, આ જગત્ છે, અને ભગવાન્ આજગતથી અન્ય છે, માટે પ્રપંચની દૃષ્ટિવાળો ભગવાનથી બહિર્મુખ હોવાને લીધે ભ્રષ્ટ થાય છે. એમ સર્વઠેકાણે નિરૂપણકરવાનો અર્થ નિરૂપિત થાય છે. એકજગતને ત્રણરૂપપણું કેમ? એવી શંકા થાય, ત્યાં કહે છે કે, જેથી જગતની સ્થિતિ, લય અને ઉત્પત્તિ થાય છે; તેમાં જગતની સ્થિતિ ભગવાનમાંજ છે તેથી ભગવાનજ જગતમાં છે કેમકે ભગવાનનો આધાર પોતારૂપ છે, ભગવાનને બીજાનો આધાર નથી, તેથી ભગવાનજ જગત્ છે એમ ઉત્તમાધિકારિને બોધ રહે છે. અને મધ્યમાધિકારિને એવો બોધ રહે છે કે, ભગવાનથી જગતની ઉત્પત્તિ છે તેથી કાર્યકારણને તાદાત્મ્યસંબંધ હોવાથી કાર્યરૂપે ભેદ અને કારણરૂપે અભેદ છે; કેમકે ભેદને સહનકરનાર અભેદ હોય તે તાદાત્મ્યસંબંધ કહેવાય છે; માટે જગત્ ભગવાન્જેવું છે. અને મૂઢને તો એવો બોધ થાય છે કે, જગતનો પ્રલયકરનાર ભગવાન્ છે, તેથી જગતનો નાશ થાય છે, અને ભગવાન્ નિત્ય છે, તેથી જગતથી જૂદા છે. એમ ભગવાનના ચરિત્રનું નિરૂપણ કર્યું, હવે એજપદમાં ભગવાનના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે કે, જેભગવાનથી જગતની સ્થિતિ, લય અને ઉત્પત્તિ થાય છે; એટલે વ્યાસસૂત્રમાં બ્રહ્મનું લક્ષણ કહેલું છે કે, જેનાથી જગતના જન્માદિક થાય છે, તેજલક્ષણનું અહિં નિરૂપણ કર્યું છે. એવી રીતે અર્થ અને અધિકારનો ભેદ સંક્ષેપથી નિરૂ-

પિત કરિને આ અભિપ્રાય ગુપ્ત છે, તેનો વિસ્તાર ન કરવોજોઈએં, તેસારૂ કહે છે કે, તે તમે પોતે જાણો છો; એટલે તમને ગુરુવિગેરેની અપેક્ષા નથી. અથવા તે જગત્ તમેં પોતેં છો તેથીજ તમેં જાણો છો. ત્યારેં વ્યાસજીનેં એમ શંકા થાય કે, પોતેં અને સર્વ જગત્ ભગવદ્રૂપ છે ત્યારેં નારદજીએં કરેલો ઉપદેશ નિષ્ફળ છે. તેસારૂ કહે છે કે, તોપણ પ્રાદેશમાત્ર તમને બતાવ્યું છે; એટલેં સર્વને બ્રહ્મપણું છે, તોપણ પ્રમાણના બળથી નિશ્ચય કરવા ગુરુનો ઉપદેશ જોઈએં તેમાં લૌકિક ભરતરી બતાવવી હોય ત્યારેં એકવેંતમાત્ર બતાવે તેથી તેનાથી બમણાં–હસ્તવિગેરેનું જ્ઞાન થઇજાય તેમ ભગવાન્ જગતને કરનાર છે, એમ જણાય ત્યારેં ભગવાન્ સર્વેશ્વર છે, વિગેરે તેમના ધર્મ જાણવામાં આવે. અથવા પ્રાદેશ એટલેં પ્રકર્ષેથી આદેશ એટલેં ઉપદેશ બતાવ્યો, એટલેં ઉપદેશમાત્ર તમને કર્યો છે; અર્થાત્ ગૂઢપણાથી શાસ્ત્રાર્થનું નિરૂપણ તમારેમાટે બતાવેલું છે. એમ કહેવાથી ગૂઢજ સ્પષ્ટની રીતે બતાવવું, એમ ઉપદેશ કર્યો. એવી રીતેં શ્રીસુબોધિનીજીમાં ત્રણે અધિકારિઓની પ્રતીતિ બતાવેલી છે. (૩૦).

તે ત્રણે અધિકારિઓનું વિવેચન કરે છેઃ—

मूलम् । सर्वं ब्रह्मैव तत्राद्ये द्वितीये भगवान् यथा ।
तथा विश्वमिदं सर्वं ब्रह्मकार्यं निजेच्छया ॥ ३१ ॥
कार्यरूपेण भेदो हि न भेदः कारणात्मना ।
भेदसत्त्वेऽप्यभेदोऽत्र तादात्म्यं परिकीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥
तृतीये भगवान् भिन्नो जगतः कर्त्तृतः स्फुटः ।
इति द्वैतप्रतीतिस्तु श्रुतिबाधान्न गृह्यते ॥ ३३ ॥

શબ્દાર્થ–તે ત્રણે અધિકારિઓમાં ઉત્તમાધિકારિમાં સર્વ બ્રહ્મજ છે એવી પ્રતીતિ થાય છે, મધ્યમાધિકારિમાં જેમ ભગવાન્ છે તેમ આ સર્વ જગત્ પોતાની ઇચ્છાવડે બ્રહ્મનું કાર્ય છે એવી પ્રતીતિ થાય છે, અને હીનાધિકારિમાં જગતનું કર્ત્તાપણું ભગવાનને હોવાથી ભગવાન્ ભિન્ન છે એ હકીકત સ્ફુટ છે એવી પ્રતીતિ થાય છે. તે દ્વૈતપ્રતીતિ તો શ્રુતિનો બાધ આવવાથી ગ્રહણકરાતીનથી.

ટીકા–ત્રણે અધિકારિઓમાં જે ઉત્તમાધિકારી છે તેને સર્વ ભગવાન્ છે એવી રીતેં સર્વસ્થળમાં સદા ભગવાનની સ્ફૂર્તિ રહે છે, મધ્યમાધિકારિઓને ભગવાન્ કારણ છે અને જગત્ કાર્ય છે એવી પ્રતીતિ રહે છે અને કનિષ્ઠાધિકારિને જેમ ઘડાને ઉત્પન્ન કરનાર કુંભાર ઘડાથી જૂદો છે તેમ જગતને કરનાર ભગવાન્ જગતથી જૂદા છે એવી પ્રતીતિ થાય છે. તેવી રીતની પ્રતીતિમાં શ્રુતિઓનો બાધ આવે છે તે શ્રુતિઓ કહે છે કેઃ—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म । ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् । आत्मैवेदं सर्वम् ।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम । द्वितीयाद्वै भयं भवति ॥

य एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति ।
योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुः ॥

અર્થ–'આ સર્વ જગત્ બ્રહ્મ છે,' 'બ્રહ્માત્મક આ સર્વ જગત્ છે' 'આ સર્વ જગત્ આત્માજ છે' 'આ સર્વ જગત્ જે થઈગયું અને જે થવાનું છે તે સર્વ પુરુષજ છે' 'બીજાથી નિશ્ચય ભય છે,' 'જે એબ્રહ્મમાં અલ્પ પણ ભેદ કરે છે તેને ભય થાય છે' 'હું અન્ય છું અને આ દેવતા અન્ય છે એવી બુદ્ધિથી જે અન્યદેવતાની ઉપાસના કરે છે તે પશુની માફક કંઇ જાણતો નથી.' ઇત્યાદિક–શ્રુતિઓનો બાધ આવે છે; માટે દ્વૈતપ્રતીતિ ગ્રહણકરાતીનથી. (૩૧–૩૨–૩૩)

मूलम् । शुद्धाद्वैतविदां या हि प्रतीतिः सोत्तमामता ।
भेदाभेदप्रतीतिस्तु मध्यमानां प्रकीर्त्तिता ॥ ३४ ॥

શબ્દાર્થ–શુદ્ધાદ્વૈતને જાણનારાઓની જે પ્રતીતિ છે તે ઉત્તમ માનેલી છે અને ભેદાભેદની પ્રતીતિ તો મધ્યમાધિકારિઓને કહેલી છે.

ટીકાઃ–શુદ્ધાદ્વૈતને જાણનારા છે તેઓને સર્વસ્થળમાં ભગવાનની સ્ફૂર્તિ હોવાથી બીજાવિષયમાં અનુસંધાનનો ઉદય પણ થતો નથી તેથી તેઓની પ્રતીતિ ઉત્તમ છે; અને કાર્યરૂપે ભેદ તથા કારણરૂપે અભેદ એવી પ્રતીતિ મધ્યમાધિકારિઓને છે તે ભેદાભેદની પ્રતીતિ કહેવાય છે. (૩૪)

मूलम् । अतो हि मध्यमः पक्षः शुद्धाद्वैतानुरोधतः ।
बोधाय बहुसंदर्भे गोस्वामिपुरुषोत्तमैः ॥ ३५ ॥
श्रीमदाचार्यचरणैर्यत्रकुत्रापि दर्शितः ।
निम्बार्कभास्कराचार्यौ भेदाभेदनिरूपकौ ॥ ३६ ॥
तत्राद्यानां वास्तवः स भास्कराणामुपाधितः ।
तत्राद्ये वास्तवो भेदो माध्वाचार्यवदेव हि ॥ ३७ ॥
विभिन्नांशाः सदा जीवा न स्वांशा इति निश्चयः ।
अभेदश्चित्त्वसाधर्म्यादेवं तेषां मतस्थितिः ॥ ३८ ॥

શબ્દાર્થઃ–ભેદાભેદની પ્રતીતિ મધ્યમાધિકારિઓની છે માટે મધ્યમ પક્ષ શુદ્ધાદ્વૈતને અનુસારે બોધને માટે ઘણા ગ્રંથોમાં ગોસ્વામિશ્રીપુરુષોત્તમજીમહારાજે અને શ્રીઆચાર્યજી–મહાપ્રભુજીએ કોઇ કોઇ સ્થળમાં દેખાડેલો છે. નિંબાર્ક અને ભાસ્કરાચાર્ય ભેદાભેદનું નિરૂપણકરનારા છે; તેમાં નિંબાર્કનો વાસ્તવ ભેદ છે અને ભાસ્કરાચાર્યનો ઉપાધિથી ભેદ છે તેમાં નિંબાર્કાચાર્યમાં માધ્વાચાર્યની પેઠેજ વાસ્તવ ભેદ છે. માધ્વાચાર્યના મતમાં જીવો સદા વિભિન્નાંશ છે સ્વાંશ નથી એવો નિશ્ચય છે. નિંબાર્કને ચૈતન્યના સાધર્મ્યથી અભેદ છે એવી રીતે તેના મતની મર્યાદા છે.

ટીકા—મધ્યમ પક્ષ એવી રીતેં શુદ્ધાદ્વૈતને અનુસારે છે કે કાર્યકારણપણાથી ભેદ છે તોપણ બ્રહ્મપણું કાર્યમાં કે કારણમાં મટતું નથી એ શુદ્ધાદ્વૈતને અનુસાર છે તેથી તેપ્રમાણે શ્રીપુરૂષોત્તમજીમહારાજે ઘણા ગ્રંથોમાં કહેલ છે અને શ્રીઆચાર્યજીએં શ્રીસુબોધિનીજીવિગરેમાં તે પક્ષ દેખાડેલો છે. નિંબાર્ક તથા ભાસ્કરાચાર્યનો ભેદાભેદ પક્ષ છે તે છતાં શુદ્ધાદ્વૈતને અનુસારે તમે કેમ કહો છો ? એવી શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે પોતાના સિદ્ધાંતથી તેમાં ભેદપણું સિદ્ધ કરે છે કે નિંબાર્ક અને ભાસ્કરાચાર્ય ભેદાભેદનું નિરૂપણકરનારા છે તેમાં નિંબાર્ક વાસ્તવ ભેદ માને છે અને ભાસ્કરાચાર્ય ઉપાધિએં કરેલો ભેદ માને છે તેમાં નિંબાર્કના ભેદાભેદમાં માધ્વાચાર્યની પેઠેજ વાસ્તવ ભેદ છે અર્થાત્ માધ્વાચાર્યના મતમાં પણ વાસ્તવ ભેદ છે એમ બતાવેલું છે. તે એવી રીતેં કે બેપ્રકારના અંશો છે એમ તે માને છે. જેમ શરીરના કરચરણાદિક અંશો છે તેવી રીતેં બ્રહ્મના મત્સ્યાદિક અવતારો અંશરૂપ છે તે સ્વાંશ કહેવાય છે અને શરીરના જેમ પુત્રાદિક અંશો છે તેમ બ્રહ્મના જીવ અંશો છે તે વિભિન્નઅંશ કહેવાય છે. સમૂહનો એકદેશ અંશ કહેવાય છે. માધ્વાચાર્યના અનુયાયી વનમાલીદાસ છે તે તો તેનાથી ભિન્ન હોય અને તેના જેવો હોય તે અંશ કહેવાય એમ માને છે. જેમ ચંદ્રમંડળથી સો અંશે ગુરુમંડળ છે તેવી રીતેં જીવ બ્રહ્મનો અંશ કહેવાય છે તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાં જીવને અંશપણું કહેલું છે માટે જીવમાં કોઇ દિવસે પણ બ્રહ્મપણું થતું નથી એમ માધ્વાચાર્યના મતના અનુયાયિઓ માને છે તેનીજ પેઠે નિંબાર્કાચાર્યમતવાળા માને છે પણ તેનામાં તારતમ્ય એટલુંજ છે કે નિંબાર્કાચાર્યવાળા બ્રહ્મ તથા જીવમાં ચૈતન્યપણાનું સાધર્મ્ય હોવાથી અભેદ છે; એટલે જેમ મુખ ચંદ્ર છે એમ કહેવાય છે ત્યાં ચંદ્રમાં આનંદકરવારૂપ ધર્મ છે તેવો ધર્મ મુખમાં હોવાથી મુખ ચંદ્ર કહેવાય છે તેવી રીતેં ચૈતન્યપણાના સાધર્મ્યથી જીવ બ્રહ્મ કહેવાય છે. (૩૫–૩૬–૩૭–૩૮)

मूलम् । कनिष्ठा सा प्रतीतिस्तु नास्मन्मतमपेक्षते ।
अभेदो वास्तवस्स्वांशा जीवा इति निजे मते ॥ ३९ ॥
भेदः कार्यतया जातः क्रीडार्थं तु हरीच्छया ।
पश्चाल्लये कारणे हि स्थितिर्दृष्टा यथा मृदि ॥ ४० ॥
पूर्वावस्था तु मृद्रूपा घटावस्था ततो भवेत् ।
घटोऽपि मृत्तिकारूपो लये पश्चाच्च मृत्तिका ॥ ४१ ॥

શબ્દાર્થઃ—નિંબાર્કમતવાળાને ભેદાભેદની પ્રતીતિ છે તે કનિષ્ટ પ્રતીતિ છે તે પ્રતીતિ આપણા મતની અપેક્ષા રાખતી નથી; કેમકે આપણા મતમાં અભેદ વાસ્તવ છે અને જીવો પોતાના અંશરૂપ છે કેવળ કાર્યપણાથી ક્રીડાને માટે હરિની ઈચ્છાવડે ભેદ થએલ છે. લયમાં ઘડાની જેમ મૃત્તિકામાં સ્થિતિ થાય છે તેમ જીવની કારણમાં સ્થિતિ જોએલી છે; એટલે પ્રથમ મૃત્તિકારૂપ અવસ્થા હોય છે ત્યાર પછી ઘટરૂપ અવસ્થા થાય છે ત્યારે ઘટપણ મૃત્તિકારૂપજ છે અને પછી

લયમાં મૃત્તિકાજ રહે છે તેવી રીતેં બ્રહ્મમાંથી કાર્ય થએલ છે ત્યારેં કાર્યપણ બ્રહ્મરૂપ છે અને પાછો લય થશે ત્યારેં બ્રહ્મમાંજ લય થશે.

ટીકા—નિંબાર્કમતવાળા વાસ્તવ ભેદ માને છે તે પ્રતીતિ કનિષ્ટાધિકારિની હોવાથી કનિષ્ટ છે માટે નિંબાર્કની ભેદાભેદની પ્રતીતિ શુદ્ધાદ્વૈતને અનુસરતી નથી. એવી રીતેં નિંબાર્કોના ભેદાભેદનું નિરૂપણ કરિને પોતાના સિદ્ધાંતમાં દેખાતો એવો જે ભેદાભેદ તેનું સ્વરૂપ બતાવે છે કે શુદ્ધાદ્વૈતસિદ્ધાંતમાં અભેદ વાસ્તવ છે, જીવ બ્રહ્મના અંશ છે તેથી અંશ અને અંશિનો અભેદ વાસ્તવ છે. હરિની ઇચ્છાવડે ક્રીડામાટે કાર્યપણાથી ભેદ થએલો છે તેબાબત બૃહદારણ્યક—ઉપનિષદમાં લખેલ છે કે:—

एकाकी नरमते स द्वितीय मैच्छत् । एकोऽहं बहुस्याम् ॥

અર્થ:—એકલા તે રમે નહિં તેથી બીજાની ઇચ્છા કરી, 'હું એક ઘણારૂપે થાઉં' ઇત્યાદિશ્રુતિઓમાં બ્રહ્મજ જગતદ્રૂપે થએલ છે એમ કહ્યું છે. તેમ શ્રીભાગવત-અષ્ટમસ્કન્ધમાં વિંધ્યાવળીએં સ્તુતિમાં કહેલ છે કે:—

क्रीडार्थमात्मन इदम् त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियः परइश ! कुर्युः ।

અર્થ:—પોતાની ક્રીડામાટે આ ત્રિલોકીરૂપ જગત્ તમેં કરેલું છે તેથી તમારા કરેલા જગતમાં દુષ્ટબુદ્ધિવાળા હોય છે તે પોતાનું સ્વામિપણું કરે છે. એમ કહેલ છે ત્યાં ક્રીડાને માટેજ ભગવાને આ જગત કરેલું છે એમ સ્પસ્ટ લખેલું છે ચતુર્થ-સ્કંધના સાતમા અધ્યાયમાં પણ આ જગત્ ભગવાનનું ક્રીડાભાંડ છે એમ લખેલુંછે; તેથી ક્રીડામાટે કાર્યરૂપેં ભેદ થએલ છે એમ સિદ્ધ છે. અને જ્યારેં જગતનો તિરોભાવ થાય છે ત્યારેં કારણમાં કાર્યની સ્થિતિ થાય છે. તેબાબત અષ્ટમસ્કન્ધમાં બ્રહ્માજીની સ્તુતિમાં કહેલ છે કે:—

त्वय्यग्रआसीत् त्वयि मध्यआसीत् त्वय्यंतआसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥

અર્થ—આ જગત્ આગળ તમારામાં હતું, મધ્યમાં તમારામાં હતું અને અંતમાં સ્વતંત્ર એવા જે તમે તેનામાંજ હતું; માટે ઘટને આદિ, મધ્ય અને અંતમાં જેમ મૃત્તિકા હોય છે તેમ પરથી પર એવા જે તમે તે આજગતને આદિ, અંત ને મધ્યમાં રહ્યા છો. ઇત્યાદિકવાક્યથી ક્રીડાને માટે હરિની ઇચ્છાવડે ભેદ થએલ છે એમ સિદ્ધ છે. તેજ દૃષ્ટાંતથી પ્રતિપાદન કરે છે કે જેમ ઘટાદિક મૃત્તિકાના પદાર્થોની સ્થિતિ જેમ અંતે મૃત્તિકામાં હોય છે તેમ લયમાં જગતની સ્થિતિ કારણરૂપ-બ્રહ્મમાં રહે છે. ઘટની કારણવસ્થા મૃત્તિકા છે ત્યારપછી તે કારણરૂપ મૃત્તિકામાંથી ઘટરૂપ કાર્યાવસ્થા થઇ છે ત્યારેં ઘટપણ મૃત્તિકારૂપજ છે અને ઘટનો તિરોભાવ થાય ત્યારેં પાછી મૃત્તિકાજ રહે છે. એવી રીતેં ત્રણે અવસ્થામાં જેમ મૃત્તિકાજ રહે છે તેમ ત્રણે અવસ્થામાં બ્રહ્મજ છે તેથી દ્વૈતનો સંચાર નથી તે છાંદોગ્ય-ઉપનિષદના છઠ્ઠા પ્રપાઠકના પ્રથમખંડમાં કહેલ છે કે:—

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥

અર્થ:--પોહોળું પેટ અને સાંકડું મોઢું એવો ઘડાનો જે વિકાર છે તે વાણીની ક્રિયારૂપ છે પણ મૃત્તિકાથી ઘડો જૂદો છે એમ સિદ્ધ કરનારો નથી—જેમ પુરૂષ સૂતો હોય, ઉઠીને ઉભો થયો હોય અને બેઠો હોય તેમાં પુરૂષના અવયવો જૂદે જૂદે પ્રકારે રહે છે પણ સૂતેલો પુરૂષ જૂદો અને બેઠેલો તથા ઉભો થએલો જૂદો એમ નથી. તેવી રીતેં મૃત્તિકા જૂદી અને ઘડો જૂદો એમ નથી. અને ઘડો એવું નામ છે તે મૃત્તિકારૂપ કારણજ જલલાવવારૂપ—ક્રિયાની સિદ્ધિને માટે ઘટ એવા નામથી વ્યવહારમાં આવે છે તેથી ઘટરૂપકાર્ય મૃત્તિકારૂપ—કારણથી જૂદું નથી. તેસારૂ શ્રુતમાં કહે છે કે એવી રીતની મૃત્તિકાજ છે તેથી તે સત્ય છે અર્થાત્ મિથ્યા નથી. જો કાર્યને મિથ્યા માનિએં તો કાર્યવિના બ્રહ્મ કોનું કારણ થાય? અને જ્યારેં કોઈનું કારણ થાય નહિં ત્યારેં બ્રહ્મ જગતનું કારણ છે એમ પ્રતિપાદનકરનાર શ્રુતિઓનો વિરોધ આવે. તેમ વિકાર વાણીથી માત્ર કહેવાય છે બાકી ખોટો છે એવો શ્રુતિનો અભિપ્રાય હોય તો वाचारंभणं विकारो मृत्तिकैव सत्या (વિકાર વાણીમાત્રથી કહેવાય છે અને મૃત્તિકા સાચી છે.) એમ શ્રુતિમાં કહેત; કેમકે તેટલું કહેવાથી કાર્યનું મિથ્યાપણું સિદ્ધ થાત. પણ અહિં તો વિકાર અને નામધેય એ બે પદસહિત શ્રુતિ કહેલી છે અને તેમાં વિશેષરૂપ सत्य શબ્દ કહેલ છે તેથી કારણથી કાર્ય જૂદું નથી એવો અભિપ્રાય છે. તેમ वाचारंभणम् એવાકયનો પ્રારંભ કરિને આગળ કહેલ છે કે:—

कथमसतः सज्जायेत । सदेव सौम्येदमग्रआसीत् ॥

અર્થ:—(અસતથી સત્ય કેમ થાય?) (હે સૌમ્ય! આ જગત્ સદ્રૂપજ હતું) એમ કહેલ છે; તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાં આ વાચારંભણની શ્રુતિ વિષયમાં લાવીને કહેલ છે કે:—

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ।

અર્થ:—વાચારંભણવિગરે શબ્દોથી કાર્યનું કારણથી અભિન્નપણું જણાવાય છે. આસૂત્રમાં આદિપદ કહેલ છે તેથી શબ્દ અને નામધેય પદ સદ્રૂપજ છે ઇત્યાદિકવાકયનો સંગ્રહ કરાય છે. (૩૯—૪૦—૪૧)

કારણથી કાર્યનું અનન્યપણું કહે છે.

मूलम्। कार्यकारणयोरैक्यं स्वमते न परे मते ॥
नैंबार्के नेदृशो मार्ग इति बोद्धव्यमञ्जसा ॥ ४२॥

શબ્દાર્થ:—કાર્ય અને કારણની એકતા પોતાના (શુદ્ધાદ્વૈત) મતમાં છે બીજામાં નથી. નિંબાર્કનામતમાં જગત્ અને બ્રહ્મની એકતાને બતાવનારો માર્ગ નથી. તેમ વગરમેહેનતે જાણવું.

ટીકા:—પોતાથી બીજા મતમાં કાર્યકારણની એકતા નથી; એટલે શંકરાચાર્યના મતવાળા કાર્યનું મિથ્યાપણું માનિને કાર્યકારણની એકતા કહે છે.

તે ઘટતી નથી; કેમકે સત્ય અને મિથ્યાનો અભેદ ઘટે નહિં તેથી એમના મતમાં કાર્યકારણની એકતા સિદ્ધ થતી નથી. અહિં અમેં તમામમતના ઉપન્યાસના ખંડનમાં વિસ્તારના ભયથી વધારે કહેતા નથી. નિંબાર્કના મતમાં જગત્ અને બ્રહ્મની એકતાનો બોધકરનાર માર્ગ નથી. (૪૨)

હવે ભાસ્કરાચાર્યનો મત કહે છેઃ—

मूलम् । सोपाधिको भास्करो हि स्वस्माद्भिन्नस्तु सर्वथा ॥
भेदपक्षे तु जीवानां सुखदुःखादिदानतः ॥ ४३ ॥
वैषम्यनैर्घृण्यइति दूषणे द्वे परे स्थिते ॥
अनादि कर्म चाश्रित्य समाधाने त्वनीशता ॥ ४४ ॥

શબ્દાર્થઃ—ભાસ્કર મત ઉપાધિસહિત હોવાથી પોતાના. (શુદ્ધાદ્વૈત.) સિદ્ધાંતથી સર્વથા જૂદું જ છે. અને ભેદપક્ષમાં તો જીવોને સુખદુઃખ વિગેરે આપવાથી વિષમતા અને નિર્દયતા એ બે દૂષણ ભગવાનમાં રહે છે. તેમ અનાદિ કર્મને લઇને સુખદુઃખ મળે છે એમ સમાધાન કરવામાં નિરીશ્વરવાદ આવે છે.

ટીકા—વ્યાસસૂત્રના तदनन्यत्वाधिकरणमां वाचारम्भण શ્રુતિનું વ્યાખ્યાન કર્યું છે તેમાં કારણજ કાર્યરૂપે રહે છે. જેમ ઘટનું કારણ મૃત્તિકા છે, તે મૃત્તિકાસહિત કાર્ય ત્રણે કાળમાં અશ્વ અને મહિષની પેઠે દેશથી અથવા કાળથી જૂદું દેખાતું નથી. મૃત્તિકારૂપ અને ઘટરૂપ કારણની અવ્યતિરિક્ત અને વ્યતિરિક્ત અવસ્થામાત્ર છે. શુક્તિમાં રજતની ભ્રાંતિ થાય છે તેથી શુક્તિમાં રજત આવે છે ને જાય છે તેરીતે કાર્યમાં કારણ રહેલ છે તેથી કાર્ય મિથ્યા અને અનિત્ય છે એમ કહેવાય છે એવી શંકાની નિવૃત્તિમાટે મૃત્તિકાજ સાચી છે એમ શ્રુતિમાં કહેલું છે. કાર્યનો અને કારણનો ભેદ ઉપાધિથી થએલો છે, . શ્રુતિમાં બ્રહ્મથી અથવા માયાથી આકાશ થએલ છે, આકાશથી વાયુ થએલ છે, વાયુથી અગ્નિ થયેલ છે અને અગ્નિથી જળ થએલ છે. ઇત્યાદિ ક્રમવડે ઉત્પત્તિ કહેલ છે ત્યાં જીવની ઉત્પત્તિ કહેલી નથી ને જીવ તો अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः (જીવ અજન્મા, નિત્ય, નિરંતર રેહેનાર અને પ્રાચીન છે.) अविनाशी वा अरेऽयमात्मा (નિશ્ચય આ આત્મા અવિનાશી છે) ઇત્યાદિકશ્રુતિઓમાં નિત્ય અને અજન્મા છે એમ કહેલ છે તેથી શ્રુતિઓ અન્યથા થઇશકે નહિં; માટે અગ્નિમાંથી ચિનગારીઓ નિકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી જીવ નિકળેલા છે એવી શ્રુતિ છે તે ઉપાધિએં કરેલો જીવનો ભેદ છે એવા અભિપ્રાયથી લગાવવી જોઇએં એમ સ્વીકારીને મનરૂપ લિંગ અણુ હોવાથી સંસારદશામાં લિંગશરીરના અભિપ્રાયને લઇને જીવનું અણુપણું છે બાકી ખરીરીતેં તો જીવ વ્યાપક છે એમ સ્વીકારિને જીવનું અંશપણું ઉપાધિકૃત છે એમ સ્વીકારેલું છે; અટલેં બ્રહ્મ અવયવરહિત હોવાથી અગ્નિથી ચિનગારીઓ નિકળે છે તેમ બ્રહ્મથી જીવ નિકળે છે એમ શ્રુતિમાં દૃષ્ટાંત કહેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે જેમ આકાશ અવયવરહિત છે છતાં પૃથ્વીના ઘટવિગરે જૂદા જુદા વિકારોમાં આકાશ આવવાથી ઘટાવચ્છિન્ન પટાવચ્છિન્ન ઇત્યાદિ ભેદ કહેવાય છે

તેમ જીવ પણ બ્રહ્મનું ભિન્ન અને અભિન્ન સ્વરૂપ છે તેમાં ભિન્નરૂપ ઉપાધિથી કહેલું છે અને અભિન્નરૂપ સ્વાભાવિક છે. એવી રીતેં ભાસ્કરાચાર્યે પ્રતિપાદન કરેલું છે; માટે તેના મતમાં ઉપાધિએં કરેલો ભેદાભેદ છે. પોતાના સિદ્ધાંતમાં તેનાથી ભેદ બતાવે છે કે શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંતમાં જીવનું અણુપણું વાસ્તવ છે તેબાબત શ્રુતિમાં કહેલ છે કઃ—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः ।

અર્થઃ—એ આત્મા અણુ છે તે ચિત્તવડે જાણવાયોગ્ય છે. લિંગશરીરના અભિપ્રાયથી જીવ અણુ છે એમ કહેલ છે એમ કહિયેં તો લક્ષણા માનવી જોઇએં તેમાં ગૌરવ થાય છે તેમ લક્ષણા માનવામાં કાંઇ કારણ નથી.

શંકા—एष महानज आत्मा (એ અજન્મા એવો આત્મા વ્યાપક છે) ઇત્યાદિક શ્રુતિઓમાં જીવને વ્યાપક કહેલ છે તેનો વિરોધ આવશે.

ઉત્તર—એ શ્રુતિ બ્રહ્મના પ્રકરણની છે જીવના પ્રકરણની નથી તેથીજ વ્યાસસુત્રમાં કહેલ છે કઃ—

नाणुरतच्छ्रुतेरितिचेन्नेतराधिकारात् ॥

અર્થઃ—જીવ અણુ નથી કેમકે અણુપણાના અભાવરૂપ—મહત્પણાની શ્રુતિ છે એમ શંકા કરવી નહિં કેમકે મહત્પણાની શ્રુતિ છે તે બ્રહ્મના અધિકારમાં કહેલી છે માટે જીવ અણુ છે. અગ્નિમાંથી ચિનગારીઓ નિકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી જીવ નિકળેલા છે એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે તેથી જીવનો ઉદ્ગમજ કહેવાય છે ઉત્પત્તિ કહેવાતી નથી એવો સિદ્ધાંત છે માટે જીવની અનિત્યતા નથી; તેથી अजोनित्यः વિગેરે શ્રુતિનો વિરોધ નથી. આકાશાદિકની ઉત્પત્તિ વેદમાં લખેલી છે ત્યાં ક્રમે કરિને ઉત્પત્તિ લખેલી છે ત્યાં પણ અન્નથી પુરૂષ થાય છે તે પુરૂષ અન્નરસમય છે એમ કહેલું છે તેથી જીવનો પ્રાદુર્ભાવ કહેલો છે અને અગ્નિમાંથી ચિનગારીઓ નિકળે છે તેમ બ્રહ્મમાંથી જીવ નિકળેલા છે એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે ત્યાં એકરીતીથીં સર્વની ઉત્પત્તિ કહેલી છે. ઉપાધિથી જીવ થએલ છે એમ કલ્પના કરવામાં કંઇ પ્રમાણ નથી. તેમ જીવનું વ્યાપકપણું બ્રહ્મપણાથી માનો છો કે જીવપણાથી માનો છે? જો બ્રહ્મપણાથી માનતા હો તો શંકરાચાર્યના મતમાં તમારો પ્રવેશ થશે (અર્થાત્ ભાસ્કરાચાર્યનો મત જૂદો છે તેને બદલે શંકરાચાર્યના મતપ્રમાણે માનવાથી તેમતમાં પ્રવેશ થશે.) અને જીવપણાથી જીવનું વ્યાપકપણું કહેશો તો નૈયાયિકના મતમાં પ્રવેશ થવાથી ઉપાધિએં કરેલા ભેદનો નિરાસ થવાથી પોતાના મતથી ખસીજાઓ છો. તેમ જીવને વ્યાપક માનશો ત્યારેં દેવદત્તેં આંબાં ખાધાં હોય તેના રસનો અનુભવ યજ્ઞદત્તનેપણ થવોજોઇએં; કેમકે રસનો અનુભવ થવો એ આત્મા અને મનના સંયોગથી થાય છે અને આત્મા વ્યાપક હોવાથી દેવદત્તના મનની સાથે યજ્ઞદત્તના આત્માનો પણ સંયોગ થવોજોઇએં એટલેં દેવદત્તેં જે પદાર્થ ખાધો હોય તેનો અનુભવ યજ્ઞદત્તને પણ થવોજોઇએં તે થતો નથી માટે જીવ વ્યાપક છે એમ કહિશકાતું નથી. તેમ જીવ અને બ્રહ્મ બંને વ્યાપક થાય ત્યારેં

જીવને નિયમમાં રાખનાર બ્રહ્મ છે એમ શ્રુતિમાં કહેલું છે તેનો વિરોધ આવે કેમકે બંને વ્યાપક હોવાથી બંને સરખા થયા એટલે નિયમમાં રેહેનાર અને નિયમમાં રાખનાર એવો ભેદ પડીશકતો નથી.

શંકા—જીવને અણુ માનશો ત્યારે શરીરના હૃદયદેશમાં એકસ્થળમાં જીવ રહેલો હોય ત્યારે આખા શરીરમાં ચૈતન્ય હોવું જોઇએ નહિં અને ચૈતન્ય તો આખા શરીરમાં દેખાય છે માટે જીવ વ્યાપક છે એમ માનવું જોઇએ.

ઉત્તર—દીવો ઘરના એક ભાગમાં હોય છે તેનો પ્રકાશ આખા ઘરમાં જોવામાં આવે છે તેવી રીતે જીવ એકભાગમાં રહે છે તોપણ તેનો ચૈતન્યરૂપ ગુણ આખા શરીરમાં પ્રસરીજાય છે તેથી સર્વઅંગમાં ચૈતન્ય દેખાય છે. ઇત્યાદિક હકીકત દશમા શ્લોકમાં વિસ્તારથી બતાવેલી છે. શુદ્ધાદ્વૈતસિદ્ધાંતમાં અભેદ એવી રીતે છે કે જેમ સોનું, સોનાના કટકા, કડાં અને કુંડળવિગરે સર્વ સુવર્ણ છે તેવીરીતે બ્રહ્મ અને બ્રહ્મમાંથી થએલ જડ તથા જીવવિગરે સર્વ બ્રહ્મજ છે. એવીરીતે અંશાંશિભાવવડે અભેદ સ્પષ્ટ છે; માટે પૂર્વાપર જોવાથી ભાસ્કરમતમાં અને શુદ્ધાદ્વૈતસિદ્ધાંતમાં મહોટી વિલક્ષણતા છે. એવી રીતે ભાસ્કરમતમાં દૂષણ આપીને જીવ તથા બ્રહ્મનો વાસ્તવિક ભેદ છે એમ માને છે તેના મતમાં દૂષણ કહે છે કે ભેદના પક્ષમાં તો નીચે લખેલી શ્રુતિનો વિરોધ આવે છે,

अपि वा तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं
भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवति ॥

અર્થઃ—શ્વેતકેતુ ભણીને પોતાના પિતાપાસે આવ્યો ત્યારે તે બહુ ઉદ્ધત થએલો હતો તેને જોઇને શાન્ત કરવામાટે તેના પિતા—ઉદ્દાલકે પૂછ્યું કે તું ભણીને મહોટું અભિમાન રાખીને આવ્યો છું પણ તારા ગુરુને તેં કંઇ એવી વાત પૂછેલી છે કે જે જાણવાથી નહિંસાંભળેલું હોય તે સાંભળેલું થાય છે. નહિંમાનેલું હોય તે માનેલું થાય છે અને નહિંજાણેલું હોય તે જાણેલું થાય છે? એમ પોતાના પિતાએ પૂછ્યું ત્યારે તે આદેશ કેવી રીતે થાય? તે તમે કહો. એમ શ્વેતકેતુના પૂછવાથી ઉદ્દાલકે કહ્યું છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् ॥

અર્થઃ—હે સોમ્ય! જેમ એક માટીનો પિંડો જાણવાથી મૃત્તિકાના પદાર્થમાત્ર જણાય છે તેમ એક બ્રહ્મ જાણવાથી સર્વ જણાય છે. એમ પ્રતિજ્ઞા કરી છે તે તમામ એક હોય ત્યારે પ્રતિજ્ઞા સિદ્ધ રહે છે, બ્રહ્મ જૂદું હોય અને કાર્યરૂપ જગત્ જૂદું હોય તો એક બ્રહ્મ જાણવાથી સર્વ જણાય નહિં; માટે ભેદ માનવામાં એશ્રુતિઓનો વિરોધ આવે છે એટલે એક જાણવાથી સર્વ જાણવાનો અને મૃત્તિકાના પિંડના દૃષ્ટાંતનો વિરોધ આવે છે. (૪૩) તેમ જીવ અને બ્રહ્મ જૂદા છે ત્યારે કોઇજીવને સુખ આપે છે અને કોઈને દુઃખ આપે છે તેમાં બ્રહ્મમાં વિષમતા આવે છે અને બીજાનું દુઃખ મટાડવાનું બ્રહ્મમાં સામર્થ્ય છે છતાં મટાડતા નથી એ બ્રહ્મમાં નિર્દયતા આવે છે.

શંકા—જીવેં જેવાં જેવાં કર્મ કરેલાં છે તેવું તેવું કર્મને અનુસારે સુખદુઃખ પ્રાપ્ત થાય છે તે ભોગવવું પડે છે. પ્રથમ જેવાં કર્મ કર્યાં હોય તેપ્રમાણે દેહ ધારણ-કરિને પાછાં તેવાં કર્મ કરે છે અને તેને અનુસારે ફળ ભોગવે છે તેથી ઇશ્વરમાં નિર્દયતા કે વિષમતારૂપ દોષ નથી.

ઉત્તર—ફળને આપનાર કર્મજ છે એમ માનવામાં ઇશ્વરની કંઇ સત્તા રહેતી નથી તેમ ઇશ્વર માનવાનું કંઈ પ્રયોજન રહેતું નથી તેથી નિરીશ્વરવાદ આવે છે.

શંકા—કર્મ તો જડ છે તેથી પોતાની મેળે ફળ આપીશકતું નથી પણ જેવું કર્મ કરેલું હોય તેને અનુસારે ઇશ્વર ફળ આપેછે એમ માનવામાં ઇશ્વરની પણ આ-વશ્યકતા રહે છે તેથી નિરીશ્વરવાદ આવતો નથી.

ઉત્તર—જીવેં જેવાં કર્મ કર્યાં હોય તેને અનુસારે ઇશ્વર ફળ આપે ત્યારેં ઈશ્વર પણ કર્મને આધીન થયા પોતેં સ્વતંત્રશક્તિવાળા થયા નહિં ત્યારેં ઇશ્વ-રપણું રહ્યું નહિં; કેમકે સ્વતંત્રસત્તાવાળા હોય તે ઇશ્વર કહેવાય.

શંકા—કર્મને અનુસારે જીવ ફળ ભોગવે છે એમ શ્રુતિસ્મૃતિવિગરેમાં કહેલું છે તેનો બાધ આવશે.

ઉત્તર—જ્યાં કર્મને અનુસારે ફળ ભોગવવાનું કહેલું છે ત્યાં પણ કર્મ કરા-વવાપણું ઇશ્વરનેજ છે એમ કહેલ છે તેથી જેજીવને જેવું ફળ આપવાની પોતાની ઇચ્છા હોય તેજીવપાસે તેવું કર્મ ઇશ્વર કરાવે છે. તેબાબત શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

तमेव साधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषति ॥

तमेवासाधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषति ॥

અર્થ—જેને આલોકથી ઊંચી ગતિએં લઇજવાની ઇચ્છા કરે છે તેનેજ પ્રભુ સારાં કર્મ કરાવે છે. અને જેને આલોકથી નીચે લઇજવાની ઈચ્છા કરે છે તેનેજ નઠારાં કર્મ કરાવે છે. એમ કહેલું છે તેથી પ્રભુની ઇચ્છાજ કર્મકરાવવામાં કારણરૂપ છે એમ શ્રુતિનો અભિપ્રાય છે તેને અનુસરિનેજ "સારૂંકર્મકરનાર સારો થાય છે અને પાપકર્મકરનાર પાપિઓ થાય છે" એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે ત્યાં પણ ભગવાનની ઇચ્છાવડેજ તેવાં તેવાં કર્મ કરવાપણું સમજવું. તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાં कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् (શાસ્ત્રના અર્થવાળાપણું જીવને હોવાથી વેદવિધિવિગરેમાં કહેલા કર્મને કરનાર જીવ છે) એમ વિધિવિગેરે શાસ્ત્રનો ઉદ્દેશ જીવને લઇને પ્રવૃત્ત થયેલો છે માટે કર્મનું કર્ત્તાપણું જીવને છે એમ કહિને તેકર્ત્તાપણું પોતાની મેળે છે કે ભગવાનની પ્રેરણા વડે છે? એવો સંશય થાય તેની નિવૃતિમાટે કહેલ છે કેઃ—

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥

અર્થ—સૂત્રમાં ઉપર લખ્યા સંશયની નિવૃત્તિમાટે તુ અવ્યય કહેલો છે એટલેં જીવને કર્ત્તાપણું ઇશ્વરથી છે કેમકે તેવી રીતેં શ્રુતિમાં કહેલ છે. તે શ્રુતિ ઉપર બ-તાવી છે કે જેને ઉંચી ગતિએ લઇજવાની ઇચ્છા હોય છે તેની પાસે સારાં કર્મ

કરાવે છે અને જેને નીચી ગતિએ લઇજવાની ઇચ્છા હોય છે તેના પાસે નઠારાં કર્મ કરાવે છે; માટે કર્મ કરાવવાપણું અને તેનું ફળ આપવાપણું ઇશ્વરનેજ છે તેમ ન હોય તો ફળને આપનાર કર્મ છે એમ સમાધાન કરવાથી ઇશ્વરનું ઇશ્વરપણું મટીજાય છે. (૪૪)

અહિં સર્વેના મતને દુષ્ટપણું હોવાથી તેનાં નામ કહે છે.

मूलम् । अत्रापि शांकराः शैवा माध्वा रामानुजादयः ॥
निम्बार्का भास्करा भिक्षुर्येऽन्ये ते दोषसंश्रिताः ॥ ४६ ॥

શબ્દાર્થ—અહિં પણ શંકરાચાર્યના મતના અનુયાયિઓ, શૈવો, માધ્વો, રામાનુજાદિક, નિંબાર્ક, ભાસ્કરાચાર્યમતવાળા, ભિક્ષુ અને જે બીજા છે તે સર્વ દોષયુક્ત છે.

ટીકા—કર્મનો આશ્રય કરિને બ્રહ્મની આવતી એવી વિષમતા અને નિર્દયતાનો પરિહાર કરવામાં પણ શંકરાચાર્યના મતવાળાઓ, શબળબ્રહ્મમાં દોષ આવે છે તેના પરિહારમાટે કર્મના આશ્રયવડે સમાધાન કરે છે તેથી ઉપરના શ્લોકમાં લખ્યા-પ્રમાણે તેના ઇશ્વરપણામાં બાધ આવે છે; રામાનુજ વિશિષ્ટાદ્વૈતને માને છે તેના મતને ચોરનાર શૈવ છે તે પણ વિશિષ્ટાદ્વૈતવાદી છે તેના મતનું વિવેચન આગળ કરવાનું છે, માધ્વમતવાળા ભેદ માને છે તેનામાં દૂષણ આવે છે તે ઉપરના શ્લોકમાં બતાવેલ છે, તેમજ નિંબાર્કમતમાં વાસ્તવિક ભેદ છે તેથી તે દૂષણ તેમનામાં પણ આવે છે, ભાસ્કરાચાર્યના મતમાં દૂષણ આવે છે તે પણ ઉપરના શ્લોકમાં બતાવેલ છે, અને ભિક્ષુકનો મત આગળ બતાવવાનો છે તેનામાં પણ દોષ આવે છે; એટલે ઉપર બતાવ્યા—તમામમતમાં ઇશ્વરમાં અનીશ્વરપણું આવવારૂપ દોષ આવે છે. (૪૫)

બીજાઓના મતમાં ઇશ્વર સુખદુઃખ આપે છે એમ કહિયે તો ઇશ્વરમાં વિષમતા તથા નિર્દયતારૂપ બે દોષો આવે છે અને અનાદિકર્મને આધારે સુખદુઃખ મળે છે એમ કહિયેં તો ઇશ્વરમાં કાંઇ સત્તા રહેતી નથી તેથી નિરીશ્વરવાદ આવે છે એમ ઉપર દૂષણો બતાવ્યાં, ત્યાં શંકા થાય કે આપણા સિદ્ધાંતમાં પણ ભગવાનની ઇચ્છા-પ્રમાણેજ જીવોને સુખદુઃખ મળે છે એમ સ્વીકારેલું છે, ત્યારે એકને સુખ આપવાની ઇચ્છા અને એકને દુઃખ આપવાની ઇચ્છા થઇ તેમાં ઇશ્વરમાં વિષમતા તથા નિર્દયતારૂપ દોષો તો પ્રાપ્ત થાયજ છે: એવી શંકાનાં સમાધાનમાટે કહે છે.

मूलम् । आत्मसृष्टेर्न वैषम्यं नैर्घृण्यं चापि विद्यते ।
श्रीमदाचार्यचरणैर्निबन्धइदमीरितम् ॥ ४६ ॥
श्रीमत्प्रभुवरैर्विद्वन्मण्डनेऽपि निरूपितम् ।
रमणार्थमिदं विश्वमुच्चनीचादिभावतः ॥ ४७ ॥
आत्मरूपं चकारातो हरिर्यस्मान्न दूषणम् ।

શબ્દાર્થ—આત્મારૂપ સૃષ્ટિ, હોવાથી વિષમતા કે નિર્દયતા પણ નથી. એમ શ્રીઆચાર્યજીયેં શાસ્ત્રાર્થનિબંધમાં આજ્ઞા કરેલ છે. તેમજ શ્રીમત્પ્રભુવર—શ્રીગુસાંઇજીયેં વિદ્વન્મંડનમાં પણનિરૂપણ કરેલ છે કે હરિયેં રમણમાટે આજગતને ઉંચ-નીચવિગેરે ભાવથી પોતારૂપ કરેલ છે માટે વૈષમ્ય તથા નૈર્ઘૃણ્યવિગેરે દોષ નથી.

ટીકા—तदात्मानं स्वयमकुरुत (પોતાના આત્માને પોતેં જગદ્રૂપ કરેલ છે.) એશ્રુતિવડે, બ્રહ્મજ જગતને આકારે પોતાની ઇચ્છાવડેજ રમણને માટે ઉંચ—નીચાદિભાવેં થયેલ છે. એમ બતાવેલ છે; તેથી બ્રહ્મથી ભિન્ન જગત્ નથી માટે જીવને દુઃખ—સુખાદિક આપવામાં બ્રહ્મમાં વિષમતા કે નિર્દયતારૂપ દોષ આવતા નથી. એમ નિબંધના શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં શ્રીઆચાર્યજીયેં નિરૂપણ કરેલ છે. (૪૬) તેમજ વિદ્વન્મંડનમાં શ્રીગુસાંઇજીયેં નિરૂપણ કરેલ છે કે વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ।

અર્થ—પર(ભગવાન્)ને, પોતાને અને જીવને સર્વસ્થળે સર્વપ્રકારેં ભોગ કરવો એવી ઇચ્છા થવાથી જીવમાંથી ઐશ્વર્યાદિક ધર્મો તિરોહિત થયેલ છે તેથી જીવને બંધ અને વિપર્યય (બ્રહ્મભાવ મટીને જીવભાવ) થયેલ છે; ઐશ્વર્યાદિક ધર્મો-જીવમાં હોય તો વિચિત્રપણું નહિંથવાથી ભોગ થાય નહિં તેસારૂ જીવમાં ઐશ્વર્યાદિક—ધર્મોનો તિરોભાવ કરેલ છે. તેથી જીવને બંધ થયેલ છે અને (ભગવાનનો અંશ છતાં) ભગવાનના ધર્મકરતાં વિપરીતધર્મવાળાપણું થયેલ છે. ઐશ્વર્યાદિકનો તિરોભાવ થવાથી દીનપણું થયું છે, વીર્યનો તિરોભાવ થવાથી સર્વ દુઃખ સહનકરવું પડે છે, યશનો તિરોભાવ થવાથી સર્વથી હીનપણું થયું છે, શ્રીનો તિરોભાવ થવાથી જન્માદિક સર્વ આપત્તિ ભોગવવી પડે છે, જ્ઞાનનો તિરોભાવ થવાથી દેહાદિકમાં અહંબુદ્ધિ તથા અપસ્માર (વાઇના) રોગવાળાની પેઠે સર્વ વિપરીતજ્ઞાનથયું છે તથા વૈરાગ્યનો તિરોભાવ થવાથી વિષયાસક્તિ થઇ છે. અને આનંદાંશ તો પ્રથમથીજ તિરોહિત થયેલ છે જેથી જીવભાવ થયો છે. એમ વ્યાસસૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે તેઉપરથી શંકા થાય કે સર્વ જીવો બ્રહ્મરૂપ છે તેથી ઐશ્વર્યાદિક ધર્મો તેના સહજ છે, તેને તિરોહિત કરિને મિથ્યાજ્ઞાનાદિકદોષયુક્ત તેને કરવામાં ઉપસ્થિત (પોતામાં ઐશ્વર્યાદિક સહજ ધર્મો રહ્યા છે તે)ની હાનિ થવારૂપ અને (મિથ્યાજ્ઞાનાદિક) જે અકૃત (નહિં કરેલા) છે તેના આવવારૂપ દોષ આવે છે. એવી શંકાની નિવૃત્તિમાટે કહે છે કે જીવની કૃતિમાં એ દૂષણ છે, ભગવાનની કૃતિમાં તે દૂષણ નથી; કેમકે લોકમાં પણ રાજાઓ સ્વતંત્ર હોય છે તે પણ પોતાના વિહારમાટે, પ્રાચીનમકાનો તથા ગઢ, કિલ્લા-વિગેરે હોય તેને તોડિને ત્યાં બગીચોવિગેરે કરે છે અને પોતાના સેવકોને પ્રથમ મ્હોટી સાયબીવિગેરે સુખ આપેલું હોય તે પાછું લઇલેછે તેમજ કયારેંક, લઇલીધું હોય તે પાછું આપે છે તેમાં પણ દોષ આવતો નથી ત્યારેં સર્વે લોકને નિયમમાં રાખનાર અને સર્વજગતનાં કારણનાં પણ કારણરૂપ એવા ભગવાનને પોતાના દાસરૂપ—જીવને અન્યથા કરવામાં શંકા કરવાજેવું શું છે ? તેમ જગતની ઉત્પત્તિ, પાલન અને સંહાર ભગવાનજ કરે છે તેથી કરેલાં જગતનો સંહાર કરે તેમાં એ-

દોષની કલ્પના કરવાનો વખત આવે ત્યારે જગતની ઉત્પત્તિ કે પ્રલય થાયજ નહિં તો વેદમાં ભગવાનથીજ જગતની ઉત્પત્તિ તથા પ્રલય થવાનું લખ્યું છે તેને બાધ આવે.

શંકા—જીવ, ધર્મ અથવા અધર્મ જેવું કર્મ કરે છે તેને અનુસરિને તેવું ઇશ્વર કરાવે છે. જો તેમ ન હોય તો स्वर्गकामो यजेत (સ્વર્ગની કામનાવાળો યજ્ઞાદિકવડે યજનકરે) ઇત્યાદિક વિધિવાક્યો છે અને ब्राह्मणो न हन्तव्यः (બ્રાહ્મણ મારવો નહિં) ઇત્યાદિકનિષેધવાક્ય છે તેની વ્યર્થતા થાય; માટે વિધવાક્યવડે કર્મમાં પ્રવૃત્તથતા જીવને ઇશ્વર કર્મ કરાવે છે અને નિષેધવાક્યવડે નિવૃત્તથતા જીવને નિવૃત્ત કરે છે; તેમાં કોઇની વેદાદિકમાં કહેલાં કર્મમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે અને કોઇની પ્રવૃત્તિ થતી નથી. તેમ કોઇ નિષિદ્ધકર્મથી નિવૃત્ત થાય છે અને કોઇ નિવૃત્ત થતુ નથી ત્યાં પણ પૂર્વે પૂર્વે કરેલાં તેવાં કર્મજ કારણ છે તેથી જીવને નહિંકરેલું કાંઇ આવતું નથી. એમ માનવામાં શું અડચણ છે?

ઉત્તર—કર્મને આધારેજ સુખદુઃખાદિક સર્વ મળે છે એમ કહેશું ત્યારે ઇશ્વરની કાંઇ પણ સત્તા રહી નહિં એટલે અનીશ્વરવાદ આવે છે.

શંકા—કર્મ તો જડ છે તેથી પોતે કાંઈ પણ ફલ આપી શકે તેમ નહિંહોવાથી કર્મને અનુસારે ફલ આપવાપણું ઇશ્વરને છે માટે નિરીશ્વવાદ આવે તેમ નથી એ ઉપર બતાવેલ છે.

ઉત્તર—કર્મ, ફલ આપીશકે નહિં તેસારૂ ઇશ્વરની કલ્પના કરવી તેના કરતાં ફલઆપનાર પણ તેવીજાતનું કર્મજ છે એમ પણ કલ્પીશકાય છે.

શંકા—વ્યાસ સૂત્રમાં કહેલ છે કે:—

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ।

અર્થ—વેદાદિકમાં કહેલાં વિહિત તથા નિષિધ્ધ કર્મોની વ્યર્થતા નહિંથવામાટે જીવે કરેલાં કર્મની અપેક્ષા ઇશ્વર રાખે છે. એમ કહેલ છે, ત્યાં કર્મને અનુસારેંજ ઇશ્વર ફલ આપે છે એમ સિદ્ધ થાય છે; માટે અમે તેમ કાહયેં છીયેં.

ઉત્તર—એસૂત્રનો અર્થ એવી રીતે નથી. એસૂત્રમાં તો કહેલછે કે कृतप्रयत्नापेक्षः (કરેલા પ્રયત્નની અપેક્ષારાખનાર ભગવાન્ છે) એમ કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે "એક હું ઘણારૂપે થાઉં" એમ શ્રુતિમાં કહ્યાપ્રમાણે પ્રપંચવડે રમણની ઇચ્છાથી ક્રીડામાટે ભગવાને પ્રયત્ન કરેલ છે તેપ્રયત્નની ઇચ્છાવાળા ભગવાન્ છે ત્યારે ક્રીડાજ મુખ્ય છે, બીજું સર્વ ગૌણ છે, એટલે પ્રપંચવડે રમણકરવાની અપેક્ષાવાળા ભગવાને વિચિત્રરસનો અનુભવ કરવામાટે એવી રીતની મર્યાદા બાંધી છે કે આવી જાતનાં કર્મ કરશે તેને આવી જાતનું ફળ આપીશ; તેથીજ "ધર્મની સેતુના વક્તા, કર્તા અને અભિરક્ષિતા ભગવાન્ છે" એમ સર્વેઠકાણે નિરૂપણ કરેલ છે; તેથી પોતે કરેલી મર્યાદાની રક્ષામાટે અને મર્યાદાને જણાવવામાટે વેદને કર્યો છે; એટલેં જીવોને ઉત્પન્ન કરેલ છે તેસમયમાંજ આજીવને

આદેશમાં આકાલમાં આવી રીતની પ્રવૃત્તિ અથવા નિવૃત્તિવાળો કરિને અમુક અમુક ફલ આપીશ એવી રીતે દરેકજીવનેમાટે મોક્ષપર્યંત વિચાર કરેલો છે તેને અનુસારેજ તે જીવો તેવા થાય છે. એવી રીતે ક્રીડાને માટે જીવાદિકની વિચિત્રતા કરિને ઉદ્યમ કરેલો છે તેની અપેક્ષાવાળાજ (તેને આધીનજ) ભગવાન્ તેવાં કર્મ જીવપાસે કરાવે છે; કેમકે શાસ્ત્રમાં યજ્ઞાદિક વિહિત છે તે સ્વર્ગાદિકને સિદ્ધકરે છે અને બ્રાહ્મણ મારવો તે નિષિદ્ધ છે તે નરકાદિકને સિદ્ધકરે છે. તેની વ્યર્થતા નહિંથવાદેવી, અને તેમ કરે ત્યારે વિહિત તથા નિષિદ્ધની અવ્યર્થતા થાય. સૂત્રમાં આદિ પદ લખેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે કર્મવગર તેવું ફલ પણ આપતા નથી એમ સૂચવ્યું છે તેથીજ "જેને ઉંચે લઈજવાની ઇચ્છા કરે છે તેની પાસે સારાં કર્મ કરાવે છે અને જેને નીચે લઇજવાની ઇચ્છા રાખે છે તેની પાસે નરસાં કર્મ કરાવે છે," એમ શ્રુતિમાં પણ જીવને ફલઆપવાની ભગવાનની ઇચ્છાજ સારાં નરસાં કર્મ કરાવવામાં કારણરૂપ કહી છે. શ્રીઆચાર્યજીએ અણુભાષ્યમાં તો એ સૂત્રનો અર્થ એવી રીતે કરેલ છે કે "પ્રયત્નસુધી જીવનું કૃત્ય છે અને તેપછી જીવની શક્તિ નહિંહોવાથી પોતે કરાવે છે. જેમ પુત્ર બાલક હોય તે કાંઇ કામ કરતો હોય ત્યારે તેનો પિતા તેકામમાં ગુણદોષ હોય તે બતાવે તોપણ પુત્રનો અભિનિવેશ તેકામમાં વધારે હોવાથી પિતાના વચન ઉપર ધ્યાન આપે નહિં ત્યારે પિતા વિચાર કરે કે તેકામનું ફલ મળશે ત્યારે તે સમજશે એમ જાણિને તે કામ કરવાદે છે. તેવી રીતે ભગવાને પણ વેદાદિકમાં સર્વકર્મોના ગુણદોષ બતાવેલા છે તે છતાં જીવ મરજીપ્રમાણે કર્મ કરેજાય છે ત્યારે તેનો અભિનિવેશ જોઇને તે કર્મ ભગવાન્ કરવા દે છે; કેમકે છેવટ ફલઆપવાની પોતાની જેવી ઇચ્છા હોય છે તેપ્રમાણે શ્રુતિમાં તેવાં કર્મ કરાવવાની ઇચ્છા કારણરૂપ કહી છે; તેથી ફલઆપવામાં કર્મની અપેક્ષા, કર્મકરાવવામાં જીવે કરેલા પ્રયત્નની અપેક્ષા, પ્રયત્નમાં તેની કામનાની અપેક્ષા અને સ્વર્ગાદિકની કામનાની અપેક્ષામાં લોકના પ્રવાહની અપેક્ષા ભગવાન્ રાખે છે; તેવા પ્રકારની મર્યાદાની રક્ષામાટે ભગવાને વેદ કરેલ છે. તેમર્યાદાની રક્ષાની અપેક્ષાવાળા ભગવાન્ છે તે તેપ્રમાણે કર્મ કરાવે છે; માટે વિષમતા કે નિર્દયતારૂપદોષ ભગવાનમાં નથી.

શંકા—એવી રીતે કર્મની અપેક્ષા ભગવાન્ રાખે છે ત્યારે તેમાં ભગવાનની સત્તા કાંઇ પણ રહી નહીં ત્યારે તમે પ્રથમ કહ્યું છે તેપ્રમાણે નિરીશ્વરવાદ આવે છે.

ઉત્તર—મર્યાદામાર્ગ તેવીરીતનોજ ભગવાને કરેલો છે તેથી મર્યાદામાર્ગમાં કર્મને અનુસરિ ફલ આપે તેથી ઇશ્વરપણામાં બાધ આવતો નથી; કેમકે જે જીવ અનુગ્રહના પાત્ર છે તેને કર્મની અપેક્ષા રાખ્યાવગરજ ફલ આપે છે તેથી ઇશ્વરપણું સિદ્ધ રહે છે. એવો એસૂત્રનો અભિપ્રાય છે એમ આજ્ઞા કરી છે. તેમાં પણ ભગવાને કરેલી મર્યાદાજ કારણરૂપ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. તેમ કર્મકરવાની પહેલાંના સમયમાં જે પોતાનો ધર્મ છે તેજ પ્રયત્નશબ્દથી સમજવો તે યોગ્ય છે માટે ધર્મ કે અધર્મ પ્રયત્નશબ્દથી સમજવાના નથી. જો ધર્મ અને અધર્મ પ્રય-

ત્નશબ્દથી લેવાના હોય તો પછી ધર્મ અને અધર્મની અપેક્ષા રાખીને ભગવાન્ ફલ આપે છે એમજ સૂત્રમાં કહેવું જોઇએ પણ વિહિત અને પ્રતિષિદ્ધ એમ કહેવું જોઇએ નહિં. એમ વિદ્વન્મંડનમાં શ્રીગુસાંઇજીયેં નિરૂપણ કરેલું છે; માટે કૃતકર્મની હાનિ કે નહિં કરેલાંની પ્રાપ્તિ કે વૈષમ્ય કે નૈર્ઘૃણ્યરૂપ દોષો આવતા નથી. (૪૭)

એવી રીતેં પ્રસંગમાં આવેલા વૈષમ્યાદિકદોષોનો પરિહાર કરિને શક્તિ અને શક્તિમાનને ભેદાભેદ છે એવો દોષ કોઇની દૃષ્ટિમાં આવે તો તેનો પરિહાર કરે છે.

मूलम् । शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभेदो यः स न बाधकः ॥ ४८ ॥
तत्र भेदो न चैवास्ति शक्तेर्ब्रह्मत्वनिश्चयात् ।
भिन्नत्वे तु जडत्वं स्यात् भेदो यो बोधनाय सः ॥ ४९ ॥

શબ્દાર્થ—શક્તિ અને શક્તિમાનને જે ભેદાભેદ કહેલ છે તે બાધક નથી; કેમકે શક્તિને બ્રહ્મપણું છે એવો નિશ્ચય હોવાથી તેમાં ભેદ નથીજ, જો શક્તિને બ્રહ્મથી ભિન્નપણું કહિયે તો શક્તિ જડ છે એમ કહેવું પડે ત્યારે તે કાંઇ કાર્યકરી શકે નહિં; માટે શક્તિ ભિન્ન નથી છતાં જે ભેદ બતાવે છે તે શક્તિનું સ્વરૂપ જાણવામાં આવવાસારુ છે.

ટીકા—શક્તિ અને શક્તિવાળા (ભગવાન્)ને ભેદાભેદ કોઇ સ્થળમાં કહેલ છે તે બાધકરનાર નથી; કેમકે તેમાં ભેદ છેજ નહિં. ભગવાનની શક્તિ ભગવદ્રૂપજ છે. જો શક્તિ ભગવાનથી જૂદી છે એમ માનિયેં તો ભગવાન્ ચૈતન્યઘન છે તેનાથી જૂદી શક્તિ થવાથી જડ થઇ ત્યારેં ભગવાને પોતાની શક્તિવડે અમુક કાર્ય કર્યું ઇત્યાદિક વાક્યોમાં બાધ આવે માટે શક્તિ ભગવાનથી જૂદી નથી. છતાં જૂદી બતાવાય છે કે ભગવાનની શક્તિ એમ કહેવાથી ભગવાન્ અને શક્તિ એમ બન્ને જૂદાં કહેવાય છે તે શક્તિનું સ્વરૂપ બતાવવામાટે છે. જેમ બ્રહ્મ જ્ઞાનઘન હોવાથી જ્ઞાન અને બ્રહ્મ જૂદાં નથી પણ જ્ઞાનરૂપજ બ્રહ્મ છે. છતાં "બ્રહ્મનું જ્ઞાન જાણીને ક્યાંયથી ભય પામતો નથી" એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે ત્યાં બ્રહ્મ અને જ્ઞાન જૂદું હોય એમ જણાય છે તે જ્ઞાનનું સ્વરૂપ બતાવવામાટેજ શ્રુતિમાં કહેલ છે તેવી રીતેં શક્તિનું સ્વરૂપ જાણવામાં આવે તેસારુજ તેમ કહેવાય છે. (૪૮–૪૯)

ત્યાં શંકા થાય કે વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

प्रकाशाश्रयवद्वातेजस्त्वात् ।

અર્થ—બ્રહ્મમાં રહેલ ચૈતન્યને તેજપણું હોવાથી પ્રકાશના આશ્રવાલા (સૂર્યાદિક)ની પેઠે ચૈતન્યાદિક ધર્મો છે એમ સૂત્રમાં કહેલું છે; તેથી પ્રકાશ અને પ્રકાશના આશ્રયવાળાને જેમ ભેદાભેદ છે તેવી રીતેં બ્રહ્મ અને બ્રહ્મના ધર્મને ભેદાભેદ છે એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે.

मूलम् । धर्मधर्मिविचारेऽपि ज्ञेयमेवं विचक्षणैः ।
प्रकाशाश्रयदृष्टान्तेऽप्यभेदो बोध्यते किल ॥ ५० ॥
अरूपवत्सूत्रवाक्ये धर्माणामपि ब्रह्मता ।
निरूपिता प्रभुवरैः श्रीविद्वन्मण्डने स्फुटम् ॥ ५१ ॥

શબ્દાર્થ—ધર્મ અને ધર્મિના વિચારમાં પણ વિચક્ષણ—પુરુષોયેં એવી રીતેં જાણવું કે ભેદ નથી. પ્રકાશ અને પ્રકાશના આશ્રયરૂપ—સૂર્યાદિકનું દૃષ્ટાંત આપેલ છે ત્યાં પણ અભેદનોજ બોધ કરાય છે. તેમજ अरूपवत् એ સૂત્રવાક્યમાં પણ બ્રહ્મના ધર્મો બ્રહ્મરૂપ છે એમ શ્રીગુસાઁજીયેં વિદ્વન્મંડનમાં સ્ફુટ નિરૂપણ કરેલ છે.

ટીકા—વેદમાં બ્રહ્મના ધર્મો વર્ણવેલા છે તે ધર્મો બ્રહ્મથી ભિન્ન છે, બ્રહ્મના કાર્યરૂપ છે કે બ્રહ્મરૂપ છે; એવો સંશય થાય. ત્યાં લોકમાં પટરૂપાદિક કાર્યનાજ ધર્મો જોવામાં આવે છે કે પટમાં શુકલ, નીલ અને પીત વિગેરે રૂપો જોવામાં આવે છે તે પટમાં સમવાયસંબંધથી રહેલ હોય છે. તેની નિત્યતા જોવામાં આવતી નથી તેથી તે કાર્યરૂપ છે એમ માનિશકાય છે. તેવી રીતેં જેમ પ્રથમ કાર્ય છે તેમ ધર્મો પણ કાર્યરૂપ છે; માટે બ્રહ્મ તો સર્વધર્મરહિતજ છે એમ સિદ્ધ થશે. એવી શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ।

અર્થ—સૂત્રમાં वा અવ્યય છે તે પૂર્વપક્ષની નિવૃત્તિમાટે છે. પ્રકાશના આશ્રયરૂપ—સૂર્યાદિકની પેઠેં બ્રહ્મના ધર્મો બ્રહ્મથી જૂદા નથી; કેમકે તેજપણું છે; એટલે સૂર્યનો પ્રકાશ સૂર્યથી જૂદો રહેતો નથી અને સૂર્યમાંજ સમવાયસંબંધથી રહે છે તેમજ સૂર્ય રહેલ હોય ત્યાંથી અસ્ખલિતરીતેં તેના આધારવડે પ્રકાશ રહે છે તેથી સૂર્યદિ જૂદો નથી. તેવી રીતેં બ્રહ્મના ધર્મો પણ બ્રહ્મથી જૂદા નથી; કેમકે તેજશબ્દ થી પણ વેદમાં બ્રહ્મજ કહેલ છે; અર્થાત્ તેજ અને સૂર્ય જેમ તેજજ છે તેમ ધર્મ અને બ્રહ્મ બ્રહ્મજ છે; તેથીજ શ્રુતિમાં પણ કહેલ છે કેઃ—

स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरावाह्यो रसघन एवं वाऽरेऽयमात्मा कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ।

અર્થ—જેમ સિંધાલુણનો તે કટકો બહાર તથા ભીતર જૂદાઇવગરનો રસથી ઘાટો છે, તેમ અરે! આ આત્મા સમગ્ર પ્રજ્ઞાનઘન છે. એશ્રુતિવડે એકરૂપજ બ્રહ્મસ્વરૂપ વર્ણવેલું છે. તેમ સૂત્રમાં પણ તેજપણું હેતુમાં કહેલ છે તેથી સર્વ બ્રહ્મજ છે એમ બતાવિને ધર્મ અને ધર્મિનો અભેદજ કહેલો છે. (૫૦) ધર્મને બ્રહ્મપણું છે તેમાં બીજું સૂત્ર પ્રમાણમાં આપે છેઃ—

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ।

અર્થ—રૂપવાળાથી વિલક્ષણજ બ્રહ્મ છે; કેમકે સર્વસ્થળેં બ્રહ્મનુંજ પ્રધાનપણુ છે; એટલેં નિરૂપણ કરાય (વ્યવહારમાં આવે) તે रूप કહેવાય છે, તેવાણું હોય તે रूपवत् કહેવાય છે. તેથી રૂપવત જગત્ છે, બ્રહ્મ તેનાથી વિલક્ષણ છે એટલેં अरूपवत् એમ કહ્યું છે; કેમકે કાર્ય અને કારણતથા અંશ અને અંશિનું વિલક્ષણપણું હોવુંજ જોઇએ. અથવા જેનાથી વ્યવહાર કરાય તે रूप કહેવાય, એટલેં હાથ, પગવિગેરે ઇંદ્રિયો તે રૂપ કહેવાય; તેવાણું બ્રહ્મ નથી; કેમકે લોકમાં હાથ, પગવિગેરે ઇંદ્રિયો ભિન્ન હોય છે અને તેનો અભિમાની જીવ ભિન્ન હોય છે. તેવી રીતેં બ્રહ્મ અને બ્રહ્મના ધર્મો ભિન્ન નથી. પણ વેદમાં ધર્મનું નિરૂપણ કરાય છે તે બ્રહ્મનુંજ નિરૂ-

પણ છે; કેમકે સર્વ વેદાંતમાં બ્રહ્મનું નિરૂપણજ મુખ્ય છે. એવી રીતેં વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે ત્યાં પ્રથમ બ્રહ્મમાં જડ, જીવ ધર્મો છે કે નહિં તેનો વિચાર કર્યો છે તેમાં કેટલીએક શ્રુતિયો ધર્મનું નિરૂપણ કરે છે અને કેટલીએક શ્રુતિયો ધર્મનો નિષેધ કરે છે તેનો પરસ્પર વિરોધ આવે છે તેની નિવૃત્તિ કહેવી રીતેં કરવી? તેનો વિચાર કરવાલાગા છે ત્યારેં બન્ને પ્રકારનાં શ્રુતિવાક્યો છે તેથી તેમાંથી એક-પ્રકારની શ્રુતિનો બાધ થઇશકે નહિં એમ પણ વ્યાસજી જાણે છે; તેથી ધર્મનું પ્રતિપાદનકરનાર શ્રુતિયો, ઉપાધિસહિત (માયાવાદી જેને શબલ બ્રહ્મ (ઇશ્વર) માને છે તે) બ્રહ્મનું પ્રતિપાદન કરે છે અને ધર્મનો નિષેધકરનારી શ્રુતિયો, નિર્ગુણબ્રહ્મનું પ્રતિપાદન કરે છે એમ કોઇ માને તો તેના નિરાસમાટે કહ્યું છે કેઃ—

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ।

અર્થ—સ્થાનથી પર—ભગવાનનું બેય લિંગ નથી; એટલેં ધર્મનું પ્રતિપાદન-કરનાર તથા ધર્મનો નિષેધ કરનાર—શ્રુતિયોનો, કેટલાએક એવી રીતેં અવિરોધ કહે છે કે સર્વઠેકાણે કારણપણાંથી ભગવાન્ છે તેથી અસ્થૂલમાં અસ્થૂલ, અન-ણુમાં અનણુ, ઉચ્ચાવચકર્ત્તામાં ઉચ્ચાવચકર્ત્તા, ઉચ્ચાવચકામમાં ઉચ્ચાવચકામ, પૃથિવીમાં સર્વગંધ અને જલાદિકમાં અગંધ ભગવાન્ છે. એવી રીતેં રસાદિકમાં પણ સમજવું. એમ સ્થાનથી પરનાં બન્ને લિંગ છે. અથવા કારણમાંજ રૂપ અને અરૂપ બન્ને અવચ્છેદના ભેદથી* કે ભગવાનનાં અચિંત્ય—સામર્થ્યથી રહેલ છે જો તેમ નહોય તો અસતથી સત્ ઉત્પન્ન થવાનો પ્રસંગ આવે એમ સૂત્રમાં અપિ અવ્યય છે તેથી બતાવેલ છે. એમ કેટલાએક કહે છે. તે બન્ને પણ નથી; કેમકે સર્વત્ર હિ એટલેં સર્વઠેકાણે, તેવું રૂપ ભગવાનનું છે. એમ ઉપદેશ કરાય છે. એ યુક્ત અર્થ છે એમ બતાવવામાટે મૂલમાં હિ અવ્યય લખેલ છે; એટલેં વેદમાં કહેલ છે કેઃ—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति ।

અર્થ—સર્વે વેદો જેના પદને ચોતરફથી માને છે. હવે સમજવાનું એ છે કે ધર્મ બ્રહ્મરૂપ નહોય તો ધર્મનુ પ્રતિપાદનકરનારી જેટલી શ્રુતિયો છે તે સર્વ બ્રહ્મનું પ્રતિપાદનકરનારી ઠરે નહિં; કેમકે શ્રીમદ્‌ભગવદ્‌ગીતામાં પણ કહેલ છે કેઃ—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः ।

અર્થ—સર્વેવેદોવડે હુંજ જણાઉં છું. એમ શ્રીકૃષ્ણ—ભગવાને અર્જુનપ્રત્યેં કહેલ છે. ત્યાં નિશ્ચયને કહેનાર एव અવ્યય લખેલ છે તેથી તમામ વેદ ભગવાનનું જ પ્રતિપાદન કરે છે એમ સિદ્ધ થાય છે. જો કોઇ પણ શ્રુતિ ગૌણપણાંથી ભગવા-નનું પ્રતિપાદન કરતી હોય તો પછી સર્વેવેદોવડે હુંજ જણાઉં છું એમ સિદ્ધતાની

* જેમ એકજ પુરૂષ એકનો પુત્ર, બીજાનો પિતા અને ત્રીજાનો ભાઇ હોય છે. એમ અવચ્છેદના ભેદથી એકજપુરૂષમાં જૂદા જૂદા ધર્મો રહે છે. તેવી રીતેં ભગવાનમાં રૂપ અને અરૂપ રહેલ છે.

રીતે કહેલ છે તેને બાધ આવે; તેથી ધર્મનું પ્રતિપાદનકરનારી—શ્રુતિઓ પણ બ્રહ્મનુંજ પ્રતિપાદન કરે છે; કેમકે બ્રહ્મના ધર્મ, બ્રહ્મથી ભિન્ન નથી પણ બ્રહ્મરૂપજ છે.

શંકા—ધર્મનું પ્રતિપાદનકરનારી—શ્રુતિયોનો અને ધર્મનો નિષેધકરનારી—શ્રુતિયોનો પરસ્પર વિરોધ આવે છે તેનો પરિહાર તમેં કર્યો તેમ નથી પણ કારણ અને કાર્યોગાં સર્વસ્થલેં ભેદ જોવામાં આવે છે તેથી પ્રપંચથી વિલક્ષણ બ્રહ્મ ભિન્ન છે અને પ્રપંચના ધર્મવાળું બ્રહ્મ ભિન્ન છે. એમ બન્ને શ્રુતિયો બ્રહ્મનુંજ પ્રતિપાદન કરે છે. માટે સર્વે વેદો બ્રહ્મનુંજ પ્રતિપાદન કરે છે એમ સિદ્ધ થવાથી ધર્મનું પ્રતિપાદન કરનારી—શ્રુતિયોની વ્યર્થતા થતી નથી અને બ્રહ્મના સ્વરૂપમાં ભેદ હોવાથી શ્રુતિયોનો પરસ્પર વિરોધ પણ આવતો નથી.

ઉત્તર—એવી શંકા કોઇ કરે તો તેની નિવૃત્તિમાટેજ આગળના સૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

न भेदादितिचेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ।

અર્થ—કાર્ય અને કારણમાં ભેદ છે તેથી પરસ્પર શ્રુતિયોનો વિરોધ નથી. એમ કહેતા હો તો તેમ નથી; કેમકે દરેકશ્રુતિયોમાં કારણ અને કાર્યમાં ભેદ હોવાનું કહેલું નથી; અર્થાત્ દરેકશ્રુતિમાં કારણ અને કાર્યમાં અભેદ હોવાનુંજ કહેલ છે. તેમ કારણ અને કાર્યમાં ભેદ સ્વીકારવામાં બાધક કહે છે કેઃ—

अपिचैवमेके ।

અર્થ—કેટલાએક વેદની શાખાવાળા કારણ અને કાર્યમાં ભેદનો નિષેધ કરિને અભેદ સ્વીકારવાનુંજ કહે છે. જેમકે મુંડકોપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

અર્થ—મનવડેજ આ પ્રાપ્ત થવાયોગ્ય છે. અહિં કાંઇ પણ નાનાપ્રકારનુ (જુદું) નથી. જે અહિં નાનાપ્રકારના જેવું (જુદું) દેખે છે તે મૃત્યુથી પણ મૃત્યુને પામે છે. એમ કહેલ છે ત્યાં ભેદ જોવાની નિંદા કરેલી છે; તેથી કારણ અને કાર્યના ભેદનો અંગીકાર થઇશકતો નથી. એપ્રમાણે સૂત્રોમાં નિરૂપણ કરિને પછી કહેલ છે કેઃ—

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ।

અર્થ—રૂપવાળાં (જગત્)થી વિલક્ષણજ બ્રહ્મ છે; કેમકે વેદાંતમાં બ્રહ્મનું પ્રતિપાદનકરવાનેજ મુખ્યપણું છે; એટલે સર્વવ્યવહારમાં આવે તે રૂપ કહેવાય તેવા રૂપવાલું જગત્ છે અને બ્રહ્મ તો તેનાથી વિલક્ષણ છે. તેથી અરૂપવત્ કહેલ છે. અથવા જેનાથી વ્યવહાર કરાય તે રૂપ કહેવાય તેથી રૂપવાલું કહેવાથી હાથ, પગ, વિગેરે ઇંદ્રિયો સમજવી; એટલે લોકમાં હાથ, પગ વિગેરે ઇંદ્રિયોથી ભિન્ન તેનો અભિમાની (જીવ) છે તેવી રીતે બ્રહ્મની હાથ, પગ વિગેરે ઇંદ્રિયોથી બ્રહ્મ ભિન્ન નથી. અને બ્રહ્મની હાથ, પગ વિગેરે ઇંદ્રિયો બ્રહ્મથી ભિન્ન નથી એમ શ્રુતિમાં નિરૂપણ છે;

તેથી રૂપનું પણ રૂપ બ્રહ્મ છે, રૂપવાળું નથી એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે; અર્થાત્ રૂપવાળું છે એમ કહે તો રૂપ જાુદું અને બ્રહ્મ જાુદું હશે એમ કોઇને શંકા થાય તેસારૂ अरूपवत् (રૂપવાળું નથી, અથવા રૂપવાળાંથી વિલક્ષણ છે.) એમ કહેલ છે.

શંકા—હસ્ત તથા પાદાદિકને પણ બ્રહ્મપણું છે, બ્રહ્મથી ભિન્નપણું નથી એમ શાઉપરથી જાણવું ?

ઉત્તર—સૂત્રમાં अरूपवत् એમ કહિને हि तत्प्रधानत्वात् એમ કહ્યા પછી સૂત્ર પૂરૂં કર્યું છે; એટલે સર્વવેદાંતને મુખ્યપણે પ્રતિપાદન કરવાનું બ્રહ્મજ છે. તે જો હસ્તપાદાદિકને બ્રહ્મપણું નથી એમ કહિયે તો બ્રહ્મનાં હસ્તપાદાદિકનું પ્રતિપાદન કરનારી—શ્રુતિયો બ્રહ્મનું પ્રતિપાદન કરતી નથી એમ માનવું પડે ત્યારે સર્વવેદ બ્રહ્મનુંજ પ્રતિપાદન કરે છે એમ ઉપર બતાવ્યાપ્રમાણે વેદ તથા શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતાજીમાં કહેલ છે તેને બાધ આવે; તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાંજ કહેલ છે કેઃ—

आह च तन्मात्रम् ।

અર્થ—હસ્તપાદાદિક ઇંદ્રિયો પણ આનંદઘન અને ચૈતન્યઘન હોવાથી બ્રહ્મરૂપજ છે. એમ શ્રુતિ કહે છે; એમ વ્યાસસૂત્રમાં કહ્યું છે. તેમ નારદપંચરાત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः ।

અર્થ—ભગવાનના હસ્ત, પાદ, મુખ અને ઉદર વિગેરે સર્વ આનંદમાત્ર છે. તેમ યોગિયાજ્ઞવલ્કયે પણ કહેલ છે કેઃ—

अथवा परमात्मानं परमानन्दविग्रहम् ।

અર્થ—પરમ આનંદરૂપજ જેમનું સ્વરૂપ છે એવા પરમાત્મા છે. એમ કહેલ છે ત્યાં પણ પરમાત્માનું સ્વરૂપ આનંદાત્મકજ લખેલ છે. તેનો પણ અભિપ્રાય એવોજ છે કે ભગવાનનાં કરચરણાદિક—સર્વ અવયવો આનંદાત્મક—ચૈતન્યઘન છે; તેથીજ શિવજીવિગેરેના ઉપાસકો પણ પોતપોતાના ઈષ્ટદેવનાં લિંગવિગેરે અવયવોની આનંદાત્મક તથા ચૈતન્યઘનપણાંથીજ ઉપાસના કરે છે; એટલે સર્વ ઉપાસકો પોતપોતાના ઇષ્ટદેવને બ્રહ્મરૂપ સમજીનેજ તેની ઉપાસના કરે છે. અને બ્રહ્મ તથા તેના અવયવો તમામ આનંદાત્મક—ચૈતન્ય ઘન છે. તેથી એક અવયવની ઉપાસનામાં પણ તમામ અવયવોના ઉપચાર કરાય છે. તેમ ન હોય તો લિંગવિગેરેની ઉપાસનામાં, ધૂપ, દીપ તથા નૈવેદ્યાદિક—ઉપચારો કરાય છે તેની વ્યર્થતા થાય; માટે કોઇ સમજીને જ્ઞાનપૂર્વક અને કોઇ વગરસમજે (પરંપરાથી જોયેલી રીતે) પણ સર્વ ઉપાસકો પોતપોતાના ઇષ્ટદેવને પરબ્રહ્મ માની, તેનાં અવયવોની પણ બ્રહ્મરૂપથીજ ઉપાસના કરે છે; માટે બ્રહ્મ અને (અવયવો વિગેરે) બ્રહ્મના ધર્મો જાુદાં નથી; માટે अरूपवत् એસૂત્રમાં પણ ધર્મનો નિષેધ કરેલ નથી પણ બ્રહ્મના ધર્મો પણ બ્રહ્મરૂપજ છે એમ સિદ્ધ કર્યું છે. જો ધર્મનો નિષેધ કરવાનો વ્યાસજીનો અભિપ્રાય હોત તો अरूपम् (રૂપવગરનું બ્રહ્મ છે.) એમજ સૂત્રમાં

કહેત, એટલે સ્પષ્ટ ધર્મનો નિષેધ સમજાત. પણ અહિં તો अरूपवत् (રૂપવાળાંથી વિલક્ષણ, અથવા સર્વવ્યવહારમાં આવનારથી વિલક્ષણ બ્રહ્મ છે.) એમ કહેલ છે તેથી ઉપર અમે સિદ્ધ કરેલ છે તેપ્રમાણેજ વ્યાસજીનો અભિપ્રાય જણાય છે. (૫૦–૫૧.)

હવે શ્રીરામાનુજાચાર્યનું મત છે તે એકદેશિ છે એમ સૂચવવામાટે, પોતાના મતમાં પણ જડ, જીવ અને અંતર્યામી એમ ત્રણનું નિરૂપણ ઉપર કરેલ છે તેપ્રમાણે પોતાના મતનો પણ તેમના મતમાં પ્રવેશ થાય છે એવી આશંકાકરિને પોતાના મતમાં તેમના મતથી જૂદાઇ સિદ્ધકરવા પ્રથમ તેમના મતપ્રમાણે પૂર્વપક્ષ કરે છે.

मूलम् । अथ श्रीमन्निजाचार्यैर्निबन्धइदमीरितम् ।
"यः सर्वत्रैव सन्तिष्ठन्नन्तरः संस्पृशेन्न तत् ॥
शरीरं तं न वेदेत्थं योऽनुविश्य प्रकाशते ।"
इति तेन शरीरं तु हरेस्तु चिदचित् स्मृतम् ॥ ९२ ॥
जडजीवान्तःस्थितानां भेदेन सुनिरूपणैः ।
तत्त्वत्रयं समायाति विशिष्टाद्वैतवादिनाम् ॥ ९३ ॥
रामानुजानामिति चेन्न दोषोऽस्मन्मते शृणु ।

શબ્દાર્થ—હવે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીયે નિબંધ (શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણ)માં એવી રીતે આજ્ઞા કરેલ છે કે "જે સર્વસ્થલમાં ભીતર રહેલ છે અને તેનો સ્પર્શ કરતા નથી, જે ભીતરપ્રવેશ કરિને એવી રીતે પ્રકાશે છે તેને શરીર જાણતું નથી." એમ આજ્ઞા કરી છે તેથી ચિત્ અને અચિત્ હરિનું શરીર સાંભળેલું છે; કેમકે જડ, જીવ અને અંતર્યામી એમ ત્રણેનું ભેદથી નિરૂપણ છે, માટે વિશિષ્ટાદ્વૈતવાદિઓ જે રામાનુજો છે તેમનાં ત્રણે તત્ત્વોનું નિરૂપણ તમારા તમમાં પણ આવે છે એમ શંકા આવતી હોય તો તેમ નથી. આપણા મતમાં દોષ નથી, સાંભલો.

ટીકા—શ્રીનિજાચાર્ય—શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીયે નિબંધના શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં એવી રીતે આજ્ઞા કરી છે કે, "જે પૃથ્વિવિગેરે—સર્વમાં ભીતર રહેલ છે અને પૃથ્વિવિગેરેનો સ્પર્શ કરતા નથી; એટલે લોકની પેઠે તેમાં રહેલ—સુખ દુઃખાદિકને ભોગવનાર થતા નથી. પૃથ્વિવિગેરેમાં પ્રવેશ કરિને જે પ્રકાશે છે તેને પૃથ્વિવિગેરે જાણતા નથી." તેવિષે શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथ्वीमन्तरो यं पृथ्वी न वेद
यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति ।

અર્થ—જે પૃથિવીમાં રહેલ છે, જે પૃથિવીની ભીતર છે, જેને પૃથિવી જાણતી નથી, પૃથીવી જેનું શરીર છે અને જે ભીતર રહિને પૃથિવીને નિયમમાં રાખે છે. એમ અંતર્યામિબ્રાહ્મણમાં સર્વની હકીકત લખીને છેવટ લખ્યું છે કેઃ—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरो यमात्मा न वेद
यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति । (बृहदारण्य)

અર્થ—જે આત્મામાં રહેલ છે, જે આત્માની ભીતર છે, જેને આત્મા જાણતો નથી, આત્મા જેનું શરીર છે અને જે ભીતર રહિને આત્માને નિયમમાં રાખે છે. એમ કહ્યું છે. એવી રીતેં જડ, જીવ અને અંતર્યામિનું ભિન્નપણાંથી નિરૂપણ કર્યું છે; તેથી चित् (આત્મા) અને अचित् (પૃથિવી વિગેરે) હરિનું શરીર છે એમ સિદ્ધ થાય છે; માટે વિશિષ્ટાદ્વૈતવાદિ એવા જે રામાનુજમતવાળા તેઓનું તત્ત્વત્રય આપણા મતમાં આવે છે; એટલેં રામાનુજમતવાળા *વિશિષ્ટાદ્વૈત સ્વીકારીને તત્ત્વત્રય સ્વીકારે છે તેમાં તમે આગળ દૂષણ આપેલ છે તે દોષ આપણા સિદ્ધાંતમાં પણ આવે છે. એમ વાદી શંકા કરે તો તેને કહે છે કે એવી શંકા કરવી નહિં; કેમકે આપણા મતમાં દોષ નથી. સાંભળ. (૫૨—૫૩॥)

मूलम् ! जडजीवान्तरात्मान इति कार्यभिदा श्रिता ॥ ५४ ॥
बहु स्यां तु प्रजायेयेत्यादिश्रुतिषु वर्णनात् ।
न कारणे भिदा ज्ञेया तत्रैकोऽहं निरूपणात् ॥ ५५ ॥
आत्मैवेदमग्रआसीदित्यादिषु च दर्शनात् ।
तत्रैकाकी न रमते द्वितीयेच्छा निरूपिता ॥ ५६ ॥
श्रुतिविद्भिरतो ज्ञेयं ब्रह्मैकं नान्यदेव हि ॥ ५७ ॥
अन्यस्य च स्थितौ तत्र द्वितीयस्य च सम्भवात् ।
रमणार्थं द्वितीयेच्छा श्रुत्युक्ता भग्नतामियात् ॥ ५८ ॥
एकोऽहमित्यपि मुधा तस्माच्छ्रुतिविरोधतः ।
तत्त्वत्रयं कारणे हि त्याज्यमेव विचक्षणैः ॥ ५९ ॥
यत्र येनेतिपद्ये तु निबन्धे सुनिरूपितम् ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालश्च हरिरेव हि ॥ ६० ॥
एकमेवाद्वितीयं तु ब्रह्म सर्वत्र रूप्यते ।
यः सर्वत्रेतिपद्ये गोस्वामिपुरुषोत्तमैः ॥ ६१ ॥
सृष्टिकाले भगवतः शरीरं चिदचित् स्मृतम् ।
अन्तर्यामिण एतेन विशिष्टाद्वैतमेव यत् ॥ ६२ ॥
तदेकदेशि विज्ञेयमित्युक्तं तैर्विचक्षणैः ।

---

* વિશિષ્ટાદ્વૈતનો સમાસ એવી રીતેં કરે છે કે विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे विशिष्टयोः अद्वैतं विशिष्टाद्वैतम् એટલેં સૂક્ષ્મચિદચિદ્વિશિષ્ટ એવું બ્રહ્મ કારણ છે અને સ્થૂલચિદચિદ્વિશિષ્ટ કાર્ય છે તેએનું અદ્વૈત છે; અર્થાત્ કારણમાં બ્રહ્મની સાથે ચૈતન્ય અને અચૈતન્ય રહેલ છે તેમાંથી ચૈતન્યમાંથી જીવ અને અચૈતન્યમાંથી જડ ઉત્પન્ન થાય છે. પાછા લય પણ તેમાંજ થાય છે. એમ તે માને છે તેથી જડ જીવ અને તેયુક્ત બ્રહ્મ સદા રહે છે. એમ તેના મતમાં છે,

શબ્દાર્થ—જડ, જીવ અને અંતર્યામી એમ કાર્યમાં ભેદનો આશ્રય કરેલો છે; કેમકે "હું ઘણા રૂપે થાઉં" એમ શ્રુતિયોમાં વર્ણન કરેલું છે. કારણમાં ભેદ છે એમ નહિં જાણવું; કેમકે "હું એક છું તે ઘણારૂપે થાઉં" એમ અને "આ સર્વ પ્રથમ આત્માજ હતું" એમ શ્રુતિયોમાં કહેલ છે; માટે કારણમાં ભેદ નથી. ત્યાં તો એમ લખેલ છે કે "એકલા રમે નહિં તેથી બીજાની ઇચ્છા કરી." એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે તેથી શ્રુતિયોને જાણનારાઓએ બ્રહ્મ એકજ છે બીજું કાંઇ નથી એમ જાણવું. જો કારણમાં ત્રણ તત્ત્વ માનિયે તો બ્રહ્મશિવાય બીજું પણ હતું એમ થયું. ત્યારે "તે એકલા રમતા ન હતા તેસારૂ બીજાની ઇચ્છા કરી" એમ શ્રુતિમાં રમણમાટે બીજાની ઈચ્છા કર્યાનું લખ્યું છે તેને બાધ આવે. તેમ સૃષ્ટિના પૂર્વકાલમાં "હું એકલો છું" એમ આત્માને વિચાર આવ્યાનું શ્રુતિમાં લખેલ છે તેનો વિરોધ આવે; માટે ડાહ્યા માણસોયે કારણમાં તત્ત્વત્રયનો ત્યાગજ કરવો જોઇએ. તેમ શ્રીભાગવત—દશમસ્કંધના ઉત્તરાર્ધ્ધમાં શ્રીવસુદેવજીની સ્તુતિમાં यत्र येन यतो यस्य એશ્લોકમાં સર્વવિભક્તિઓના અર્થરૂપ—ભગવાન્ છે એમ સિધ્ધ કર્યું છે. તે શ્લોક નિબન્ધના શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં છે ત્યાં શ્રીઆચાર્યજી—મહાપ્રભુજીયે તેનું વ્યાખ્યાન કર્યું છે તેમાં પ્રકૃતિ, પુરુષ અને કાલ હરિજ છે. એમ સારી રીતે નિરૂપણ કર્યું છે. તેમ શ્રુતિમાં સજાતીય, વિજાતીય અને સ્વગત—ભેદવગરનું એકજ બ્રહ્મ છે એમ સર્વસ્થલે નિરૂપણકરાય છે. અને यःसर्वत्रैव सान्तिष्ठन् એ નિબંધની કારિકા છે તેના વ્યાખ્યાનમાં આવરણભંગમાં શ્રીપુરુષોત્તમજી—મહારાજે નિરૂપણકર્યું છે કે સૃષ્ટિકાલમાં અંતર્યામિભગવાનનું ચિત્ અને અચિત્ શરીર છે; એટલે ઉપર જે શ્રુતિ પૃથ્વીવિગેરેમાં રહી તેને નિયમમાં રાખવાની છે તે બૃહદારણ્યક—ઉપનિષદના અંતર્યામિબ્રાહ્મણની હોવાથી સૃષ્ટિકાલનું તે નિરૂપણ કરે છે, કાંઇ સર્વદા તેવી રીતે રહે છે એમ તેનો અભિપ્રાય નથી; કેમકે પ્રલય થયા પછી તો એક બ્રહ્મજ રહે છે એમ અનેકશ્રુતિયોમાં નિરૂપણ છે. અને જ્યારે સૃષ્ટિ થાય છે ત્યારે તેની અંદર અંતર્યામિપણાથી ભગવાન્ રહે છે તે હકીકત અંતર્યામિબ્રાહ્મણમાં બતાવી છે; તેને ગ્રહણકરિને વિશિષ્ટાદ્વૈતવાદિયો તત્ત્વત્રય માને છે તેથી તે એકદેશિ છે એમ જાણવું. એવી રીતે અત્યંતબુદ્ધિમાન્ એવા તે શ્રીપુરુષોત્તમજીમહારાજે કહેલુંછે. ૫૪-૫૫-૫૬-૫૭-૫૮-૫૯-૬૦-૬૧-૬૨)

એવી રીતે શ્રીરામાનુજના મતમાં દૂષણ આવે છે તે બતાવિને તેના મતને ચોરનાર જે શૈવ છે તેના મતનું ખંડન કરે છે.

मूलम् । शैवोऽप्येतेन विध्वस्तो यतस्तच्चौर एव हि ॥ ६३ ॥

શબ્દાર્થ—રામાનુજના મતનું ખંડન કરવાથી શૈવ મત પણ ખંડિત થયો; કેમકે તે રામાનુજના મતને ચોરનાર છે.

ટીકા—શૈવમતવાળા વિશિષ્ટાદ્વૈતને સ્વીકારિને શ્વેતાશ્વતર—ઉપનિષદની શ્રુતિ પ્રમાણમાં આપે છે કેઃ—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतेन व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

અર્થ—માયાને તો પ્રકૃતિ જાણે અને મહેશ્વર (શિવ)ને માયાવિશિષ્ટ જાણે તેના અવયવભૂતવડે સર્વ આ જગત્ વ્યાપ્ત છે. એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે તેમજ आत्मा तस्याष्टमी मूर्त्तिः જીવાત્મા શિવની આઠમી મૂર્ત્તિ છે. એમ સ્મૃતિમાં કહેલ છે. તેને આધાર લઇ બ્રહ્મના અવયવપણાથી વિશિષ્ટ એવા જીવનો તથા પ્રકૃતિનો અંશ છે એમ શૈવ કહે છે. અને સર્વશ્રુતિયો તથા સ્મૃતિયો શિવનું પ્રતિપાદન કરે છે એમ કહે છે. તેનું ખંડન તો ઉપર વિશિષ્ટાદ્વૈતનું ખંડન કરવાથી થઈગયું છે. અને ઉપર मायां तु प्रकृतिं विद्यात् એ શ્રુતિ અને आत्मा तस्याष्टमी मूर्त्तिः એ સ્મૃતિ બતાવેલ છે તે સૃષ્ટિકાલના સમયનું પ્રતિપાદન કરે છે; માટે દોષ નથી. અને સર્વ શ્રુતિ તથા સ્મૃતિ શિવનું પ્રતિપાદન કરે છે એમ તે કહે છે તેનું ખંડન તો શ્રીપુરુષોત્તમજીયે ભાષ્યપ્રકાશમાં, પ્રહસ્તવાદમાં અને પંડિતકરભિંદિપાલમાં સારી રીતેં કરેલું છે તેથી અહિં કર્યું નથી; માટે જેને જોવાની ઇચ્છા થાય તેણે તેગ્રંથોમાં જોવું. આ શૈવ રામાનુજમતના ચોરછે અને કયાંક માધ્વમતના પણ ચોર છે તે ભાષ્યપ્રકાશમાં શ્રીપુરુષોત્તમજીયે કહેલ છે કેઃ—

रामानुजमतस्यैव चौरो माध्वमतस्य च ।
क्वचित्क्वचित्तद्विरुद्धां शैवः श्रुतिमुदाहरन् ॥

અર્થ—કયાંક—કયાંક તેનાથી વિરુદ્ધ--શ્રુતિનું વ્યાખ્યાનકરનાર--શૈવ રામાનુજમતનો અને માધ્વમતનો ચોરનાર છે. તે જૂદાં પ્રસ્થાન માને છે. ૬૩

એવી રીતેં શૈવમતમાં દૂષણ આપિને વિજ્ઞાનેંદ્રભિક્ષુના મતનું ખંડન કરે છે

मूलम् । मायोपाधिककर्त्तृत्वं भैक्षवे दृश्यते तु यत् ।
तन्मायिवादध्वंसेन ध्वस्तप्रायं विशेषतः ॥ ६४ ॥

શબ્દાર્થ--ભિક્ષુના મતમાં માયાની ઉપાધિયુક્ત--બ્રહ્મને કર્ત્તાપણું છે એમ જે દેખાય છે તે તો માયાવાદિના ખંડનવડે વિશેષથી ઘણું કરિને ખંડિત થઇગયું છે.

ટીકા--ભિક્ષુના મતમાં તો બ્રહ્મ સમવાયિકારણ, અસંમવાયિકારણ કે નિમિત્તકારણ પણ નથી પણ અધિષ્ટાનકારણ છે. તેનું લક્ષણ એવું કરે છે કે જ્યાં જૂદું ન રહેલું અને જેનાથી આશ્રય કરિ રહેલું ઉપાદાનકારણ કાર્યને આકારેં પરિણામને પામે છે તે અધિષ્ટાનકારણ કહેવાય છે. તલક્ષણનો સમાવેશ એવી રીતેં કરે છે કે જેબ્રહ્મમાં વિભાગરહિત અને જેબ્રહ્મથી (માત્ર સાક્ષિપણાંથી) આશ્રય કરિને રહેલું એટલેં અંગીકાર કરાયેલું એવું માયારૂપ—ઉપાદાનકારણ જગદ્રૂપ—કાર્યને આકારેં પરિણામને પામે છે તેથી તે બ્રહ્મ અધિષ્ટાનકારણ છે; એટલેં માયારૂપ—ઉપાધિને લઇને બ્રહ્મને જગતનું કર્તૃપણું છે એમ વિજ્ઞાનેંદ્ર ભિક્ષુના મતમાં છે તે અસંગત છે; કેમકે. आत्मैवेदमग्रआसीत् (આ જગત્ આગળ આત્માજ હતું) ઇત્યાદિક શ્રુતિઓમાં, આ પ્રત્યક્ષ દેખાતું એવું જગત્ પૂર્વે આત્માજ

હતું એમ કહેવાથી સૃષ્ટિની પહેલેં આત્માસિવાય બીજું કાંઇ નહિં હોવાથી અ-વિભાગ નામનો સ્વરૂપસંબંધ તેવખત કહિશકાય તેમ નથી તેથી અધિષ્ઠાનનાં લક્ષણમાં બાધ આવે છે. તેમ "હું એક છું તે ઘણા રૂપે થાઉં" એમ શ્રુતિમાં લખ્યું છે તેનો પણ વિરોધ આવે છે તેમ નીચેની શ્રુતિઓમાં કહેલ છે કેઃ–

ब्रह्म ह वाइदमग्रआसीत् । आत्मैवेदं सर्वम् ।
तदात्मानं स्वयमकुरुत । बहु स्यां प्रजायेय ॥

અર્થ–'આ પ્રત્યક્ષ દેખાતું જગત્ આગળ નિશ્ચય બ્રહ્મ હતું' આ સર્વ જ-ગત્ આત્માજ છે' 'તે બ્રહ્મેં પોતાના આત્માને પોતેં જગદ્રૂપ કરેલ છે' 'હું ઘણા રૂપેં પ્રકટ થાઉં' ઇત્યાદિક શ્રુતિઓમાં જગતનું ઉપાદાનકારણ બ્રહ્મ છે એમ સિદ્ધ કરેલું છે; તેથી પ્રકૃતિને ઉપાદાનકારણપણું સિદ્ધ થઇશકતું નથી. તેમ માયાની ઉપાધિયુક્તનું કર્તાપણું અને પ્રકૃતિ તથા તેનાં કાર્યની ઉપાધિયુક્તને પરિણામિઉ-પાદાનપણું પણ અસંગત છે; કારણ કેઃ–

आनन्दरूपममृतं विभाति । सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाय
परमात्मने । आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः ॥

અર્થ–"આનંદરૂપ અમૃત પ્રકાશે છે" "સચ્ચિદાનંદરૂપ–શ્રીકૃષ્ણપરમા-ત્માને નમન કરૂં છું." "કર, પાદ, મુખ અને ઉદરાદિક સર્વ આનંદમાત્ર છે." ઇ-ત્યાદિક શ્રુતિ તથા સ્મૃતિવિગેરેમાં બ્રહ્મનું આનંદાકારપણું સિદ્ધથાય છે. ત્યારેં મૂલરૂપની ઉપાધિ કલ્પવામાં કાંઇ પ્રમાણ નથી. જગતનું ઉપાદાનકારણ બ્રહ્મ છે એમ માનવાથી બ્રહ્મને વિકારિપણું થાય એવી શંકાનો પરિહાર તો તેરમા શ્લોકમાં કરેલ છે. તેમ ઉપાધિનો પક્ષ માયાવાદિને અનુસારી હોવાથી માયાવાદના ખંડનવડે તેનું પણ ઘણુંકરિને ખંડન થઇગયું છે. ઘણુંકરિને ખંડન થઇગયાનું કહેવાથી સર્વઅંશથી ખંડન થયું નથી તેથી તેના મતનો અનુવાદ કરિને ખંડન કરે છે કે જીવો, નિત્ય, ભિન્ન અને વ્યાપક છે એમ સ્વીકારિને અવિભાગ જેનું લક્ષણ છે એવા ભેદને સ્વીકારિને સજાતિયપણું હોય છતાં અવિભાગનું પ્રતિયોગિપણું તે અંશપણું અને અનુયોગિપણું તે અંશિપણું સમજવું, અને અવિભાગ નીચે લખ્યા પ્રમાણેઁ જણાવેલ છે કેઃ–

सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामहे ।
प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ लीयते परमात्मनि ॥

અર્થ–"બ્રહ્મમાં મળીને તે જાણતા નથી કે અમે બ્રહ્મમાં મળ્યા છીએ." "પ્રકૃતિ અને પુરુષ બન્ને પરમાત્મામાં લીન થાય છે." ઇત્યાદિકશ્રુતિમાં તથા સ્મૃતિમાં જણાવ્યાપ્રમાણે અવિભાગ રહે છે; તેથી જેમ શરીરનો કેશાદિકઅંશ, સમૂહનો એક ભાગ અંશ અને પિતાનો પુત્ર અંશ તેમ ત્રણ દૃષ્ટાંત આપિને પિતાપુત્રની માફક નિત્ય, સર્વાવભાસક અને ચૈતન્યમાત્ર બ્રહ્મમાં, સર્વે જીવો જૂદા જણાતા હોય તે પ્રળયમાં મટિને બ્રહ્મની સાથે એકતાને પ્રાપ્ત થાય છે અને પાછા સૃષ્ટિ-

કાલમાં પિતાથી પુત્ર થાય છે તેમ બ્રહ્મમાંથી જીવો પોતાનાં ચૈતન્યને લઇને પ્રકટ થાય છે; માટે જીવો બ્રહ્મના અંશરૂપ કહેવાય છે. "આત્માજ પુત્ર થાય છે." એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે તેથી પુત્રમાં પિતાનો જેમ અવિભાગલક્ષણવાળો અભેદ છે તેમ જીવને પણ બ્રહ્મની સાથે અવિભાગલક્ષણ અભેદ છે. એવી રીતેં જીવ બ્રહ્મના અંશરૂપ છે એમ ભિક્ષુના મતમાં છે. તે પણ યોગ્ય નથી; કેમકે બ્રહ્મ તથા જીવને નિત્ય ભેદ હોય તો છાંદોગ્યમાં એક જાણવાથી સર્વ જાણવાની પ્રતિજ્ઞા કરી છે તેનો ભંગ થાય છે, અને જીવોને સુખ દુઃખ થવામાં બ્રહ્મમાં વૈષમ્યાદિક દોષો આવે છે. જીવને વ્યાપક માનવામાં एषोऽणुरात्मा चेतसा । वेदितव्यः (આ અણુ આત્મા ચિત્તવડે જાણવો.) ઇત્યાદિક શ્રુતિઓનો વિરોધ આવે છે. તેમ બ્રહ્મ વ્યાપક છે અને જીવ પણ વ્યાપક છે એમ કાહએં ત્યારેં "નદીઓ સમુદ્રમાં ભળે છે તેમં જીવ બ્રહ્મમાં ભળે છે ત્યારેં નામ તથા રૂપને તજીને બ્રહ્મની સાથે એકતાને પ્રાપ્ત થઇજાય છે." એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે, અને "તત્ત્વથી મને જાણિને પછી પ્રવેશ કરે છે." એમ શ્રીગીતાજીમાં કહેલ છે તેને બાધ આવે છે.

શંકા—બ્રહ્મ આખાજગતમાં વ્યાપક છે અને જીવ પોતાના દેહમાંજ વ્યાપક છે માટે દેહજેટલામાં વ્યાપ્ત હોય તે સર્વત્ર વ્યાપ્ત એવાં બ્રહ્મમાં પ્રવેશ કરે તેમાં બાધ આવે તેમ નથી.

ઉત્તર—દેહમાત્ર વ્યાપક જીવ છે એમ માનશું તો હસ્તિના શરીરમાં જીવ હોય તેને બીજા જન્મમાં પિપીલિકા (કીડી)નું શરીર આવે ત્યારેં તેમાં હસ્તિના શરીરમાં રહેલાતેવડા મ્હોટા જીવનો પ્રવેશ થઇશકે નહિં. તેમ અવિભાગવડે સ્થિતિ (જૂદાપણાંથી રહેવાનું) પણ સંભવે તેમ નથી તેમ ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति (બ્રહ્મરૂપ છે છતાં બ્રહ્મમાં લીન થાય છે,) અને ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (બ્રહ્મ જાણે છે તે બ્રહ્મજ થાય છે.) ઈત્યાદિક શ્રુતિઓનો વિરોધ આવે છે; કેમકે તેમાં एव કારથી બ્રહ્મશિવાય બીજાની સ્થિતિનો નિષેધ છે. તેમ બે દૃષ્ટાંત પણ પોતાના મતને અનુકૂલ નથી; કેમકે કેશાદિક શરીરનો વિકાર છે તેવી રીતેં બ્રહ્મનો વિકાર જીવ છે એમ કહેવામાં બ્રહ્મને વિકારિપણું થાય છે.

શંકા—પ્રકૃતિનું પરિણામ થઇને જીવ થએલ છે એમ માનશું એટલે બ્રહ્મને વિકારિપણું આવશે નહિં.

ઉત્તર—પ્રકૃતિને શરીરને સ્થાનકેં તમેં માની અને જીવને કેશને સ્થાનકેં માન્યો ત્યારેં જીવ પ્રકૃતિનો અંશ થયો બ્રહ્મનો અંશ થયો નહિં, તેથી પોતાના મતનેજ બાધ આવે છે. તેવીજ રીતેં બીજા બે દૃષ્ટાંતમાં પણ સમજવું. તેમ "એક હું ઘણા રૂપે થાઉં." એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે તેથી બ્રહ્મજ સર્વરૂપ થએલ છે એમ સિદ્ધ થવાથી ઉપાધિની કલ્પના કરવી તે અસંગત છે. (૬૪)

એવી રીતેં ભિક્ષુના મતનું ખંડન કરિને શક્તિમતનો ઉપન્યાસ કરે છે.

मूलम् । शाक्तानां तु मते ब्रह्म विश्वोपादानमेव हि ।
निमित्तकारणं शक्तिर्विकारित्वभयादतः ॥ ६५ ॥

શબ્દાર્થ—શાક્તોના મતમાં તો જગતનું ઉપાદાનકારણ બ્રહ્મજ છે અને નિમિત્તકારણ શક્તિ છે. શક્તિને ઉપાદાનકારણ માનવામાં વિકારિપણું થાય છે તેના ભયથી તે નિમિત્તકારણ છે એમ માને છે.

ટીકા—શક્તિને માનનારા હોય તે શાક્ત કહેવાય છે તેના મતમાં જગતનું ઉપાદાનકારણ બ્રહ્મ છે અને નિમિત્તકારણ શક્તિ છે. શક્તિને ઉપાદાનકારણમાંનિયે તો ઘડાનું ઉપાદાન કારણ મૃત્તિકા છે તેનો વિકાર થઇને ઘડો થયો તેમ શક્તિનો વિકાર થઇને જગત્ થયું એમ માનવું પડે તેમાં શક્તિને વિકારિપણું આવે એભયથી શક્તિને નિમિત્તકારણપણું છે એમ માને છે. (૬૫)

હવે તેમાં દૂષણ આપે છે.

મૂલમ્ । तत्रात्मनो विकारित्वं श्रुतिशास्त्रविरोधि हि ।
"प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ ६६ ॥
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ।"
इति भागवते पद्ये उपादानत्वमीरितम् ॥ ६७ ॥
तद्विरुद्ध्येत मप तु ब्रह्मतो न पृथक् च सा ।
मनस्त्वमिति पद्ये तु शाङ्कराणां च शाम्भवी ॥
परिणामं तु सम्प्राप्तेत्युक्तेर्बाधः प्रसज्यते ॥ ६८ ॥

શબ્દાર્થ—એવી રીતે (જગતનું ઉપાદાનકારણ બ્રહ્મ છે તેનો વિકાર થઇને આ જગત્ થાય છે; એમ) કહેવામાં આત્માને વિકારિપણું આવે છે તે શ્રુતિ અને શાસ્ત્રથી વિરુદ્ધ છે; કેમકે સર્વસ્થળે આત્મા નિર્વિકાર છે એમ લખેલ છે તે આત્માને વિકારી માનિએં તો બાધ આવે. "આજગતનું ઉપાદાનકારણ પ્રકૃતિ છે, આધાર પર—પુરુષ છે, સત્ એવા જગતને પ્રકટકરિ દેખાડનાર કાળ છે તે બ્રહ્મ છે અને તે ત્રણે હું છું." એ શ્રીભાગવતના શ્લોકમાં પ્રકૃતિ ઉપાદાનકારણ છે એમ કહેલ છે તેનો વિરોધ આવે છે, અને મ્હારા મતમાં તો પ્રકૃતિ બ્રહ્મથી જૂદી નથી. તેમ શંકરાચાર્યના મતવાળાઓને તો શંકરાચાર્યજીએ કરેલ—સુંદરલહરીના મનસ્ત્વમ્ એશ્લોકમાં શક્તિ પરિણામને પ્રાપ્ત થયેલ છે એમ કહ્યું છે તેનો બાધ આવે.

ટીકા—શાક્તમતપ્રમાણે, જગતનું ઉપાદાનકારણ હોય તે વિકારિ હોય તેસારુ બ્રહ્મ ઉપાદાનકારણ છે અને શક્તિ નિમિત્તકારણ છે એમ માનવામાં આત્માને વિકારિપણું માનવું પડે છે તે શ્રુતિ અને શાસ્ત્રોથી વિરુદ્ધ છે; કેમકે સર્વસ્થલે આત્મા નિર્વિકાર છે એમ લખેલ છે. માટે આત્મા, વિકારી છે એમ માનીશકાયજ નહિં. તેમ શ્રીભાગવતએકાદશસ્કંધમાં સાંખ્યમતનું નિરૂપણ કરેલ છે ત્યાં શ્રીકૃષ્ણ—ભગવાને ઉદ્ધવજીપ્રત્યેં કહેલ છે કે "આજગતનું ઉપાદાનકારણ પ્રકૃતિ છે, આધાર પર—પુરુષ છે, સત્ એવાં જગતને પ્રકટકરિદેખાડનાર કાલ છે તે બ્રહ્મ છે અને તે ત્રણે હું છું" એમ કહ્યું છે ત્યાં પણ પ્રકૃતિનું ઉપાદાનકારણપણું કહેલું છે; એટલેં એ શ્રીભાગવતના શ્લોકમાં પણ જગતનું ઉપાદાનકારણ પ્ર-

કૃતિ છે એમ કહેલ છે. અને શાક્ત નિમિત્તકારણ કહે ત્યારેં શ્રીભાગવતના શ્લોકનો વિરોધ આવે અને અમારા મતમાં તો પ્રકૃતિ બ્રહ્મથી જૂદી નથી. તેમ શંકરાચાર્યના મતવાળાઓને પણ સુંદરલહરીમાં શંકરાચાર્યજીયેં કહેલ છે કેઃ—

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम् ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विभृषे ॥

અર્થ—તમે મન છો, તમે આકાશ છો, તમે અગ્નિ છો, તમે જલ છો, તમે ભૂમિ છો,તમેજ પોતાના આત્માને જગદ્રૂપવડે પરિણામને પમાડવામાટે તમે પરિણામને પામો છો ત્યારેં બીજું કાંઇ (તમારા વગર) નથી. તે તમે શિવજીનાં સ્ત્રીના ભાવવડે ચિદાનંદાકારને ધારણ કરો છો, અથવા તમેજ પોતાના આત્માને જગદ્રૂપવડે પરિણામ પમાડવામાટે ચિદાનંદાકારને શિવજીનાં સ્ત્રીના ભાવવડે ધારણકરો-છો. એમ કહ્યું છે ત્યાં શક્તિજ પરિણામને પ્રાપ્ત થયેલ છે એમ કહેલ છે તેને બાધ આવે; માટે શક્તિને નિમિત્તકારણપણું નથી. (૬૬–૬૭–૬૮)

તેમ દુર્વાસાએં લલિતાસ્તવરત્નમાં કહેલ છે કેઃ—

मूलम् । पवनमयि! पावकमयि! क्षोणीमयि! कूपीटमयि! रविमयि! ।
शशिमयि! दिङ्मयि! समयमयि! प्राणमयि! शिवे! पाहि ॥ ६९ ॥
इति दुर्वाससा प्रोक्तं सर्वात्मत्वं विरुद्ध्यते ।
सर्वोपनिषदो या हि ब्रह्मतत्त्वनिरूपिकाः ॥ ७० ॥
नास्ति शक्तेर्वर्णनं हि कारणत्वं तु दूरतः ।
व्यासैस्तु प्रकृतेः सर्वकारणत्वं तिरस्कृतम् ॥ ७१ ॥

શબ્દાર્થ—હે પવનમયિ! હે અગ્નિમયિ! હે પૃથ્વીમયિ! હે જલમયિ! હેં સૂર્યમયિ! હે ચંદ્રમયિ! હે દિશામયિ! હે કાલમયિ! હે પ્રાણમયિ! હે શિવે! રક્ષા કરો. એવી રીતેં દુર્વાસાએં કહેલું સર્વાત્મપણું (ઉપાદાનકારણ શક્તિ નથી એમ કહેવામાં) વિરુદ્ધ થાય છે. બ્રહ્મતત્ત્વને નિરૂપણકરનારાં સર્વઉપનિષદો છે તેમાં શક્તિનું વર્ણનજ નથી ત્યાં કારણપણું તો દૂરજ રહ્યું. વ્યાસજીએં તો પ્રકૃતિનાં સર્વકારણપણાનો તિરસ્કાર કર્યો છે.

ટીકા—દુર્વાસાએં લલિતાસ્તવરત્નમાં શક્તિનું સર્વાત્મપણું કહેલ છે તે શક્તિ નિમિત્તકારણ હોય તો વિરૂદ્ધ થાય. તેમ બ્રહ્મતત્ત્વને નિરૂપણકરનારાં સર્વ ઉપનિષદો છે તેમાં શક્તિનું વર્ણનજ નથી ત્યાં કારણપણું તો દૂરજ રહ્યું; અર્થાત્ વર્ણન ન હોય ત્યાં કારણપણાની સંભાવના પણ નથી.

શંકા—કોઇ શાક્તોના મતમાં શક્તિજ બ્રહ્મ છે અને તેજ સમવાયિકારણ છે તેમ સાંખ્યના મતમાં પણ પ્રકૃતિનેજ કારણપણું કહ્યું છે અને તમે કેમ ના કહો છો?

ઉત્તર—વ્યાસજીએ તો સાંખ્યમતનું ખંડન કર્યું છે ત્યાં સમવાયિકારણપણાનો અને નિમિત્તકારણપણાંનો બન્નેનો નિષેધજ કરેલ છે. (૬૯—૭૦—૭૧)

શંકા—ત્યારે જગતનું સમવાયિ કારણ અને નિમિત્ત કારણ શું?

ઉત્તર—બ્રહ્મજ જગતનું સમવાયિકારણ તથા નિમિત્તકારણ છે.

શંકા—લોકમાં તો સમવાયિકારણ તથા નિમિત્તકારણનો ભેદ હોય છે. ત્યારે બંને એક બ્રહ્મજ કેમ સંભવે? જેમ ઘડાનું સમવાયિકારણ મૃત્તિકા છે અને નિમિત્તકારણ કુંભાર, ચાકડો, દંડ અને ચીવર (લુગડાંનો લાંબો કટકો જે ચાકડાઉપર ઘડાને લીશો કરિને ચાકડાથી જૂદો પાડે છે તે) વિગેરે જૂદાં હોય છે તેમ જગતનું પણ સમવાયિકારણ તથા નિમિત્તકારણ જૂદું જૂદું હોવું જોઇએ એવી શંકાની નિવૃત્તિ માટે કહે છે કેઃ—

મૂલમ્ । ब्रह्मणः समवायित्वनिमित्तत्वे निरूपिते ।
ऋग्वेदे तु यतो देवीसूक्तमस्ति तु तत्र हि ॥ ७२ ॥
“अहमेव स्वयं वदामि जुष्टंदिवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधां
अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे” ॥ ७३ ॥

શબ્દાર્થ—વ્યાસજીયે, જગતનું સમવાયિકારણ તથા નિમિત્તકારણ બ્રહ્મ છે, એમ નિરૂપણ કર્યું છે. અને ઋગ્વેદમાં દેવીસૂક્ત છે તેમાંતો દેવીયે કહેલ છે કે “હુંજ પોતે કહુ છું કે દેવતાઓ તથા માણસો સેવે એવો જેને કરવાને હું ઈચ્છું છું. તેને ઉગ્ર (શિવ) કરૂં છું, તેને બ્રહ્મા કરૂં છું, તેને ઋષિ કરૂં છું અને તેને સરસ્વતી કરૂં છું. સર્વના મસ્તકપર આ શિવના પિતા (બ્રહ્માજી છે) ને હું પેદા કરૂં છું અને મ્હારી યોનિ (ઉત્પત્તિસ્થાન) જલની ભીતર સમુદ્રમાં છે.

ટીકા—બ્રહ્મસૂત્રના પ્રથમાધ્યાયના ચતુર્થપાદમાં વ્યાસજીયે કહેલ છે કેઃ—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॥ २३ ॥

અર્થ—સમવાયિકારણ તથા નિમિત્તકારણ બ્રહ્મજ છે. એમ કેમ કહેવાય? એવી શંકા થાય ત્યાં કહે છે કે પ્રતિજ્ઞા અને દૃષ્ટાંતનો બાધ આવે નહિં; એટલે ઉદ્દાલકે શ્વેતકેતુને એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજાય, એવી પ્રતિજ્ઞા કરી છે અને તેમાં મૃત્તિકા, લોહમણિ, (સુવર્ણ વિગેરે ધાતુઓ) અને કાર્ષ્ણાયસ (લોહ) દૃષ્ટાંતમાં આપેલ છે તેનો બાધ ન થાય; અર્થાત્ છાંદોગ્ય—ઉપનિષદના છઠ્ઠાપ્રપાઠકના પ્રારંભમાંજ ઉદ્દાલકે પોતાના પુત્ર—શ્વેતકેતુને પૂછેલ છે કેઃ—

यन्नु सोम्य! महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवति ॥

અર્થ—હે સોમ્ય! મ્હારા જેવો બીજો કોય ભણેલ નથી, એમ મ્હોટા અભિમાનવાળો જે તું અનમ્ર થયો છે તે તારા ગુરુને એવું કાંઇ તેં પૂછેલું છે? કે જેનાથી

નહિં સાંભળેલું સાંભળેલું થાય છે, નહિં માનેલું માનેલું થાય છે અને નહિં જાણેલું જાણેલું થાય છે. એમ એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજાય એવી પ્રતિજ્ઞા કરી છે અને તેના દૃષ્ટાંતમાં કહેલ છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् ।

અર્થ—હે સોમ્ય! જેમ એક–માટીના પિંડવડે સર્વ–મૃત્તિકામય જાણેલું થાય છે. તેમ એક જાણવાથી સર્વ જાણેલું થાય. એમ કહિને બીજી વાર દૃષ્ટાંત આપેલ છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यात् ।

અર્થ—હે સોમ્ય! એક–સુવર્ણનો કે ચાંદીવિગેરેનો ઢાલ જાણવાથી (તેમાંથી થએલા તમામ)લોહમય–પદાર્થ જેમ જણાઇજાય છે. એમ કહિને ત્રીજીવાર દૃષ્ટાંત આપેલ છે કેઃ—

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्यात् ।

અર્થ—હે સોમ્ય! એક–નખ કાપનાર (નેરણી) જાણવાથી સર્વ કાર્ષ્ણાયસ (લોઢું) જેમ જાણેલું થાય છે. એમ ત્રણે દૃષ્ટાંતો આપિને એવિ રીતેં એક (બ્રહ્મ) જાણવાથી સર્વ (જગત્) જાણેલું થાય છે. એમ એક જાણવાથી સર્વ જાણેલું થવાની પ્રતિજ્ઞા અને ઉપર કહેલાં ત્રણે–દૃષ્ટાંતોનો અનુપરોધ (અબાધન) થાય; માટે સમવાયિકારણ જાણવાથી કાર્યનું જ્ઞાન થાય છે. (કેટલાએક, શુક્તિમાં રજતની ભ્રાંતિ થાય છે તેમ બ્રહ્મમાં જગતની ભ્રાંતિ થાય છે એમ માનિને બ્રહ્મને જગતનું સમવાયિકારણ માનતા નથી તેના મતમાં પણ ઉપરની (એક જાણવાથી સર્વ જણાઇ જવાની) પ્રતિજ્ઞાનો અને ઉપરનાં ત્રણે–દૃષ્ટાંતોનો બાધ આવે છે.) અહિં પ્રતિજ્ઞા અને દૃષ્ટાંત બન્નેનું ગ્રહણ કરેલ છે તે (ચાકરેં કરેલું કાર્ય રાજાયેં કરેલું કહેવાય છે તેવી રીતેં) ઉપચારપણું મટાડવામાટે છે; એટલેં એક જાણવાથી સર્વે જણાઇજવાની પ્રતિજ્ઞાજ કરત તો (યોગાદિક) અદૃષ્ટદ્વારા પણ તેમ થાય અને કેવળ દૃષ્ટાંતજ આપત તો(રસોડામાં ધૂમ તથા અગ્નિ સાથે જેયા છે તેથી પર્વતાદિકમાં દૂરથી ધૂમ દેખે તો ત્યાં અગ્નિ છે એમ અનુમાનથી જણાય તેવી રીતેં) અનુમાનથી જાણવાની પણ કલ્પના થાત તેસારુ પ્રતિજ્ઞા અને દૃષ્ટાંત બંને શ્રુતિમાં સાથેં લખેલ છે તેજ વ્યાસસૂત્રમાં પણ કહેલ છે તેથી દેખાતી (પ્રત્યક્ષ) રીતિથીજ એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજવાની પ્રતિજ્ઞા કરિને સમવાયિકારણપણું સિદ્ધ કરેલ છે. કાર્ય અને કારણનો ભેદાભેદ છે એવા મતનાં નિરાકરણમાટે મૃત્તિકાનો પિંડ, લોહમણિ અને નખનિકૃન્તન એમ ત્રણે દૃષ્ટાંતોનું ગ્રહણ કરેલું છે તેથી ગમે ત્યાં એક ઠેકાણે ભગવાન્ જાણ્યા એટલેં સર્વસ્થલે જાણેલા થાય છે. અને સર્વ જાણેલું થાય છે. ઘટત્વ (ઘટપણું) જાણવાથી સર્વ ઘટ જણાય તેવી રીતેં એક જાણવાથી સર્વ જણાઇજવાનો અભિપ્રાય હશે એમ કોઇને શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે ત્રણે–દૃષ્ટાંતોમાં वाचारंभणं विकारो नामधेयम् (આ મૃત્તિકાનો વિકાર છે અને આનું નામ ઘટ

છે, એમ ફક્ત વાણીથીજ કહેવાય છે બાકી તે મૃત્તિકાથી કાંઇ ભિન્ન નથી.) એમ કહેલ છે ત્યારેં વિકાર તથા નામ ફક્ત વાણીથીજ કહેવાયછે. તો ઘડો એવું નામ અને સાંકડું ગોળ મ્હોઢું તથા પેટ પ્હોળું એવો આકાર છે તેને મિથ્યાપણું હશે એવી શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે તેજશ્રુતિયોમાં मृत्तिकेत्येव सत्यम् (એપ્રકારની મૃત્તિકાજ છે તેથી વિકાર તથા નામ સર્વ સત્ય છે) लोहमित्येवसत्यम् (એપ્રકારનું સુવર્ણાદિકજ છે અને તે સત્ય છે) તથા कार्ष्णायसमित्येव सत्यम् (એવા પ્રકારનું લોઢુંજ છે અને તે સત્ય છે.) એમ ત્રણે દૃષ્ટાંતોમાં કહેલ છે; તેથી બ્રહ્મપણાથી જગતની સત્યતા છે. (જગત્ બ્રહ્મથી જૂદું છે એમ) બ્રહ્મથી જૂદાપણાંથી જગતની સત્યતા અભિપ્રેત નથી. ઘટત્વ જાણવાથી સર્વ ઘટ જણાઇજાય તેવી રીતેં એક જાણવાથી સર્વ જણાય એવી શંકાની નિવૃત્તિમાટે ત્યાંજ અગાઉ કહેલ છે કેઃ—

यदग्नेरोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपा यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ।

અર્થ—અગ્નિનું જે રાતું રૂપ છે તે તેજનું રૂપ છે, જે ધોળું છે તે જલનું રૂપ છે અને જે કાળું છે તે અન્નનું રૂપ છે. એ અગ્નિનું અગ્નિપણું જતું રહ્યું* એટલે વિકાર અને નામ વાણીથી માત્ર કહેવાય છે બાકી ત્રણ રૂપો છે એજ સત્ય છે; તેજ જલ અને અન્ન એ ત્રણ રૂપો છે તેનેજ અગ્નિ એવું નામ તથા દેખાતો રૂપાત્મક—વિકાર કહે છે તે ફક્ત વાણીમાત્રથી કહેવાય છે બાકી—ત્રણ રૂપોજ છે. એવી રીતેં ચંદ્રમા તથા વિજળીને માટે પણ કહેલ છે. ત્યાં અગ્નિત્વ (અગ્નિપણું) કાંઇ છેજ નહિ એમ સિદ્ધ કરેલ છે. માટે બ્રહ્મરૂપવડે સત્ય એવાં જગતનું બ્રહ્મજ સમવાયિકારણ છે. દેહમાં આત્મબુદ્ધિ થાય છે તે તો આ વિકાર છે એવી બુદ્ધિ થાય ત્યારે દોષરૂપ છે પણ સર્વ બ્રહ્મરૂપ જણાય તેની સાથે દેહ પણ બ્રહ્મરૂપ જણાય તે દોષરૂપ નથી; માટે બ્રહ્મજ સમવાયિકારણ છે; અર્થાત્ જેમ ઘટની પ્રકૃતિ મૃત્તિકા અને પટની પ્રકૃતિ તંતુ કહેવાય છે ત્યાં પ્રકૃતિશબ્દ સમવાયિકારણનેજ કહેનારો છે તેમ અહિં પ્રકૃતિશબ્દ સમવાયિકારણનેજ કહેનારો છે. તેમ સૂત્રમાં च અવ્યય છે તે નિમિત્તકારણ પણ બ્રહ્મ છે એમ સૂચવે છે. ત્યાં શંકા થાય કે જડનું સમવાયિકારણ ભલેં બ્રહ્મ હો પણ ચેતનોમાં તો યોનિ તથા બીજને સમવાયિપણું દેખાય છે તેથી ભગવાનને પુરુષપણું હોવાથી ભગવાનની યોનિરૂપ—પ્રકૃતિ સમવાયિકારણ હોય તો ઠીક કેમકે વીર્ય અને રુધિરથી સમવેત્ત શરીર હોય છે એવી આશંકા કરીને તેનો પરિહાર આગળ કરેલ છે કે,

योनिश्च हि गीयते ॥ २७ ॥

---

* નૈયાયિક લોકો, ઘટરૂપ વ્યક્તિમાં ઘટત્વરૂપજાતિ રહે છે તે તમામ ઘટમાં એકજ રહે છે તે નિત્ય છે એમ માને છે. તેથી ઘટત્વ જાણવાથી તમામ ઘટમાં રહેવાપણાંનો બોધ થાય એટલેં તમામ ઘટનો બોધ થાય છે તેવી રીતેં બ્રહ્મવાદમાં જાતિ વ્યક્તિનો વિભાગ અવિવેકથી કલ્પેલો છે એમ ષષ્ઠસ્કંધમાં સિદ્ધ કરેલું છે. માટે અગ્નિપણું કાંઈ પદાર્થ નથી એવો અભિપ્રાય છે.

અર્થ—યોનિ પણ બ્રહ્મ છે તે સર્વત્ર ગવાય છે. તેમાં શક્તિવાદનું નિરાકરણ કરવા માટે च અવ્યય છે, યુક્તિને પ્રમાણરૂપ બતાવનાર हि અવ્યય નિશ્ચય વાચક કહેલ છે અને શ્રુતિ તથા સ્મૃતિ પ્રમાણરૂપ બતાવવા માટે गीयते (ગવાય છે) એમ કહેલ છે તેમાં યુક્તિ એ છે કે सदेव सौम्येदमग्र आसीत् (હે સૌમ્ય આગળ આ જગત્ સદ્રૂપજ હતું.) एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म એકજ અદ્વિતીય બ્રહ્મ છે. એવી રીતે પ્રથમજ પ્રતિજ્ઞા કરેલ છે તેમ आकाशादेव खल्विमानि भूतानि जान्ते (આકાશથીજ નિશ્ચય આ ભૂતો (પ્રાણિમાત્ર ઉત્પન્ન થાય છે) અને आनन्दात्त्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते 'આનંદરૂપથીજ નિશ્ચય આ ભૂતો (પ્રાણિ માત્ર) ઉત્પન્ન થાય છે.' ઇત્યાદિક શ્રુતિઓમાં નિશ્ચયને કહેનાર एव અવ્યય કહેવાથી બ્રહ્મ શિવાય બીજું કાંઇ જગતનું કારણ નથી એમ સિદ્ધ થાય છે, અને પ્રથમ એકજ હતું એમ કહેવાથી બીજું કાંઇ કારણરૂપ હતું એમ કહિએં તો દ્વૈતપણું આવે. તેમ શ્રુતિમાં કહેલ છે કે:—

कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।

અર્થ—જગતને કરનાર, હુકમમાં રાખનાર પુરુષ છે તે બ્રહ્મ અને યોનિરૂપ છે. જેને ભૂત (પ્રાણિમાત્રની) યોનિ છે એમ ધીર પુરુષો દેખે છે. તેમ શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતામાં કહેલ છે કે:—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।

અર્થ—મોટું એવું બ્રહ્મ મારી યોનિ છે તેનામાં હું ગર્ભ ધારણ કરૂં છું. તેમ વળી કહેલ છે કે:—

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।

અર્થ—(આગળ કહેલ છે કે સર્વભૂતોમાં જે મૂર્ત્તિઓ છે.) તેમાં બ્રહ્મ મોટી યોનિ છે અને હું બીજ આપનાર પિતા છું. એમ કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે એકજ સ્વરૂપ, અક્ષર બ્રહ્મરૂપથી યોનિરૂપ અને પુરુષોત્તમરૂપથી પુરુષરૂપ કહેવાય છે; માટે યોનિ પણ ભગવાન્, પુરુષ પણ ભગવાન્, સર્વ—વીર્ય અને જીવ ભગવાનજ છે. તે इदं सर्वं यदयमात्मा (આ સર્વ જે આત્મા છે તે છે) ઇત્યાદિક—શ્રુતિઓવડે સિદ્ધ થએલ છે; તેથીજ શ્રીભાગવતપ્રથમસ્કંધના પ્રારંભના શ્લોકમાંજ કહેલ છે કે:—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्च ।

અર્થ—સમવાયિપણાંથી અને નિમિત્તપણાંથી જેનાથી આ જગતનાં જન્માદિક થાય છે. તેમ कर्त्ता कारयिता हरिः 'કરનાર અને કરાવનાર હરિ છે.' એવું વાક્ય છે તેમ વ્યાસ સૂત્રમાં પણ કહેલ છે કે:—

तत्तु समन्वयात् ।

અર્થ—બ્રહ્મ સમવાયિકારણ નથી એવા પૂર્વપક્ષને નિવૃત્ત કરનાર तु અવ્યય છે, તે બ્રહ્મ (જગતનું) સમવાયિકારણ છે; કેમકે મૃત્તિકાનો ઘટમાં જેમ સારી રીતે

અન્વય છે તેમ બ્રહ્મનો જગતમાં સારીરીતે અન્વય છે. એમ કહેલ છે તેથી જગતનું સમવાયિકારણ તથા નિમિત્તકારણ બ્રહ્મજ છે. ત્યાં શંકા થાય કે ઋગ્વેદમાં દેવી સૂક્તમાં બ્રહ્મા તથા રુદ્રાદિકને ઉત્પન્ન કરનાર દેવી છે એમ કહેલ છે ત્યારે તમે ભગવાનને સર્વના કારણરૂપ કેમ માનો છો? એવી શંકાની નિવૃત્તિ માટે દેવીસૂક્તનો મંત્ર લખ્યો છે તેનો અર્થ એવી રીતે છે કે દેવી પોતે કહે છે કે, "હું પોતેંજ કહું છું કે દેવતાઓ તથા માણસો સેવે એવો જેને કરવાનો હું ઇચ્છું છું તેને ઉગ્ર (શિવ) કરૂં છું, તેને બ્રહ્મા કરૂં છું, તેને ઋષિ કરૂં છું, અને તેને સરસ્વતી કરૂં છું. સર્વના મુખ્ય (મસ્તક ઉપર) આ શિવજીના પિતા (બ્રહ્મા)ને હું પેદા કરૂં છું અને મારી યોનિ (ઉત્પત્તિસ્થાન) જલની ભીતર સમુદ્રમાં છે." એમ દેવીએ પોતે કહેલ છે તેમાં પણ પોતાની ઉત્પત્તિનું સ્થાન વિષ્ણુ છે એમ કહેલ છે. (૭૩)

દેવીની ઉત્પત્તિ વિષ્ણુ છે તે સિદ્ધ કરે છે.

मूलम् । एवं श्रुतौ तु देव्या हि स्वकारणतयोदितः ।
पयोधिशायी यो विष्णुः स उक्तोऽतो न सा परा ॥ ७४ ॥
उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठ इति कोशाच्छिवः स्मृतः ।
अस्येति रुद्रो निर्दिष्टोऽहं रुद्रायेति वाक्यतः ॥ ७५ ॥
प्रक्रान्तत्वात्पिता ब्रह्मा तद्योनिः शक्तिरत्र हि ।
तस्यास्तु जनको विष्णुः सिन्धुशायी निरूपितः ॥ ७६ ॥

શબ્દાર્થ—એવી રીતે શ્રુતિમાં તો સમુદ્રમાં શયન કરનાર જે વિષ્ણુ છે તે દેવીએ પોતાનાં કારણપણાંથી કહેલ છે; માટે સર્વથી પર વિષ્ણુ છે દેવી નથી. ઉગ્ર, કપર્દી અને શ્રીકંઠ એ સર્વ શિવજીનાં નામ છે એમ અમરકોષમાં કહેલ છે તેથી ઋગ્વેદના મંત્રમાં દેવીએ ઉગ્ર કરૂં છું એમ કહેલ છે તે શિવજી સમજવા, અને ત્યાંજ શ્રુતિમાં રુદ્રને ધનુષ્ આપવાનું કહેલ છે. તેથી "આના પિતાને હું પેદા કરૂં છું." એમ કહેલ છે ત્યાં રુદ્રના પિતા કહેલ છે. ત્યાં આરંભથી પ્રાપ્ત હોવાથી પિતા બ્રહ્માજી સમજવા, તેનું ઉત્પત્તિસ્થાન અહિં શક્તિ (દેવી) છે અને તેને ઉત્પન્ન કરનાર તો સમુદ્રમાં પહોઢનાર—વિષ્ણુ નિરૂપિત છે.

ટીકા—એવી રીતે શ્રુતિમાં તો દેવીએ પોતાનાં કારણપણાંથી કહેલા, સમુદ્રમાં શયન કરનાર વિષ્ણુ છે તેજ સર્વથી પર કહેલ છે માટે સર્વજગતનું કારણપણું વિષ્ણુનેજ છે દેવીને નથી. અમરકોષમાં ઉગ્ર, કપર્દી અને શ્રીકંઠ એ સર્વ શિવજીનાં નામ કહેલ છે તેથી દેવી સૂક્તમાં દેવીએ કહ્યું છે કે જેને દેવતાઓએ તથા માણસોએ સેવિત કરવાને ઇચ્છું છું તેને ઉગ્ર કરૂં છું." ત્યાં ઉગ્ર શબ્દ શિવજીને કહેનાર છે અને अहं सर्व पितरमस्य 'આના પિતાને હું જાણું છું.' એમ કહ્યું છે, ત્યાં રુદ્રના પિતા સમજવા; કેમકે ત્યાંજ આગળ अहं रुद्राय धनुरातनोमि 'હું રુદ્રને માટે ધનુષને વિસ્તારૂં છું,' અને શ્રુતિમાં કહેલ છે તથા રુદ્રનો પ્રસંગ છે; માટે અહિં રુદ્રના પિતા બ્રહ્માજી, તેનું ઉત્પત્તિ સ્થાન શક્તિ અને શક્તિને ઉત્પન્ન કરનાર સમુ-

દ્રશાયી વિષ્ણુ નિરૂપિત છે; એટલે દેવીસૂક્તના મંત્રમાં મુહૂર્ત લખેલ છે તેનો મુખ્ય એવો અર્થ છે. ત્યાં વ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે સપ્તમીના સુપ્નો લોપ થયો છે. એમંત્રમાં દેવીએ પોતે मम योनिप्स्वन्तः समुद्रे (મ્હારું ઉત્પત્તિસ્થાન જલમાં ભીતર સમુદ્રમાં છે.) એમ કહેવાથી જલમાં શયન કરનાર વિષ્ણુજ દેવીનું કારણ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. (૭૪ ૭૫ ૭૬)

मूलम् । अस्माकं व्यासचरणैर्यदुक्तं न ततोऽन्यथा ।
अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्युक्त्वा तल्लक्षणेन हि ॥ ७७ ॥
जन्माद्यस्येत्यादिसूत्रैः कारणं ब्रह्म कीर्तितम् ।
तंत्रशास्त्रेण चेद्रूपे तदवैदिकसंमतम् ॥ ७८ ॥

શબ્દાર્થ—અમારા મતમાંતો વેદવ્યાસજીએ જે કહેલ છે તેજ ગ્રહણ કરવાનું છે તેનાથી વિરૂદ્ધ ગ્રહણ કરવાનું નથી. વ્યાસજીએ કોનું કારણપણું કહેલ છે? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય તો કહે છે કે अथातोब्रह्मजिज्ञासा (બ્રહ્મસંબંધી વિચારનો આરંભ કરાય છે) એમ કહિને તેનાં લક્ષણવડે जन्माद्यस्ययतः शास्त्रयोनित्त्वात् (જેનાથી આજગતનું જન્માદિક થાય છે; કેમકે શાસ્ત્રમાં કારણપણું કહેલું છે) ઇત્યાદિક—સૂત્રોવડે જગતનું કારણ બ્રહ્મ કહેલ છે; તેમાં તંત્રશાસ્ત્રવડે કદાચિત્ કોઇ દૂષણ આપે તો તે શાસ્ત્ર વૈદિક માનેલું નથી અવૈદિક માનેલું છે.

ટીકા—અમારા મતમાં વ્યાસજીએ જે કહેલું છે તેજ ગ્રહણ કરાય છે તેનાથી વિરૂદ્ધ ગ્રહણ કરાતું નથી. વ્યાસજીએ કોનું કારણપણું કહેલું છે? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય તો કહે છે કે વ્યાસસૂત્રના પ્રારંભમાંજ કહેલ છે કેઃ—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।

અર્થ—બ્રહ્મસંબંધી વિચારનો આરંભ કરાય છે. એમ બ્રહ્મસંબંધી વિચારની પ્રતિજ્ઞા કરી છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે કર્માદિકના કરતાં બ્રહ્મનું જ્ઞાન પુરુષાર્થને સિદ્ધ કરનારૂં છે તેથી તે જ્ઞાનને માટે વિચારનો આરંભ થાય છે એમ પ્રતિજ્ઞા કરીને બ્રહ્મનું લક્ષણ શું? એમ શંકા થાય તે સારૂં બ્રહ્મનું લક્ષણ કહેલ છે કેઃ—

जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्त्वात् ।

અર્થ—આ જગતનાં જન્માદિક જેનાથી થાય છે તે બ્રહ્મ છે; કેમકે વેદાદિક સર્વશાસ્ત્રોમાં, જગતનું કારણ બ્રહ્મ છે એમ કહેલ છે. એવી રીતે કહેલ છે. તેમ શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતામાં કહેલ છે કેઃ—

असंशयं समग्रं मां यथाज्ञास्यसि तच्छृणु ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

અર્થ—સંશય વગર મને સમગ્ર જેવી રીતે જાણીશ (તે ઉપાય તને બતાવું) તે સાંભળ. જે જાણિને ફરીને બીજું જાણવાનું (કાંઇ) બાકી રહેતું નથી. એમ કહિને શ્રીકૃષ્ણ—ભગવાને આજ્ઞા કરી છે કેઃ—

अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।
मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥

અર્થ—હું સર્વજગતની ઉત્પત્તિનું સ્થાન છું તેમ સર્વનો પ્રલય પણ મારામાં-જ થાય છે હે ધનંજય મારાથી જૂદું બીજું કાંઇ નથી સર્વ ભૂતનું સનાતન બીજ પાર્થ મને જાણ. એમ કહેલું છે ત્યારપછી આગળ પણ ત્યાંજ કહેલ છે કેઃ—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुं ॥
आहुस्त्वामृषयस्सर्वे देवर्षिर्नारद स्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥

અર્થ—અર્જુન ભગવાનને કહે છે કે પરબ્રહ્મ અને પરમપવિત્ર પરંધામ આપ છો તેથી સર્વે ઋષિઓ, દેવર્ષિ નારદ, અસિત, દેવલ, અને વ્યાસજી, આપને શાશ્વત પુરુષ, દિવ્ય આદિ દેવ, અજન્મા, અને વિભુ, કહે છે તેમ આપ પણ તેવીજ રીતેં મને કહો છો એમ અર્જુને કહેલ છે. તેમ ભગવાને પણ કહેલ છે કેઃ—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।

અર્થ—હું સર્વની ઉત્પત્તિનું સ્થાન છું મારાથી સર્વ પ્રવર્ત્તે છે. એવી રીતેં અનેકસ્થળોમાં લખેલું હોવાથી જગતનું કારણપણું શ્રીકૃષ્ણનેજ છે દેવીને નથી. ત્યાં શંકા થાય કે અનેકતંત્રોમાં દેવીનુ કારણપણું કહેલુ છે તેનું શી રીતેં કરવું? ત્યાં કહે છે કે તંત્રશાસ્ત્રવડે કદાચિત્ દેવીનું કારણપણું કહેતા હો તો તંત્રશાસ્ત્ર અવૈદિકને સંમત્ત છે વૈદિકને સંમત નથી તે વિષે કહેલુ છે કેઃ—

श्रौतार्चनं तु विप्राणां विशेषेण भवेत्सदा ।
श्रौतागमार्चनं क्षत्रे वैश्ये केवलमागमम् ॥

અર્થ—બ્રાહ્મણોને તો વિશેષે કરિને સદા વૈદિક અર્ચન છે, ક્ષત્રિયોમાં વૈદિક તથા તાંત્રિક અર્ચન છે અને વૈશ્યમાં કેવલ તાંત્રિકઅર્ચન છે; તેમ વશિષ્ટસ્મૃતિમાં લિંગ પુરાણનુ વાક્ય છે કે.

तंत्रेषु दीक्षितो मर्त्यो वैदिकं न स्पृशेत्सदा ।
वैदिकश्चापि तंत्रेषु दीक्षितं न स्पृशेत्सदा ॥

અર્થ—તાંત્રિકમંત્રોમાં દીક્ષિત થયેલો માણસ સદા વૈદિકનો સ્પર્શ ન કરે તેમ વૈદિક હોય તે પણ તંત્રમંત્રોમાં દીક્ષિત માણસનો સ્પર્શ સદા ન કરે તેમ પરાશરીય પુરાણમાં કહેલ છે કે.

क्वचित्तंत्रानुरोधेन धर्मं पौराणिका अपि ।
वदंति तादृशोंश स्तु ग्राह्यस्तंत्रावलंबिना ॥
प्रत्यक्षवेदसिद्धार्थः स ग्राह्यः सर्वचेतनैः ।
अप्रत्यक्षं श्रुतेरर्थं स्मरंति मुनिसत्तमाः ॥

स्मृतयश्च पुराणानि भारतप्रमुखान्यपि ।
क्वचित्कदाचित्तंत्रार्थकटाक्षेण मुनीश्वराः ॥
अधिकारविशेषाणां प्रवदंत्यर्थमास्तिकाः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽन्यो निःशङ्कं तत्परित्यजेत् ॥
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टः प्रायश्चितेष्वनुन्मुखः ।
वेदेतरागमं गत्वा पापी तद्धर्ममाचरेत् ।
वेदबाह्यरताः शाक्ता बहवो नरकं गताः ॥

અર્થ—પ્રત્યક્ષથી વેદસિધ્ધ અર્થ જે હોય તે સર્વજીવોએ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે તેમજ પ્રત્યક્ષ નહિ જણાતા એવા શ્રુતિના અર્થને મુનિઓ સ્મરણ કરે છે તેવિ રીતે સ્મરણ કરિને કરેલ સ્મૃતિઓ પુરાણો અને ભારત વિગેરે છે. કોઇ સમયમાં ક્યાંક તંત્રોના અર્થ ઉપર કટાક્ષવડે મુનિશ્વરો જેઓ આસ્તિક છે તેઓ જૂદા જૂદા અધિકારના અર્થને કહે છે માટે બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અથવા બીજો હોય તેણે શંકા છોડી દઇને તેવિરીતનો તંત્રનો અર્થ છોડવો અને વર્ણ તથા આશ્રમથી ભ્રષ્ટ થયેલો હોય તેમજ તેની નિવૃત્તિ માટે પ્રાયશ્ચિત કરવામાં તત્પર ન હોય તે વેદથી બીજી રીતના તંત્રપ્રત્યે જઇને પાપી એવો તંત્રના ધર્મનું આચરણ કરે વેદબાહ્ય એવા તંત્રોમાં પ્રિતવાલા ઘણા શાક્તલોકો નરકપ્રત્યે ગયેલા છે તેમ કૂર્મપુરાણમાં પણ બ્રાહ્મણોને ગોતમઋષિએ શાપ આપ્યો ત્યારે બ્રાહ્મણોને વેદ બ્રાહ્યપણું થતાં તેમણે શિવજી તથા ભગવાનની સ્તુતિ કરિ છે. ત્યાંથી પ્રારંભ કરીને કહેલ છે કેઃ—

चकार मोहशास्त्राणि केशवः सशिवस्तथा ।
कापालं लाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम् ॥
पांचरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः ।
क्वचित् क्वचित्पुराणादौ वेदमूलेपि सर्वथा ॥
सन्ति निर्मूलतंत्रांशास्ते तु ग्राह्या न वैदिकैः ॥

અર્થ—કેશવ, તથા શિવજીએ, મોહશાસ્ત્ર કર્યાં કાપલ, લાકુલ, વામ, પૂર્વ તથા પશ્ચિમભૈરવ, પાંચરાત્ર, પાશુપત, અને તેવાં બીજાં હજારો શાસ્ત્ર કર્યાં છે વેદમૂલ પુરાણાદિકમાં પણ ક્યાંક ક્યાંક નિર્મૂળ તંત્રોના અંશો છે તે વૈદિકાએ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી. ઇત્યાદિક વાક્યો સપ્તશતીની ટીકામાં નાગોજી ભટ્ટે અને ભટ્ટોજી દીક્ષિત વિગેરેએ પણ લખેલાં છે; તેથીજ આશ્વલાયનના ગૃહ્યપરિશિષ્ટમાં સંધ્યાના પ્રકરણમાં ગાયત્રીના ઋષિ, દેવતા, અને છંદનું સ્મરણ કરીને અને પછી કેવલ દેવતાનું પણ સ્મરણ કરીને કહેલ છે કે ચાર અક્ષરે કરીને વિભાગ કરેલી ગાયત્રીનો છ મંત્ર વેદનાવડે અને મંત્રતંત્રનાવડે વિભાગ પ્રમાણે આત્મામાં વિન્યાસ કરીને ભાવના કરે એમ કહિને હૃદયાદિક ષડંગન્યાસ કહિને આ વિધિ અવૈદિક છે તેથી કેટલાક તેની ઇચ્છા કરતા નથી એમ નિરૂપણ કરેલું છે તે પણ ઘટે છે તે કહે છે કે તંત્રશાસ્ત્ર અવૈદિકોને સંમત છે; એટલે વેદ વિરૂદ્ધ જે છે તેનો તંત્રપણાથી વ્યવહાર છે, તે વિષે શ્રીઆચાર્યજીમહાપ્રભુજીએ સર્વનિર્ણયનિબન્ધમાં આજ્ઞા કરી છે કેઃ—

छलयोगस्तथा सांख्यं शाक्तोमार्गोऽभिधीयते ।

અર્થ—છલયોગ તેમજ સાંખ્ય શાક્તમાર્ગ કહેવાય છે; એટલે સાંખ્ય તથા યોગ બન્ને મળેલા ધર્મમાર્ગના વિરોધવડે અમેધ્ય ભક્ષણ અને સુરાપાનાદિકથી-પોષિત થયેલા શાક્તમાર્ગ કહેવાય છે તેમાં વૈદિક, વૈષ્ણવ, શૈવ, શાક્ત, વામ, સિદ્ધાન્ત અને કૌલ એમ સાત ભેદ કહિને કહ્યું છે કેઃ—

लोके व्यामोहकं शास्त्रं सप्तानां बोधकः शिवः ।
कलौ जनिष्यमाणानामसुराणां क्षयाय हि ॥

અર્થ—લોકમાં મોહકરનારું શાસ્ત્ર છે તેના ઉપર કહેલા સાત ભેદો છે તે કલિયુગમાં ઉત્પન્નથનારા અસુરોના ક્ષયને માટે તેનો બોધ કરનાર શિવજી છે. એમ કહિને સર્વેનો નરકમાં વાસ છે એમ કહેલ છે. શાસ્ત્રમાં જે મહાપાતક લખેલાં છે તેવાં પાતકને કરનાર હોય તેનો સંસર્ગ કરે તોપણ તેને મહાપાતકી પણું થાય એમ શાસ્ત્રમાં કહેલું છે તેથી તે સાતેનો ત્યાગ કરવો એમ તેની ટીકામાં કહેલું છે; તેમાં કેવલ કર્મમાંજ જે આશક્ત હોય છે તે વૈદિક કહેવાય છે એટલે લોકમાં પોતાનું સન્માન થાય અને પોતાને સર્વ સારા કહે તે સારૂં પોતે કર્મ કરતા હોય તે વૈદિક કહેવાય છે આસુરસિદ્ધાંતવાળા સિદ્ધાન્તિ કહેવાય છે એટલે સર્વ મિથ્યા છે. કર્મ સર્વથા બાધક છે માટે છોડવું જોઇએ એવિ રીતે ભક્તિ પણ છોડવી જોઇએ એવો બોધ કરનારા હોય છે અને કેવળ વાણીની મધુરતાવડે જે મોહ કરે છે તે સિદ્ધાન્ત કહેવાય છે એવોને લોકસંગ્રહ નિયામક છે એટલે લોકોને બતાવવા માટે કર્માદિક કરવું એમ તેઓ માને છે, કૌલને તો લોકોની પણ અપેક્ષા નથી એટલો કૌલમાં ને સિદ્ધાન્તમાં ભેદ છે કૌલ કહે છેઃ—

पत्नीत्वं दीक्षया रंडा चंडा अपि भजंति हि ।
दिगंबरा श्चर्मचिह्ना सुरामांसपरायणाः ॥
पापरूपा दूराचारास्ते कौलाः परि कीर्तिताः ॥

અર્થ—પ્રચંડવિધવાઓ પણ કૌલમાર્ગની દીક્ષાવડે બીજાઓની સ્ત્રીઓ થઇ શકે છે તે માર્ગવાળા દિગંબર, ચર્મના ચિન્હવાળા, મદીરામાંસમાં પરાયણ, પાપરૂપ અને દૂરાચારી હોય છે તે કૌલ કહેવાય છે તેઓ સર્વના દેખવામાં આવે તેવી રીતેં અનુગ્રહ અને નિગ્રહ કરિ શકે છે તેવું તેઓનામાં સામર્થ્ય તે માર્ગમાં સેવાતી એવી દૂષ્ટતામસશક્તિવડે થાય છે; સિદ્ધાન્ત માર્ગવાલાને લોકમાં સન્માન સારૂં મલે છે તેથી લોકને મોહ થાય છે ગોપાલસુંદરી અને નૃસિંહસુંદરી કહેવાય છે તેમાં ગોપાલે યુક્ત જે શક્તિ હોય તે ગોપાલસુંદરી કહેવાય છે અને નૃસિંહે યુક્ત જે શક્તિ હોય તે નૃસિંહસુંદરી કહેવાય છે તેની ઉપાસના કરનારા વૈષ્ણવ કહેવાય છે; એવીજ રીતેં શિવયુક્તશક્તિની ઉપાસના કરનારા શૈવ કહેવાય છે; કેવળ શક્તિની ઉપાસના કરનારા શાક્ત કહેવાય છે અને વામાચારવડે મદીરાના સંબંધ

વિગેરેથી શક્તિની ઉપાસના કરનારા વામ કહેવાય છે તે બાબત તંત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

पञ्च प्रेतासनारूढां परब्रह्मस्वरूपिणीं ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥
एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले व्यवस्थिताः ॥

અર્થ—પાંચ પ્રેતના આસન ઉપર બેઠેલ અને પરબ્રહ્મ જેનું સ્વરૂપ છે એવાં શક્તિ છે તેને હું નમું છું એમ આગળના શ્લોકમાં સંબંધ છે. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, રૂદ્ર, ઇશ્વર અને સદાશિવ એ પાંચ મહાપ્રેતો શક્તિના પાદમૂલમાં રહેલા છે એમ તેમના તંત્રમાં લખેલું છે તેનો નિર્ણય શ્રીઆચાર્યજીમહાપ્રભુજીએ સર્વનિર્ણય-નિબંધમાં કરેલો છે ત્રિપુરસુંદરી વિગેરે સ્ત્રીઓ સેવવા યોગ્ય છે ને યોગ સાધવા યોગ્ય છે એમ તેમાં બુદ્ધિ થાય છે ત્યાં પાંચ પ્રેતના મધ્યોમાં શક્તિના પાદમૂલમાં શિવ અને વિષ્ણુ રહેલા છે એમ કહેલું છે તેથી તેમનો વિશેપ આધકાર નહિ હોવાથી પાદમૂલમાં રહેલા છે એમ સમજવાનું નથી કાંઇ નામ માત્રથી દૂષણ આવતું નથી કેમકે બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, રૂદ્ર અને સદાશિવ એવાં નામ ધારણ કરીને ભૂતાદિક તેની ઉપાસના કરે છે તેથીજ પ્રથમ પાંચપ્રેતનું આસન કહેલું છે પછી પાંચ મહાભૂત પાદમૂલમાં રહેલા છે એવું કહેલું છે ત્યાં પ્રેત અને મહાપ્રેત નામથીજ ઓળખાણ આપેલી છે.

એવી રીતે તંત્રશાસ્ત્ર વૈદિકોને ઉપેક્ષા કરવા યોગ્ય છે તેથી ચોસેઠ તંત્રો શિશિબાબતેનાં છે તે સહિત તેનાં નામો અહિ લખિએ છિએ ૧ મહામયાશંબર-તંત્ર છે તેમાં એક પદાર્થમાં બીજો પદાર્થ બતાવી દેવાય એવો પ્રપંચ રચવાનો ઉપાય સિદ્ધ કરનાર ઈદ્રજાલવિદ્યા છે. ૨ યોગીનિની જાલને પ્રતિપાદન કરનાર યોગિનીજાલશંબરતંત્ર છે ૩ ઇંદ્રજાલનોજ જેમાં ભેદ છે એવું તત્વશંબરતંત્ર છે તેમાં પૃથ્વીને ઠેકાણે જલ ને જલને ઠેકાણે પૃથ્વી એવિ રીતે પાંચે તત્ત્વોનુ રૂપ, એક બતાવી આપનાર ઉપાયો છે ૪ સિદ્ધિભૈરવતંત્ર ૫ માયિકભૈરવતંત્ર ૬ કંકાલભૈરવતંત્ર ૭ કાલાગ્નિભૈરવતંત્ર ૮ શક્તિભૈરવતંત્ર ૯ યોગિનિભૈરવ-તંત્ર ૧૦ મહાભૈરવતંત્ર ૧૧ ભૈરવનાથતંત્ર એ ભૈરવાષ્ટક કહેવાય છે તેમાં કાપાલિક મતનું પ્રતિપાદન કરે છે ૧૨ બ્રાહ્મીતંત્ર ૧૩ મોહેશ્વરીતંત્ર ૧૪ કૌમરી-તંત્ર ૧૫ વૈષ્ણવીતંત્ર ૧૬ વારાહીતંત્ર ૧૭ ઇંદ્રાણીતંત્ર ૧૮ ચામુંડાતંત્ર ૧૯ શિવદૂતિતંત્ર એ બ્રાહ્મ્યાષ્ટકતંત્ર છે તેમાં બ્રાહ્મી વિગેરે તે તે દેવતાનું પ્રતિપાદન છે. ૨૦ રૂદ્રયામલ ૨૧ ભૈરવયામલ ૨૨ શિવયામલ ૨૨ વિષ્ણુયામલ ૨૩ સ્કંદયામલ ૨૪ બ્રહ્મીયામલ ૨૫ દેવીયામલ ૨૬ યામલ ૨૭ એ યામલાષ્ટક કહેવાય છે તેની અંદર સિદ્ધાન્ત મતનું પ્રતિપાદન છે ૨૮ ચંદ્રતંત્ર તેમાં કામના ઐશ્વર્યાદિકનું પ્રતિપાદન છે ૨૯ માલિનીતંત્ર તેમાં સમુદ્રમાં હાંકવાના નાવ વિગેરેના ઉપાયનું પ્રતિપાદન છે ૩૦ મહાસંમોહનતંત્ર તેમાં જાગતા માણસને પણ નિદ્રા આવે તેવા ઉપાયનું પ્રતિપાદન છે ૩૧ વામસિદ્ધાન્તવાલાઓએ સેવેલું વામકેશ્વર

તંત્ર છે તેનું ચતુઃશત એવું પણ નામ છે. ૩૨ બટુકાદિક–સિદ્ધકુલના આચારનું પ્રતિપાદનકરનાર મહાદેવ તંત્ર છે. ૩૩ વાતુલ, ૩૪ વાતુલોત્તર, ૩૫ કામિક, એ ત્રણતંત્રમાં ખેતરખેડવાવિગેરેનો વિધિ છે, ૩૬ કાપાલિકના આચારને બતાવનાર હૃદ્ભેદ તંત્ર છે, ૩૭ તંત્રભેદ, ૩૮ ગુહ્ય તંત્ર, એબેમાં સર્વ જાણે તેવી રીતે અથવા છાની રીતે બીજાએ કરેલા મંત્રતંત્રના પ્રયોગોને પાછા ફેરવવાના ઉપાયો છે, ૩૯ કલાવાદ તેમાં વાત્સ્યાયનાદિકના મતપ્રમાણે કામશાસ્ત્રોના પ્રયોગો છે, ૪૦ કલાસાર તેમાં રૂપાદિકની વૃદ્ધિના ઉપાયનું પ્રતિપાદન છે, ૪૧ કુંડિકામત તેમાં ગુટકાની સિદ્ધિ બતાવેલ છે, ૪૨ મતોત્તરતંત્ર તેમાં રસની સિદ્ધિ બતાવેલ છે, ૪૩ વીણાતંત્ર તેમાં વીણાનામની યોગિનીની સાથે ક્રીડાકરવાનો ઉપાય છે, ૪૪ ત્રોતલતંત્ર તેમાં ગુટિકાનું અંજન અને પાદુકાની સિદ્ધિ બતાવેલ છે, ૪૫ ત્રોતલતંત્રોત્તર તંત્ર તેમાં ચોસઠહજાર યોગિનીઓનાં દર્શનનો ઉપાય છે, ૪૬ પંચામૃત તંત્ર તેમાં પૃથ્વીવિગેરે પંચમહાભૂતોનું સાધન કરવાથી મરણનો અભાવ થાય છે તેને કાપાલિક તંત્ર પણ કહે છે; ૪૭–૪૮–૪૯–૫૦–૫૧ રૂપભેદાદિકનાં પાંચ તંત્રો છે તેમાં ઉચ્ચાટનવિગેરેનું પ્રતિપાદન છે, ૫૨–૫૩–૫૪–૫૫–૫૬ સર્વજ્ઞાનવિગેરે પાંચ તંત્ર છે તેમાં કાપાલિકસિદ્ધાંતના એકદેશી એવા દિગંબરના મતનો આચાર બતાવેલ છે, ૫૭–૫૮–૫૯–૬૦–૬૧–૬૨–૬૩–૬૪ પૂર્વતંત્રથી આરંભીને દેવીમતપર્યંત આઠ તંત્ર છે તેમાં દિગંબરના એકદેશી એવા ક્ષપણ (જતી) ના મતનો આચાર બતાવેલ છે. એવી રીતે ચોસઠ તંત્રો લોકોને મોહકરનાર છે તેનો વેદમાનનારાઓએ ત્યાગ કરવો એમ જાણવામાટે તેમનું નામ તથા સ્વરૂપ બતાવેલ છે. (૭૮)

તંત્રશાસ્ત્રો પ્રમાણ નથી એમ પ્રતિપાદન કરિને ચાર પ્રમાણો સ્વીકારેલાં છે તે બતાવે છે.

મૂલમ્ । वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ ७९ ॥
एतद्विरुद्धं यत्सर्वं न तन्मानं कथञ्चन ।
इति श्रीमन्निजाचार्यैरुक्तं तन्त्राणि न प्रमा ॥ ८० ॥

શબ્દાર્થ–પૂર્વકાંડ તથા ઉત્તરકાંડરૂપ વેદ, શ્રીભગવદ્ગીતા, વ્યાસસૂત્ર અને વ્યાસજીની સમાધિભાષા (શ્રીભાગવત) એ ચાર પ્રમાણ છે. તેનાથી વિરૂદ્ધ જે છે તે સર્વ કોઇરીતે પણ પ્રમાણ નથી. એમ શ્રીઆચાર્યજી–મહાપ્રભુજીએ શાસ્ત્રાર્થનિબન્ધમાં આજ્ઞા કરેલી છે માટે તંત્રો પ્રમાણ નથી.

ટીકા–પૂર્વકાંડ અને ઉત્તરકાંડમાં રહેલ સર્વ વેદ પ્રમાણ છે તેમાં અર્થવાદાદિરૂપ છે તે પણ પ્રમાણ છે જેમ કેઃ–

बृहस्पतिः स्वां वपां उदखिदत् ।

અર્થ–"બૃહસ્પતિએ પોતાની વપા ઉખેડી." એમ કહેલ છે ત્યાં કેટલાએક એવો અર્થ કરે છે કે વપા શરીરના અંદરના ભાગમાં રહેલો છે તેથી તેને ઉખેડે તો

બૃહસ્પતિનું જીવન જ રહે નહિં માટે આ વેદવાક્ય યજ્ઞની પ્રશંસાને સિદ્ધ કરનારૂં છે. તેવીજ રીતેં ग्रावाणः प्लवन्ते (પથરાઓ તરે છે) એમ લખેલું છે ત્યાં પણ એવો અર્થ કરે છે કે પથ્થરને તરવામાં તાત્પર્ય નથી પણ જ્યાં પથ્થર તરે છે ત્યાં બીજાને તરવામાં સંદેહ શો? એવી રીતેં કેટલાએક અર્થ કરે છે તે યોગ્ય નથી; કેમકે બૃહસ્પતિને દેવપણું હોવાથી વપાને ઉખેડે તો પણ તેના જીવીતની હાનિ થાય નહિં માટે ખરેખરી વપાને ઉખેડેલ છે એવો અર્થ કરવો જોઇએં. તેમજ પથરાઓ તરે છે એમ લખ્યું છે તે પણ શ્રીરામચંદ્રજીએં સેતુબંધન કરેલ છે તે-સમયની વ્યવસ્થા ઋચામાં કહેલ છે માટે ખરેખર પથરાઓ તરે છે એમ અર્થ કરવો જોઇએં. એવી રીતેં અર્થવાદરૂપ વેદને પણ બીજા લોકો તેમાં કહેલા અર્થને ખરો નહિં માની બીજી રીતનો અર્થ સમજાવવામાં તાત્પર્ય માને છે તેમ નહિં કરતાં જેશબ્દનો જેવો અર્થ થાય તેવોજ અર્થ પ્રમાણભૂત છે એમ માનવું જોઇએં. વિશેષ હકિકત બીજા ગ્રંથોથી જાણવી. ગીતાજીમાં શ્રીકૃષ્ણનાં વાક્ય છે તે સર્વ પ્રમાણભૂત છે, મૂલમાં ચકાર છે તેથી વ્યાસસૂત્રોની સાથે વિરોધ ન આવે તેવી રીતેં જૈમિનિનાં સૂત્રો પણ પ્રમાણભૂત છે. એવીજ રીતેં મન્વાદિકસ્મૃતિઓ પણ વ્યાસજીથી અવિરૂદ્ધપણાથી પ્રમાણ છે અને સમાધિભાષા (શ્રીભાગવત) પ્રમાણ છે; એટલે શ્રીભાગવતમાં લૌકિકી, પરમત અને સમાધિ એમ ત્રણપ્રકારની ભાષા છે તેમાં સમાધિભાષાને પોષણકરનારી બીજી બે ભાષા છે તેનું વિશેષ વિવેચન નિબન્ધાદિકમાં છે. ૭૯—૮૦.

मूलम् । श्रीमदाचार्यचरणैरत एव निरूपितम् ।
शाक्तास्तांश्चेत्ततो ब्रूयुस्ते सन्मार्गाद्बहिष्कृताः ॥ ८१ ॥
इति सर्वेषु मार्गेषु दोषाः सन्ति ततो हरिम् ।
शुद्धाद्वैतावलम्बेन भजेत सुविनिश्चितम् ॥ ८२ ॥

શબ્દાર્થ—તેથીજ આચાર્યજી—મહાપ્રભુજીએં નિરૂપણ કરેલ છે કે 'શાક્તલોકો તંત્રગ્રંથને જો પ્રમાણરૂપ કહે તો તે સન્માર્ગથી બહિષ્કૃત છે. તેવી રીતેં સર્વમાર્ગમાં દોષો છે તેથી સર્વસ્થળોમાં સારી રીતેં નિશ્ચયકરાયેલા હરિને શુદ્ધાદ્વૈતના અવલંબનવડે ભજે.

ટીકા—શ્રીઆચાર્યજી—મહાપ્રભુજીએં અણુભાષ્યમાં આજ્ઞા કરી છે કે આપણે જેમ તંત્રોને અપ્રમાણ માનિએં છીએં અને વેદાદિકને પ્રમાણ માનિએં છીએં તેમ શાક્તલોકો વેદાદિકને અપ્રમાણ કહે અને તંત્રોને પ્રમાણ માને તો તેઉપર વૈદિકોએં ધ્યાન દેવાનું નથી; કેમકે શાક્તલોકોને સન્માર્ગથી બાહેર કરેલ છે. એવી રીતેં સર્વમાર્ગોમાં ઘણા દોષો છે તેથી શુદ્ધાદ્વૈતનું અવલંબન કરિને શ્રુતિસ્મૃતિ-વિગેરેમાં સારી રીતેં નિશ્ચયકરાયેલા શ્રીહરિને ભજે એટલે અખંડ અદ્વૈતનું ભાન થાય ત્યારે સર્વબ્રહ્મ છે બીજી રીતેં નથી એમ તેને જાણવામાં આવે તેથી સર્વઠેકાણે ભગવાનની દૃષ્ટિ થવાથી તેના અંતઃકરણમાં બીજો વિષય આવે નહિં એ ફલ

થાય; અર્થાત્ આ જગત્ છે એમ જાણીને તેમાં બ્રહ્મપણું સિદ્ધ કરવું એ ઉદ્દેશ્ય-વિધેયભાવ કહેવાય તેમાં બ્રહ્મના ભાનની સાથે જગત્નું પણ ભાન રહે તેથી તે સખંડ અદ્વૈત જ્ઞાન કહેવાય અને સર્વ બ્રહ્મજ છે બીજી રીતે નથી એમ જે ભાન થાય તે અખંડાદ્વૈતભાન કહેવાય તેવી રીતનું ભાન થાય ત્યારે અંતઃકરણમાં બીજી રીતનો વિષય આવેજ નહિં. ૮૧-૮૨.

मूलम् । चेतस्तत्प्रवणं सेवा फलरूपा तु मानसी ।
तत्सिद्ध्यर्थं देहवित्तजनिः कार्या ततो भवेत् ॥ ८३ ॥
संसारदुःखनाशो हि ब्रह्मात्मत्वावबोधनम् ।
ब्रह्मज्ञस्य परप्राप्तिरानन्दवृत्ततौ स्फुटा ॥ ८४ ॥

શબ્દાર્થ—ચિત્ત ભગવાનમાં પ્રવણ થાય તે સેવા કહેવાય તેમાં માનસી ફલરૂપ છે અને માનસીની સિદ્ધિને માટે તનુજા તથા વિત્તજા સેવા કરવી તેનાથી સંસારનાં દુઃખનો નાશ અને બ્રહ્માત્મપણાનું અવબોધન થાય. બ્રહ્મને જાણનારને પરની પ્રાપ્તિ થાય એમ આનંદવલ્લીમાં સ્ફુટ છે.

ટીકા—સેવાને કહેનાર ભજ્ધાતુ હોવાથી હરિનું ભજન કરવાનું ઉપર કહ્યું તેનો અભિપ્રાય સેવાકરવાનો છે તેથી શ્રીઆચાર્યજી—મહાપ્રભુજીએ સિદ્ધાંતમુક્તાવલીમાં સેવાનું લક્ષણ કહ્યું છે તે લક્ષણ અહિં કહે છે કે શ્રીકૃષ્ણમાં ચિત્ત પરોવીદેવું તેનું નામ સેવા છે તેમાં માનસી સેવા ફલરૂપ છે તે શ્રીગોપીજનને સિદ્ધ હતી તેથી શ્રીકૃષ્ણે એકાદશસ્કંધમાં ઉદ્ધવજીને કહેલું છે કેઃ—

ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।

અર્થ—મારે વિષે સ્નેહવડે જેણે બુદ્ધિ બાંધેલી છે એવાં તે ગોપીજનો પોતાના આત્માને, પરલોકને અને જગતને જાણતાં નહિં હતાં. આ સર્વાત્મભાવની દશા છે તે વ્યાસસૂત્રના તૃતીયાધ્યાયના તૃતીયપાદમાં ભાષ્યમાં સ્ફુટ છે. તેવી રીતે સર્વાત્મભાવરૂપ-માનસીસેવાની સિદ્ધિમાટે દેહ અને વિત્તથી થનારી સેવા કરવી. અહિં મૂલમાં દેહ અને વિત્ત બંને એકપદમાં લખેલ છે તેમજ સિદ્ધાંતમુક્તાવલીમાં પણ તનુ અને વિત્ત એકપદમાં લખેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે તનુજા અને વિત્તજા (શરીરથી થતી અને ધનથી થતી) બંને સાથે કરે ત્યારેંજ માનસીને સિદ્ધ કરે. પણ એકલી તનુજા કે વિત્તજા કરે તો તેનાથી માનસી સિદ્ધ થાય નહિં એવો અભિપ્રાય બતાવેલ છે. તેવી રીતે સેવા કરવાથી અવાન્તરફલ અહંતામમતારૂપ સંસારના દુઃખનો નાશ. અને બ્રહ્માત્મપણાનું અવબોધન એ બે ફલ થાય છે; એટલે "એ બ્રહ્માત્મક આ સર્વ છે." "આ દેખાતું સર્વ જગત્ નિશ્ચય બ્રહ્મ છે." ઇત્યાદિ શ્રુતિઓથી સિદ્ધ અને "આ સર્વ વાસુદેવ રૂપ છે એમ જાણનાર મહાત્મા અત્યંત દુર્લભ છે." એમ ગીતાજીમાં કહેલ છે તેથી સિદ્ધ—બ્રહ્માત્મકજ્ઞાન થાય છે; અર્થાત સર્વ જગત્ બ્રહ્મરૂપ છે એવું યથાર્થ જ્ઞાન થાય છે. ત્યારે બ્રહ્મજ્ઞાનનું ફલ શું? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે કે બ્રહ્મને જાણનારને પરની પ્રાપ્તિ થાય

છે તેવિષે શ્રીઆચાર્યજી—મહાપ્રભુજીએ અણુભાષ્યના પ્રથમાધ્યાના પ્રથમ પાદના આનંદમયાધિકરણમાં નિરૂપણ કરેલ છે કે બ્રહ્મજ્ઞાનવડે અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થવાથી પ્રાકૃતધર્મથી રહિત થઇને શુદ્ધપણું સંપાદન થાય ત્યારે શ્રીપુરૂષોત્તમની પ્રાપ્તિમાં સ્વરૂપની યોગ્યતા થાય તે યોગ્યતા બ્રહ્મજ્ઞાન સંપાદનકરે છે તેવો બ્રહ્મ-જ્ઞાનવાળો જીવ થયો ત્યારે શ્રીપુરૂષોત્તમની પ્રાપ્તિની યોગ્યતા તો થઇ પણ તેવા જીવોમાંથી यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः (જેજીવને આ પ્રભુ વરે છે તેજીવેજ પ્રભુ મેળવી-શકાય છે) ઇત્યાદિકશ્રુતિમાં કહ્યાપ્રમાણે જેજીવને પોતાના પણાથી પ્રભુ સ્વીકારે છે તેજીવને ભક્તિ થવાથી સહાયતાકરનારની યોગ્યતાની સંપત્તિવડે શ્રીપુરૂષોત્તમની પ્રાપ્તિ થાય છે. એમાં પ્રમાણ શું? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે કે તૈત્ત-રીયઉપનિષદની આનંદવલ્લીમાં કહેલ છે કે:—

ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता।

અર્થ—બ્રહ્મને જાણનાર (માણસ) બ્રહ્મથી પર—શ્રીપુરુષોત્તમને પ્રાપ્ત થાય છે:—

શંકા—અહિં પરશબ્દથી બ્રહ્મ લેવું; એટલે પરને પ્રાપ્ત થાય છે એમ કહેલું છે તેનો અભિપ્રાય બ્રહ્મને પ્રાપ્તથવાનોજ છે:—

ઉત્તર—બ્રહ્મની પ્રાપ્તિને જ્ઞાનાત્મકપણું હોવાથી તમારા માનવાપ્રમાણે અર્થ કરિયે તો બ્રહ્મને પ્રાપ્ત થયેલો બ્રહ્મને પ્રાપ્ત થાય છે એવો અર્થ થાય તે અસંગત છે; કેમકે બ્રહ્મજ્ઞાન એજ બ્રહ્મની પ્રાપ્તિ છે બ્રહ્મજ્ઞાનથી બ્રહ્મની પ્રાપ્તિ જૂદી નથી તો અહિં બ્રહ્મનું જ્ઞાન સાધન છે અને તેનાથી પરની પ્રાપ્તિ થવાનું લખ્યું છે તે સાધ્ય છે માટે સાધ્યસાધનભાવનો વ્યાઘાત થાય છે; અર્થાત્ સાધન તથા સાધ્ય ભિન્ન ભિન્ન હોવાં જોઇએ તેને બદલે બન્ને એકજ થાય છે; માટે બ્રહ્મને જાણનાર પર (શ્રીપુરુષોત્તમ)ને પ્રાપ્ત થાય છે. એવોજ એશ્રુતિનો અર્થ છે. પરશબ્દ ઉત્કૃષ્ટને કહેનાર હોવાથી બ્રહ્મથી પર* શ્રીપુરુષોત્તમજ છે તેને પ્રાપ્ત થાય છે એમ કહેવા-નોજ શ્રુતિનો અભિપ્રાય છે. વિશેષથી તે અભિપ્રાય કહેવાનો શ્રુતિનો અભિપ્રાય થતાં, શ્રીપુરુષોત્તમનો આનંદ મન કે વાણીથી પ્રાપ્ત થાય તેમ નથી પણ કેવળ અનુભવથીજ પ્રાપ્ત થાય તેમ છે એમ જણાવવામાટે પોતે (શ્રુતિ) તત્ત્વનું પ્રતિ-પાદનકરનાર છે તો પણ બીજાની સાક્ષી આપવાની રીતે કહે છે કે तदेषाऽभ्युक्ता (તે અભિપ્રાય કહેવામાટે આ ઋચા કહેલી છે) અહિં तत् અવ્યય છે તેનો અર્થ એવો છે કે બ્રહ્મજાણનારને પરની પ્રાપ્તિ થવાનો અભિપ્રાય અને અભિ અવ્યય છે તેનો અર્થ એવો છે કે સ્પષ્ટરીતે પ્રતિપાદનકરવાપણાથી સન્મુખ કરવું એ બન્ને અવ્યય મલીને એવો અર્થ થાય છે કે બ્રહ્મજાણનારને પરની પ્રાપ્તિથવારૂપ અર્થ સ્પષ્ટરીતે પ્રતિપાદનકરવાપણાથી સન્મુખ કરીને આ (નીચે કહેવાશે તે) ઋચા પરબ્રહ્મને જાણનારાઓએ કહેલી છે એમ કહીને પછી सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म એ ઋચા કહેલી છે તેથી પ્રથમ ब्रह्मविदाप्नोति परम् એ શ્રુતિ કહિ છે તેનુજ વિવરણ सत्यं ज्ञान-

* અક્ષરબ્રહ્મથી પર શ્રીપુરૂષોત્તમ છે એ હકીકત શ્લોક ૮૭–૮૮ માં કહેવાશે.

मनंतम् એશ્રુતિવડે કરાય છે. એશ્રુતિનો અર્થ એવી રિતે થાય છે કે गुहा (હૃદયાકાશ)માં परमेव्योमन् (અક્ષરબ્રહ્માત્મક—આધિવૈકુંઠ)માં निहितम् (સ્થાપન કરેલું) એવું જે સત્ય, જ્ઞાન અને અનંત એવું બ્રહ્મ તેને જે જાણે છે તે ભક્ત વિપશ્ચિત્ (નાનાપ્રકારના ભોગમાં ચતુર) એવા બ્રહ્મની સાથે કામોને ભોગવે છે. અહિં બ્રહ્મની સાથે કામભોગવવામાં જીવની મુખ્યતા લખેલી છે કેમકે શિષ્યની સાથે ગુરૂ આવેલ છે એમ કહેવાય છે ત્યાં ગુરૂનો મુખ્યતા છે અને સાથે આવનાર—શિષ્યની ગૌણતા છે તેવી રીતે અહિં બ્રહ્મની સાથે ભક્ત કામ ભોગવે છે એવું લખ્યું છે ત્યાં કામભોગવવામાં ભક્તની મુખ્યતા છે અને સાથે રહેનાર—બ્રહ્મની ગૌણતા છે. અહિં બ્રહ્મપદ શ્રીપુરૂષોત્તમને કહેનાર છે; કેમકે પ્રથમની શ્રુતિનું આશ્રુતિમાં વિવરણ છે એમ ઉપર સિદ્ધકરેલું છે અને પ્રથમની શ્રુતિમાં બ્રહ્મજાણનારને શ્રીપુરૂષોત્તમની પ્રાપ્તિ થવાનું લખેલું હોવાથી અહિં પણ તેજ અર્થ સિદ્ધકરવાનો છે તે બ્રહ્મશબ્દ શ્રીપુરૂષોત્તમને કહેનારો હોય ત્યારેંજ થઇશકે તેમ છે. અહિં કામભોગવવામાં ભક્તની મુખ્યતા લખેલી છે અને શ્રીપુરૂષોત્તમની ગૌણતા લખેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે અંબરીષરાજાની ઉપર દુર્વાસાએં કૃત્યા મોકલેલી હતી ત્યારેં તેમની રક્ષામાટે ભગવાને સુદર્શન—ચક્ર તેની પાસે રાખેલું હતું તે કૃત્યાને બાળી દુર્વાસાની પાછળ દોડયું ત્યારેં દુર્વાસા ભયપામિને ભાગ્યા; સર્વસ્થલે બ્રહ્માજી અને શિવજીપર્યંત ગયા પણ કોઇથી રક્ષા થઇ નહિં ત્યારેં વૈકુંઠમાં ભગવાનપાસે ગયા ત્યારેં ભગવાને તેમને કહેલ છે કેઃ—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना। श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन्! येषां गतिरहं परा॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्। नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम्॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः। वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥ ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

અર્થ—હે બ્રાહ્મણ! જેમ પરતંત્ર હોય તેમ હું ભક્તને પરાધીન છું સાધુભક્તોયેં મારૂં હૃદય ગળીલીધેલું છે તેથી ભક્તજનોજ મને વ્હાલા છે. (શ્રીગીતાજીમાં જ્ઞાનિને ભગવાને પોતાના આત્મારૂપ કહેલ છે તેથી દુર્વાસાના મનમાં ભક્તના કરતાં જ્ઞાનિની ઉત્કર્ષતા આવે તેની નિવૃત્તિમાટે કહે છે કે) સત્પુરૂપ એવા મારા ભક્તોવિના હું આત્માની પણ આશા રાખતો નથી અને હે બ્રાહ્મણ! આત્યંતિકી એવાં લક્ષ્મીજીની પણ આશા રાખતો નથી કેમકે જેભક્તોની સૌથી પર ઉત્તમ ગતિ હું છું. મારે માટે સત્પુરૂષો હૃદય જ છે. (અર્થાત્ સત્પુરૂષોજ મારૂં હૃદય છે તેથી જૂદું નથી) અને સત્પુરૂષોનું હૃદય હું છું મારાથી બીજું તે જાણતા નથી અને હું તેમનાથી બીજું કંઇ પણ જાણતા નથી. મારી સેવાવડે સાક્ષાત્થયેલ

સાલોક્યાદિક—ચારપ્રકારની મુક્તિને પણ સેવાવડે પૂર્ણરહેલા ભક્તો ઇચ્છતા નથી તો કાલથી ડુબેલા બીજા (રાજ્યાદિક)ની ઇચ્છાતો ક્યાંથીજ કરે. મારે વિષે હંમેશાં જેઓયેં દૃઢ હૃદય બાંધેલું છે અને સર્વઠેકાણે જેઓની સમાન દૃષ્ટિ છે એવા મારા સત્પુરૂષ—ભક્તો ભક્તિવડે મને પોતાના વશમાં કરે છે. જેમ સારી પ્રતિવ્રતા સ્ત્રીઓ હોય તે જેમ પોતાના સારા પતિને વશ કરે છે તેવી રીતેં તેઓ મને વશ કરે છે. અહિં સારી સ્ત્રીઓ અને સારો પુરૂષ એમ દૃષ્ટાંતમાં કહેલું છે તેઉપરથી ભગવાને દુર્વાસાને એમ સમજાવ્યું છે કે તેવી રીતના સારા ભક્ત હોય તેના વશમાં હું ન રહું તો મારૂં સત્પણું કહેવાય નહિં પણ જેમ પતિવ્રતા સ્ત્રી હોય અને તેનો પતિ અસત્) દુષ્ટ હોય તો તે સ્ત્રીની મનોવૃત્તિને વશ થાય નહિં તેવી રીતેં સ્ત્રી, ઘર, પુત્ર, હિતૈષી, પ્રાણ, ધન, આલોક અને પરલોકની મમતા છોડીદઇને જેઓ મારી શરણે આવેલા છે તેઓને છોડવાને હું કેમ ઉત્સાહ કરૂં? ઈત્યાદિક—વાક્યોવડે ભગવાન્ ભક્તને આધીન હોવાથી કામભોગવવામાં ભક્તની મુખ્યતા રાખે છે તે યોગ્યજ છે. આવિષે વિશેષ વિસ્તાર જોવો હોય તો અણુભાષ્યાદિકમાં જોઇલેવો. (૮૪)

શંકા—પ્રતિબંધકરનારી અવિદ્યા હોવાથી પરની પ્રાપ્તિ કેમ થાય?

ઉત્તર—શ્રીકૃષ્ણભગવાને એકાદશસ્કંધમાં ઉદ્ધવજીપ્રત્યેં કહેલ છે કે:—

विद्याविद्ये मम तनू विध्युद्धव! शरीरिणाम्। मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते।

અર્થ—હે ઉદ્ધવ વિદ્યા અને અવિદ્યા મારી તનુ(શરીર)રૂપ છે, એમ જાણ્યા અને તે શરીરવાલાઓને મોક્ષ અને બંધકરનારી છે મારી માયાયેં નિર્માણકરેલી છે. એ—વાક્યવડે ભગવાનની માયાએ અવિદ્યા કરેલી હોવાથી માયાની નિવૃત્તિ થશે ત્યારેં આઅવિદ્યાનો પણ નાશ થાશે એવા અભિપ્રાયથી શ્રીગીતાજીનું વાક્ય કહે છે.

मूलम्। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।
इति वाक्यात्तु भक्तानामविद्यायाश्चनिवृत्तितः॥ ८५॥
अलौकिकाकारसिध्यै प्रवेशो हरिणोदितः।

શબ્દાર્થ—"જેઓ મારીજ શરણે આવે છે તેઓએમાયાને તરે છે, એ—વાક્યથી ભક્તોની અવિદ્યાની વિશેષે કરિને નિવૃત્તિ થવાથી અલૌકિક આકારની સિદ્ધિને માટે પ્રવેશ થવાનું ભગવાને કહેલ છે.

ટીકા—મૂલમાં નિશ્ચયવાચક एवकार કહેવાથી બીજાની શરણાગતિવી માયા તરાતી નથી એમ જણાવે છે. શ્રીગીતાજીમાં કહેલ છે:—

अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।
मत्तः परतर किञ्चिन्नान्यदस्ति धनञ्जय॥

અર્થ—હું સર્વેજગતનું ઉત્પત્તિસ્થાન તથા પ્રલયસ્થાન છું, મારાથી પર થોડું પણ હે ધનંજય! બીજું કાંઇ નથી. ઇત્યાદિકવાક્યથી શ્રીપુરૂષોત્તમ સર્વથી ઉત્કૃષ્ટ છે એવું જ્ઞાન થાય ત્યારેં શરણાગતિ થાય છે અને તેવા જ્ઞાનનું ફલ શું? તેવિષે કહેલ છે કે:—

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यत् ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

અર્થ—સંશયવગર જેવી રીતેં તું મને સમગ્ર જાણીશ તે સાંભળ. જે જાણવાથી અહિં ફરિને બીજું જાણવાનું બાકી રહે તેમ નથી. ઇત્યાદિકવાક્યોથી અક્ષરજ્ઞાનાદિક સુલભ છે કેમકે ભગવાનનું જ્ઞાન થયા પછી બીજું કાંઇ જ્ઞાન બાકી રહેતું નથી તથી અક્ષરજ્ઞાન તેને સહેજમાં થાય છે માટે ભક્તોને તો શ્રીકૃષ્ણની શરણાગતિવડેજ અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થાય છે. (૮૫) તેનાથી શું થાય? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે કે અલૌકિક—આકારની સિદ્ધિમાટે અક્ષરબ્રહ્મમાં પ્રવેશ થાય છે તેવિષે બૃહદારણ્ય ઉપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

यथा सैंधवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते ।

અર્થ—જેમ સૈંધવનો કકડો જલમાં નાંખ્યો હોય તે તેની અંદરજ લીન થઇજાય છે. (તેવી રીતેં જીવ બ્રહ્મમાં લીન થાય છે) તેમજ नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे (સમુદ્રમાં પેઠેલી નદીઓ જેમ નામરૂપને છોડાદઇને સમુદ્રમાં મળીજાય છે તેમ જીવ પોતાના નામરૂપને છોડીને બ્રહ્મનાં સાથે મળીજાય છે.) ઇત્યાદિક—શ્રુતિઓમાં જીવનો બ્રહ્મમાં પ્રવેશથાય છે એમ કહેલું છે તેવીજ રીતેં ગીતાજીમાં પણ ભગવાને બ્રહ્મમાં પ્રવેશથવાની હકીકત કહેલી છે.

શંકા—જીવનો લય અક્ષરબ્રહ્મમાં થાય ત્યારેં શ્રીપુરૂષોત્તમની પ્રાપ્તિ તેને કેમ થાય?

ઉત્તર—અક્ષરબ્રહ્મ શ્રીપુરૂષોત્તમના ગૃહરૂપ છે માટે અક્ષરબ્રહ્મમાં પ્રવેશ થવાથી શ્રીપુરૂષોત્તમની પ્રાપ્તિ થાય છે. અક્ષરબ્રહ્મ શ્રીપુરૂષોત્તમનું ગૃહ (ઘર) છે તેવિષે શ્રીગીતાજીમાં કહેલ છે તે પ્રમાણ મૂલમાં આપે છે.

मूलम्—"अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥ ८६ ॥
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"
इति वाक्येन भगवद्गृहं ब्रह्म प्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥

શબ્દાર્થ—"અવ્યક્ત અક્ષર એવી રીતેં કહેલ છે તેને પરમગતિ કહે છે જેને પ્રાપ્ત થઇને નિવૃત્ત થતી નથી તે અક્ષરબ્રહ્મ મારૂં ઉત્તમ ધામ (ઘર) છે" એવાક્યવડે અક્ષરબ્રહ્મ ભગવાનનું ઘર છે એમ કહેલ છે.

ટીકા—અક્ષરબ્રહ્મનું અવ્યક્ત એવું નામ છે એટલેં અવ્યક્તશબ્દ અક્ષરબ્રહ્મને કહેનાર છે તેથી "અવ્યક્તથી સર્વ વ્યક્તિઓ (બ્રહ્માનો દિવસ આવે છે ત્યારેં) ઉત્પન્નથાય છે" એમ શ્રીગીતાજીમાં કહેલું હોવાથી જગતને માયિકપણું જે કોઇ માને છે તેનો નિરાસ થયો છે; કેમકે અવ્યક્તશબ્દ અક્ષરબ્રહ્મને કહેનાર છે અને અવ્યક્તથી વ્યક્તિઓ ઉત્પન્નથાય છે એમ કહેલું છે તેથી માયાથી ઉત્પન્નથવાપણું જગતને નથી. જ્ઞાનિઓનો તેમાં મોક્ષ થાય છે તેથી તેને સર્વથી ઉત્તમગતિ કહે છે

"જને પ્રાપ્તથઇને પાછો ફરતો નથી" એમ શ્રુતિમાં કહેલું છે તે અક્ષરબ્રહ્મ મારૂં ઉત્તમ ધામ છે, એવાક્યવડે અક્ષરબ્રહ્મ ભગવાનનું ધામ કહેલું છે. ભક્તોને તો શ્રીપુરૂષોત્તમના ગૃહરૂપ અક્ષરબ્રહ્મ છે એમ જ્ઞાન થાય છે અને જ્ઞાનિઓને મોક્ષનું સ્થાન હોવાથી પરબ્રહ્મ (શ્રીપુરૂષોત્તમ) રૂપ છે એવુંજ જ્ઞાન થાય છે. એમ એકઅક્ષરબ્રહ્મનું જૂદી જૂદી રીતે જ્ઞાન કેમ થાય? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય તેસારૂં દશમસ્કંધના પૂર્વાર્દ્ધમાં શ્રીકૃષ્ણભગવાન્ શ્રીમથુરાજીમાં રંગમંડપમાં પધાર્યા છે તે-સમયમાં શ્રીશુકદેવજીએં વર્ણન કરેલ છે તે કહે છે કેઃ—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां
स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णिनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥

અર્થ—શ્રીબલદેવજીસહિત ભગવાન્ જ્યારે રંગમંડપમાં પધાર્યા ત્યારે મલ્લોને વજ્રરૂપ જણાયા, પુરૂષોને પુરૂષોના મધ્યે શ્રેષ્ઠ જણાયા, સ્ત્રીયોને મૂર્તિમાન્ કામદેવરૂપ જણાયા, ગોવાલિઆઓને પોતાના ભાઇજેવા જણાયા, દુષ્ટરાજાઓને પોતાને શિક્ષણકરનાર જણાયા, પોતાના માતાપિતાને બાલકજેવા જણાયા, કંસરાજાને કાલસ્વરૂપ જણાયા, પ્રાકૃતમનુષ્યોને સાધરણમાણસજેવા જણાયા, યોગિઓને પરબ્રહ્મરૂપ જણાયા અને યાદવોને ઉત્તમ દેવતારૂપ જણાયા. એમ લખેલ છે ત્યાંપોતપોતાના ભાવને અનુસારે દર્શન આપેલ છે એમ સ્પષ્ટ અભિપ્રાય છે તેમજ તૃતીયસ્કંધના ૯ મા અધ્યાયમાં બ્રહ્માજીની સ્તુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

यद्यद्धिया तउरुगाय।विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ।

અર્થ—આપની ભાવનાકરવાવાળા બુદ્ધિવડે જેવી જેવી રીતે ભાવના કરે છે તેવી તેવી રીતનું સ્વરૂપ ભાવનાકરનાર—સત્પુરુષના અનુગ્રહને માટે આપ ધારણ કરો છો કેમકે આપ उरुगाय (ઘણાએં અથવા ઘણેપ્રકારે ગાયેલા) છો. અહિં ઉરુગાય એવું ભગવાનનું સંબોધન આપ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે ઘણા પુરુષોએં જુદી જુદી રીતે આપને ગાયેલ છે તેથી જેવી રીતે ગાન કરેલ છે તેવી રીતે ભાવનાકરનારને તેવા સ્વરૂપનું દર્શન આપો છો. (૮૭)

અહિં કોઇને એવી શંકા થાય કે અક્ષરબ્રહ્મજ પરમપ્રાપ્યસ્થાન હશે તો તેની નિવૃત્તિમાટે કહે છે.

मूलम् । पुरुषः स परः पार्थ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
इत्यग्रिमेण वाक्येन गेहाधीशो निरूपितः ॥ ८८ ॥

શબ્દાર્થ—હે પાર્થ! તે પરપુરુષ અનન્યભક્તિથીજ મેળવીશકાય છે. એ આગળનાં વાક્યવડે (શ્રીગીતાજીમાં) ગૃહ (ઘર) ના અધિપતિનું નિરૂપણ કરેલ છે કેઃ—

ટીકા—શ્રીપુરુષોત્તમ સર્વથી પર છે એટલે સર્વથી ઉત્કૃષ્ટ છે કેમકે શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતાના ૧૫ મા અધ્યાયમાં કહેલ છે કેઃ—

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

અર્થ—જેકારણમાટે જન્મમરણની ઉપાધિવાળો ક્ષર જીવ છે તેને અતિક્રમણકરિને રહ્યો છું અને અક્ષરથી પણ ઉત્તમ છું તેથી લોકમાં અને વેદમાં પુરૂષોત્તમ એવી રીતે હું પ્રસિદ્ધ છું. એમ અર્જુનપ્રત્યે શ્રીકૃષ્ણ—ભગવાને કહેલ છે તેથી પુરુષોત્તમ શબ્દથી અથવા પરપુરુષ એશબ્દથી શ્રીકૃષ્ણજ સમજવા. અહિં કોઇને શંકા થાય કે ક્ષરશબ્દ નાશાત્મકને કહેનાર છે તેથી ક્ષરશબ્દવડે જડાદિકપદાર્થ અને અક્ષરશબ્દવડે જેનો નાશ નથી એવો જીવ સમજવો અને તેનાથી ઉત્તમ અંતર્યામી છે તેનું પ્રતિપાદનકરનાર ઉપરનો શ્લોક છે તો તેવી શંકા નહિં થવામાટે ત્યાંજ પ્રથમ કહેલ છે કેઃ—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

અર્થ—લોકમાં ક્ષર અને અક્ષર એ બે પુરૂષ છે એમ બન્નેને પુરૂષ કહેવાથી ક્ષરશબ્દથી જડ સમજાય નહિં કેમકે તેને પુરૂષપણું નથી માટે ક્ષરશબ્દ જીવનેજ કહેનાર છે. અને એવો અર્થ કરિયે ત્યારેંજ શ્રુતિમાં "એપક્ષિયો ગુહામાં પ્રવિષ્ટ થયા છે" એમ કહ્યું છે તેમાં વિરોધ આવે નહિં અને એજઅભિપ્રાયને કહેનાર આ ગીતાજીનો શ્લોક છે; તેથી ક્ષરશબ્દથી જીવ અને અક્ષરશબ્દથી અંતર્યામી સમજવાના છે અને તેનાથી ઉત્તમ શ્રીપુરૂષોત્તમ (શ્રીકૃષ્ણ) છે. (૮૮)

ઉપર જેશ્રીપુરૂષોત્તમનું નિરૂપણ કર્યું તેમનો લાભ કેમ થાય? એમ જાણવાની ઇચ્છા થયા ત્યાં કહે છે.

मूलम् । भक्त्या लाभो हि निर्दिष्टो भक्तिश्चाचार्यसंश्रयात् ।
श्रीमदाचार्यचरणभजनादेव नान्यथा ॥ ८९ ॥

શબ્દાર્થ—શ્રીપુરુષોત્તમનો લાભ ભક્તિવડે થાય એમ કહેલ છે અને ભક્તિ થવી તે શ્રીઆચાર્યજીનો સારી રીતે આશ્રય કરવાથી થાય છે; એટલે શ્રીઆચાર્યચરણના ભજનથીજ ભક્તિ પ્રાપ્તથાય છે તેશિવાય થતી નથી.

ટીકા—અહિં એવી રીતનો ક્રમ સમજવો કે જેનામાં ભગવાનની કૃપાનો અંકુર હોય છે તેનો સંસ્કારવડે અથવા ભગવદ્‌ભક્તના સંગવડે ઉદ્બોધ થાય ત્યારે આમાર્ગમાં પ્રીતિ થાય છે, ત્યારે માર્ગમાં પ્રવેશ કરવાની ઇચ્છા થાય છે, તેમાં પણ ભગવાનની કૃપાના અંકુરની દૃઢતા થાય ત્યારે આ માર્ગ સર્વથી ઉત્તમ છે એવી ભાવના થાય છે, માર્ગમાં પ્રવેશ થવો તે શ્રીઆચાર્યજીમહાપ્રભુજીના દ્વારભૂત—શ્રીઆચાર્યકુલદ્વારા શરણાગતિ કરે ત્યારે થાય છે. ત્યાર પછી શુદ્ધ થાય ત્યારે શ્રીકૃષ્ણની સેવા કરે એવો સિદ્ધાન્ત છે. પોતાના પરિકરની અને પોતાની શુદ્ધિથવાની જરૂર છે તે લોકોમાં થઈશકે એવું નથી તેથી એકાદશસ્કંધમાં પ્રબુદ્ધયોગેશ્વરે કહેલ છે કે—

दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम् ।

અર્થ—સ્ત્રી, પુત્ર, ગૃહ અને પ્રાણ જે કાંઇ છે તે બધું પુરુષોત્તમ એવા ભગવાનને અર્પણ કરવું એમ ભગવદ્ભક્તના ધર્મમાં પ્રબુદ્ધયોગેશ્વરે કહેલ છે તેપ્રમાણે વિધિપૂર્વક સમર્પણ સિદ્ધ થાય છે; તેથીજ શ્રીઆચાર્યજીયેં સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં આજ્ઞા કરેલ છે કે—

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः । सर्वदोषनिवृत्तिर्हि ।

અર્થ—બ્રહ્મસંબંધકરવાથી સર્વના દેહ અને જીવસંબંધી—સર્વદોષોની નિવૃત્તિ અવશ્ય થાય છે. ઇત્યાદિક—વાક્યવડે બ્રહ્મસંબંધકરવાથી સર્વદોષની નિવૃત્તિથવાનું લખેલ છે તેથી સમર્પણ થયાપછી સર્વદોષની નિવૃત્તિ છે, અને જે દોષ દેખાય છે તે દેખાવામાત્રજ હોવાથી ભજનકરવામાં પણ બાધક થતા નથી તેસારૂ સિદ્ધાંતરહસ્યમાં ગંગાજલના દૃષ્ટાંતથી આજ્ઞા કરી છે કેઃ—

गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ।
गङ्गात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि ॥

અર્થ—ગંગાજીના તટ ઉપર કાશીપુરીવિગેરે શેહેરો છે તેના પરનાળવિગેરેના જળનો પ્રવાહ ગંગાજીમાં મળે છે ત્યારેં તેજળને પણ ગંગાપણું થાય છે પછી ગંગાજીના જળમાં કાંઇ કસ્તર કે મલાદિક દેખાતો હોય તો તેનું નિરૂપણ ગંગાપણાથીજ થાય છે; એટલેં ગંગાજીનું જળ ડોળું છે એમજ મળવિગેરે હોય તે પણ ગંગાજીનું જળ છે એમ કહેવાય છે પણ પરનાળવિગેરેનું જળ કહેવાતુ નથી તેમ તેના દોષતું વર્ણન થાતું નથી. તેવા રીતેં બ્રહ્મસંબંધ કર્યાપછી દેહ, પ્રાણ, ઇંદ્રિયો, અંતઃકરણ અને તેના ધર્મો જીવે પોતાના આત્માસહિત ભગવાનને અર્પણ કર્યા ત્યારેં બધા ભગવાનના થયા તેથી દોષની ગૌણતા થઇગઇ છે માટે સેવામાં અધિકાર થાય છે ત્યારપછી સત્પુરુષોના અથવા દ્વારભૂત—ગુરુના સંગવડે કે તેમની શિક્ષાવડે શ્રીઆચાર્યચરણમાં ભગવાનથી અભેદની બુદ્ધિ થાય છે, ત્યારેં સર્વોત્તમવિગેરે—સ્તોત્રાદિકથી તેમનું ભજન થાય છે, ત્યારપછી એતન્માર્ગીય—ભગવદીયના સંગવડે ભગવાનનું ભજન અને એતન્માર્ગીય—ગ્રંથનું અવલોકન તથા શ્રવણ કરવાથી પ્રતિબંધની નિવૃત્તિ થાય ત્યારેં દોષ દેખાતા હોય તેપણ નિવૃત્ત થાય છે, અને સેવામાં ઉપયોગી એવા ગુણોની વૃદ્ધિ થાયછે, ત્યારપછી નિરંતર સેવા કરવાથી સહકુટુંબને ભગવત્પ્રાપ્તિ થાય છે. એવો આ ભગવન્માર્ગ છે તે શ્રીઆચાર્યચરણનાં શરણથીજ પ્રાપ્ત થાય છે. તેશિવાય થતો નથી; તેથીજ શ્રીહરિરાયજીએં જન્મવૈફલ્યનિરૂપણાષ્ટકમાં લખેલું છે કેઃ—

नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी ।
नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले ॥

અર્થ—જેમણે શ્રીમદ્વલ્લભાધીશનો આશ્રય કરેલો નથી, શ્રીસુબોધિનીજીનું દર્શન (અનુભવ) કરેલ નથી અને શ્રીરાધિકાનાથ—શ્રીકૃષ્ણનું આરાધન કરેલ નથી

તેનું જન્મ ભૂતલઉપર વૃથા છે. એમ કહેલ છે ત્યાં વૃથા કહેવાથી નિષ્ફલ છે એમ સમજવું; માટે શ્રીઆચાર્યચરણનાં શરણથીજ જન્મ સફળ થાય છે. (૮૯.)

શ્રીઆચાર્યદ્વારા જેનો અંગીકાર થયો છે અને લીલાનો અધિકારી જે જીવ છે તેને ભગવાન્ જે કરે છે તે નિરૂપણ કરે છેઃ—

मूलम् । ब्रह्मभावं तु सम्पाद्य परमानुग्रहाद्विभुः ।
गृहस्थितं स्वीयजीवं समुद्धरति यत्नतः ॥ ९० ॥

શબ્દાર્થ—બ્રહ્મભાવનું સંપાદનકરિને જેમના ઉપર પરમ અનુગ્રહ છે તેવા જીવને અનુગ્રહથી, સમર્થ એવા ભગવાન્ પોતાનાં ગૃહરૂપ—અક્ષરબ્રહ્મમાં રહેલ પોતાના જીવનો યત્નથી ઉદ્ધાર કરે છે.

ટીકા—બ્રહ્મભાવસંપાદનકરવાનું લખેલું છે તે બૃહદારણ્યક—ઉપનિષદમાં લખેલ છે કેઃ—

यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुलीयते ।

અર્થ—જેમ પાણીમાં સિંધાલુણનો કટકો નાંખેલો હોય તે પાણીમાં લીન થઇજાય છે તેવીરીતે જીવ બ્રહ્મમાં લીન થઇજાય છે. તેમ બીજી શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ।

અર્થ—સમુદ્રમાં પ્રવિષ્ટથયેલી નદીયો નામરૂપને છોડિને જેમ સમુદ્રમાં મળીજાય છે તેમ જીવ બ્રહ્મમાં લીન થઇજાય છે. અને ગીતાજીમાં કહેલ છે કેઃ—

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।

અર્થ—ત્યારપછી તત્ત્વથી મને જાણિને જીવ મારામાં પ્રવિષ્ટથાય છે. ઇત્યાદિક—સ્મૃતિમાં કહ્યું છે. તે પ્રમાણે બ્રહ્મમાં અને પોતામાં લયથવાનું લખેલ છે તે બ્રહ્મભાવ સમજવો. જેના ઉપર ભગવાનનો અત્યંત અનુગ્રહ હોય છે તેને તેવો બ્રહ્મભાવ પ્રભુ પ્રથમ સંપાદનકરિને તેમાંથી તેનો ઉદ્ધાર કરે છે; એટલે બ્રહ્મભાવને પ્રાપ્તથયેલ—જીવોમાં જેના ઉપર અત્યંત અનુગ્રહ હોય છે તેને ભગવાન્ પોતાનો માને છે તેથી બ્રહ્મભાવમાંથી તેને પાછો બહાર કહાડે છે; કેમકે કઠોપનિષદમાં કહેલ છે કેઃ—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः ॥

અર્થ—આ આત્મા વ્યાખ્યાનવડે મેળવીશકાય તેમ નથી તેમ ધારણા—શક્તિવડે કે ઘણા—ગ્રંથોનો અભ્યાસકરવાથી મેળવીશકાય તેમ નથી પણ જેને તે આત્મા વરે છે એટલે આ જીવ પોતાનો છે એમ સ્વીકારે છે તેણે મેળવીશકાય છે. એમ કહેલ છે તેથી ભગવાન્ અનુગ્રહ કરીને પોતાપણાથી સ્વીકાર કરે છે તેનો બ્રહ્મભાવમાંથી ઉદ્ધાર કરે છે. એમ લખેલ છે તેથી મુક્તિ તો સર્વને આપે છે પણ ભક્તિ તો જેના ઉપર પરમ અનુગ્રહ હોય તેનેજ આપે છે; તેથીંજ શ્રીભાગવતપંચમસ્કંધમાં કહેલ છે કેઃ—

भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ।

અર્થ—મુકુંદ—ભગવાન્ પોતાનું ભજનકરનારને મુક્તિ આપે છે પણ ક્યારેય ભક્તિ આપતા નથી. એવો રીતે અનેકસ્થલમાં લખ્યું છે કે જેના ઉપર અત્યંત અનુગ્રહ હોય તેનેજ ભક્તિ આપે છે. અક્ષરબ્રહ્મ શ્રીપુરૂષોત્તમનું ઘર છે તેમાં બ્રહ્મની સાથે એકતાવડે રહેલા—જીવનો પોતે ઉદ્ધાર કરે છે; એટલે તેને બ્રહ્મમાંથી જૂદો કરે છે. અહિં યત્નથી ઉદ્ધારકરવાનું લખેલ છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે તેજીવઉપર અત્યંત કૃપા થવાથી તેના વિયોગને પ્રભુ સહન કરિશક્તા નથી તેથી તેનો ઉદ્ધારકરવામાં પ્રભુ ઇચ્છા કરે છે. તેવિષે વ્યાસસૂત્રના ૪ થા અધ્યાયના ૪ પાદના પ્રારંભમાં કહેલ છે કેઃ—

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ।

અર્થ—બ્રહ્મભાવનું સંપાદનકરિને તેમાંથી ભગવાનવડે તેજીવનો આવિર્ભાવ થાય છે; કેમકે તૈતરીય—ઉપનિષદમાં કહેલ છે કઃ—

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाऽभ्युक्ता ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं
गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते
सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता ।

અર્થ—બ્રહ્મને જાણનાર તેથી પરને પ્રાપ્ત થાય છે. આશ્રુતિમાં જેપરની પ્રાપ્તિ લખી છે તેનું સ્વરૂપ કેવળ અનુભવથીજ જણાય છે બીજાં પ્રમાણથી જણાતું નથી. એમ જણાવવામાટે શ્રુતિપોતે સર્વઅર્થનાં તત્વને પ્રતિપાદનકરનાર છે છતાં બીજાના મુખવડે કહે છે કે બ્રહ્મજાણનારને પરપ્રાપ્તિથવારૂપ અર્થ સ્પષ્ટરીતે પ્રતિપાદનકરવામાટે નીચેની શ્રુતિ પરબ્રહ્મનાં સ્વરૂપને જાણનારાઓયે કહેલી છે. એમ કહિને सत्यं ज्ञानमनन्तम् એ શ્રુતિ લખેલી છે. પ્રથમ બ્રહ્મનેજાણનાર પરને પ્રાપ્તથાય છે એમ કહેલું છે તેનીજ સ્પષ્ટતા આશ્રુતિમાં કહેલી છે કે સત્ય, જ્ઞાન અને અનંત એવું બ્રહ્મ છે તે હૃદયાકાશરૂપ—ગુહામાં સ્થાપન કરેલું જે જાણે છે તે નાનાપ્રકારના ભોગકરવામાં ચતુર એવા બ્રહ્મ (શ્રીપુરૂષોત્તમ)ની સાથે સર્વકામને ભોગવે છે; એટલે ભક્તના હૃદયમાં અલૌકિક—અક્ષરબ્રહ્મનાં સ્વરૂપનો આવિર્ભાવ થાય છે એમ બતાવવાસારૂ હૃદયાકાશની ગુહાને પરમ અને વ્યોમન્ એ બે વિશેષણ આપેલાં છે તેનો અર્થ એવો છે કે પર એવા શ્રીપુરૂષોત્તમ જેનાથી જણાય તે परम કહેવાય છે અને व्योमन् શબ્દ આકાશને કહેનારો હોવાથી અક્ષરબ્રહ્મ પણ આકાશની માફક સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે છતાં શ્રીપુરૂષોત્તમનાં સ્વરૂપના આવિર્ભાવનાં સ્થાનરૂપ થાય છે. બ્રહ્મનું લક્ષણ सत् चित् અને आनन्दરૂપ છે તેમાં આશ્રુતિમાં सत्य, ज्ञान અને अनन्त એવું બ્રહ્મ કહેલ છે તેમાં સત્યશબ્દથી સદંશ, જ્ઞાનશબ્દથી ચિદંશ અને અનંત શબ્દથી આનંદાંશ સમજવો. અક્ષરબ્રહ્મમાં આનંદ છે તેની ગણના તૈતરીયશ્રુતિમાં કહેલી છે કે—આખી પૃથ્વી દ્રવ્યથી પૂર્ણ થાય તે મનુષ્યનો એક આનંદ કહેવાય છે, તેવા સો આનંદ મનુષ્યના થાય ત્યારે મનુષ્યગંધર્વનો એક

આનંદ થાય છે, તેમ સોસોગણા આનંદ ગણતાં છેવટ ગણના કરી છે કે બ્રહ્માજીના
સો આનંદ થાય ત્યારે અક્ષરબ્રહ્મનો એક આનંદ થાય એમ અક્ષરબ્રહ્મસુધી આનંદની
ગણના છે તેથી તેના આનંદનું પરિમાણ આવીજાય છે અને અહિં શ્રીપુરુષો-
ત્તમનો આવિર્ભાવ થવાથી આનંદની ગણના રહેતી નથી એમ બતાવવાસારૂ અહિં
આનંદનો વાચક अनंत શબ્દ મૂકયો છે. જો કે ભોગના અર્થમાં अश् ધાતુ છે તેનું
अश्नाति એવું રૂપ થાય છે અને વ્યાપ્તિના અર્થમાં अशूङ् ધાતુ છે તેનું अश्नुते એવું
રૂપ થાય છે તોપણ અહિં ભોજનના અર્થમાંજ અશધાતુનું अश्नुते એવું રૂપ લખેલું
હોય એમ જણાય છે; કેમકે અહિં શ્રુતિમાં જીવ અશન કરે છે તે બ્રહ્મની સાથે કરે
છે એમ લખેલું છે તેથી વ્યાપ્તિનો અર્થ કરિએં તો બ્રહ્મની સાથે રહેલા-કામને જીવ
વ્યાપ્તથાય છે એવો અર્થ થાય અથવા બ્રહ્મની સાથે રહેલો જીવ કામને વ્યાપ્ત-
થાય છે એવો અર્થ થાય. તે બંને અર્થ ઘટતા નથી કેમકે કામવાળો જીવ બ્રહ્મને
કામ વ્યાપ્ત કરે એમ કહેવું તે અત્યંત મોટાં બ્રહ્મનાં સ્વરૂપમાં અણુ એવો જીવ
કામને વ્યાપ્ત કરે તે સંભવે નહિં તેથી ભોજનના અર્થમાં अश् ધાતુનોજ अश्नुते
એમ પ્રયોગ લખેલ છે ને આઅર્થને અલૌકિકપણું છે એમ જણાવવાસારૂ अलौकिक
પ્રયોગ કહેલો છે. એવીજ રીતે नतदश्नोति कश्चन न तदश्नोति कश्चन (તે કોઇને ખાતું
નથી તેમ તેને કોઇ ખાતો નથી.) એમ લખેલ છે ત્યાં પણ ભોજનના અર્થમાંજ अश्
ધાતુનો પ્રયોગ સમજવાનો છે, વ્યાપ્તિનો અર્થ લાગુ પડતો નથી; કેમકે સર્વત્ર વ્યાપકને
વ્યાપ્તિનો નિષેધ સંભવે નહિં. અહિં શંકા થાય કે ઉપર લખેલી-શ્રુતિમાં જીવ
કામસહિત કહેલ છે અને બંનેને કામનો ઉપભોગ કહેવાથી તે જીવ જેની સાથે
કામનો ભોગ કરે છે તે પણ સગુણ બ્રહ્મ છે એમજ કહેવું જોઇએં કેમકે બૃહદારણ્યક-
શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति ।

અર્થ—જ્યાં દ્વૈતજેવું થાય છે ત્યાં બીજો બીજાને દેખે છે. ઇત્યાદિક કહિને
કહેલું છે કેઃ—

यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् ।

અર્થ—જ્યાં સર્વ આત્માજ છે એવું જ્ઞાન થયું છે ત્યાં (જોનાર, જોવાનો
પદાર્થ અને જોવાનું સાધન આત્મરૂપ હોવાથી) કોણ શેણેકરિને કોને દેખે? ઇત્યાદિક
શ્રુતિવડે બ્રહ્મને જાણનાર હોય તેને બીજો પદાર્થ કાંઇ દેખાતોજ નથી તેથી કામનો
ઉપભોગ સંભવે નહિ. એવી શંકા થાય તેની નિવૃત્તિમાટે શ્રુતિમાં કહેલ છે કે બ્રહ્મને
જાણનારાઓએ આ શ્રુતિ કહેલી છે. તેથી બ્રહ્મને જાણનાર હોય તેને પ્રાકૃતગુણનો
સંબંધ કહિશકાતો નથી. તેમ ઉપરની શ્રુતિમાં બ્રહ્મને જાણનારને અખંડબ્રહ્મનું અદ્વૈત
ભાન થવાથી પ્રપંચસંબંધી ભેદ દેખાતો નથી એમ કહેવાનો તેશ્રુતિનો અભિપ્રાય
છે પણ પ્રપંચાતીત-પદાર્થના દર્શનનો બોધ કે નિષેધ તેશ્રુતિમાં નથી અને શ્રીપુ-
રુષોત્તમનું સ્વરૂપ તો સમગ્ર પોતાના ધર્મસહિત પ્રપંચાતીતજ છે. તેથી તેના

દર્શનવિગેરેમાં આશ્રુતિનો બાધ આવતો નથી. ત્યાં એવી શંકા થાય કે ન સ પુનરાવર્ત્તતે (બ્રહ્મભાવને પ્રાપ્તથએલો પાછો ફરતો નથી.) એમ કહેલું છે તેનો વિરોધ આવે. તેથી બ્રહ્મભાવ થયાપછી જીવને બહાર કહાડે છે એમ કહેવું સંભવતું નથી. એવી શંકા કરવી નહિં કેમકે જીવ પાછો આવતો નથી એમ શ્રુતિમાં કહેલ છે તે પ્રપંચમાં પાછો આવતો નથી એવા અભિપ્રાયથી કહેલ છે, અને ભગવાનની સાથે કામભોગવવાનું શ્રુતિમાં લખેલ છે તેને પ્રપંચાતીતપણું છે તેથી ન સ પુનરાવર્ત્તતે એશ્રુતિનો વિરોધ આવતો નથી; કેમકે શ્રુતિમાં પરસ્પર વિરોધ આવેજ નહિં માટે ઉપરની શ્રુતિમાં બ્રહ્મની સાથે કામભોગવવાનું લખ્યું છે તે બ્રહ્મમાં મળેલા જીવનો તેમાંથી ઉદ્ધારકર્યાવિના સંભવે નહિં માટે બ્રહ્મમાંથી ઉદ્ધાર કરે છે એવોજ તેનો અભિપ્રાય છે એમ બતાવવામાટેજ વ્યાસસૂત્રમાં ભગવાનવડે તેનો આવિર્ભાવ થાય છે એમ કહેલ છે. તેથીજ શ્રીભાગવતદશમસ્કંધમાં કહેલ છે કેઃ—

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः । ददृशुर्ब्रह्मणो लोकम् ।

અર્થ—સર્વગોપોને ભગવાન્ બ્રહ્મહ્રદમાં લઈગયા ત્યાં તેને મગ્નકર્યા અને તેમાંથી તેનો ઉદ્ધાર કર્યો ત્યારે તેઓને વ્યાપિવૈકુંઠનાં દર્શન થયાં. એમ કહેલ છે તેમજ શ્રીઆચાર્યચરણે ફલપ્રકરણના પ્રારંભની કારિકામાં આજ્ઞા કરેલ છે કેઃ—

ब्रह्मानन्दात् समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने ।
लीला या युज्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यते ॥

અર્થ—બ્રહ્માનંદમાંથી ઉદ્ધારકરિને ભજનાનંદમાં જોડવામાં જે લીલા સારી રીતે યુક્ત થાય છે તે ચોથાપ્રકરણમાં નિરૂપણકરાય છે. આઉપરથી એમ સમજવાનું છે કે ઉપર લખેલી શ્રુતિમાં જેને સર્વ આત્મારૂપ છે એવું જ્ઞાન થાય છે તે (આત્મા શિવાય બીજું કાંઇ નહિં હોવાથી) કયા સાધનવડે કોને જુવે? એમ લખેલું છે. તે બ્રહ્મને જાણનાર પરને પ્રાપ્ત થયો નથી તેના પૂર્વની દશાની હકીકત છે. અને શ્રીપુરૂષોત્તમને પ્રાપ્તથયાપછીની હાકકત તૈતરીયશ્રુતિમાં ભોગભોગવવાનું લખ્યું છે ત્યાં બતાવી છે; તેથી એવી રીતે સમજવાનું છે કે મર્યાદાના અંશવાળાને બ્રહ્મભાવ થયા પછી તેની ઉપર ભગવાનનો અનુગ્રહ થાય તો તેમાંથી તેનો ઉદ્ધાર કરે છે અને ખાસ પુષ્ટિમાર્ગીયજીવ છે તેનો બ્રહ્મમાં લય પણ નહિં અને તેમાંથી ઉદ્ધાર પણ નહિં તેથીજ ગોપોને બ્રહ્મહ્રદમાં ડુબાવીને પાછા કાઢવાપડયા અને વ્રજભક્તોને બ્રહ્મહ્રદમાં મગ્ન કર્યાશિવાયજ ભજનાનંદનો અનુભવ કરાવ્યો; તેથીજ શ્રીદામોદરદાસપ્રભૃતિને લીલાનો અનુભવ થયાનું લખલું છે તે ઘટે છે. અહિં શંકા થાય કે ભક્તને અલૌકિક—દેહની પ્રાપ્તિ થાય એમ ઉપર કહ્યું ત્યારે તો ભક્તના દેહને અનિત્યપણું આવ્યું;—કેમકે પ્રથમ દેહ અનિત્ય હતો ત્યારે અલૌકિક દેહ કરવોપડયો અને ભક્તના દેહને જ્યારે અનિત્યપણું આવ્યું ત્યારે તેમની સાથે જે લીલા થઇ તેને પણ અનિત્યપણું આવે છે. એવી શંકા કરવી નહિં કેમકે શ્રીપુરૂષોત્તમની લીલાને નિત્યપણું શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને ન્યાયાદિકથી સિદ્ધ છે તેજ શ્રીગુસાંઇજીયે વિદ્વન્મંડનમાં

પ્રતિપાદન કરેલ છે કે ध्रुवासो अस्य कीरयः (પ્રભુનું કીર્ત્તનકરનારા નિત્ય છે.) એ-
શ્રુતિથી સિદ્ધ છે. તેમ ગર્ગાચાર્યે નામપ્રકારણનિરૂપણમાં કહેલ કે છેઃ—

वहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्म्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥

અર્થ—હે નંદરાયજી! તમારા પુત્રના ગુણ અને કર્મને અનુરૂપ એવાં નામ
અને રૂપો ઘણાં છે તેઓને હું પણ જાણતો નથી અને બીજાં માણસો પણ જાણતાં
નથી. એમ કહ્યું છે ત્યાં ઘણાં નામો અને રૂપો છે એમ વર્તમાનકાલનો પ્રયોગ લખેલો
છે તે નામને અને રૂપને નિત્યપણું સિદ્ધ કરે છે અને નામ તથા રૂપ ગુણ તથા
લીલાથી થાય છે એમ લખેલ છે તેથી તેસંબંધિ લીલાને પણ નિત્યપણું છે એમ
અર્થાત્ સિદ્ધથાય છે. તેમજ ઉત્તરાર્દ્ધના છેલ્લા—અધ્યાયમાં શ્રીશુકદેવજીયેં કહ્યું છે કેઃ—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्म्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम् ॥

અર્થ—મનુષ્યના નિવાસરૂપ, દેવકીજીને ત્યાં જન્મ થયાનું જેને કથનમાત્ર
છે બાકી જે જન્મવગરના છે, ઉત્તમ—યાદવોની સભારૂપ—પોતાના શ્રીહસ્તવડે અ-
ધર્મને નાશકરનાર, સ્થાવર તથા જંગમના દુઃખને મંદહાસ્યવાળાં—શ્રીમુખવડે
હરનાર, અને વ્રજ તથા પુર (મથુરાજી તથા દ્વારકા)ની સ્ત્રિઓને કામદેવવધારતા
એવા શ્રીકૃષ્ણ જયપામે છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં દ્વારકાની લીલાનું વર્ણન સમાપ્ત
કરતીવખતે આ શ્લોક કહેલ છે તે છતાં વ્રજની, મથુરાજીની અને દ્વારકાની
સ્ત્રિઓને કામદેવ વધારે છે એમ વર્તમાનપ્રયોગ લખેલો છે તે પણ સર્વ લીલા સદા
થયાકરે છે એમજ સિદ્ધકરે છે. તેથીજ વ્યાસસૂત્રના અધ્યાય ૪ ના ૪ પાદમાં
કહેલ છે કેઃ—

जगद्व्यापारवर्ज्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ।

અર્થ—सोऽश्नुते सर्वान् कामान् એશ્રુતિમાં બ્રહ્મની સાથે જીવ સર્વકામને
ભોગવે છે એમ લખેલું છે તે લૌકિકવ્યાપારયુક્ત છે કે નહિં? એવી શંકા થાય
તેની નિવૃત્તિમાટે કહે છે કે જગતના વ્યાપારથી વર્જિત છે કેમકે મુક્તિના પ્રકર-
ણમાં એ શ્રુતિ કહેલી છે અને લૌકિક વ્યાપાર તેમની પાસે નથી, ભગવાનની લીલા
કાલ અને માયાથી પણ દૂર છે ત્યાં પ્રાકૃત જગત્ તો અત્યંત દૂરજ હોય તેમાં
સંશય નથી તેથી પણ લૌકિક વ્યાપારનો સંભવ નથી; માટે એમ સમજવું કે
જ્યારેં લોકમાં લીલા પ્રકટકરવાની ભગવાનની ઇચ્છા થાય ત્યારેં લીલા થઇશકે એવાં
યોગ્ય સ્થળ—મથુરાદિ—શુદ્ધદેશમાં (ગોલકમાં ચક્ષુઇંદ્રિયની માફક) સ્થાપનકરીને
ભગવાન્ લીલા કરે છે. ત્યારેં પણ લીલાની અંદરના ભક્તોને લૌકિકવ્યાપારનો

સંભવ નથી; કેમકે ચક્ષુઇંદ્રિયને સ્થાનકે લીલા છે અને ગોલકને સ્થાનકે લીલા-કરવાનું સ્થાન છે તેથી ચક્ષુઇંદ્રિય ગોલકનું કાર્ય કરતું નથી તેમ ગોલકના નાશથી તેમનો નાશ નથી; તેથીજ दिवीव चक्षुराततम् એશ્રુતિના વ્યાખ્યાનમાં વિદ્વન્મંડ-નમાં નિરૂપણ કરેલ છે કે લીલામધ્યપાતી–જીવોની ઇંદ્રિયો પણ અલૌકિક છે તેમ છાંદોગ્યઉપનિષદના ૭ મા પ્રપાઠકમાં લખેલ છે કે भूमैवसुखम्। भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः (ભૂમાજ સુખ છે માટે ભૂમાજ જાણવાયોગ્ય છે) એમ કહિને ભૂમાનું લક્ષણ કહેલ છે કેઃ–

यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति स भूमा ।

અર્થ–જ્યાં બીજું દેખતો નથી, બીજું સાંભળતો નથી અને બીજું જાણતો નથી એ ભૂમા છે. એમ કહ્યું છે ત્યાં બીજું જાણતો નથી એટલુંજ કહેવાથી અભિ-પ્રાય સિદ્ધ થાય એમ હતો તે છતાં દેખતો નથી અને સાંભળતો નથી એમ ઇંદ્રિ-યના વ્યાપારનો નિષેધ કરેલો છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે ભગવાનશિવાય બીજા વિષયમાં ઇંદ્રિયોનો વ્યાપાર નથી અને ભગવાનમાં તેની ઇંદ્રિયોનો વ્યાપાર છે; માટે જગતના વ્યાપારથી રહિતપણું ત્યાં સિદ્ધથાય છે.

શંકા–ઉપર ભૂમાના લક્ષણની છાંદોગ્યશ્રુતિ કહી તેપ્રકરણમાંજ सर्वं ह पश्यति (બધું દેખે છે) એમ સર્વ પ્રત્યક્ષજોવાનું લખ્યું છે ત્યારેં ભગવાનશિવાય બીજામાં તેની ઇદ્રિયોનો વ્યાપાર નથી એમ કહેવું સંભવતું નથી. એમ એકજભક્તની સાથે ભગવાન્ જૂદા જૂદા દેશમાં અને જૂદા જૂદા સમયમાં અનેક–લીલાઓ કરે છે તે જો લીલા નિત્ય હોય તો એકજ ભક્તની સાથે જૂદા જૂદા દેશમાં અને જૂદા જૂદા કાળમાં તે સંભવે નહિં; કેમકે તેતેદેશ અને તેતેસમયની લીલા નિત્ય છે અને જેનો સાથે લીલા કરે છે તેભક્તોને પણ નિત્યપણું હોય ત્યારેં સંભવે. અને ભક્તને પણ નિત્યપણું હોય તો ભક્તનાં પણ અનેકરૂપ છે એમ કહેવું જોઈયે. તે એક-જીવનું અનેકપણું સંભવે નહિં એમ એનું નિત્યપણું પણ સિદ્ધથાય નહિં.

ઉત્તર–વ્યાસસૂત્રમાંજ ઉપરનાં સૂત્રપછીજ લખેલ છે કેઃ—

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्योक्तेः ।

અર્થ–ઉપર લખ્યાપ્રમાણે છાંદોગ્યશ્રુતિમાં સર્વ જોવાનો પ્રત્યક્ષ ઉપદેશ થાય છે એવી શંકા કરવી નહિં; કેમકે ત્યાં સર્વ જોવાનું કહેલ છે તે મંડલમાં રહેલાં રૂપોની ઉક્તિ છે; એટલેં છાંદોગ્યશ્રુતિમાં सर्वं ह पश्यति એશ્રુતિમાં સર્વ જોવાનું લખ્યું છે તે સર્વપદથી જગતને જોવાનું સમજવાનું નથી પણ જૂદા જૂદા દેશ અને જૂદા જૂદા કાલમાં જેભક્તની સાથે લીલા કરાય છે તેભક્તનાં રૂપ તેટલાં છે તેથી તેટલી લીલાના અધિકારી તે ભક્ત છે તેના સમૂહમાં રહેલી વસ્તુમાત્ર સર્વશબ્દથી કહેલ છે; માટે ભગવાનશિવાય બીજામાં ઈંદ્રિયોનો તેનો વ્યાપાર નહિહોવાનું ભૂમા ના લક્ષણની શ્રુતિમાં લખેલું છે તેનો વિરોધ આવતો નથી; તેથીજ આગળ શ્રુતિમાંજ કહેલ છે કેઃ–

सर्वमाप्नोति सर्वशः स एकधा भवति त्रिधा भवति
पञ्चधा भवति सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादश स्मृतः
शतञ्च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ।

અર્થ—એક ભક્ત સર્વપ્રકારે સર્વને પ્રાપ્તથાય છે, તે એકપ્રકારેથાય છે, ત્રણપ્રકારે થાય છે, પાંચપ્રકારે થાય છે, સાતપ્રકારે, નવપ્રકારે, ફરિને અગ્યાર-પ્રકારે, સંભળાય છે. તેમજ તે સો, દસ, એક, હજાર, અને વિશ એટલાં-રૂપવાળો થાય છે. એમ કહેલ છે ત્યાં એકભક્તનાં અનેક રૂપો છે એમ સિદ્ધ કરેલું છે. જેમ ઘણાપુરુષોનું મંડલ કરેલું હોય તેમાં એકનું પ્રથમથી મુખ્યપણું કહિશકાતું નથી તેવીં રીતેં ભક્તોનાં તેરૂપોમાં અમુક રૂપ મુખ્ય છે અને અમુક ન્યૂન છે એમ કહિશકાતું નથી એમ બતાવવામાટે સૂત્રમાં મંડલપદ લખેલું છે.

શંકા—ઉપર ભક્ત અને ભક્તસંબંધિલીલાને નિત્યપણું કહ્યું ત્યારેં 'કાલ હું તારે ઘેર આવીશ' એમ ભગવાને ભક્તને આજ્ઞા કરી હોય તેથી ભક્ત બીજે દિવસ ભગવાન્ પધારશે એવી આશાથી ઘરમાં રહે છે તે રહેવું સંભવે નહિં કેમકે તે-ભક્તને નિત્યપણું છે તેથી ભક્તસંબંધ લીલા, કાલ અને ભગવાનનું પધારવું તે સર્વ તેસમયમાં પણ હોવું જોઇયેં.

ઉત્તર—વ્યાસસૂત્રમાં કહ્યું છે કેઃ—

विकारावर्ति च तथाहि स्थितिमाह ।

અર્થ—ભગવાનની લીલાથી વિરુદ્ધ અર્થ તે વિકાર કહેવાય છે. તેમાં વર્ત્તનાર
ભક્તનું જ્ઞાન નથી; એટલેં ભગવાનને જેવી લીલા કર્ત્તવ્ય હોય તેવુંજ ભક્તને જ્ઞાન
થાય છે; તેથી શ્રુતિમાં પણ सर्वमाप्नोति सर्वशः (એક ભક્ત સર્વપ્રકારે સર્વને પ્રાપ્ત
થાય છે.) એમ સર્વપ્રકારેં સર્વલીલાના રસની પ્રાપ્તિ કહિ છે તે ભક્તની લીલામાં
સ્થિતિ બતાવે છે; માટે જેભક્તને ભગવાન્ આજ્ઞા કરે છે કે આવતી કાલ હું તારે
ઘેર આવીશ તેભક્તને તેસમયમાં ભગવાનની સ્થિતિનું જ્ઞાન થતું નથી. એ એક
ઉપલક્ષણની રીતેં કહેલ છે બાકી ભગવાન્ જેસમયમાં આજ્ઞા કરે છે તેસમયમાં
જેવી લીલા હોય તેવી લીલાનુંજ તેભક્તને જ્ઞાન થાય છે બીજીબાબતનું જ્ઞાન થતું
નથી; માટે શ્રુતિને માનનારાઓએં એ વસ્તુજ અલૌકિક છે એમ માનવું જોઇએ. અલૌ-
કિકઅર્થમાં લૌકિકરીતિનું અનુસરણ કરવું તે યુક્ત નથી. પણ અલૌકિકરીતિનું
અનુસરણ કરવું તેજ યુક્ત છે એમ સૂત્રમાં हि અવ્યયથી બતાવેલ છે, અને તેમ
થાય ત્યારેજ શ્રુતિમાં રસરૂપ ભગવાન્ કહેલ છે તેપ્રમાણે રસનો ઉદય થાય તે
સિવાય થાય નહિં. તેથીજ વ્યાસસૂત્રમાં કહેલ છે કેઃ—

दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ।

અર્થ—પ્રત્યક્ષ ને અનુમાન પણ એવી રીતેં બતાવે છે; માટે લૌકિકી—રીતિનો વિરોધ અહિં બાધકપણાથી માનવાયોગ્ય નથી પણ સાધકપણાથી માનવાયોગ્ય

છે; કેમકે પ્રત્યક્ષ અને અનુમાન એટલે શ્રુતિ અને સ્મૃતિ પણ ભગવત્સંબંધી—અર્થ અલૌકિક છે તેમાં લૌકિકયુક્તિવડે અન્યથાભાવનો નિષેધ કરે છે. એવી રીતે શ્રુતિમાં કહેલ છે કેઃ—

नैषा तर्केण मतिरापनेया । पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च । अलौकिकास्तु
ये भावा न ताँस्तर्केण योजयेत् ।

અર્થ—આ મતિ તર્કેકરિને મટાડવી નહિં. આ ભગવાનની સ્વાભાવિક એવી ઉત્તમ શક્તિ ત્રિવિધપ્રકારની સંભળાય છે અને તેમાં કેટલીક જ્ઞાનશક્તિ અને ક્રિયાશક્તિ છે. જે અલૌકિક ભાવ છે તેને તર્કસાથે જોડે નહિં. એમ શ્રુતિઓમાં લખેલ છે. તેમ શ્રીભાગવતષષ્ઠસ્કંધમાં દેવતાઓની સ્તુતિમાં લખેલ છે કેઃ—

नहि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगण-
ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कप्रमाणा-
भासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाशयदुरवग्रहवादिनां
विवादानवसरे ।

અર્થ—જેના ગુણના સમૂહની ગણના થતી નથી, જેના માહાત્મ્યનું અવગાહન થતું નથી, અને આજકાલના જૂદા જૂદા તર્કો પ્રમાણજેવા લાગે પણ પ્રમાણરૂપ નથી એવાં શાસ્ત્રોમાં કરેલા કુતર્કોવડે જેઓનું અંતઃકરણ મલિન થઈગયું છે, તેથીજ ખોટો આગ્રહ રાખી વાદકરનારાઓ છે તેઓને વિવાદકરવાનો જેમાં સમય મળતો નથી એવા ઈશ્વર—ભગવાનમાં પરસ્પર વિરુદ્ધ એવા બંને ધર્મો રહેલા છે તેમાં વિરોધ આવતો નથી. ઇત્યાદિકવાકયોવડે અચિંન્ત્ય અને અનંતશક્તિવાળા ભગવાન્ હોવાથી ભગવાનના સ્વરૂપનેજ પરમફલપણું છે એમ સિદ્ધથાય છે. તેમ ઋગ્વેદમાં કહેલ છે કેઃ—

ता वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥

અર્થ—શ્રીગોપીમાધવરૂપે એવા બંને—આપનાં તે રહેવાનાં સ્થલોને પ્રાપ્તથવામાટે અમે ઇચ્છા કરિએ છીએ જ્યાં ઘણા શીંગાવાળી ગાયો વસે છે. તે પદ અહિંજ છે તેથી ઘણાએ ગવાતા એવા અને ભક્તને ઇચ્છિત—કામઆપનાર એવા ભગવાનનું પરમપદ ઘણું પ્રકાશે છે. આ ની આ શ્રુતિ થોડા પાઠભેદવડે યજુઃ શાખામાં પણ છે. અહિં ઘણાં શીંગવાળા પશુ કહેલ છે તેથી રુરુવગેરે પણ વસે છે; એટલે ગાયો અને રુરુ એ બંને લખેલ છે; તેથી ગામના પશુ અને વનના પશુ એ બંને સમજવાનાં છે. વૈકુંઠ ભગવાનનું સ્થાન છે તેનાથી પણ આ શ્રીગોકુળ અધિક છે એમ બતાવવામાટે શ્રુતિમાં પરમ પદ મૂકેલ છે. અહિં ભૂરિ (ઘણાં) પદ કહેલ છે તેથી શ્રીયમુનાજીના તટ, નિકુંજ અને શ્રીગોવર્ધનાદિરૂપથી ઘણાં રૂપપણું બતાવ્યુ

છે. એસ્થલોની અમો પ્રાર્થના કરિએ છીએ, એમ આશ્રુતિનો અભિપ્રાય છે; તેથી લીલાસંબંધી સર્વ સ્થલો અને વસ્તુને ફલપણું હોવાથી તેની પ્રાર્થના કરી છે એમ સ્પષ્ટ સિદ્ધ થાય છે; તેથી લીલા નિત્ય છે એમ શ્રુતિથી સિદ્ધ થાય છે. જેમ અક્ષર-બ્રહ્મને સર્વત્રવ્યાપકપણું છે તેમજ ભગવદ્‌ભક્તના અલૌકિક—આકારને વ્યાપકપણું છે પણ જ્યારે આનંદનું તિરોધાન થાય છે ત્યારે આકારનું પણ તિરોધાન થાય છે તેથી પ્રાકૃતશરીરમાં આનંદાકારતિરોહિતપણાથી રહેલ છે માટે નિબંધમાં જીવને નિરાકાર લખેલા છે, કેમકે બ્રહ્મવાદમાં આકારને આપનાર આનંદજ હોવાથી તેનું તિરોધાન થાય છે ત્યારે જીવ નિરાકાર રહે છે અને આનંદનો પ્રાદુર્ભાવ થાય ત્યારે સાકારપણું થાય છે તેસમયમાં તેભક્તની સાથે ભગવાનની લીલાનો પણ પ્રાદુર્ભાવ થાય છે; માટે લીલાને અનિત્યપણું નથી. જેભક્તોને બ્રહ્મમાં સાયુજ્ય કરે છે તે-ભક્તોને અલૌકિકઆકારનો પ્રાદુર્ભાવ થવામાટેજ બ્રહ્મમાં લય કરે છે; કેમકે તેવી રીતની મર્યાદા છે. અને જેભક્તોનો બ્રહ્મમાં લય થતો નથી તેઓને તેના શરીરમાંજ અલૌકિકઆકારનો આવિર્ભાવ કરે છે.

શંકા—ભક્તને લીલાનો અનુભવ કરાવવાસારૂ તેનો અક્ષરબ્રહ્મમાંથી આવિ-ર્ભાવ કરે છે ત્યારે શ્રીપુરુષોત્તમસાથે જીવનો ભેદ થયો અને જ્યારે ભેદ માન્યો ત્યારે અભેદને કહેનાર—શ્રુતિનો વિરોધ આવશે!

ઉત્તર—લીલામાં રહેલા—ભક્તોને બ્રહ્મરૂપપણું હોવાથી તેનો ભેદ નથી. જેમ અક્ષરબ્રહ્મ સર્વત્ર વ્યાપક છે છતાં તેને તૈતરીયશ્રુતિમાં પુચ્છપણું લખ્યું છે તેમજ ગોપોને વ્યાપિવૈકુંઠનું દર્શન કરાવ્યું ત્યારે લોક દીઠા તેથી અક્ષરબ્રહ્મને લોકપણું થયું અને કેટલેકઠેકાણે ભગવાનના ચરણપણું અને કેટલેકઠેકાણે ભગવાનના ધામપણું લખેલું છે ત્યાં જેમ અક્ષરબ્રહ્મનાં સ્વરૂપને બાધ આવતો નથી. અને જેમ વત્સાહરણલીલામાં ગોપ, વત્સ, તેમના શરીરોના અવયવો, લાકડીયો, વેણુઓ, શીંગડાંઓ અને શીંકાઓવિગેરેરૂપ ભગવાન્ થયા તો પણ તેના સ્વરૂપમાં ભેદ આવ્યો નહિં તેવી રીતે ભક્ત બ્રહ્મરૂપ હોવાથી તેના શરીરમાં ભેદ આવતો નથી. અને કદી ભેદ આવે છે એમ ક્ષણભર માનિયે તો પણ તે ભેદ શ્રીપુરુષો-ત્તમની ઇચ્છાથી શ્રીપુરુષોત્તમની સાથે થયેલો છે કાંઇ અક્ષરબ્રહ્મની સાથે તે થયેલો નથી. અને અભેદને કહેનારી—શ્રુતિયો અક્ષરની સાથેના અભેદનો બોધ કરે છે કાંઇ પુરુષોત્તમની સાથેના અભેદનો બોધ કરતી નથી; તેથીજ શ્રીઆચાર્યજીએ અણુભાષ્યમાં આજ્ઞા કરી છે કે શ્રીપુરુષોત્તમની સાથે લય થાય તો પણ લીલાનો અનુભવ તો થાય નહિં તેથી જીવનો નાશજ થયો એમ સમજવું. અને એવાજ અભિપ્રાયથી શ્રીગુસાંઇજીના પૌત્ર શ્રીદેવકીનંદજીયે લખેલ છે કે—

अक्षरेण सहैक्यं हि जीवस्य श्रुतयो जगुः

અર્થ—અક્ષરની સાથે જીવની એકતાનુંજ શ્રુતિયોયે કહેલું છે (કાંઇ પુરુષો-ત્તમની સાથે એકતાનું કહેલું નથી) તેથીજ અક્ષરબ્રહ્મથી પર એવા પુરુષોત્તમની સાથે

અભેદને બતાવનાર માર્ગ છે તે તામસનો છે એમ પદ્મપુરાણના ઉત્તરખંડમાં શિવજીયેં કહેલ છે કે—

श्रृणु देवि! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम् ।
येषां स्मरणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि ॥

અર્થ—હે દેવિ તામસશાસ્ત્રોને હું ક્રમેકરિને કહું છું તે તમે સાંભલો કે જેનાં સ્મરણમાત્રથી જ્ઞાનિયોને પણ પતિતપણું થાય છે. એમ કહિને શૈવ, પાશુપત, વૈશેષિક, ન્યાય, નિરીશ્વર—સાંખ્ય, ચાર્વાક અને બૌદ્ધ એટલાં શાસ્ત્રો તામસ છે એમ કહિને કહેલ છે કે—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।
मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शितं लोकगर्हितम् ।
कर्म्मस्वरूपत्याज्यत्वं त्वत्रैव प्रतिपाद्यते ॥
सर्वकर्मपरिभ्रष्टं विकर्मत्वं तदुच्यते ।
परेशजीवयोरैक्यं मयाऽत्र प्रतिपाद्यते ॥
ब्रह्मणस्तु परं रूपं निर्गुणं वर्ण्यते मया ।
सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं कलौ युगे ॥
वेदार्थवन्महच्छास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।
मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात् ॥

અર્થ—માયાવાદ અસત્છાસ્ત્ર છે અને તે છાંનો બૌદ્ધ કહેવાય તે હે દેવિ કલિયુગમાં બ્રાહ્મણનું રૂપ ધરિને મેં કહેલું છે, તેમાં લોકમાં નિંદિત એવું શ્રુતિના વાક્યોનું (અર્થવાદાદિરૂપેં) વ્યર્થપણું દેખાડેલું છે તેમાંજ કર્મના સ્વરૂપને છોડવાપણું પ્રતિપાદિત છે. તે સર્વકર્મથી પરિભ્રષ્ટ—વિકર્મપણું કહેવાય છે, પરબ્રહ્મ અને જીવની એકતા મેં તેમાં પ્રતિપાદન કરાય છે અને બ્રહ્મનું પર, નિર્ગુણરૂપ મારાથી વર્ણવાય છે તે અહિં કલિયુગમાં સર્વજગતના મોહને માટે છે. વેદના અર્થવાળું મોટું શાસ્ત્ર માયાવાદ છે તે અવૈદિક છે તે જગતનો નાશ કરવામાટે હે દેવિ મેંજ કહેલ છે. એમ કહેલ છે. નાગોજી ભટ્ટે તો માર્કંડેયપુરાણાંતર્ગત દેવીમહાત્મ્યની ટીકામાં मायावादं એશ્લોકનાં ત્રણ પાદ અહિં લખ્યાં છે તેવાંજ લખીને ચોથું પાદ जगतां नाशकारणात् એમ લખેલ છે પણ તે પ્રાચીન અને અર્વાચીન ગ્રંથો જોતાં ब्राह्मणरूपिणा એવો પાઠ દેખાય છે માટે પરબ્રહ્મની સાથે જીવની એકતાનું પ્રતિપાદનકરનાર શાસ્ત્ર તામસ છે એમ સમજવું; તેથીજ સાયુજ્યશબ્દનો એક અર્થ બ્રહ્મમાં લય અને બીજો અર્થ સાથેં યુક્તથઇને રહેવું તે શ્રીપુરુષોત્તમની સાથે રહેવું એમ બે અર્થ શાસ્ત્રકારોયેં કર્યા છે. (૯૦)

બ્રહ્મમાંથી જીવનો ઉદ્ધારકર્યાનું ઉપરના શ્લોકમાં જે જણાવ્યું છે તેપ્રમાણે જેજીવનો ઉદ્ધાર કરેલો હોય તેની ઉદ્ધાર કર્યા પછી કેવી સ્થિતિ રહે છે? એમ જાણવાની ઇચ્છા થાય ત્યાં કહે છે.

मूलम् । उद्धृतौ परमक्लेशो विरहानलसंभवः ।
यदा देहादिनाशाय समर्थो जायते तदा ॥ ९१ ॥
निजं श्रीमत्कृष्णचन्द्रः स्वाधिकारानुसारतः ।
परमानन्दलीलां तामनुभावयिता प्रभुः ॥ ९२ ॥

શબ્દાર્થ—જીવનો ઉદ્ધાર કર્યા પછી તેને વિપ્રયોગ બહુ થાય છે. તે વિપ્રયોગરૂપ—અગ્નિથી જેની ઉત્પત્તિ છે એવો પરમ ક્લેશ જ્યારે દેહાદિકનો નાશકરવામાં સમર્થ થાય છે ત્યારે શ્રીમત્કૃષ્ણચંદ્ર પ્રભુ છે તે જીવના અધિકારને અનુસારે પ્રસિદ્ધ એવી પરમાનંદલીલાનો અનુભવ કરાવે છે.

ટીકા—જીવને ભગવાનના વિપ્રયોગનો જ્યારે અત્યંત કલેશ થાય ત્યારે તેનો જેવો અધિકાર હોય તેપ્રમાણે તેને પરમાનંદનો અનુભવ કરાવે છે. અક્ષરબ્રહ્મસુધી ગણેલો આનંદ છે તેઆનંદકરતાં અધિક આનંદ લીલામાં રહેલો છે એમ બતાવવાસારૂ परमानंद શબ્દ લખેલો છે—એલીલાનો અનુભવ ભગવાન્ અનુગ્રહ કરે ત્યારેજ મેળવીશકાય છે. લીલાનો અનુભવકરવામાં ભક્તની મુખ્યતા રહે છે તે આગળ નિરૂપણ કરેલું છે. ભગવાન્ रसो वै सः એશ્રુતિમાં લખ્યાપ્રમાણે રસરૂપ છે અને આ જીવ ભગવાનના રસને મેળવીનેજ આનંદવાળો થાય છે એમ रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति એશ્રુતિમાં કહેલ છે. તેમ વળી આગળ શ્રુતિમાં કહેલ છે કે—

को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।
एष ह्येवानन्दयाति ॥

અર્થ—આનંદમય આકાશરૂપ ભગવાન્ જો ન હોય તો જીવને કોણ જીવાડે? અને કોણ આનંદવડે પૂર્ણ કરે? એજ પરમાત્મા જીવને આનંદરૂપ કરે છે. અહિં ભગવાનનાં રસાત્મકસ્વરૂપનો લાભ થાય ત્યારે જીવ આનંદરૂપ થાય છે. એમ કહિને જીવના જીવનનું અને પરમાનંદનું હેતુપણું શ્રુતિમાં કહેલ છે કે મરણનાં કારણની ઉપસ્થિતિ ન હોય તો જીવનનું કારણ કહેજ નહિં; માટે સંયોગ અને વિપ્રયોગ એવા બેભાવવડે રસ બેપ્રકારનો હોવાથી બન્નેપ્રકારનો ભાવ પૂર્ણથવાથી રસ પૂર્ણ થાય છે; તેમાં વિપ્રયોગભાવનો તાપ શરીરનો ઉપમર્દક હોવાથી જો સ્ફુરાયમાન આનંદરૂપ ભગવાન્ ન હોય તો પ્રાણની સ્થિતિ પણ રહે નહિં પ્રાણનાશની ઉપસ્થિતિ થાય, એવી આપત્તિનું નિવારણ ભગવાનથીજ થાય છે. એમ બતાવવામાટે શ્રુતિમાં हि અવ્યય લખેલો છે. તેવા જીવનું જીવન રાખવું એ ભગવાનને આવશ્યક છે એમ જણાવવામાટે શ્રુતિમાં एव લખેલો છે અને

તાપાત્મક–વિપ્રયોગને પણ આનંદરૂપપણું છે એમ બતાવવામાટે શ્રુતિમાં आनन्द પદ કહેલ છે. ત્યારપછી પ્રકટથઇને દર્શન, સ્પર્શ આશ્લેષ અને ભાષણાદિકવડે પૂર્વના તાપની નિવૃત્તિપૂર્વક આનંદપૂર્ણ ભગવાનશિવાય બીજો કોણ કરે? એવો એશ્રુતિયોનો અભિપ્રાય છે. એવો અભિપ્રાય ન હોય તો શ્રુતિમાં अन्यात् અને प्राण्यात् એ બે પદો કહ્યાં છે તે જીવનાર્થક अनति નાં બન્ને રૂપો છે તેથી પુનરુક્તિરૂપ દોષ આવે માટે પ્રથમ अन्यात् રૂપ કહેલ છે તેનો અભિપ્રાય વિપ્રયોગના તાપમાં પણ ભક્તનું જીવન ભગવાન્ સિદ્ધ રાખે છે એવા અર્થને કહેનાર છે અને પ્રઉપસર્ગસહિત (प्राण्यात्) રૂપ છે તે જીવને તાપની નિવૃત્તિપૂર્વક આનંદપૂર્ણકરનાર ભગવાન્ છે એવા અર્થને કહેનાર છે. તેવિષે વ્યાસસૂત્રના ચતુર્થાધ્યાયના દ્વિતીયપાદના ૧૩ મા સૂત્રમાં કહેલ છે કે–

स्पष्टो ह्येकेषाम् ।

અર્થ–વેદના કેટલીક શાખાવાલાઓને ભગવાનના સ્વરૂપનો લાભ થયા પછી ભગવાનના વિપ્રયોગનું દુઃખ અને સંયોગથી તેની નિવૃત્તિકરવારૂપ અર્થ સ્પષ્ટ નિરૂપણ કરેલો છે. એમ કહિને તેના ભાષ્યમાં ઉપર લખેલી रसो वै सः ઇત્યાદિક શ્રુતિયો લખેલી છે. અહિં रसो वै सः એ પ્રથમની શ્રુતિ લખીને એ રસરૂપભગવાનને પ્રાપ્તથઇને જીવ આનંદરૂપ થાય છે એમ લખેલ છે ત્યાં રસાત્મક ભગવાનના સ્વરૂપનો લાભ થયાપછી જીવ આનંદવાલો થાય છે એમ કહિને તેનેજ ભગવાનશિવાય બીજો કોણ જીવાડે? અને પરમાનંદરૂપ કરે? એમ પાછું કહ્યું છે તે મરણનું કારણ ન હોય તો જીવનનું કારણ ન કહે માટે વિપ્રયોગસંબંધિ દુઃખ થવું તે મરણનુ કારણ ઉપસ્થિત થાય છે ત્યારે ભગવાન્ તેને જીવાડે છે એવા અભિપ્રાયને સૂચવે છે–અને ત્યારપછી પ્રકટથઇને પોતાનો સ્વરૂપાનંદ આપિને આનંદપૂર્ણ ભગવાન્સિવાય બીજો કોણ કરે? એમ કહ્યું છે તે સંયોગમાં સુખનો અનુભવ ભગવાન્ કરાવે છે એવા અભિપ્રાયને સૂચવે છે, આસંબંધે વિશેષ અભિપ્રાય જાણવાની ઇચ્છા રાખનારે અણુભાષ્ય તથા વિદ્વન્મંડનવિગેરે ગ્રંથો જોઇલેવા–(૯૧૯૨)

આ પરમાનંદનો અનુભવ કરવામાં મુખ્ય કારણ શ્રીમહાપ્રભુજીની કૃપા છે તે કહે છે–

मूलम् । इतिश्रीवल्लभाचार्यचरणाब्जकृपाभरात् ।
प्राप्यते नान्यथा चैतद्ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥ ९३ ॥

શબ્દાર્થ–એ બ્રહ્માદિકને પણ અત્યંત દુર્લભ એવું પરમાનંદનું આસ્વાદન તે એક શ્રીમહાપ્રભુજીના ચરણારવિંદની કૃપાના બળથીજ પમાય છે. તેને પામવાનો બીજો ઉપાય નથી.

ટીકા–છાંદોગ્યપનિષદના ૬ ઠ્ઠા પ્રપાઠકમાં ઉદ્દાલકે શ્વેતકેતુપ્રત્યે કહેલ છે કે आचार्यवान् पुरुषो वेद (આચાર્યવાળો પુરૂષ જાણે) એમ કહેલ છે તેથી આચાર્યને શરણે ગયાવિના તેવું ઉત્તમ ફળ મળતું નથી તેમજ सर्वोत्तमजीમાં કહેલ છે કે—

कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिरत्र न संशयः

અર્થ—શ્રીસર્વોત્તમજીમાં શ્રીઆચાર્યજીના૧૦૮નામનું નિરૂપણ શ્રીગુસાંઇજીયેં કરેલ છે તેમાં એવો પ્રભાવ રહેલો છે કે તેના અર્થના અનુસંધાનપૂર્વક હમેશાં તેનો પાઠ કરે તોશ્રીકૃષ્ણના અધરામૃતના આસ્વાદરૂપ—ફલની સિદ્ધિ થાય; તેથીજ તેનામ—નિરૂપણની અંદર પણ એવી રીતેં કહે છે કે—

सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेमा विमुक्तिदः।
रासलीलैकतात्पर्यः कृपयैतत्कथाप्रदः ॥

અર્થ—શ્રીમહાપ્રભુજી પોતાનાં સાન્નિધ્યમાત્રમાં શ્રીકૃષ્ણમાં પ્રેમ આપે છે, મુક્તિથી વિશેષ ફલ આપે છે, રાસલીલાનું મુખ્ય તાત્પર્ય લૌકિકાસક્તિ છોડી ભગવદાસક્તિરૂપ છે તે તાત્પર્ય આપ સિદ્ધિ કરે છે અને કૃપાયેં તેનીજ કથાનું વિશેષ દાન કરે છે; તેથીજ શ્રીઆચાર્યજીના ચરણારવિંદની કૃપા હોય ત્યારેજ તે ફલ પ્રાપ્તથાય, અને આ ફળ બ્રહ્માદિકને પણ દુર્લભ છે એમ મૂલમાં કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે બૃહદ્વામનપુરાણમાં કથા છે કે ભૃગુઋષિ બ્રહ્માજીપાસે ગયા છે અને ત્યાં પ્રસંગ ચાલતાં બ્રહ્માજીયેં વ્રજભક્તોની ઘણી પ્રશંસા કરી છે અને કહેલ છે કે એમનાં ચરણની રજની અમે પ્રાર્થના કરિયેં છીયેં. તેઉપરથી ભૃગુઋષિયેં પૂછ્યું છે કે તમારાસરખાપણ વ્રજભક્તોની ચરણરજની પ્રાર્થના કરે છે તેનું શું કારણ? ત્યારેં બ્રહ્માયેં કહ્યું કે—

न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः पुत्र! ताः श्रुतयः किल।
नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचित् ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
तथाऽपि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः ॥

અર્થ—હે પુત્ર વ્રજસ્ત્રિયો સ્ત્રિયો નથી પણ નિશ્ચય તે શ્રુતિયો છે માટે તેની બરોબર હું, શિવજી, શેષજી કે લક્ષ્મીજી ક્યારેં પણ થઈશકાયેં તેમ નથી. મેં પૂર્વે તેઓના ચરણની રજ પ્રાપ્તથવામાટે સાઠહજારવર્ષસુધી તપ કર્યું તો પણ તેમના ચરણની રજ પ્રાપ્તથઇ નહિં, એમ કહ્યું છે તેથી ભગવાનની લીલાના મુખ્યભક્તની ચરણરજ પણ અત્યંત દુર્લભ છે ત્યારેં શ્રીકૃષ્ણનાં અધરામૃતનું આસ્વાદન પ્રાપ્ત થવું તેતો અત્યંત દુર્લભ હોવુંજ જોઇયેં એવો અભિપ્રાય સિદ્ધથાય છે. (૯૪)

હવે જ્ઞાનિયોની મુક્તિ અને ભક્તને લીલાની પ્રાપ્તિ તેના સ્વરૂપને બતાવે છે.

मूलम्। ये तु ज्ञानैकसन्निष्ठास्तेषां तु लय एव हि।
भक्तानामेव भवति लीलास्वादोऽतिदुर्लभः ॥ ९४ ॥

શબ્દાર્થ—જે તો કેવલ જ્ઞાનમાંજ નિષ્ઠાવાલા છે તેઓનો તો લયજ થાય છે અને અતિ દુર્લભ એવો લીલાસ્વાદ તો ભક્તોનેજ થાય છે.

ટીકા—જ્ઞાનિયોનો અક્ષરબ્રહ્મમાં લય થાય છે તેજ તેઓની મુક્તિ છે તેવિષે શ્રુતિમાં કહેલ છે કે—

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः (જ્ઞાનવિના મુક્તિ નથી.) ज्ञानादेव च कैवल्यम् (જ્ઞાનથીજ મોક્ષ થાય છે.) न स पुनरावर्तते (તે પાછો આવતો નથી.) એમ કહેલ છે તેથી જ્ઞાનિયોનો અક્ષરબ્રહ્મમાં લય થાય છે એમ સિદ્ધ છે.

શંકા—તમારા સિદ્ધાન્તમાં પણ ભક્તોનો અક્ષરબ્રહ્મમાં લય થયાપછી ભગવાન્ તેનો ઉદ્ધાર કરે છે માટે न स पुनरावर्त्तते એશ્રુતિમાં પુનરાવર્તનનો નિષેધ લખ્યો છે તેનો વિરોધ આવે છે.

ઉત્તર—न स पुनरावर्त्तते એશ્રુતિમાં પુનરાવર્ત્તનનો નિષેધ કરેલ છે તેનો અભિપ્રાય સંસારમાં તે પાછો નથી આવતો એવો છે કાંઇ અક્ષરાતીત—શ્રીપુરુષોત્તમની પ્રાપ્તિ થતી નથી એવો અભિપ્રાય નથી; તેથીજ ગીતાજીમાં શ્રીકૃષ્ણે અર્જુનપ્રત્યે કહેલ છે કે:—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ! ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय ! पुनर्जन्म न विद्यते ॥

અર્થ—બ્રહ્મભુવનસુધી લોક પુનરાવૃત્તિવાળા છે અને મને પ્રાપ્તથયાપછી તો હે કુંતાજીના પુત્ર! પુનર્જન્મ રહેતો નથી. અહિં બ્રહ્મભુવન કહેવાથી બ્રહ્મલોક અને અક્ષરબ્રહ્મ બંને સમજાય છે માટે ત્યાંસુધી પુનરાવર્ત્તન લખેલ છે અને ભગવાનની પ્રાપ્તિ થયાપછી પુનર્જન્મ નથી. આનું વિશેષ નિરૂપણ વિદ્વન્મંડન, અણુભાષ્યવિગેરે—ગ્રંથોમાં છે માટે વિશેષજીજ્ઞાસુએ ત્યાંથી જોઇલેવું. હવે અહિં એમ સમજવાનું છે કે न स पुनरावर्त्तते એશ્રુતિમાં અક્ષરબ્રહ્મની પ્રાપ્તિમાં પણ પુનરાવર્ત્તન નથી એમ બતાવ્યું છે ત્યારે શ્રીપુરુષોત્તમ કે જે અક્ષરાતીત છે તેની પ્રાપ્તિમાં પુનરાવર્ત્તન નહોય એ સંભવિતજ છે; માટે એવા શ્રીપુરુષોત્તમનાં ભજનનો આનંદ અત્યંત દુર્લભ છે એમ મૂળમાં કહ્યું છે તે યોગ્ય છે. તેઉપર શ્રીભાગવતમાં કહેલ છે કે—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ! ॥

અર્થ—મુક્ત એવા પણ સિદ્ધોમાં અત્યંત શાંતઆત્માવાળો નારાયણપરાયણ, કરોડોમાં પણ દુર્લભ છે. એમ કહેલ છે તેથી ઉપર દુર્લભપણું લખેલું છે તેવિષે બૃહદ્વામનપુરાણમાં બ્રહ્મા અને ભૃગુઋષિના સંવાદમાં ભૃગુઋષિએ શ્રીગોપીજનો શ્રુતિઓ કેમ છે? એમ પ્રશ્ન કર્યું છે ત્યારે બ્રહ્માજીએ કહેલ છે કે શ્રુતિઓએ અક્ષરાતીત—ભગવાનની સ્તુતિ કરી ત્યારે ભગવાન્ પ્રકટથઇ દર્શન આપી વરદાન માગવાનું કહેતાં શ્રુતિઓએ કહેલ છે કે:—

नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत ! ।
सगुणं ब्रह्म तत्सर्वं वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः ॥

ब्रह्मेति पठ्यतेऽस्माभिर्यद्रूपं निर्गुणं परम् ।
वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत् ॥
आनन्दमात्रमिति यद्वदन्तीह पुराविदः ।
तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः ॥

અર્થ—હે અચ્યુત! આપનાં નારાયણાદિકરૂપ અમે જાણેલાં છે પણ તે સર્વે સગુણ—બ્રહ્મ હોવાથી તેમાં અમને વસ્તુબુદ્ધિ નથી; માટે નિર્ગુણ, પર અને વાણી તથા મનથી ગોચર થાય નહિં એવું જે રૂપ છે એમ અમે નિરૂપણ કરિએંછીએં તે રૂપ વાણી અને મનથી જણાતું નથી અને પૂર્વે જાણનારા જેને આનંદમાત્ર કહે છે તેરૂપનું દર્શનકરવાની ઇચ્છા ઘણી થાય છે માટે આપને વરદાન આપવું હોય તો તેનું દર્શન કરાવો. એમ શ્રુતિઓએં પ્રાર્થના કરેલી છે ત્યારેં ભગવાને અક્ષર-બ્રહ્મમાં રહેલ શ્રીવૃંદાવન, શ્રીયમુનાજી, શ્રીગિરિરાજવિગેરે—સર્વવ્રજનું સ્વરૂપ તેને દેખાડયું અને તેની ભીતર નિત્યસિદ્ધાના યૂથની સાથે કિશોરવયના ભગવાન ક્રીડા કરતા હતા એમ પણ દર્શન કરાવ્યું. ત્યાર પછી ભગવાને કહ્યું કે તમને જે દર્શનનો મનોરથ હતો તે સિદ્ધથયો. હવે કાંઇ ઇચ્છા હોય તો માગો. ત્યારેં શ્રુતિઓને નિત્ય-સિદ્ધ—શ્રીગોપીજનોની રીતેં ભગવાનની સાથે ક્રીડાકરવાની ઇચ્છા થતાં તે વરદાન માગ્યું. ત્યારેં ભગવાને કહ્યું છે કેઃ—

दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथः ।
मयाऽनुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति ॥
आगामिनि विरिञ्चौ तु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते ।
कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥

અર્થ—આ તમારો મનોરથ બહુ સારો છે પણ દુર્લભ અને દુર્ઘટ (મેળવી-શકાય નહિં અને થઇશકે નહિં તેવો) છે. તોપણ મેં (હવે કાંઇ ઇચ્છા હોય તો માગો એમ) અનુમોદન કર્યાથી તે મનોરથ સત્ય થવાને યોગ્ય છે; માટે હવે બ્રહ્માજી થશે, અને સૃષ્ટિ કરવા માટે ઉદ્યમ કરશે ત્યારેં સારસ્વતકલ્પમાં તમે વ્રજમાં શ્રીગોપીજન થશો. એમ ભગવાને વરદાન આપવાથી સર્વ શ્રુતિયો શ્રીગોપીજનો થયેલ છે એમ બ્રહ્માજીયેં કહિને વળી કહેલ છે કે—

स्त्रियो वा पुरुषा वापि भक्तिभावेन केशवम् ।
हृदि कृत्वा गतिं यान्ति श्रुतीनां नात्र संशयः ॥

અર્થ—સ્ત્રિઓ હોય અથવા પુરુષો હોય ગમે તે હોય તોપણ ભક્તિભાવે કરીને કેશવને હૃદયમાં રાખીને શ્રુતિયોની ગતિને પ્રાપ્ત થાય છે એમાં સંશય નથી; અર્થાત્ શ્રુતિયોને જેવી ભજનાનંદની પ્રાપ્તિ થઇ એવીજ ભક્તોને થાય તેમાં સંશય નથી. એમ બ્રહ્માજીયેં ભૃગુઋષિને કહેલ છે તેથી તેવા ભક્તોની શ્રેષ્ઠતામાં કાંઇ સંદેહ

રાખવાનો નથી, તેથી ભગવાનની લીલાનો સ્વાદ તેવા ભકતોનેજ પ્રાપ્તથાય છે. (૯૪)
એવી રીતેં સર્વ નિરૂપણ કરીને હવે સમાપ્તિની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.

मूलम् । इतिश्रीश्रीमदाचार्यचरणाब्जप्रसादतः ।
प्रोक्तं गिरिधरेणेदं पश्यन्तु हरिभावुकाः ॥ ९५ ॥

શબ્દાર્થ—એપ્રમાણે શ્રીઆચાર્યજીના ચરણારવિંદના પ્રસાદથી શ્રીગિરિધરજીમહારાજે પ્રકર્ષવડે કહેલા આ શુદ્ધાદ્વૈતમાર્તંડને ભગવાનમાં ભાવવાળા (ભકતો) જુઓ.

ટીકા—મૂળશ્લોકમાં બે શ્રી છે તે બેતરફ બીરાજતાં શ્રીસ્વામિનીજીના વાચક છે. એથી શ્રીઆચાર્યજીને પણ લીલાસ્થપુરુષોત્તમપણું પ્રાપ્તથાય છે. અને શ્રીપુરુષોત્તમરૂપ (શ્રી મહાપ્રભુજી) ના ચરણારવિંદના પ્રસાદવડેજ આ રસનું આસ્વાદન કરીશકાય છે એમ જાણવું. (૯૫)

આ ગ્રંથને ભણનાર તથા જોનારને જે ફલ થાય છે તે કહે છે કે—

मूलम् । सूर्योदये शीतमपैति सर्वं मार्गावलोको जलजप्रकाशः ।
तमोनिवृत्तिर्द्विजकर्मवृत्तिस्तथैव मार्त्तण्डनिबन्धबोधे ॥ ९६ ॥

इतिश्रीमुकुन्दरायसहजमाधुरीपरमानिर्वचनीयसरसवदनतामरससुधाह्रदावगाहिश्रीमदाचार्यकृपापारसारश्रीमत्प्रभुचरणात्मज—श्रीयदुनाथकुलोद्भव—गोस्वामिश्रीगोपालात्मजनुषा श्रीगिरिधरेण विरचितः शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डः समाप्तिमफणीत ।

શબ્દાર્થ—સૂર્યનો ઉદય થાય ત્યારે સર્વ શીત નિવૃત્ત થાય, માર્ગ પ્રકટ દેખાય, કમલનો પ્રકાશ થાય, અંધકારની નિવૃત્તિ થાય અને બ્રાહ્મણોના કર્મની પ્રવૃત્તિ થાય તેવી રીતેં શુદ્ધાદ્વૈતમાર્તંડના બોધવડે પણ થાય છે.

ટીકા—શીતનું જાડ્ય નામ છે તેથી સૂર્યોદયવડે જેમ શીતનિવૃત્તિ થાય છે તેમ આગ્રંથના બોધવડે (સિદ્ધાન્તજ્ઞાનમાં) જે જડતા હોય તે જતીરહે છે, સૂર્યનો ઉદય થવાથી જેમ રસ્તાનું જ્ઞાન થાય છે તેમ આગ્રંથના બોધથી નિજાચાર્યપ્રકટિત—માર્ગનું જ્ઞાન થાય છે, સૂર્ય ઉદય થયે કમળ પ્રકાશિત થાય છે તેમ આગ્રંથનો બોધ થયે ભક્તના હૃદયરૂપિ—કમળનો પ્રકાશ થાય છે, સૂર્યનો ઉદય થયે જેમ અંધકારનિવૃત્તિ થાય છે તેમ આગ્રંથના બોધથી માર્ગસંબંધિ—અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ થાય છે. અને સૂર્યોદયથી બ્રાહ્મણાદિકને સંધ્યાવંદનાદિકર્મમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે એમ બ્રહ્મસંબંધકરનારને આગ્રંથના બોધવડે ભગવાનની સેવારૂપ—કર્મમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે. અહિં બ્રહ્મસંબંધવાળાને સેવારૂપ—કર્મમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે એમ કહ્યું છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે આત્મનિવેદિયોને જ ભક્તિ (સેવા) કરવાનો અધિકાર છે, બીજાઓને નથી. તેજ કહે છે કે જેમ ગાયત્રીમંત્રનો ઉપદેશ લીધા પછી દ્વિજપણું (બ્રાહ્મણપણું) થાય છે તેમ આ માર્ગમાં આત્મનિવેદનકરનારને સેવાકરવાના અધિકાર-

રૂપ–દ્વિજપણું પ્રાપ્તથાય છે, જેમ બ્રાહ્મણકુળમાં જન્મ થયું હોય તોપણ ગાયત્રી-મંત્રનો ઉપદેશ ગ્રહણ કર્યા બાદ તેને દ્વિજપણું પ્રાપ્તથાય છે તેમ શરણમંત્ર ગ્રહણ કર્યા પછી વૈષ્ણવપણું પ્રાપ્તથયું તોપણ આત્મનિવેદન કર્યાથી સેવાનો અધિકાર સિદ્ધ થાય છે. (૯૬)

એ પ્રમાણે શ્રીયદુનાથજીના કુળમાં ચૂડામણિરૂપ અને ગુરુ એવા શ્રીગિરિધરજીમહારાજના ચરણકમળના પરાગનો આસ્વાદલેનાર રામકૃષ્ણે (શ્રીગિરિધરજીમહારાજની) કૃપાના કણવડે પોતાને બોધ થવામાટે શુદ્ધાદ્વૈતમાર્ત્તણ્ડનો પ્રકાશ કરેલો છે. જે મેં સાચું ખોટું પણ ધાર્ષ્ટ્યવડે આપ્રકાશમાં લખેલ છે. તેમાં નિજેશ્વર એવા શ્રીઆચાર્યજી કૃપા કરો. એમ પ્રકાશકારે પ્રકાશની સમાપ્તિમાં પ્રાર્થના કરી છે.

ઇતિ શ્રીશુદ્ધાદ્વૈતમાર્ત્તંડનું ગુજરાતી ભાષાન્તર સુધારા વધારા સહિત સમાપ્ત થયું

ભાષાન્તરકરનાર–શાસ્ત્રી–છગનલાલ અમરજીના સર્વવિદ્વાન તથા સુજ્ઞ–વૈષ્ણવોને શ્રી–સ્મરણપૂર્વક પ્રાર્થના છે કે આ ગ્રંથ સંક્ષિપ્ત હોવાથી લોકોને બરોબર સિદ્ધાન્ત હૃદયારૂઢ થાય નહિં એમ ધારી બીજા ગ્રંથોના અભિપ્રાય પણ આગ્રંથમાં દાખલ કરેલ છે તેસંબંધે કાંઇ ભૂલચૂક રહીગઇ હોય તો તઉપર દૃષ્ટિ નહિં રાખતાં તેમાં કાંઇ સંદેહ થાય તો તે લખવાથી યથામતિ ખુલાસો કરવામાં આવશે.
